जम्मू-कश्मीर
की अनकही कहानी

कुलदीप चंद अग्निहोत्री

जम्मू-कश्मीर

की

अनकही कहानी

कुलदीप चंद अग्निहोत्री

प्रस्तावना

श्री लालकृष्ण आडवाणी

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

ममतामयी माँ

कौशल्या देवी

और

स्व. बाऊजी ब्रह्मदत्त शास्त्रीजी

को

प्रस्तावना

मेरे जैसे हजारों राजनैतिक कार्यकर्ताओं की राजनीति का आरंभ 1951 में डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी द्वारा भारतीय जनसंघ के निर्माण से हुआ। 1953 में जनसंघ का पहला राष्ट्रीय अधिवेशन कानपुर में हुआ था। मुझे इस अधिवेशन में भाग लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसी अधिवेशन में डॉ. मुकर्जी ने देश को जम्मू-कश्मीर के बारे में यह तेजस्वी नारा दिया—''एक देश में दो विधान, दो प्रधान, दो निशान—नहीं चलेंगे, नहीं चलेंगे''। इसी राष्ट्रीय अधिवेशन में संकल्प लिया गया कि जम्मू-कश्मीर के पूर्ण विलीनीकरण के लिए देश भर के कार्यकर्ता जम्मू-कश्मीर जाकर गिरफ्तारी देंगे।

डॉ. मुकर्जी ने यह भी निर्णय किया कि वे स्वयं इस राष्ट्रव्यापी आंदोलन का नेतृत्व करेंगे और आंदोलन से पूर्व देश का प्रवास कर भारतवासियों को उपर्युक्त नारे की गंभीरता से परिचित करवाएँगे।

इस प्रवास में डॉ. मुकर्जी के सहयात्री रहे श्री अटल बिहारी वाजपेयी। मुझे स्मरण है कि मैं उन दिनों राजस्थान में, कोटा में था। ये दोनों कोटा जंक्शन से गुजरे थे, मैं उन्हें स्टेशन पर जाकर मिला था। मैं नहीं जानता था कि यह डॉ. श्यामाप्रसादजी से मेरी अंतिम मुलाकात साबित होगी।

दिल्ली से डॉ. मुकर्जी 8 मई, 1953 पंजाब के मार्ग से जम्मू के लिए रवाना हुए। अमृतसर स्टेशन पर 20,000 से अधिक लोगों ने उनका स्वागत किया। अमृतसर से पठानकोट व माधोपुर तक की यात्रा भी एक विजय यात्रा सी लग रही थी। दोनों ओर अपार जनसमूह डॉ. मुकर्जी की जय-जयकार के नारे लगा रहा था।

माधोपुर एक छोटा स्थान है रावी तट पर। रावी नदी पंजाब को जम्मू-कश्मीर से विलग करती है। पठानकोट में गुरदासपुर के डिप्टी कमिश्नर आकर डॉ. मुकर्जी से मिले और उन्हें कहा कि पंजाब सरकार का उन्हें आदेश है कि डॉ. मुकर्जी के पास कश्मीर प्रवेश का परमिट हो या न हो, उन्हें माधोपुर से रावी पर बने पुल पर जाने दिया जाए। स्पष्ट है कि केंद्रीय सरकार व कश्मीर सरकार की यह संयुक्त योजना थी कि डॉ. मुकर्जी को जम्मू-कश्मीर की सरकार का ही बंदी बनवाया जाए, पंजाब सरकार का नहीं; और वैसा ही हुआ। पुल के बीचोबीच डॉ. मुकर्जी की जीप को जम्मू-कश्मीर पुलिस के एक दस्ते ने रोका और डॉ. मुकर्जी को 10 मई का एक आदेश दिखाया, जिसमें उनके प्रवेश को प्रतिबंधित किया गया था।

डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी को बंदी बनाकर श्रीनगर ले जाया गया और वहीं पर एक मकान में बंदी बनाकर रखा गया। पुलिस के साथ जाते हुए डॉ. मुकर्जी ने श्री वाजपेयी से कहा कि जाओ, जाकर देश को बताओ कि मैं बिना परमिट के जम्मू-कश्मीर में प्रवेश कर चुका हूँ, किंतु एक बंदी के रूप में।

मई और जून के महीनों में देश भर के हजारों कार्यकर्ता बिना परमिट के राज्य में प्रवेश कर राज्य की पुलिस से संघर्षरत रहे। तिरंगा फहराते हुए कुछ शहीद भी हुए, पर बड़ी संख्या में सत्याग्रही गिरफ्तार होते गए। लेकिन पूरे देश की जनता पर 23 जून, 1953 को जैसे मानो एक वज्रपात हुआ, जब उन्हें सूचना मिली कि डॉ. मुकर्जी थोड़े से अस्वस्थ हुए और कुछ ही समय बाद उनकी मृत्यु हो गई।

पश्चिम बंगाल के कांग्रेसी मुख्यमंत्री डॉ. बी.सी. राय, डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी की पूज्य माताजी श्रीमती योगमायादेवी और अनेकों अन्य गण्यमान्य लोगों ने पं. नेहरू को तार, चिट्ठियाँ आदि भेजकर माँग की कि इस रहस्य से परदा उठाया जाए कि डॉ. मुकर्जी की मृत्यु कैसे हुई। इस पर एक जाँच बिठाई जाए। परंतु इसका कोई उत्तर नहीं दिया गया। यह आज तक भी एक रहस्य बना हुआ है। लेकिन इस भयानक त्रासदी के कारण जो

जनाक्रोश देश भर में पैदा हुआ, उसका सद्परिणाम भी सामने आया। जम्मू-कश्मीर का परमिट सिस्टम समाप्त कर दिया गया। राज्य में तिरंगा झंडा लहराने लगा। उच्चतम न्यायालय, चुनाव आयोग और महालेखाकार के अधिकार क्षेत्र का विस्तार जम्मू-कश्मीर तक कर दिया गया। जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल को सदरेरियासत न कहकर राज्यपाल कहा जाने लगा और मुख्यमंत्री को प्रधानमंत्री न कहकर शेष राज्यों के समान मुख्यमंत्री ही बना दिया गया। इस प्रकार कानपुर में डॉ. मुकर्जी ने देश को जो सारगर्भित नारा दिया था, उनका अधिकांश हिस्सा पूरा हो गया है। दो प्रधान की जगह एक प्रधान हो गया; दो निशान तो हैं परंतु राष्ट्रीय ध्वज को प्रमुखता प्राप्त है और राज्य का ध्वज उसके समकक्ष नहीं माना जाता है। पूरा देश उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा है, जब धारा 370 समाप्त हो और विधान भी एक हो जाए व भारत का पूरा संविधान जम्मू-कश्मीर में लागू हो।

मैं पंजाब सरकार का अभिनंदन करना चाहूँगा कि उन्होंने देश की एकता के लिए शहादत देनेवाले आजाद भारत के प्रथम बलिदानी डॉ. मुकर्जी के सम्मान में एक भव्य प्रतिमा रावी तट पर स्थित माधोपुर में स्थापित की है। 20 मार्च, 2010 को आयोजित इस

डॉ. मुकर्जी की प्रतिमा के अनावरण का चित्र

शानदार समारोह की अध्यक्षता पंजाब के उप मुख्यमंत्री श्री सुखबीर सिंहजी बादल ने की। एक लाख जनता की उपस्थिति में डॉ. मुकर्जी की प्रतिमा का अनावरण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री मोहनराव भागवत द्वारा किया गया।

भारतीय जनसंघ का एक-एक कार्यकर्ता इस बात पर गर्व करता है कि हमारे दल के शैशवकाल में ही हमने राष्ट्र की एकता के लिए जो पहला आंदोलन किया, जिसके लिए हमारे संस्थापक डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने अपना बलिदान दिया, उसने देश के लिए कितनी बड़ी उपलब्धि हासिल की। किंतु हमारे कार्यकर्ताओं के लिए यह जानना भी जरूरी है कि उस आंदोलन का आरंभ जनसंघ के निर्माण से भी पहले जम्मू-कश्मीर में पं. प्रेमनाथ डोगराजी के नेतृत्व में चल रहे प्रजा परिषद् के एक संघर्ष ने कैसे किया। मैं श्री कुलदीप चंद अग्निहोत्रीजी का अंत:करण से आभारी हूँ, उन्होंने अपनी इस पुस्तक द्वारा इस अभाव की कमी पूरी की है और प्रस्तावना के रूप में मुझे ये दो शब्द लिखने का अवसर दिया है।

14.06.2013

(लालकृष्ण आडवाणी)

भूमिका

जम्मू-कश्मीर के पिछले लगभग सात दशकों के इतिहास को देखकर एक अजीब विरोधाभास दिखाई देता है। इस इतिहास को देखकर लगता है कि मानो बल्तीस्तान, गिलगित, लद्दाख, जम्मू और कश्मीर समेत पाँच विशाल संभागोंवाला राज्य केवल कश्मीर घाटी में कश्मीरी भाषा बोलनेवाले मुसलमानों तक सिमटकर रह गया है। सन् 1931-1936 के जिस आंदोलन की राज्य में सर्वाधिक चर्चा होती है, वह भी कश्मीर घटी तक ही सीमित था। सन् 1946 का 'कश्मीर छोड़ो आंदोलन' तो केवल घाटी तक ही सीमित नहीं था, बल्कि अन्य संभागों का परोक्ष रूप से विरोधी भी था। लोगों को आशा थी कि स्वतंत्रता के बाद राज्य के बारे में समग्र रूप से विचार किया जाएगा; परंतु राज्य के लोगों की यह आशा तभी धूमिल होनी शुरू हो गई थी, जब सन् 1947 में राज्य पर पाकिस्तानी आक्रमण के समय, कश्मीर घाटी को आक्रमणकारी से मुक्त करवाने के बाद यह मान लिया गया मानो पूरा राज्य मुक्त हो गया हो। गिलगित, बल्तीस्तान और जम्मू के अधिक्रांत-क्षेत्रों को मुक्त करवाने के गंभीर प्रयास करने की बजाय युद्ध-विराम घोषित कर, यह जिम्मेदारी 'संयुक्त राष्ट्र संघ' को सौंपकर भारत सरकार एक प्रकार से उदासीन हो गई। यह उदासीनता इस हद तक बढ़ी कि सन् 1965 और 1971 के युद्धों में भारतीय सेना ने राज्य के पाक अधिक्रांत-क्षेत्र के जिस थोड़े भू-भाग को मुक्त करवाया, उसको भी सरकार ने वापस पाकिस्तान को सौंप दिया। भारत सरकार के इस पूरे आचरण से कश्मीर घाटी के कश्मीरी भाषा बोलनेवाले मुसलमानों के अलावा राज्य के बाकी लोग स्वयं को परित्यक्त महसूस करते हैं, जिनकी हर प्रकार से अवहेलना की जा रही है।

इस पृष्ठभूमि में एक प्रश्न और उठता है। क्या यह मान लिया जाए कि कश्मीर घाटी में कश्मीरी भाषा बोलनेवाले मुसलमान सांस्कृतिक व भावात्मक स्तर पर राज्य के सभी संभागों के लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं? जमीनी सचाई इसके विपरीत है। कश्मीर घाटी में नेशनल कॉन्फ्रेंस की स्थापना से लेकर सन्1946 में उसके 'कश्मीर छोड़ो आंदोलन' तक पार्टी का जम्मू, लद्दाख, गिलगित और बल्तीस्तान में कोई वजूद नहीं था। रियासत के संघीय व्यवस्था का अंग बन जाने के उपरांत यह स्थिति और भी ज्यादा स्पष्ट होने लगी थी। नेशनल कॉन्फ्रेंस जिन नीतियों पर चल रही थी, जम्मू व लद्दाख-संभाग में उसका तीव्र विरोध होने लगा था।

कॉन्फ्रेंस ने राज्य में केवल तीन विषयों—सुरक्षा, संचार और विदेश-संबंध के लिए ही संघीय संवैधानिक व्यवस्था स्वीकार करने की रट लगाई तो जम्मू व लद्दाख-संभाग में लोग दूसरे धुरव पर खड़े थे। इन दोनों संभागों के लोग राज्य में पूर्ण रूप से संघीय संवैधानिक व्यवस्था लागू करने के पक्ष में थे। यह माँग इतनी प्रबल हो उठी कि लद्दाख के लोगों ने तो लद्दाख को पंजाब तक में शामिल करने की बात कहनी शुरू कर दी। राज्य में दो समानांतर आंदोलन शुरू हो गए। नेशनल कॉन्फ्रेंस का स्वायत्ततावादी आंदोलन, जो संघीय संवैधानिक व्यवस्था को तीन विषयों तक सीमित कर, शेष विषयों पर राज्य की अलग संवैधानिक व्यवस्था का पक्षधर था। दूसरी ओर राष्ट्रवादी शक्तियों का एकीकरण आंदोलन, जो राज्य में पूर्ण संघीय संवैधानिक व्यवस्था का पक्षधर था। दूसरे आंदोलन का नेतृत्व जम्मू-संभाग में प्रजा-परिषद् और लद्दाख में 'लद्दाख बौद्ध एसोसिएशन' कर रही थी। इस पूरे परिदृश्य में नेहरू स्पष्ट ही शेख अब्दुल्ला के साथ थे, जो प्रथम पक्ष का नेतृत्व कर रहे थे।

जिस दिन शेख अब्दुल्ला के दबाव में नेहरू ने महाराजा हरि सिंह को राज्य छोड़ने के लिए विवश किया, उस दिन नेशनल कॉन्फ्रेंस के श्रीनगर कार्यालय में तो दीपमाला की जा रही थी, लेकिन जम्मू में वह 'काला दिवस' था।

स्वायत्ततावादी पक्ष के शेख अब्दुल्ला राज्य के लिए अलग 'ध्वज' की माँग को लेकर अड़े हुए थे। उन्होंने

सरकारी कार्यक्रमों में ही नेशनल कॉन्फ्रेंस का झंडा फहराना शुरू कर दिया तो जम्मू में इसके विरोध में सन् 1952 के शुरू में ही छात्रों ने इतना शक्तिशाली जनांदोलन खड़ा कर दिया कि सरकार को सेना बुलानी पड़ी और 72 घंटे का कर्फ्यू लगाना पड़ा। जुलाई 1952 में नेहरू और शेख की राज्य के भावी संविधान को लेकर कुछ मुद्दों पर सहमति एक प्रकार से पूरे राज्य की संवैधानिक व्यवस्था को ही कश्मीर केंद्रित करने का प्रयास था। इसका जम्मू-क्षेत्र में विरोध ही नहीं हुआ, बल्कि जनता सड़कों पर उतर आई। प्रजा-परिषद् को पहले ही आशंका होने लगी थी कि कश्मीरी नेताओं और नेहरू में कुछ खिचड़ी पक रही है, जो राज्य का हाजमा दुरुस्त करने की बजाय उसको और बिगाड़ देगी, इसलिए वे अपना ज्ञापन लेकर जून में ही राष्ट्रपति के पास जा पहुँचे थे।

स्वायत्ततावादी पक्ष की नेशलन कॉन्फ्रेंस ने राज्य की संविधान सभा में प्रस्ताव पारित कर आनुवंशिक राजवंश की समाप्ति कर दी और महाराजा हरि सिंह के ही सुपुत्र कर्ण सिंह को राज्य का पहला निर्वाचित प्रधान चुन लिया। उस दिन खुशी से फूली न समा रही नेशनल कॉन्फ्रेंस श्रीनगर में उन्हें तोपों की सलामी देकर जश्न मना रही थी, लेकिन जम्मू क्षेत्र में उस दिन पूर्ण बंद था और हर घर पर 'काला झंडा' फहरा रहा था। जिस घटना को कश्मीर घाटी की नेशनल कॉन्फ्रेंस अपनी विजय बता रही थी, वही जम्मू व लद्दाख संभाग के लोगों के लिए उनकी पराजय थी। जम्मू-कश्मीर की नई संवैधानिक व्यवस्था में राज्य के लिए निर्वाचित प्रधान, अलग संविधान और अलग 'ध्वज' का प्रावधान किया गया। नेशनल कॉन्फ्रेंस के अध्यक्ष शेख अब्दुल्ला इसे कश्मीर के लोगों की लंबे संघर्ष के बाद प्राप्त लोकतांत्रिक विजय बता रहे थे, वहीं दूसरी ओर जम्मू क्षेत्र के लोगों ने प्रजा-परिषद् के नेतृत्व में इन्हीं तीनों प्रावधानों को समाप्त करवाने के लिए मोर्चा खोल दिया था। यह आंदोलन अल्पकाल में ही संभाग के दूरस्थ गाँवों तक पहुँच गया और पूरा क्षेत्र इसके ताप से झुलसने लगा। पंद्रह लोगों ने इस आंदोलन में आत्माहुति दी।

कहने का अभिप्राय यह है कि राज्य में नेशनल कॉन्फ्रेंस का स्वायत्तता आंदोलन और प्रजा-परिषद् के नेतृत्व में राष्ट्रवादी शक्तियों का एकीकरण आंदोलन एक साथ समानांतर चल रहे थे। (या अभी भी चल रहे हैं) एकीकरण आंदोलन को जम्मू-संभाग, लद्दाख-संभाग, बल्तीस्तान की कारगिल तहसील समेत कश्मीर के गुज्जरों, बकरबालों, पहाडि़यों व जनजाति-समाज का भी समर्थन प्राप्त था। लेकिन इसे इतिहास की त्रासदी कहा जाए या षड्यंत्र कि कश्मीर घाटी के स्वायत्तता या अलगाववादी आंदोलन पर तो अकादमिक क्षेत्र में बहुत शोध कार्य हुआ है। देशी-विदेशी विद्वानों ने इस पर अपनी-अपनी दृष्टि से विश्लेषण किया है और अपने-अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। लेकन इसी आंदोलन के समानांतर चले 'सशक्त एकीकरण आंदोलन' की कहानी अकादमिक-जगत् में अनकही ही रही है। राज्य के बारे में, उसकी तथाकथित समस्या के बारे में, एक ही पक्ष लिखा, पढ़ा और सुना गया है। स्वाभाविक ही इस प्रकार के अध्ययनों के निष्कर्ष एकांगी और अधूरे ही होंगे। जब इन्हीं अधूरे निष्कर्षों को स्वीकार कर, समाधान के प्रयास किए जाते हैं तो मामला सुलझने की बजाय और उलझ जाता है। विदेशी विद्वानों की इस विषय पर एक सीमा है, या फिर उनके जातीय-हित हैं, यह बात समझ में आ सकती है; लेकिन भारतीय समाजविज्ञानी इस विषय पर मौन क्यों रहे, यह आश्चर्यचकित करनेवाली बात है। जम्मू-कश्मीर की यह गाथा अकादमिक-जगत् में अनकही क्यों रही? इसका उत्तर नहीं मिल रहा। जम्मू में जम्मू-विश्वविद्यालय स्थापित हुए भी चार दशक से ज्यादा हो गए हैं। विश्वविद्यालय ने प्रजा-परिषद् और उसके एकीकरण आंदोलन पर योजनापूर्वक कोई शोध-प्रकल्प प्रारंभ किया हो, ऐसा ध्यान में नहीं आता। इक्का-दुक्का एम.फिल. और पी-एच.डी. के शोध-प्रबंध की बात छोड़ दी जाए तो चारों ओर सन्नाटा ही दिखाई देता है। यहाँ तक कि विश्वविद्यालय महाराजा हरि सिंह और पंडित प्रेमनाथ डोगरा की अभी तक कोई प्रामाणिक-जीवनी तक नहीं निकाल पाया। सन् 1936 से चली

यह प्रवृत्ति राज्य को लेकर किए जा रहे अध्ययनों में अभी भी विद्यमान है।

जम्मू-कश्मीर में प्रजा परिषद् का आंदोलन हुए (1953-2013) साठ वर्ष पूरे हो चुके हैं। उसका इतिहास लिखने और उसको पुन: विश्लेषित करने की आवश्यकता अचानक क्यों आ पड़ी? यह प्रश्न पूछा जा सकता था, इसका अहसास मुझे इस प्रकल्प को हाथ में लेते हुए था ही। इसका एक उत्तर तो बहुत ही सरल और सीधा है। साठ साल में भी इस ऐतिहासिक आंदोलन का इतिहास लिखा नहीं गया था, यही इस जरूरत का सबसे बड़ा कारण है। जम्मू-कश्मीर राज्य की प्रमुख राजनैतिक पार्टी नेशनल कॉन्फ्रेंस से लेकर नाम मात्र की सी.पी.एम. पर भी बहुत कुछ लिखा जा चुका है; तो प्रजा परिषद् का सत्याग्रह शोध वैज्ञानिकों की नजर से ओझल क्यों रहना चाहिए। लेकिन इसका एक दूसरा उत्तर भी है। प्रजा परिषद् ने 7 जुलाई, 1953 को अपना आंदोलन वापस ले लिया था; लेकिन क्या वे मुद्दे जिन्हें लेकर पिछली सदी के मध्य में यह सत्याग्रह शुरू हुआ था, आज भी किसी-न-किसी रूप में जिंदा नहीं हैं? वर्ष 2008 में जम्मू-कश्मीर में हुआ ऐतिहासिक अमरनाथ सत्याग्रह क्या प्रजा परिषद् आंदोलन की निरंतरता को रेखांकित नहीं करता? यह प्रजा परिषद् के उस आंदोलन का विस्तार ही तो है। जम्मू-कश्मीर के आज के मनोविज्ञान को समझने के लिए भी प्रजा परिषद् की पृष्ठभूमि को जान लेना जरूरी है—उसके तात्त्विक पक्ष को भी और उसके आंदोलनात्मक पक्ष को भी। यह प्रयास उसी दिशा की पहली यात्रा है। पहली यात्रा में आसपास को देखने की उत्सुकता ज्यादा रहती है, इसलिए इस प्रबंध में भी प्रजा परिषद् का आंदोलनात्मक पक्ष ही प्राथमिक रहा है। तत्त्व तक पैठने में समय दरकार है। दूसरी यात्रा में उसकी पूर्ति हो सकती है।

प्रजा परिषद् के इतिहास और उसके आंदोलन पर प्रकाशित व संपादित सामग्री का अभाव तो है ही, साथ ही आंदोलन में अग्रणी रहे लोगों द्वारा इस पर बहुत ही कम लिखा गया है—लगभग न के बराबर। सत्याग्रहियों में रणवीर सिंह पुरा के सांजी राम गुप्ता और मध्य प्रदेश के शिव प्रसाद चौरसिया की दो संस्मरणात्मक पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई थीं। जम्मू-कश्मीर से बाहर प्रजा परिषद् के आंदोलन के समर्थन में भारतीय जन संघ, हिंदू महासभा, रामराज्य परिषद् और अकाली पार्टी की संयुक्त संघर्ष समिति की कमान में चलाए गए आंदोलन का केंद्र दिल्ली था। दिल्ली में इस आंदोलन की गतिविधियों पर राम शंकर अग्निहोत्री की एक पुस्तिका 'कश्मीर के मोर्चे पर' 1954 में प्रकाशित हुई थी। दिल्ली से ही उन दिनों सांध्य दैनिक 'आकाशवाणी' निकलता था। इसके संपादक भी राम शंकर अग्निहोत्री ही थे। यह ज्यादातर आंदोलन संबंधी खबरें ही प्रकाशित करता था। यों भी कहा जा सकता है कि इसका प्रकाशन ही आंदोलन के दैनिक समाचार छापने के लिए किया गया था। उन दिनों हिंदी साप्ताहिक 'पाञ्चजन्य' और अंग्रेजी साप्ताहिक 'ऑर्गेनाइजर' भी आंदोलन के समाचार प्रमुखता से देता था। जम्मू से प्रकाशित उर्दू समाचार-पत्र रणवीर, चाँद, अमन और कश्मीर मेल भी आंदोलन की गतिविधियाँ प्रमुखता से छापते थे; लेकिन जल्दी ही राज्य सरकार ने इनका छपना मुश्किल कर दिया था। कुछ साल पहले जब प्रसिद्ध पत्रकार नरेंद्र सहगल जम्मू से 'जम्मू तवी' पत्रिका निकालते थे तो उन्होंने प्रजा परिषद् के आंदोलन से अनेक घटनाएँ प्रकाशित की थीं।

आंदोलन के दिनों के प्रमुख पात्रों में पं. प्रेमनाथ डोगरा, शेख अब्दुल्ला, डॉ. कर्ण सिंह और बख्शी गुलाम मोहम्मद का नाम अग्रणी है। शेख और कर्ण सिंह दोनों ने ही अपनी आत्मकथा लिखी है। शेख ने उर्दू में 'आतिश-ए-चिनार' के नाम से और कर्ण सिंह ने 'आत्मकथा' (हिंदी अनुवाद) के नाम से ही। इन दोनों की आत्मकथाओं में प्रजा परिषद् आंदोलन का जिक्र मिलता है। लेकिन शेख अब्दुल्ला की 'आतिश-ए-चिनार' को कमाल अहमद सिद्दीकी की 'कश्मीर का मंजरनामा' साथ रखकर ही पढ़ा जाना चाहिए, शोध कार्य में तभी उसका सार्थक लाभ हो सकता है। आंदोलन के नायक प्रेमनाथ डोगरा ने इधर-उधर छपे कुछ आलेखों को छोड़कर इस विषय पर कुछ

नहीं लिखा। आंदोलन की पृष्ठभूमि समझने के लिए रियासत के दीवान रहे मेहर चंद महाजन की 'Looking Back' और मुख्यमंत्री रहे मीर कासिम की 'My Life My Times' पुस्तकें भी आंदोलन की मानसिकता समझने में कुछ हद तक सहायक हो सकती हैं। इसे दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि महाराजा हरि सिंह ने अपना पक्ष प्रस्तुत करते हुए कुछ नहीं लिखा। यही कारण है कि उनके बारे में जो अब तक लिखा जा रहा है वह या तो द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है या फिर परिस्थितिजन्य अनुमानों पर। इसके अतिरिक्त पं. जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल का विपुल पत्र साहित्य है, जिसका अधिकांश भाग प्रकाशित हो चुका है। इन पत्रों में से भी प्रजा परिषद् आंदोलन पर कुछ-न-कुछ प्रकाश पड़ता है। पं. जवाहरलाल नेहरू और कर्ण सिंह के बीच हुए पत्र व्यवहार के चुनिंदा हिस्सों को कुछ साल पहले ही प्रकाशित किया गया है। इससे भी प्रजा परिषद् आंदोलन को जानने-बूझने में सहायता मिलती है। जम्मू-कश्मीर पर स्तरीय साहित्य की कमी नहीं है, लेकिन कहीं भी समग्र रूप से प्रजा परिषद् आंदोलन का इतिहास या उसके परिणाम को अपना विषय नहीं बनाया है।

इस विषय पर कार्य करते हुए मैंने पाया कि जम्मू-कश्मीर पर अंग्रेजी भाषा समेत सभी विदेशी भाषाओं में प्रकाशित अधिकांश प्रबंधों में एक क्षेपक प्रवेश पा गया है, जो वायरस की तरह फैलता गया है। प्रजा परिषद् का जहाँ कहीं भी उल्लेख हुआ है, वहाँ परिषद् को राज्य में जागीरदार और जमींदारी उन्मूलन की प्रतिक्रिया में गठित दल बताया गया है। परिषद् का गठन नवंबर 1947 के शुरू में ही हो गया था और उस समय जमींदारी उन्मूलन की चर्चा भी शुरू नहीं हुई थी। दूसरे शोधकर्ताओं ने परिषद् को लेकर इस निष्कर्ष की स्थापना के लिए प्रमाण की चिंता नहीं की और न ही इस विषय पर कोई अनुभवजन्य शोध निष्कर्ष उपलब्ध हैं। फिर आखिर यह भ्रांति शोध प्रबंधों में कैसे घुसी और बिना किसी आधार के मान्यता भी प्राप्त कर गई। इस प्रबंध पर कार्य करते समय मेरे सामने यह प्रश्न बराबर बना रहा। प्रजा परिषद् मीडिया व सरकार की नजर में अपने गठन के समय तो नहीं आई होगी। ऐसा संभव भी नहीं था। लेकिन जब परिषद् का आंदोलन जोर पकड़ने लगा तो प्रजा परिषद् भी मीडिया के लिए खबर बनी। तब तक नेहरू व शेख अब्दुल्ला ने प्रजा परिषद् के खिलाफ संयुक्त मोर्चा खोल दिया था, क्योंकि परिषद् कश्मीर को लेकर उन दोनों की नीति में बाधक बन रही थी। अंग्रेजी भाषा का मीडिया उस समय कश्मीर को लेकर शेख और नेहरू की नीति का ही समर्थन कर रहा था। अंग्रेजी भाषा की संवाद समितियाँ समाचार के नाम पर सरकारी प्रेस नोट को बाँटने का काम ही कर रही थीं। इस माहौल में नेहरू और शेख ने मिलकर प्रजा परिषद् के बारे में मीडिया को जो सूचनाएँ मुहैया करवाईं, वही छपीं और भविष्य के शोधकर्ताओं के लिए प्रमाण बन गईं। भारतीय भाषाओं के मीडिया की स्थिति यह नहीं थी। भारतीय भाषाओं का मीडिया चूँकि जमीन से जुड़ा हुआ था और उसके संवाददाता छोटे-छोटे स्थानों तक थे, इसलिए उसमें प्रजा परिषद् के आंदोलन और उसकी पृष्ठभूमि को लेकर जो प्रकाशित हो रहा था, वह अनेक बार अंग्रेजी भाषा के मीडिया से बिलकुल उलट होता था। लेकिन भारत में समाज-विज्ञान के क्षेत्र में हो रहे शोध कार्य की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि शोध-शास्त्री प्रमाण के लिए अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित स्रोतों का ही सहारा लेते हैं। प्रजा परिषद् आंदोलन के मामले में तो एक और भी दिक्कत है। जम्मू-कश्मीर में उस समय के अधिकांश अखबार उर्दू भाषा में छपते थे। अब यह आशा करना कि कोई शोधकर्ता प्रमाणों के लिए उर्दू स्रोतों का भी प्रयोग करेगा, पानी में से मक्खन निकालना ही होगा। यही कारण रहा कि प्रजा परिषद् आंदोलन को जागीरदारों एवं जमींदारों का आंदोलन मानकर उसे खारिज कर दिया गया।

मैंने अपने इस अध्ययन को नौ अध्यायों में विभाजित किया है। पहला अध्याय 'जम्मू-कश्मीर की सियासत की पृष्ठभूमि' रियासत के भारत में अधिमिलन से लेकर 1953 तक की घटनाओं से ताल्लुक रखता है। मेरा प्रस्तुत

अध्ययन क्योंकि प्रजा परिषद् के आंदोलन का विवरणात्मक इतिहास ही है, इसलिए पहले अध्याय में प्रस्तुत सामग्री को इस अध्ययन में शामिल करने की क्या जरूरत थी, यह प्रश्न उठ सकता है। मैं स्वयं भी इस सामग्री को इस अध्ययन में देने की उपयोगिता को लेकर दुविधाग्रस्त था। लेकिन इस सामग्री को शामिल करने का ठोस कारण है। जम्मू-कश्मीर की 1947 के बाद की पृष्ठभूमि और घटनाओं को समझे बिना प्रजा परिषद् के सत्याग्रह को उसके सही परिप्रेक्ष्य में समझना मुश्किल है। प्रजा परिषद् अपने जन्मकाल से लेकर डॉ. मुकर्जी के देहांत तक (1947-1963 तक) किसी-न-किसी रूप में आंदोलन करती रही है। उसके इस आंदोलन को रियासत के पूर्व घटनाक्रम को जाने बिना नहीं समझा जा सकता। दूसरा अध्याय प्रजा परिषद् के जन्म का है। इस अध्याय में 1947 से लेकर 1952 तक के कालखंड को समेटा गया है। 1949 के अंत तक परिषद् के आंदोलन का पहला चरण समाप्त हो गया था। 1950 और 1951 में प्रजा परिषद् के संगठनात्मक ढाँचे को प्रदेश भर में विस्तार दिया गया और इसके सामाजिक पक्ष को भी सुदृढ़ किया गया। तीसरा अध्याय शेख अब्दुल्ला के अक्तूबर 1947 में सत्ता सँभालने से लेकर 1953 में उनकी बरखास्तगी से संबंधित है। दरअसल इस कालखंड में शेख अब्दुल्ला की कार्यप्रणाली और रियासत को लेकर उनकी भावी योजनाओं के कारण प्रदेश की राष्ट्रवादी शक्तियों का उनसे मोह भंग हुआ, जिसके कारण आम जनता प्रजा परिषद् आंदोलन में सक्रियता से जुड़ने लगी। चौथा अध्याय 1952 के प्रारंभ में जम्मू में हुए छात्र आंदोलन को समर्पित है। इसी छात्र आंदोलन के बहाने प्रदेश सरकार ने प्रजा परिषद् को कुचलने का प्रयास किया और यही परिषद् के अगले सत्याग्रह का आधार बना। पाँचवाँ और छठा अध्याय एक प्रकार से अप्रैल 1952 से लेकर नवंबर 1952 तक के कालखंड का है। इस कालखंड में वे तमाम घटनाएँ व राजनैतिक घटनाक्रम हुए, जिसके कारण परिषद् के आंदोलन का अंतिम चरण शुरू हुआ। सातवाँ अध्याय जम्मू-कश्मीर से बाहर, देश के अन्य हिस्सों में, प्रजा परिषद् के आंदोलन के पक्ष में अन्य-अन्य राजनैतिक दलों द्वारा किए गए आंदोलन को समर्पित है। आठवाँ अध्याय नवंबर 1952 से लेकर 23 जुलाई, 1953 को डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी के देहांत तक का कालखंड है। इसी अध्याय में डॉ. मुकर्जी के देहांत के बाद रियासत में घटी घटनाओं और नेशनल कॉन्फ्रेंस द्वारा शेख अब्दुल्ला के रास्ते को लेकर अविश्वास व्यक्त करने के कारण उनके मंत्रिमंडल की बरखास्तगी तक के कालखंड को समेटा गया है। नौवाँ अध्याय आंदोलन की समाप्ति के बाद प्रजा परिषद् के 1963 में भारतीय जन संघ में सम्मिलित होने तक के कालखंड का है। इसी अध्याय में 1957 और 1962 में हुए विधानसभा चुनावों का संक्षिप्त उल्लेख कर दिया गया है।

मेरे मन में टीस थी कि राज्य में प्रजा परिषद् ने 1948 से लेकर 1953 तक पाँच वर्ष बुनियादी मुद्दों को लेकर ऐतिहासिक आंदोलन चलाया, जिसमें अनेक लोग शहीद हुए। जम्मू-कश्मीर में इस आंदोलन की कहानियाँ लोक कथाओं का हिस्सा तो बन गईं, लेकिन गंभीर वैज्ञानिक विश्लेषण से वंचित रहीं। इसे जम्मू की त्रासदी ही कहा जाएगा।

शायद इसी टीस के कारण मैंने पाँच वर्ष पहले इस प्रकल्प को हाथ में लिया, लेकिन अनेक व्यस्तताओं के चलते मैं इस प्रकल्प पर कार्य प्रारंभ न कर सका। अलबत्ता सामग्री संकलन का काम अवश्य मैंने कछुआ गति से आरंभ कर दिया था। लेकिन कछुए और खरगोश की कहानी में अंत में जीत कछुए की ही हुई थी। आज इस प्रकल्प के पूरा होने पर इसी जीत का संतोष हो रहा है।

इस प्रबंध में तकनीकी शब्दों के लिए मैंने भारत सरकार के विधि मंत्रालय द्वारा प्रकाशित विधि शब्दावली का प्रयोग किया है, ताकि इस प्रकार के ग्रंथों में मानकीकरण में समस्या न आए।

मैंने अपने इस अध्ययन में प्रयुक्त अंग्रेजी भाषा के स्रोतों के उद्धरणों का अनुवाद स्वयं ही किया है। लेकिन यह अनुवाद अक्षरश: न होकर भावमूलक ही है। जहाँ किसी अन्य विद्वान् द्वारा किए गए अनुवाद का प्रयोग किया गया है, उसका यथास्थान उल्लेख कर दिया गया है। 'आतिश-ए-चिनार' के जो उद्धरण इस प्रबंध में प्रयोग किए गए हैं, वे सभी 'कश्मीर का मंजरनामा' से लिये गए हैं, क्योंकि इस गंरथ का हिंदी अनुवाद अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

प्रजा परिषद् पर लिखित सामग्री के अभाव में लोगों से मिलकर जानकारियाँ हासिल करना भी एक सुरक्षित तरीका है। प्रजा परिषद् का आंदोलन हुए लगभग साठ साल हो गए हैं। ऐसे बहुत कम लोग बचे हैं, जिन्होंने इस आंदोलन में प्रत्यक्ष हिस्सा लिया हो। फिर भी, अनेक लोगों से मैं मिला और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक वे सभी जानकारियाँ दीं, जो उनको मालूम थीं। प्रजा परिषद् के संस्थापकों में से एक प्रो. बलराज मधोक, पूर्व विधायक ऋषि कुमार कौशल, प्रजा परिषद् के उस समय के संगठन मंत्री भगवत स्वरूप, प्रचार मंत्री गोपालदास सच्चर, 1952 के छात्र आंदोलन की शुरुआत करनेवाले यश भसीन के सहयोग के लिए भी मैं आभारी हूँ। कुछ लोगों ने लिखित जानकारियाँ दीं, जिन्हें कुछ समय पहले भगवत स्वरूपजी ने एकत्रित कर लिया था। इनमें जगदीश अबरोल, केदारनाथ साहनी, कठुआ के चग्गर सिंह द्वारा दी गई जानकारियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। भगवत स्वरूपजी ने यह सामग्री उपयोग करने की अनुमति दी। रामबन में हुए गोली कांड के तथ्य वहाँ के डॉ. मोहनलाल शर्माजी ने बताए। इसके लिए वे मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। जम्मू संभाग में अनेक संबंधित लोगों से सामूहिक बैठकों में चर्चा हुई। उन बैठकों से भी आंदोलन के दिनों की नई जानकारियाँ हासिल हुईं। मेरे हर संघर्ष में साथ देनेवाली जीवन सहचरी डॉ. रजनी गंगाहर के प्रत्यक्ष परोक्ष सहयोग के बिना यह शोध यात्रा पूरी हो ही नहीं सकती थी।

'पाञ्चजन्य' साप्ताहिक और अंग्रेजी साप्ताहिक 'ऑर्गेनाइजर' की पुरानी फाइलें दिल्ली में केशव कुंज स्थित केशव अभिलेखागार में उपलब्ध हैं। चंडीगढ़ के लाजपतराय भवन के द्वारिकादास पुस्तकालय में अंग्रेजी दैनिक 'ट्रिब्यून' की फाइलें सुरक्षित हैं। इन दोनों संस्थानों ने ये फाइलें सहज उपलब्ध करवा दीं, अत: उनका आभारी हूँ। जम्मू विश्वविद्यालय के धन्वंतरि पुस्तकालय, चकमोह-हिमाचल प्रदेश स्थित हिमाचल रिसर्च इंस्टीट्यूट के ब्रह्मदत्त शास्त्री पुस्तकालय के अधिकारियों का भी आभारी हूँ, जिन्होंने अपने पुस्तकालयों का उपयोग करने की अनुमति प्रदान की। प्रकाशन से पूर्व पांडुलिपि को पढ़कर जम्मू विश्वविद्यालय के समाज विज्ञान संकाय के निवर्तमान अधिष्ठाता प्रो. हरि ओमजी एवं वरिष्ठ पत्रकार जवाहरलाल कौलजी ने महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए, जिनका यथास्थान समावेश कर लिया गया। दोनों विद्वान् मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। सुमंगलम के व्याख्याता एवं जाने-माने समाज विज्ञानी डॉ. बजरंग लाल गुप्तजी ने पांडुलिपि पढ़कर मुझे इस प्रकल्प पर आगे कार्य के लिए प्रेरित किया, उनकी यह प्रेरणा ही मेरा संबल है। जम्मू-कश्मीर के अध्ययन की ओर मुझे इंद्रेश कुमारजी ने ही पे्ररित किया था। यह अध्ययन उसी का फल है, दिल्ली में मैं मोहनधर दीवानजी का अत्यंत आभारी हूँ, जिनको पुस्तक के पूरा होने की खुशी मुझसे भी ज्यादा होगी। डॉ. सुदेश कुमार गर्ग, घनश्याम दास मानिकटाहला, अरविंद गर्ग, हीरा लाल धीर निरंतर मेरा उत्साहवर्धन करते रहे। हिंदुस्तान समाचार के मार्गदर्शक लक्ष्मीनारायण भालाजी आधारभूत सुविधा प्रदान न करते तो गंरथ साकार रूप न ले पाता। इन सभी का आभारी हूँ। जम्मू अध्ययन केंद्र के सुशील कुमार, आशुतोष भटनागर, रंजन चौहान और रवींद्र कुमार भी मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। जम्मू के उपेंद्र दत्त शर्मा ने प्रजा परिषद् द्वारा प्रकाशित कुछ पुरानी पुस्तिकाओं की प्रति मुहैया करवाई। जम्मू की यात्राओं में दीपक कुमार, बलवान सिंह, अवतार कृष्ण का सहयोग मिलता रहा। युवा पत्रकार भगवान साई की सक्रिय सहायता के बिना शायद यह ग्रंथ

वर्तमान रूप न ले पाता। बीच-बीच में यदि किशोरी लाल ध्यान न रखते तो शायद लंबे अंतराल तक कंप्यूटर के सामने बैठना कठिन हो जाता। इन सभी का आभारी हूँ।

23 जून, 2013
डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी
बलिदान दिवस

—डॉ. कुलदीप चंद अग्निहोत्री
पूर्व अध्यक्ष,भीमराव आंबेडकर पीठ
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

1.

जम्मू-कश्मीर की सियासत की पृष्ठभूमि

कश्मीर का इतिहास बहुत पुराना है। प्रचीन स्रोतो के अनुसार यह कश्यप ऋषि से प्रारंभ होता है। शायद भारत में कश्मीर ही ऐसा क्षेत्र है, जिसका विधिवत् इतिहास लिखा गया है। कल्हण की राजतरंगिणी इसी प्रकार का ग्रंथ है। जम्मू का इतिहास भी उतना ही पुराना है। खोजबीन करने पर महाभारत काल तक तो उसके सूत्र पकड़े ही जा सकते हैं। लद्दाख, गिलगित और बल्तीस्तान के इतिहास तो हिमालय के इतिहास से ही जुड़े हुए हैं। जितना पुराना हिमालय, उतना ही पुराना इन क्षेत्रों का इतिहास। लेकिन इन पाँचों क्षेत्रों को आपस में मिलाकर नई बनी रियासत जम्मू-कश्मीर का इतिहास उतना पुराना नहीं है। ये सब कल की बातें हैं। इस रियासत को गढ़ने का श्रेय महाराजा गुलाब सिंह को जाता है। 1822 में महाराजा गुलाब सिंह जम्मू की गद्दी पर बैठे। उसके बाद उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। लद्दाख, गिलगित और बल्तीस्तान की छोटी-बड़ी रियासतों को जोड़ते हुए वे एक बहुत बड़े राज्य के स्वामी बन गए। लाहौर में महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद अंग्रेजों के साथ हुए पंजाब के युद्धों में रणजीत सिंह की सेना अस्त-व्यस्त हो गई और रणजीत सिंह के साम्राज्य का कश्मीर भी अंग्रेजों के हाथ में आ गया। 1846 में यह कश्मीर भी जम्मू रियासत में शामिल किया गया तो उस जम्मू-कश्मीर रियासत का उदय हुआ, जो पूरे भारतवर्ष में दूसरी सबसे बड़ी रियासत मानी जाती थी। भारतवर्ष में अंग्रेजों के खिलाफ जिस वर्ष 1857 में स्वतंत्रता की पहली लड़ाई शुरू हुई, उसी वर्ष महाराज गुलाब सिंह का निधन हो गया। गुलाब सिंह की इस रियासत में इतिहास का एक और अध्याय तब लिखा गया जब 1931-32 में अंग्रेजों सरकार ने गुलाब सिंह के उत्तराधिकारी महाराजा हरि सिंह के खिलाफ षड्यंत्र रचने प्रारंभ किए। अंग्रेज मानते थे कि हरि सिंह की सहानुभूति कहीं-न-कहीं भारत के स्वतंत्रता समर्थकों के साथ है। इन अंग्रेजी षड़यत्रों में जाने-अनजाने मुसलिम कॉन्फ्रेंस और बाद में नेशनल कॉन्फेंस की भी किसी-न-किसी रूप में भूमिका नई शोध सामग्री से स्थापित होती जा रही है। 1947 में अंग्रेज भारत से चले गए। देश को विभाजन की त्रासदी झेलनी पड़ी। लेकिन इस घटना क्रम में देश की 550 से भी ज्यादा रियासतों का अंत हो गया। जम्मू-कश्मीर की भी रियासती व्यवस्था समाप्त हुई, परंतु उसके एक तिहाई हिस्से पर देश विभाजन के परिणाम स्वरूप निर्मित नए देश पाकिस्तान ने बलपूर्वक कब्जा कर लिया। रियासत के शेष बचे हिस्से में भी राजनैतिक दलों द्वारा अलगाव और एकीकरण को लेकर अलग-अलग आंदोलन चले। इन आंदोलनों में नेशनल कॉन्फ्रेंस के स्वायत्तावादी आंदोलन और प्रजा परिषद् के एकीकरण आंदोलन ने इस भू-भाग में स्थायी पदचिह्न निर्माण किए।

1.0 प्रस्तावना—प्रजा परिषद् का जम्मू-कश्मीर में सत्याग्रह स्वतंत्र भारत के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, जिसके दूरगामी परिणाम हुए। इस आंदोलन की शुरुआत प्रजा परिषद् के 17 नवंबर, 1947 को गठन से ही हो गई थी, लेकिन इसका प्रखर ताप 22 जुलाई, 1952 में शेख अब्दुल्ला व पं. जवाहरलाल नेहरू में जम्मू-कश्मीर के भावी संविधान के प्रारूप को लेकर बनी सहमति के बाद ही अनुभव किया गया। असल में इस आंदोलन की आधार भूमि तो भारत-विभाजन के समय से ही तैयार होनी शुरू हो गई थी। राज्य के शासक महाराजा हरि सिंह द्वारा रियासत का भारत में अधिमिलन कर देने के उपरांत शेख अब्दुल्ला को आपात् प्रशासक बना दिया गया; लेकिन 1949 में महाराजा हरि सिंह के राज्य से निष्कासन के बाद तो शेख के हाथ में एक प्रकार से निरंकुश सत्ता ही आ

गई। इसने प्रदेश और देश की राष्ट्रवादी शक्तियों को उद्वेलित करना शुरू कर दिया था। नेहरू द्वारा जम्मू-कश्मीर के प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाने के बाद तो राज्य के राष्ट्रवादी लोगों के मन में संदेह के बादल और भी घने होने लगे। इन सभी विवादों में जब शेख अब्दुल्ला ने कश्मीर घाटी के सुन्नी मुसलमानों के अतिरिक्त रियासत की बाकी जनता, मसलन जम्मू, लद्दाख एवं विस्थापित समाज को हाशिए पर कर दिया और उनको पूरे मसले में एक पक्ष मानने से भी इनकार कर दिया तो स्वाभाविक ही प्रदेश की राष्ट्रवादी शक्तियाँ भी संगठित होने लगीं। आखिर यह उनकी अस्मिता और देश की सुरक्षा का प्रश्न था। पानी सिर के ऊपर से गुजरने लगा, जब शेख अब्दुल्ला ने जम्मू-कश्मीर के प्रश्न को ही सांप्रदायिक रंग देना शुरू कर दिया। भारत के संविधान में जम्मू-कश्मीर को केवल इसलिए विशेष दर्जा देने की वकालत करनी शुरू कर दी, क्योंकि यहाँ मुसलमानों का बहुमत है। ''भारत सरकार बार-बार दावा यह करती है कि भारत ने पाकिस्तान के निर्माताओं के द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत को कभी स्वीकार नहीं किया और न ही इस देश का विभाजन मजहबी आधार पर हुआ है। भारत सरकार का यह दावा उचित ही है। लेकिन जब जम्मू-कश्मीर का प्रश्न आता है तो लगता है कि द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत का उससे बड़ा वकील कोई है ही नहीं।''[1] इस प्रश्न को सांप्रदायिक रंग दिए जाने से राष्ट्रवादी शक्तियों का क्षुब्ध होना स्वाभाविक ही था। शेख ने उन्हीं राष्ट्रवादी शक्तियों को सांप्रदायिक कहना शुरू कर दिया, जो इस मजहबी नीति का विरोध कर रही थीं। नेहरू व शेख द्वारा, सत्ता बल से इस राष्ट्रवादी आंदोलन के दमन के प्रयासों ने, आग में घी डालने का काम किया। सन् 1947 से प्रारंभ हुआ यह असंतोष 1952 तक आते-आते दावानल बन गया, जिसने अंततः प्रजा परिषद् के सत्याग्रह का स्वरूप लिया। आंदोलन की इसी पृष्ठभूमि को समझने के लिए राज्य की उन दिनों की राजनीति की पृष्ठभूमि को समझना जरूरी है।

1.1 रियासत का भारत में अधिमिलन—ब्रिटिश राज के समय भारत में दो प्रकार की शासन व्यवस्था थी। देश का जो हिस्सा सीधे-सीधे इंग्लैंड के अधीन था वह ब्रिटिश भारत कहलाता था और उसका शासन इंग्लैंड की संसद् चलाती थी। देश का ऐसा भूभाग, जो रियासतों के अधीन आता था, वहाँ के शासक महाराजा, राजा या नवाब इत्यादि होते थे। परंतु सही अर्थों में ये रियासतें स्वतंत्र नहीं कही जा सकती थीं। इनके विदेश, संचार और रक्षा विभाग विभिन्न संधियों के अंतर्गत ब्रिटिश भारत के पास ही थे। ब्रिटिश भारत का इन रियासतों पर सर्वोपरिता था। अंग्रेजी सरकार का राजनैतिक अधिकारी या रेजीडेंट इन रियासतों में रहता था। अनेक रियासतों में परोक्ष रूप से वह सत्ता पर नियंत्रण ही करता था। राजा के उत्तराधिकारी को मान्यता देने की शक्ति भी ब्रिटिश सरकार के पास ही थी। भारत में अपने शासन के शुरुआती दौर में ईस्ट इंडिया कंपनी ने येन-केन प्रकारेण इन रियासतों पर भी कब्जा करने का प्रयास किया था। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के अनेक कारणों में से एक कारण कंपनी की रियासतों के प्रति यह नीति भी थी। बाद में ब्रिटिश सरकार ने अपनी यह नीति त्याग दी और रियासतों से अलग-अलग संधियाँ कर उन पर परोक्ष नियंत्रण स्थापित कर लिया; लेकिन इतना होने पर भी रियासतों की आंतरिक स्वायतता बरकरार ही रहती थी। भारत में जब अंग्रेजों के शासन का अंत हुआ तब देश में छोटी-बड़ी 570 के आस-पास रियासतें थीं। ब्रिटिश भारत को तो इंग्लैंड ने भारत और पाकिस्तान के दो डोमिनियनों में बाँट दिया। रियासतों पर से अपनी सर्वोपरिता समाप्त कर दी। तत्पश्चात् अधिकांश रियासतें तो 15 अगस्त, 1947 से पहले-पहले ही दोनों डोमिनियनों में से किसी एक में शामिल हो गईं। लेकिन कुछ रियासतें उसके बाद शामिल हुईं। उनमें से जम्मू-कश्मीर भी एक थी। वैसे भी रियासतों के लिए किसी एक डोमिनियन में शामिल होने के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं थी।

26 अक्तूबर, 1947 को महाराजा हरि सिंह द्वारा रियासत के भारत में अधिमिलन हेतु अधिमिलन पत्र निष्पादित

करने और गवर्नर जनरल द्वारा उसको अधिसूचित कर देने के उपरांत रियासत भारत संघ का अंग हो गई। लोकशाही के लिए लंबे अरसे से संघर्ष कर रही विभिन्न रियासतों के मामले में कांग्रेस की नीति जनता की राय का समर्थन करने की थी। रियासतों में जहाँ-जहाँ भी जन संघर्ष हो रहे थे, वहाँ कांग्रेस आम जन के साथ खड़ी थी, राजाओं के साथ नहीं। अंग्रेजों के चले जाने के बाद रियासतों के मामले में भारत सरकार उसी नीति का पालन कर रही थी और उसी के अनुरूप गवर्नर जनरल ने रियासत में शांति स्थापित हो जाने पर आम जनता की राय जान लेने की बात कही थी। उस समय रियासत पर पाकिस्तान ने कबाइलियों के माध्यम से आक्रमण किया हुआ था, जिसके कारण रियासत के एक भाग में अशांति का वातावरण था। शांति स्थापित हो जाने पर प्रदेश के लोगों को उचित माध्यम से अधिमिलन का अनुमोदन करना था। लेकिन इस संबंध में उठे प्रश्नों के सही संदर्भ एवं अर्थ को समझने के लिए निम्न मुद्दों पर विचार करना अनिवार्य है—

1. रियासत के भारत में अधिमिलन निष्पादित करने का अधिकार किसके पास था?
2. क्या अधिमिलन अस्थायी या सशर्त हो सकता था?
3. अधिमिलन के प्रश्न पर लोगों की इच्छा जानने से क्या अभिप्रेत था और क्या इच्छा जानने के संकल्प की वैधानिक अनिवार्यता थी या यह राजनैतिक व नैतिक नीति थी?
4. इन प्रश्नों पर लोगों की राय जानने की विधि क्या थी? और क्या वह लोकतांत्रिक परंपराओं के अनुरूप थी?

इन सभी प्रश्नों पर विचार करना अनिवार्य है, क्योंकि जम्मू-कश्मीर को लेकर दो मुद्दे बार-बार उछलते रहते हैं। पहला यह कि रियासत का भारत में अधिमिलन सीमित व अस्थायी और दूसरा यह कि जम्मू-कश्मीर को भारत संघ में विशेष दर्जा हासिल है।

1.1.1 रियासत के भारत में अधिमिलन का अधिकार किसके पास था?

14 अगस्त, 1947 को वायसराय ने भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 की धारा 8 (2) के अंतर्गत भारतीय अंतरिम संविधान आदेश 1947 अधिसूचित किया। इस आदेश के अनुसार भारत सरकार अधिनियम 1935 आवश्यक संशोधनों व परिवर्धनों सहित 15 अगस्त, 1947 से भारत डोमिनियन का अंतरिम संविधान घोषित किया गया। घोषित किए गए अंतरिम संविधान की धारा 6 के अनुसार, जब किसी रियासत के शासक द्वारा हस्ताक्षरित अधिमिलन-पत्र को गवर्नर जनरल अधिसूचित कर देते हैं तो उस रियासत का डोमिनियन में विलीन होना माना जाएगा। एक बार अधिमिलन-पत्र को अधिसूचित कर दिए जाने के बाद उसकी वैधता को किसी भी हालत में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। व्यावहारिक रूप से इसका अर्थ यह हुआ कि अधिमिलन का निर्णय करने का अधिकार केवल रियासत के शासक के पास था। गवर्नर जनरल को केवल उसे अधिसूचित ही करना था। इससे इतर अधिमिलन के मामले में उसकी कोई भूमिका नहीं थी। रियासतों के अधिमिलन को लेकर भारत के अंतरिम संविधान में यह व्यवस्था थी। यहाँ यह जानना भी आवश्यक है कि रियासती शासकों की अंग्रेजों के चले जाने के बाद क्या स्थिति थी?

जब ब्रिटेन सरकार ने भारत विभाजन करने और यहाँ से चले जाने का निर्णय कर लिया तो इस संबंध में विस्तार से चर्चा करने के लिए इंग्लैंड से एक कैबिनेट मिशन भारत आया। मिशन ने रियासतों की स्थिति पर वहाँ के शासकों से भी बातचीत की। कैबिनेट मिशन ने नरेंद्र मंडल (चैंबर ऑफ प्रिंसेज) को संबोधित करते हुए स्पष्ट किया कि 'जब भारत में पूरी तरह स्वतंत्र सरकार की स्थापना हो जाएगी तो उसके परिणाम-स्वरूप रियासतों पर से ब्रिटिश ताज की सर्वोपरिता समाप्त हो जाएगी।...[2] सर्वोपरिता समाप्त हो जाने पर रियासतों के शासकों के पास क्या विकल्प होंगे, इसे 25 जुलाई, 1947 को नरेंद्र मंडल की बैठक में माउंटबेटन ने स्पष्ट कर दिया था कि

व्यावहारिक रूप से इसके बाद भी रियासतें स्वतंत्र नहीं कही जा सकतीं। वे पहले भी प्रभुसत्ता-संपन्न नहीं थीं, क्योंकि तब भी उनके अनेक विभाग भारत सरकार के ही नियंत्रण में थे। इसलिए उनके पास केवल एक विकल्प है—दोनों डोमिनियनों में से किसी एक में अधिमिलन का।[3] माउंटबेटन ने यह भी स्पष्ट किया कि शासक निर्णय करते समय डोमिनियन से भौगोलिक निकटता और जनता की इच्छाओं का भी ध्यान रखें। लेकिन जहाँ तक अधिनियम का प्रश्न है, उसमें कहीं इस बात का उल्लेख नहीं है कि शासक को अधिमिलन से पूर्व अपनी प्रजा की राय लेना जरूरी है।

ब्रिटिश सरकार के समय रियासतों के मसलों के संचालन के लिए राजनैतिक विभाग स्थापित किया हुआ था। अब इस विभाग के समानांतर एक नया रियासती विभाग स्थापित किया गया।[4] इस विभाग ने अधिमिलन का एक मानक प्रारूप तैयार किया और उसे सभी रियासतों के राजाओं के पास भेजा। इस अधिमिलन-पत्र के अनुसार, रियासतों के शासकों को भारत में अधिमिलन के बाद तीन विषयों—विदेश संबंध, संचार और सुरक्षा और इनसे संबंधित सहायक विषयों का उत्तरदायित्व संघीय सरकार को सौंपना था। इन तीन विषयों का निर्णय भी भारत सरकार के रियासती विभाग ने ही किया था। रियासती मंत्रालय सरदार पटेल के पास था। उनके प्रयासों से 15 अगस्त, 1947 से पहले अधिकांश रियासतों का अधिमिलन भारत में हो गया था। लेकिन कुछ रियासतों का अधिमिलन 15 अगस्त के बाद हुआ। जम्मू-कश्मीर रियासत का अधिमिलन 26 अक्तूबर, 1947 को हुआ। रियासत के राजा हरि सिंह द्वारा निष्पादित अधिमिलन-पत्र को भारत के गवर्नर जनरल ने अधिसूचित कर दिया। अधिसूचित होते ही रियासत का भारत में अधिमिलन पूरा करना हो गया। 'रियासत संघ में विलीन हो गई, जब उसके शासक ने अधिमिलन-पत्र निष्पादित कर दिया और गवर्नर जनरल ने उसे स्वीकार कर लिया।' [5]

1.1.2. क्या अधिमिलन अस्थायी या सशर्त हो सकता था?

यह प्रश्न अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भारत सरकार अधिनियम 1935 या भारत स्वतंत्रता अधिनियम 1947 में कहीं भी यह प्रावधान नहीं है कि किसी रियासत का डोमिनियन में सशर्त अधिमिलन हो सकता है या फिर गवर्नर जनरल उसे अधिसूचित करते समय अपनी ओर से कोई शर्त या शर्तें लगा सकता है। न ही इन दोनों अधिनियमों में कहीं यह प्रावधान है कि गवर्नर जनरल इसे अस्थायी तौर पर अधिसूचित कर सकता है या एक बार अधिसूचित करने के बाद अपनी स्वीकृति वापस ले सकता है। यह सीमा रेखा केवल गवर्नर जनरल के लिए ही नहीं है। यह रियासतों के राजाओं के लिए भी है। एक बार यदि किसी शासक का अधिमिलन हेतु प्रस्तुत किया गया प्रस्ताव अधिसूचित कर दिया जाता है तो वह बाद में अपना अधिमिलन प्रस्ताव वापस नहीं ले सकता। जम्मू-कश्मीर रियासत के मामले में महाराजा ने 26 अक्तूबर, 1947 को अधिमिलन-पत्र का जो प्रस्ताव भारत सरकार को प्रस्तुत किया उस पर गवर्नर जनरल ने 'मैं इस प्रस्ताव को स्वीकार करता हूँ' लिखकर इसे अधिसूचित कर दिया। प्रस्ताव की प्रस्तुति और उसकी स्वीकृति में जहाँ तक अधिमिलन का प्रश्न था, वह समाप्त हो गया। गवर्नर जनरल ने शांति स्थापित हो जाने के बाद लोगों की राय ली जाने की जो चिट्ठी महाराजा को लिखी थी, वह इन प्रश्नों पर भारत सरकार की सामान्य नीति का अंग थी। अत: जम्मू-कश्मीर के अधिमिलन के प्रश्न पर लोगों की राय लेने का अधिमिलन की कानूनी हैसियत से कोई ताल्लुक नहीं है। यह अधिमिलन को अस्थायी या सशर्त नहीं बनाता।

1.1.3 लोगों की इच्छा जानने से क्या अभिप्रेत था?

यह भारत के लिए वैधानिक तौर पर अनिवार्य था या फिर यह भारत की नैतिक प्रतिबद्धता थी?

रियासतों को लेकर भारत सरकार की सामान्य नीति को समझना आवश्यक है। रियासतों में प्रजा मंडलों के संघर्ष काल से ही कांग्रेस, जनता की राय के अनुकूल, रियासतों में लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना की पक्षधर थी। बड़े परिप्रेक्ष्य में लोगों की राय का अर्थ रियासतों में राजशाही की जगह लोकतंत्र की स्थापना थी। यह नीति कांग्रेस की लोकतांत्रिक आस्था को अभिव्यक्त करती थी। लोकतंत्र का आधार जनता की इच्छा ही है। कांग्रेस जिस प्रकार ब्रिटिश भारत के लिए लोकतांत्रिक प्रणाली की पक्षधर थी, उसी प्रकार वह रियासती भारत में भी लोकतांत्रिक प्रणाली लागू करने की समर्थक थी। 'दरअसल कांग्रेस 1920 से ही कह रही थी कि रियासतों में लोकतांत्रिक सरकारों की स्थापना से उन्हें ब्रिटिश भारत के समान धरातल पर लाना होगा। भारत की स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा, यदि रियासतों में लोगों को वही राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक स्वतंत्रता नहीं मिलती, जो भारत के अन्य प्रांतों के लोगों को मिल रही है।' [6] भारत सरकार रियासतों के मामले में इसी नीति का पालन कर रही थी। इसी नीति के अनुरूप जम्मू-कश्मीर में भी भारत सरकार की ओर से घोषणा की गई कि वहाँ भी लोगों की राय के अनुरूप लोकतांत्रिक सरकार स्थापित करने का अवसर प्रदान किया जाएगा। नेहरू ने 1952 को लोकसभा में यह स्पष्ट भी किया कि 'लोगों की इच्छा जानने की नीति केवल जम्मू-कश्मीर के लिए नहीं है, बल्कि सभी रियासतों के लिए यह भारत सरकार की सामान्य नीति का ही अंग है।' यहाँ तक कि जब हैदराबाद रियासत के निजाम द्वारा भारत में अधिमिलन से संबंधित फरमान जारी कर दिए जाने के बाद भी हैदराबाद को एक सार्वजनिक सभा में पं. नेहरू ने इसी नीति की पुष्टि की थी। वहाँ के लोगों की इच्छा के अनुरूप ही राज्य का संघ से संबंध निर्धारित किया जाएगा। नेहरू ने लोगों की राय जानने की जो घोषणा हैदराबाद व अन्यत्र की थी, वे ही श्रीनगर में की। भारत सरकार के रियासती मंत्रालय द्वारा जारी श्वेत पत्र में भी कहा गया—'यह स्पष्ट किया जाता है कि निजाम द्वारा अधिमिलन संबंधी लिया गया निर्णय आम जनता द्वारा सहमति दिए जाने पर ही मान्य होगा। आम जनता की इच्छा वहाँ की निर्वाचित संविधान सभा द्वारा जानी जाएगी। यह संविधान सभा ही रियासत के संघ से रिश्तों की प्रकृति निर्धारित करेगी।' [7] इससे स्पष्ट होता है कि जनता की इच्छा जानने को लेकर भारत सरकार की जो नीति सभी विलीन रियासतों के बारे में थी, वही नीति जम्मू-कश्मीर रियासत को लेकर थी। इसलिए जम्मू-कश्मीर रियासत को विशेष दर्जा देने की मंशा तो कहीं भी प्रकट नहीं होती।

लोगों की राय की इस पूरी प्रक्रिया का रियासत के भारत में अधिमिलन की सांविधानिक स्थिति से कोई संबंध नहीं था। दरअसल अधिमिलन और लोगों की राय जानना दोनों अलग-अलग विषय हैं। लोगों की राय जानने का अर्थ मात्र इतना ही था कि राज्य में संविधान सभा के गठित हो जाने पर संविधान सभा अधिमिलन की पुष्टि करेगी। इसी प्रकार का प्रावधान अन्य राज्यों के लिए भी था। लोगों की राय जानने का अर्थ किसी राज्य को विशेष दर्जा दिए जाने से नहीं लिया जा सकता। यदि ऐसा होता फिर तो भारत की प्रत्येक रियासत विशेष दर्जे की श्रेणी में ही आ जाती।

1.1.4 इन प्रश्नों पर लोगों की इच्छा जानने की पद्धति क्या थी?

क्या वह लोकतांत्रिक परंपराओं के अनुरूप थी?

लोकतांत्रिक व्यवस्था शासन की सर्वोत्तम पद्धति मानी गई है। लोकतंत्र जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि लोकतंत्र में प्रत्येक मुद्दे पर बार-बार जनता की राय जानी जाती है। ऐसा प्रत्यक्ष लोकतंत्र

पूरी दुनिया में एक छोटे से देश स्विट्जरलैंड में ही प्रचलित था, अब वहाँ से भी धीरे-धीरे सिमटता जा रहा है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में जन-प्रतिनिधियों का चुनाव होता है। शेष सारे निर्णय जन-प्रतिनिधि ही करते हैं। जन-प्रतिनिधि ही संविधान की रचना करते हैं। शासन संविधान के दायरे में काम करता है। युगानुकूल संविधान में संशोधन किया जाता है। विश्व भर में जनमत की अभिव्यक्ति का यह सर्वोत्तम और व्यावहारिक तरीका माना जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में सर्वत्र यही नीति अपनाई गई। इसी पद्धति के अनुसार (ख) श्रेणी के राज्यों में संविधान सभाओं का गठन होना था। उन्हें अपने राज्य के लिए संविधान का निर्माण करना था, अधिमिलन का अनुमोदन करना था और अंततः संघीय संविधान को स्वीकृति देनी थी। यही पद्धति अन्य राज्यों के समान जम्मू-कश्मीर राज्य के लिए भी अपनाई गई।

संविधान सभा, जो भारत की जनता की प्रतिनिधि वैधानिक संस्था थी और जिसमें रियासतों के प्रतिनिधि भी शामिल थे, ने संघीय संविधान की रचना की। भारत की संविधान सभा में जम्मू-कश्मीर रियासत के भी चार प्रतिनिधि थे। रियासतों से संघीय संविधान सभा में जो प्रतिनिधि भेजे जाते थे, उन्हें रियासत के शासक मनोनीत करते थे। जिन राज्यों में संविधान सभाओं का गठन हो चुका था वहाँ आधे प्रतिनिधि शासक द्वारा और आधे संविधान सभा के अनुमोदन से निश्चित किए जाते थे। लेकिन जम्मू-कश्मीर के मामले में शासक द्वारा चारों-के-चारों प्रतिनिधियों का मनोनयन उस समय के प्रधानमंत्री शेख अब्दुल्ला की संस्तुति पर ही हुआ था।

जम्मू-कश्मीर रियासत में बाकायदा संविधान सभा का गठन हुआ, जिसके लिए 75 सदस्य निर्वाचित किए गए। इस संविधान सभा ने रियासत के भारत में अधिमिलन की पुष्टि की। यह सारी पद्धति और प्रक्रिया केवल लोकतांत्रिक ही नहीं थी, बल्कि पारदर्शी भी थी। लोकतंत्र में लोगों की राय जानने की इससे बेहतर प्रक्रिया और पद्धति क्या हो सकती है? यही पद्धति अन्य राज्यों के लिए भी अपनाई गई थी, जहाँ की संविधान सभाओं अथवा विधानसभाओं ने अधिमिलन का अनुमोदन किया था।

1.2 ब्रिटिश कूटनीति और माउंटबेटन

पं. नेहरू जम्मू-कश्मीर में जब लोगों की राय जानने की बात करते थे तो यह उनकी सामान्य लोकतांत्रिक आस्था के कारण ही था; लेकिन उस समय के गवर्नर जनरल लॉर्ड माउंटबेटन की इसमें भूमिका गहरे ब्रिटिश षड्यंत्र के कारण ही थी। अधिमिलन के बाद इस प्रश्न को उठाने में उनकी मंशा क्या थी? वास्तव में इस पूरे षड्यंत्र की शुरुआत ही भारत विभाजन काल की ब्रिटिश कूटनीति से होती है। भारत से चले जाने के बाद भी ब्रिटिश सरकार मध्य पूर्व एवं दक्षिण पूर्व एशिया में अपने आर्थिक व भू-राजनैतिक हितों को लेकर चिंतित थी। इसके लिए उसे अपने प्रभाव क्षेत्रवाला एक देश चाहिए था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद प्रारंभ हुए शीत युद्ध में ब्रिटिश-अमेरिकी कूटनीति को मध्य एशिया में अपने साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति करनी थी। इसलिए आवश्यक था कि चीन और रूस के साम्यवादी प्रसार को किसी भी तरीके से रोका जाए। पाकिस्तान इस मामले में ब्रिटिश-अमेरिकी कूटनीति का एक पुख्ता आधार बन सकता था। लेकिन यह तभी संभव था, यदि जम्मू-कश्मीर को किसी प्रकार भी पाकिस्तान में मिलाया जाए; क्योंकि इस रियासत की सीमा चीन, तिब्बत, रूस और अफगानिस्तान से एक साथ लगती थी।

1.2.1 रूस की घेराबंदी और जम्मू-कश्मीर, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद साम्यवादी रूस के प्रभाव को रोकना ब्रिटिश-अमेरिकी कूटनीति की प्राथमिकता थी। उनके अनुवाद इसलामी एकता ही यह काम कर सकती थी और पाकिस्तान इस एकता की धुरी बन सकता था। उन्नीसवीं शताब्दी में मध्य एशिया में ब्रिटेन ने अपने साम्राज्यवादी

हितों के लिए जिस ग्रेट गेम की अवधारणा को जन्म दिया था, बीसवीं शताब्दी के मध्य में वह नए रूप में उभर आई थी। जब यह स्पष्ट हो गया कि अब भारत का विभाजन अपरिहार्य है तो ब्रिटेन-अमेरिकी कूटनीति के सामने सबसे बड़ा प्रश्न था कि इन दो देशों में से उसके रणनीतिक हितों के लिए कौन सा देश लाभदायक होगा? ब्रिटेन के लिए पाकिस्तान के सिवा कोई विकल्प था ही नहीं। अब उसे पाकिस्तान के साथ अच्छे संबंध बनाने होंगे, ताकि पूर्वी पाकिस्तान में चट्टगाँव बंदरगाह समेत कराची बंदरगाह और पेशावर हवाई पत्तन के प्रयोग की सुविधा प्राप्त हो सके। ब्रिटेन की इस नीति का अमेरिका की उस नीति से सामंजस्य बैठता था जिसके अनुसार, वह सोवियत रूस की घेराबंदी करना चाह रहा था। लेकिन इन दोनों के उद्देश्यों की पूर्ति तभी संभव हो सकती थी, यदि पाकिस्तान को बढ़ावा दिया जाता और जम्मू-कश्मीर को उसमें शामिल करवाया जाता। ''वास्तव में चीन-रूस के विस्तार को रोकने के लिए ब्रिटिश-अमेरिकी कूटनीति तुर्की से कश्मीर तक अर्धचंद्राकार मुसलिम देशों की दीवार बनाना चाहती थी, जिसमें पूर्वी कोने पर स्थित पाकिस्तान किसी भी संकट काल में उनके लिए एक सैन्य आधार शिविर का काम करे।'' [8]

1.2 2 पाकिस्तान का स्थायित्व और जम्मू-कश्मीर

जम्मू-कश्मीर को लेकर ब्रिटेन का एक और डर था। ''यदि पाकिस्तान राजनैतिक दृष्टि से समर्थ बनता है, तभी वह मध्य-पूर्व व दक्षिण-पूर्व एशिया में ब्रिटेन के रणनीतिक हितों की पूर्ति कर सकता है। यह तभी संभव था यदि जम्मू-कश्मीर, भारत और पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत के बीच बफर बनता है। यदि कश्मीर भारत का हिस्सा हो जाता है तो पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत के खुदाई खिदमतगारों के लिए वह सुरक्षित स्थान बन सकता है और भविष्य में स्वतंत्र पख्तूनिस्तान की माँग उठ सकती है।'' [9] पख्तूनिस्तान का भय पाकिस्तान और ब्रिटेन को नजदीक ला रहा था। पख्तूनिस्तान को रोकने के लिए भारत को पाकिस्तान के पश्चिमोत्तर सीमांत प्रांत से दूर रखना जरूरी था। यह तभी संभव था, यदि जम्मू-कश्मीर भारत में शामिल न होता। पाकिस्तान के सभी बड़े शहर मसलन पेशावर, सियालकोट और रावलपिंडी इत्यादि जम्मू-कश्मीर की सीमा से तीस से लेकर पचास किलोमीटर की दूरी तक ही पड़ते थे। ब्रिटिश कूटनीति पाकिस्तान के स्थायित्व के लिए इन्हें भारत की सैन्य मार से दूर रखना चाहती थी। इसी प्रकार पाकिस्तान में जल की आपूर्ति जम्मू-कश्मीर में से निकलनेवाली नदियों से होती थी। पंजाब प्रांत में सिंचाई ही दृष्टि से मीरपुर में निर्मित मंगला बाँध की महत्ता बहुत ज्यादा थी। इन सभी कारकों को ध्यान में रखकर ब्रिटेन किसी भी तरह जम्मू-कश्मीर रियासत को पाकिस्तान में शामिल करवाने का इच्छुक था।

1.2.3 माउंटबेटन की रणनीति— माउंटबेटन को अब इस ब्रिटिश कूटनीति को सफल बनाना था और जम्मू-कश्मीर को पाकिस्तान में शामिल करवाने की रणनीति ही नहीं बनानी थी बल्कि उसका सफल निष्पादन भी करना था। यदि यह क्षेत्र ब्रिटिश भारत में होता तब तो उसे पाकिस्तान को देने में दिक्कत ही नहीं थी। लेकिन इंग्लैंड के दुर्भाग्य से यह रियासत थी, जिसके बारे में निर्णय लेने का अधिकार वहाँ के शासक को ही था। वास्तव में वर्ष 1947 में इंग्लैंड सरकार द्वारा यह घोषित कर दिए जाने के बाद कि वे भारत छोड़कर चले जाएँगे और भारत दो डोमिनियनों में विभक्त कर दिया जाएगा, भौगोलिक कारणों से जम्मू-कश्मीर रियासत की महत्ता शताधिक बढ़ गई थी। रियासत की सीमा भारत और पाकिस्तान दोनों ही डोमिनियनों से लगती थी। भारत जानता था कि रियासत के भारत में अधिमिलन के लिए वहाँ के अवाम की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण रहेगी। कांग्रेस वैसे भी सैद्धांतिक तौर पर

रियासतों में लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना हेतु वहाँ के अवाम को ही प्राथमिकता देती थी। लेकिन उस समय कश्मीरी अवाम के सबसे बड़े प्रतिनिधि शेख अब्दुल्ला मई 1946 से ही जेल में थे।

भारत जानता था कि इस संक्रमण काल में शेख का जेल से बाहर आना कितना महत्त्वपूर्ण है। इसलिए पं. जवाहरलाल नेहरू और महात्मा गांधी तुरंत श्रीनगर जाना चाहते थे, ताकि महाराजा हरि सिंह को शेख अब्दुल्ला को छोड़ने के लिए मनाया जा सके। लेकिन पाकिस्तान चाहता था कि शेख जेल से बाहर न आएँ। उसने तो शेख को अपना दुश्मन नंबर एक घोषित कर रखा था, क्योंकि शेख बार-बार जिन्ना के द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत का विरोध कर रहे थे। उधर माउंटबेटन भी नहीं चाहते थे कि शेख छोड़ दिए जाएँ। इसलिए वे नेहरू के श्रीनगर जाने को किसी भी प्रकार रोकने का प्रयास कर रहे थे। उन्हें पता था कि नेहरू रियासत को भारत में शामिल करवाने के प्रबल इच्छुक हैं। इसलिए उन्हें डर था कि वे कश्मीर जाकर महाराजा पर शेख को छोड़ने के लिए दबाव बनाएँगे। उस समय यह भी निश्चित ही था कि यदि शेख बाहर आते हैं तो वे रियासत के भारत में अधिमिलन का समर्थन करेंगे। शेख के समर्थन का अर्थ था कि कश्मीर के मुसलमान भारत का समर्थन करेंगे। इसी को ध्यान में रखते हुए दिल्ली में सर कोनार्ड कोटफील्ड की अध्यक्षता में ब्रिटिश सरकार का पॉलिटिकल विभाग यह प्रयास कर रहा था कि महाराजा शेख को जेल से न छोड़ें।[10] माउंटबेटन नेहरू व महात्मा गांधी के श्रीनगर जाने से पूर्व एक बार स्वयं कश्मीर जाकर महाराजा को पाकिस्तान में शामिल होने के लिए तैयार करना चाहते थे। इसी रणनीति के तहत वे 19 जून, 1947 को श्रीनगर पहुँचे। वे वहाँ चार दिन रहे। ‘‘उन्होंने महाराजा हरि सिंह को सलाह दी कि वे किसी भी हालत में 15 अगस्त से पहले भारत या पाकिस्तान, किसी में भी शामिल हो जाएँ, लेकिन इसके लिए अपने लोगों की राय अवश्य जान लें। अलबत्ता उन्होंने महाराजा को यह भी बता दिया कि यदि वे पाकिस्तान में शामिल होने का निर्णय करते हैं तो भारत सरकार को कोई आपत्ति नहीं होगी।'' [11] हरि सिंह के शब्दों में ही, ‘‘लॉर्ड माउंटबेटन ने जिस प्रकार मानचित्रों और आँकड़ों से मुझसे हालात पर चर्चा की, उससे स्पष्ट था कि वे मुझे पाकिस्तान में शामिल होने के लिए कह रहे थे।'' [12] लेकिन महाराजा हरि सिंह ने युक्तिपूर्वक माउंटबेटन को खाली हाथ वहाँ से लौटा दिया। माउंटबेटन का अपना तर्क था ‘रियासत में मुसलिम आबादी तो ज्यादा थी ही, लेकिन दूसरा कारण था कि इससे पाकिस्तान ज्यादा स्थिर होता है।’ [13] रियासत को पाकिस्तान में मिलाने के लिए वहाँ के अंग्रेज अधिकारी और उनके समर्थक अपने ढंग से प्रयास कर रहे थे। महाराजा का प्रधानमंत्री रामचंद्र काक, जिसकी पत्नी ब्रिटिश थी, ब्रिटिश षड्यंत्र का हिस्सा बन गया और कश्मीर को पाकिस्तान में मिलाने के लिए वहाँ के राजनीतिज्ञों से जोड़-तोड़ कर रहा था। वह डोगरा सेना के अंग्रेज सेनापति स्कॉट से मिला हुआ था। जिन्ना का ब्रिटिश सैन्य सचिव महाराजा के नाम कायदे आजम की चिट्ठियाँ लेकर तीन बार श्रीनगर आया। कायदे आजम खुद भी खराब सेहत के बहाने श्रीनगर आना चाहते थे। उद्देश्य स्पष्ट था। वहाँ रहकर महाराजा को पाकिस्तान में शामिल होने के लिए पहले समझाया जाए, न मानने पर डराया-धमकाया जाए। जिन्ना के व्यक्तिगत सचिव श्रीनगर में विभाजन से पूर्व ही सांप्रदायिक वैमनस्य भड़काते रहे, ताकि समय आने पर महाराजा को पाकिस्तान में शामिल होने के लिए विवश किया जा सके।'' [14] पाकिस्तान ने सितंबर मास में ही कबाइलियों के माध्यम से रियासत पर आक्रमण करने की योजना बना ली थी और माउंटबेटन को इसका पता था। ब्रिटिश अधिकारियों को सितंबर में ही

इस बात का पता चल गया था कि महाराजा हरि सिंह ने भारत में अधिमिलन का निर्णय ले लिया था। लेकिन तब भी माउंटबेटन पाकिस्तान के पक्ष में ही थे। ''प्रधानमंत्री का पद सँभालने से पहले मैं माउंटबेटन से मिला। उनका कहना था कि भौगोलिक स्थिति के कारण महाराजा के पास पाकिस्तान में शामिल होने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है।[15] जब मैंने 15 अक्तूबर को रियासत के प्रधानमंत्री का पद सँभाला तो पाकिस्तान द्वारा महाराजा को डराने-धमकाने का काम शुरू हो चुका था। सचमुच बल-प्रयोग की पूरी योजना भी बना ली गई थी और अब वह केवल क्रियान्वयन के चरण पर थी।'' [16]

महाराजा हरि सिंह भी भविष्य को पढ़ ही रहे थे। उनकी इच्छा तो शुरू से ही रियासत को भारत में शामिल करने की थी। नेहरू की भी उत्कट इच्छा थी कि रियासत शीघ्रातिशीघ्र भारत में शामिल हो जाए; क्योंकि वहाँ भविष्य में क्या हो सकता है, इसको उन्होंने भी भाँप लिया था। उन्होंने 27 सितंबर, 1947 को सरदार पटेल को लिखा—''मुसलिम लीग के नेता पंजाब व उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत से कश्मीर में काफी संख्या में घुसपैठ की तैयारी कर रहे हैं। पाकिस्तान की चाल कश्मीर में अभी से घुसपैठ करके, जब शीतकाल में कश्मीर शेष भारत से अलग-थलग पड़ जाता है, उस समय कोई बड़ी कार्यवाही करने की है। मुझे नहीं लगता कि महाराजा के पास इसके अतिरिक्त कोई और भी चारा है कि शेख अब्दुल्ला व नेशनल कॉन्फ्रेंस के अन्य नेताओं को जेल से रिहा कर दिया जाए। एक बार कश्मीर का भारत में अधिमिलन हो जाता है तो पाकिस्तान के लिए उस पर आक्रमण करना कठिन हो जाएगा, क्योंकि तब वह सीधा भारत से संघर्ष की स्थिति में आ जाएगा। मुझे अब तात्कालिक आवश्यकता लगती है कि कश्मीर का भारत में अधिमिलन शीघ्र हो जाना चाहिए। जब तक शेख अब्दुल्ला और उसके साथी कारागार में हैं, यह भविष्य के लिए हानिकारक है।'' [17]

लेकिन जवाहरलाल नेहरू रियासत को भारत में तभी स्वीकारने के लिए तैयार थे, यदि महाराजा हरि सिंह अधिमिलन से पहले रियासत की सत्ता शेख अब्दुल्ला को सौंप दें। स्पष्ट था, नेहरू राष्ट्रीय हितों की बजाय व्यक्तिगत मित्रता को अधिक महत्त्व दे रहे थे।

इसी हालात में पाकिस्तान ने जम्मू-कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। यह आक्रमण चाहे कबाइलियों के नाम पर ही किया गया था, लेकिन इसमें पाकिस्तानी सेना की प्रत्यक्ष भूमिका थी। मेहर चंद महाजन के अनुसार, ''पाकिस्तान ने तो वास्तव में 22 अक्तूबर को ही मुजफ्फराबाद पर हमला कर दिया था। उसका पता हमें 24 अक्तूबर की रात को चला। जैसे ही हमें पता चला, हमने रियासत के उपप्रधानमंत्री को भारत के प्रधानमंत्री और उपप्रधानमंत्री के नाम पत्र देकर भेजा। मैंने एक व्यक्तिगत पत्र भी लिखा कि संकट की घड़ी में मानवीय आधार पर ही हमारी सहायता की जाए। हमने अपने पत्र में रियासत के भारत में अधिमिलन का प्रस्ताव भी भेजा; लेकिन दिल्ली से कोई जवाब नहीं आया।'' [18] न अधिमिलन के प्रस्ताव के उत्तर में, न ही सैनिक सहायता के उत्तर में और शेख अब्दुल्ला चुपचाप विमान में बैठकर श्रीनगर से दिल्ली चले गए।[19] उधर जिन्ना ने अक्तूबर के अंत में आनेवाली ईद श्रीनगर में मनाने की घोषणा कर दी। रियासत में हजारों बेगुनाह लोगों का कत्ल हो रहा था, औरतों की अस्मत लूटी जा रही थी; लेकिन दिल्ली चुप थी। न अधिमिलन को तैयार थी और न ही सैनिक सहायता भेजने को। आखिर कारण क्या था? कारण स्पष्ट था कि दिल्ली भेजी जा रही किसी भी चिट्ठी में यह नहीं लिखा था कि सत्ता शेख

अब्दुल्ला को सौंपी जा रही है।
25 अक्तूबर की शाम हो गई। मेहर चंद महाजन के ही शब्दों में, ''हमने निर्णय लिया कि अब यदि संभव हो तो विमान में बैठकर हम दिल्ली जाएँ या फिर पाकिस्तान जाकर आत्मसमर्पण कर दें। फिर किसी ने पड़ोसी देश काबुल जाने की सलाह दी कि शायद वहीं से सहायता मिल जाए।'' [20] लेकिन तभी सौभाग्यवश रात्रि को वी.पी. मेनन पहुँचे। मेनन ने महाराजा को तुरंत श्रीनगर छोड़कर जम्मू जाने की सलाह दी और मुझे अपने साथ दिल्ली ले गए।[21] महाराजा का अधिमिलन पत्र पुन: दिल्ली पहुँचा। महाराजा ने अबकी बार नेहरू की शर्त भी पूरी कर दी थी। शेख अब्दुल्ला को रियासत का आपात प्रशासक बनाने का निर्णय कर लिया था।

महाराजा हरि सिंह प्रथम अक्तूबर से ही भारत सरकार को हथियार भेजने की प्रार्थना कर रहे थे।[22] भारत सरकार ने कश्मीर की सहायता के लिए हथियार भेजने का निर्णय कर लिया था। 7 अक्तूबर को सरदार पटेल ने तत्कालीन रक्षा मंत्री बलदेव सिंह को लिखा—''मुझे आशा है कि कश्मीर राज्य को हथियार और गोला-बारूद ट्रेनों से भेजने का प्रबंध हो रहा होगा। यदि आवश्यकता हुई तो उसे हवाई मार्ग से भेजने का भी उपाय किया जा सकता है।'' [23] लेकिन वह प्रबंध नहीं हो रहा था। उन दिनों भारत और पाकिस्तान सेना की संयुक्त कमान होती थी, जिसके सेनापति जनरल लाकहार्ट थे। ''कमांडर इन चीफ जनरल लाकहार्ट ने फील्ड मार्शल ओकनलेक के साथ मिलकर इस निर्णय का पालन नहीं होने दिया। लाकहार्ट का कहना था कि दिल्ली में हथियार उपलब्ध ही नहीं हैं। सेना मुख्यालय ने सर्वोच्च मुख्यालय से पता किया कि कौन-कौन से हथियार देश के किस डिपो में उपलब्ध हैं? सेना मुख्यालय जानता था कि यह सूचना एकत्रित होते-होते महीनों लग जाएँगे। लेकिन सर्वोच्च मुख्यालय ने नया अड़ंगा लगाया कि उस रियासत को हथियार नहीं दिए जा सकते, जो अभी किसी डोमिनियन में शामिल नहीं हुई है।'' [24]
25 अक्तूबर, 1947 को जब दिल्ली में सुरक्षा समिति की बैठक हुई तो हथियार न भेजने का यह रहस्य खुला।

लेकिन अब तक किशन गंगा में बहुत पानी बह चुका था। महाराजा हरि सिंह ने अधिमिलन-पत्र भी निष्पादित कर दिया था। रियासत पाकिस्तानी हमले से जूझ रही थी अब ब्रिटिश कूटनीति जम्मू-कश्मीर में हथियार भेजे जाने को रोक नहीं सकती थी। उसके सब बहाने समाप्त हो गए थे। इन परिस्थितियों में नई ब्रिटिश नीति यह बनी कि श्रीनगर में भारतीय सेना पहुँचने से पहले पाकिस्तान रियासत पर कब्जा कर ले। नवंबर-दिसंबर तक आते-आते वैसे ही बर्फबारी के कारण कश्मीर के रास्ते बंद हो जाएँगे और फिर भारतीय सेना वहाँ पहुँच ही नहीं पाएगी। इस सारे घटनाक्रम पर माउंटबेटन के दु:ख की भी कोई सीमा नहीं थी। उन्होंने दु:ख का इजहार भी किया।
''मैंने बड़ी मुश्किल से पटेल को मनाया कि रियासत के पाकिस्तान में शामिल होने पर वे बुरा न मानें। लेकिन जब मेरी सारी योजना गुड़ गोबर हो गई तो मुझे बहुत ही दु:ख हुआ। यह सारा उस ब्लडी फूल हरि सिंह के कारण ही हुआ।'' [25] लेकिन माऊंटबेटन के कुचक्र उसके बाद भी जारी रहे।'' [26] कश्मीर के मुख्य राजनैतिक दल नेशनल कॉन्फ्रेंरस के अध्यक्ष शेख अब्दुल्ला भी रियासत के भारत में अधिमिलन के पक्ष में थे। महाराजा हरि सिंह अधिमिलन के कानूनी पक्ष के अंग थे तो शेख उसके लोकतांत्रिक पक्ष के अंग बने। उस समय उनके शत्रु भी यह कहने की स्थिति में नहीं थे कि शेख कश्मीर घाटी के मुसलमानों का प्रतिनिधित्व नहीं करते। जम्मू और लद्दाख के लोग तो अधिमिलन के मामले में सबसे ज्यादा मुखर थे। अत: अक्तूबर 1947 को जब रियासत का भारत में

अधिमिलन हुआ तो रियासत के शासक और रियासत की अधिकांश जनता अधिमिलन के पक्ष में थी। इसलिए माउंटबेटन का इस प्रश्न पर लोगों की राय जानने की जिद का कोई आधार नहीं था। लेकिन माउंटबेटन तो भविष्य की रणनीति के पासे फेंक रहे थे। उन्हें पूरा विश्वास था कि इस तरीके से कश्मीर पाकिस्तान को मिल जाएगा; पर जब उनकी यह योजना सफल नहीं हुई तो उन्हें दु:ख हुआ। लेकिन माउंटबेटन रियासत को पाकिस्तान में शामिल करवाने की अपनी योजना अधूरी कैसे छोड़ सकते थे? उनको लगता था कि यदि जम्मू-कश्मीर में शांति स्थापित हो तो यह योजना सिरे चढ़ सकती है। लेकिन यहाँ तो दोनों देशों की सेनाएँ आमने-सामने थीं। इस हालत में तो माउंटबेटन चाहकर भी कुछ नहीं कर पा रहे थे।

इधर भारतीय सेनाएँ पाकिस्तान से रियासत के इलाके खाली करवा रही थीं, उधर अंग्रेज षड्यंत्रकारी, रियासत का जितना भी हिस्सा हो सके, पाकिस्तान के हवाले करने के काम में लग गए थे। गिलगित में गिलगित स्काउट्स अर्धसैन्य बल के कमांडिंग ऑफिसर मेजर विलियम ब्राउन थे। ब्राउन के नेतृत्व में इस स्काउट्स ने 31 अक्तूबर, 1947 को गिलगित के वजीरे वजारत घनसारा सिंह का आवास रात्रि को घेर लिया और उन्हें गिरफ्तार कर लिया। रियासत की सेना ने मुकाबला किया, लेकिन उसके मुसलमान सैनिक शत्रु के साथ जा मिले और बची-खुची सेना काट दी गई। मेजर ब्राउन के नेतृत्व में ही गिलगित की अंतरिम सरकार का गठन कर लिया गया। 4 नवंबर को मेजर विलियम ब्राउन ने स्काउट्स लाइन से रियासत का झंडा उतारकर वहाँ पाकिस्तानी झंडा फहरा दिया और उस क्षेत्र के पाकिस्तान में शामिल होने की घोषणा कर दी। इस पूरे कांड में न तो वहाँ की जनता शामिल थी और न ही मीर व राजा। अंग्रेज इस क्षेत्र का सामरिक व कूटनीतिक दोनों दृष्टियों से महत्त्व जानते थे, इसलिए उन्होंने इसे तुरंत पाकिस्तान के हवाले कर दिया। घनसारा सिंह के अनुसार, ''गिलगित में होनेवाला विद्रोह अंग्रेज सैनिक अधिकारियों द्वारा भड़काया गया सैनिक विद्रोह था, जिसके फलस्वरूप गिलगित का पतन हुआ और वह पाकिस्तान के कब्जे में चला गया। गिलगित की जनता का इस विद्रोह में कोई हाथ नहीं था।'' [27]

1.3 संयुक्त राष्ट्र संघ में शिकायत

अब माउंटबेटन ने नई रणनीति अपनाई। वे नेहरू के पीछे पड़े कि जम्मू-कश्मीर के विषय को भारत संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाए। माउंटबेटन के लिए नेहरू को अपने जाल में फँसाना मुश्किल नहीं था, क्योंकि वे नेहरू के स्वभाव और प्रकृति को अच्छी तरह पहचान गए थे। नेहरू का मूल्यांकन करते हुए माउंटबेटन लिखते हैं— ''नेहरू वैचारिक क्षेत्र में लोगों का नेतृत्व कर सकते हैं। वे स्वप्न द्रष्टा हैं। लेकिन वे व्यावहारिक नहीं हैं। पटेल तो जमीनी स्तर तक व्यावहारिक हैं। वास्तव में वही देश को सँभाले हुए हैं। उनके जाने से देश टूट सकता है।'' [28] नेहरू व्यावहारिक नहीं थे, लेकिन माउंटबेटन तो अव्वल दर्जे के चतुर थे।

भारतीय सेना ने आक्रमणकारियों से रियासत का काफी हिस्सा खाली करवा लिया था। कश्मीर में उड़ी तक का क्षेत्र मुक्त हो गया था। जम्मू क्षेत्र में पुंछ का अधिकांश हिस्सा, राजौरी इत्यादि इलाके, दुश्मन से छुड़वा लिये गए थे। भारतीय सेना रियासत के शेष पाक अधिक्रांत क्षेत्रों को भी यथाशीघ्र खाली करवाने की स्थिति में थी। इंग्लैंड को लगने लगा था कि यदि पूरी रियासत, खासकर गिलगित और बलतिस्तान का क्षेत्र भारत के पास फिर चला गया तब तो उसकी सारी रणनीति धरी-की-धरी रह जाएगी। इसलिए उसने भारत पर दबाव बनाना शुरू कर दिया। बाद में बुकर ने स्वीकार किया कि माउंटबेटन की सलाह पर इटली सरकार ने नेहरू को पाकिस्तान में किसी सैन्य

कार्यवाही के खिलाफ चेतावनी दी थी।[29] चर्चिल का मत स्पष्ट ही था—''नेहरू और पटेल ब्रिटेन के शत्रु हैं और मुसलमान ब्रिटेन के सहयोगी हैं।'' [30]

लॉर्ड माउंटबेटन पं. जवाहरलाल नेहरू पर जम्मू-कश्मीर के मसले को संयुक्त राष्ट्र में ले जाने का दबाव बनाने लगे थे। संयुक्त राष्ट्र में जाने के लिए महात्मा गांधी भी सहमत नहीं थे। सरदार पटेल तो इसके विरोधी थे ही। लेकिन माउंटबेटन के प्रभाव, दबाव या फिर सुझाव पर नेहरू अनेक विरोधों के बावजूद 1 जनवरी, 1948 को यह मसला राष्ट्र संघ में ले ही गए।[31] भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के छठे अध्याय की धारा 35 के अंतर्गत जम्मू-कश्मीर पर पाकिस्तानी आक्रमण की शिकायत दर्ज करवा दी।

1.3.1 शिकायत के आधार... ''जम्मू-कश्मीर का भारत में अधिमिलन हो चुका है और अब वह भारत का हिस्सा है। उस पर पाकिस्तानी नागरिकों एवं कबाइलियों ने पाकिस्तान के पश्चिमोत्तर क्षेत्र से हमला किया है और उन्हें पाकिस्तान से सहायता मिल रही है। भारत सरकार सुरक्षा परिषद् से प्रार्थना करती है कि वह पाकिस्तान को इन आक्रमणकारियों को सहायता देने से तुरंत रोके; क्योंकि उसकी यह सहायता भारत पर आक्रमण के समान मानी जाएगी। यदि पाकिस्तान ऐसा नहीं करता तो भारत सरकार अपनी सुरक्षा के लिए, हमलावरों पर सैनिक कार्यवाही हेतु, पाकिस्तानी क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए विवश होगी। यह मसला अत्यधिक जरूरी है और सुरक्षा परिषद् द्वारा तुरंत कार्यवाही की माँग करता है, ताकि अंतरराष्ट्रीय शांति भंग न हो।'' शिकायत में आगे सुरक्षा परिषद् से आग्रह किया गया था कि वह पाकिस्तान की सरकार को कहे कि... 1. जम्मू-कश्मीर पर हुए आक्रमण में पाकिस्तान के सैनिक व सिविल कर्मचारी भाग न लें और न ही हमलावरों की किसी प्रकार की सहायता करें।

2. जम्मू-कश्मीर की लड़ाई में पाकिस्तानी नागरिक किसी प्रकार भी हिस्सा न लें।

3. पाकिस्तान आक्रमणकारियों को

(क) कश्मीर के खिलाफ की जा रही कार्यवाहियों में अपनी जमीन के प्रयोग की अनुमति न दे।

(ख) उन्हें सैनिक व अन्य आपूर्ति न दे।

(ग) किसी अन्य प्रकार की सहायता, जिससे वर्तमान संघर्ष लंबा खिंचे, न दे।

अपनी शिकायत में भारत ने यह भी स्पष्ट किया कि रियासत का भारत में अधिमिलन विधि-सम्मत है। अधिमिलन का समर्थन रियासत की सबसे बड़ी राजनैतिक पार्टी नेशनल कॉन्फ्रेंस ने भी किया है।

जनवरी 1948 के उत्तरार्ध में सुरक्षा परिषद् में भारत की शिकायत को लेकर बहस शुरू हुई, जो कई दिनों चलती रही। बहस का उत्तर देते हुए पाकिस्तान के प्रतिनिधि जफरुल्ला खान ने यह स्वीकार किया कि कबाइली पाकिस्तान से होकर जम्मू-कश्मीर में जा रहे हैं। लेकिन साथ ही यह दावा भी किया कि सरकार उनको रोकने का प्रयास कर रही है। आक्रमण में पाकिस्तानी सेना की भागीदारी होने से खान ने स्पष्ट इनकार किया। लेकिन जब 5 जुलाई, 1948 को भारत और पाकिस्तान के लिए गठित संयुक्त राष्ट्र का आयोग कराची पहुँचा और उसने वहाँ के विदेश मंत्री जफरुल्ला खान से भेंट की तो स्थिति दूसरी थी। पाँच सदस्यीय आयोग के एक सदस्य डॉ. जोसफ कोरबल के ही शब्दों में, ''सर जफरुल्ला खान ने आयोग को बताया कि मई से पाकिस्तानी सेना के तीन ब्रिगेड कश्मीर क्षेत्र में तैनात हैं।...जब आयोग ने पूछा कि क्या पाकिस्तान ने इसकी सूचना सुरक्षा परिषद् को दी है, तो उसका उत्तर नकारात्मक था।'' [32] ''यह वही जफरुल्ला खान था, जो सुरक्षा परिषद् में पाकिस्तान की आक्रमणकारियों से

साँठगाँठ से इनकार कर रहा था। लेकिन अब क्योंकि आयोग-प्रत्यक्ष अधिक्रांत क्षेत्र में जाने के लिए मौके पर उपस्थित था और वस्तु स्थिति सुरक्षा परिषद् से छुपाई नहीं जा सकती थी, इसलिए उसके पास अपनी भूमिका को स्वीकारने के सिवा कोई चारा नहीं बचा था।'' [33]

1.3.2 सुरक्षा परिषद् का प्रस्ताव— भारत व पाकिस्तान दोनों के तर्क सुनने के बाद 13 अगस्त, 1948 एवं 5 जनवरी, 1949 को सुरक्षा परिषद् ने कश्मीर पर महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए।

13 अगस्त, 1948 के प्रस्ताव के तीन हिस्से थे।

पहले भाग के अनुसार, भारत और पाकिस्तान को युद्ध-विराम की घोषणा करनी थी।

दूसरे भाग के अनुसार, पाकिस्तान की सरकार को जम्मू-कश्मीर से अपने सैनिक हटाने थे। इसके साथ ही उसे अपने वे नागरिक और कबाइली भी हटाने थे, जो पाकिस्तान की ओर से रियासत में लड़ने के लिए घुस आए थे। इस प्रकार जब रियासत का पाक कब्जेवाला क्षेत्र पाक सैनिकों एवं कबाइलियों से मुक्त हो जाएगा तो वहाँ का प्रशासन स्थानीय अधिकारी सँभालेंगे। जब पाकिस्तान रियासत में से अपने सैनिक व कबाइलियों को हटा लेगा तो भारत सरकार रियासत में अपनी सेना की संख्या क्रमशः घटाएगी। वह रियासत में उतनी ही सेना रखेगी जितनी कानून-व्यवस्था बनाए रखने के लिए स्थानीय अधिकारियों के लिए जरूरी होगी।

तीसरे भाग के अनुसार, भारत सरकार और पाकिस्तान सरकार अपनी इस आकांक्षा की पुनः अभिपुष्टि करती है कि जम्मू-कश्मीर राज्य की भविष्य की स्थिति लोगों की इच्छानुसार निश्चित की जाएगी और इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अवहार करार (Truce) हो जाने के बाद दोनों सरकारें आयोग के साथ सलाह-मशविरा प्रांरभ करेंगी, ताकि निष्पक्ष एवं साम्यपूर्ण परिस्थितियाँ निश्चित की जा सकें, जिनमें लोगों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति को आश्वस्त किया जा सके।[34]

13 अगस्त, 1948 और 5 जनवरी, 1949 के प्रस्तावों को और अधिक स्पष्ट करते हुए सुरक्षा परिषद् ने भारत सरकार को अनेक स्पष्टीकरण एवं आश्वासन दिए। इनके अनुसार, 1. जम्मू-कश्मीर की सुरक्षा की जिम्मेदारी भारत की है। 2. रियासत के पूरे हिस्से पर जम्मू-कश्मीर सरकार की संप्रभुता को चुनौती नहीं दी जा सकती। 3. तथाकथित आजाद कश्मीर सरकार को कोई मान्यता नहीं दी जाएगी। 4. पाक द्वारा अधिक्रांत क्षेत्र को जम्मू-कश्मीर रियासत के अहित में समेकित नहीं किया जाएगा। 5. रियासत के उत्तर में पाकिस्तान से खाली करवाए गए हिस्सों का प्रशासन जम्मू-कश्मीर सरकार के पास चला जाएगा तथा उसकी सुरक्षा का दायित्व भारत सरकार के पास रहेगा। वह कबाइलियों के संभावित हमले को रोकने एवं मुख्य व्यापार मार्गों की सुरक्षा के लिए आवश्यकता पड़ने पर अपनी सेना भी रख सकती है। 6. पाकिस्तान की जम्मू-कश्मीर के मामले, विशेषकर लोगों की राय जानने के मामले, में कोई हस्तक्षेप नहीं होगा। 7. यदि तकनीकी या व्यावहारिक कारणों से इस प्रश्न पर लोगों की राय जानना संभव न हुआ तो संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा स्थापित आयोग ऐसे उचित और समान तरीकों की खोज करेगा, जिससे लोगों की इच्छा जानी जा सके। 8. यदि पाकिस्तान 13 अगस्त, 1948 के प्रस्ताव के पहले और दूसरे भाग को लागू नहीं करता तो भारत इस प्रश्न पर जनमत के लिए बाध्य नहीं होगा।[35]

1.3.3 पाकिस्तान द्वारा प्रस्ताव के कार्यान्वयन में आनाकानी

इतिहास साक्षी है कि भारत की तमाम कोशिशों के बावजूद पाकिस्तान ने 13 अगस्त के प्रस्ताव के दूसरे भाग को

लागू नहीं किया। उसने 1 जनवरी, 1949 को युद्ध विराम तो स्वीकार कर लिया, लेकिन रियासत के अनधिकृत रूप से कब्जा किए हिस्से से अपनी सेना वापस नहीं बुलाई। जब तक पाकिस्तान प्रस्ताव के प्रथम और द्वितीय भाग को लागू नहीं करता तब तक भारत के लिए तीसरे भाग को निष्पादित करना संभव नहीं था।

एंग्लो-अमेरिकी धुरी के हितों की सुरक्षा करने का लॉर्ड माउंटबेटन का काम जम्मू-कश्मीर मसले को संयुक्त राष्ट्र संघ में पहुँचाने के बाद समाप्त हो गया था, अत: वे भी अपना बोरिया-बिस्तर समेटकर 21 जून, 1948 को गवर्नर जनरल के पद से रुख्सत होकर, अपनी पत्नी एडविना को भी साथ लेकर वापस इंग्लैंड चले गए। लेकिन माउंटबेटन को अंत तक इसका दु:ख ही रहा कि वे पूरा जम्मू-कश्मीर पाकिस्तान को नहीं दे पाए। पर उनकी दृष्टि में इसके लिए उनकी अपनी रणनीति नहीं, बल्कि पाकिस्तान स्वयं ही जिम्मेदार था। उनके अपने ही शब्दों में, ''क्या कोई सोच सकता था कि पाकिस्तान इतनी मूर्खता करेगा कि वहाँ से कबाइलियों को नहीं हटाएगा? मैंने लियाकत को कहा कि तुम्हें केवल कबाइलियों को वहाँ से वापस बुलाना है। उसके बाद जनमत ले लिया जाएगा। तुम जीत जाओगे और कश्मीर फिर तुम्हें मिल जाएगा। ऐसा न करके तुम नेहरू के जाल में फँस रहे हो, जो खुद भी मेरे कहने पर जनमत की बात स्वीकार करके अपने समर्थकों में ही आलोचना का शिकार हो रहे हैं।'' [36]

1.4 रियासतों का भारत में एकीकरण

जिन दिनों सयुक्त राष्ट्र संघ जम्मू-कश्मीर को ब्रिटिश-अमेरिकी धुरी पर घुमा रहा था, उन्हीं दिनों भारत की रियासतों के एकीकरण की प्रक्रिया भी तेजी से शुरू हो गई थी। जिन रियासतों का विलीनीकरण हो चुका था, अब उनके भारत में एकीकरण की प्रक्रिया चल रही थी। यह प्रक्रिया कहीं पर तेज थी और कहीं पर धीमी। देश के कुछ क्षेत्रों में छोटी-छोटी रियासतों को आपस में मिलाकर उस रियासती समूह को अलग राज्य का दर्जा दे दिया गया था। कुछ जगह छोटी रियासतें पड़ोस के राज्य में शामिल हो गई थीं। बड़ी रियासतों को संविधान में (ख) श्रेणी के राज्यों का दर्जा दे दिया गया था। जम्मू-कश्मीर रियासत भी इसी श्रेणी में आती थी। (ख) श्रेणी के राज्यों के शासकों को उन्हीं के राज्य के राजप्रमुख का दर्जा दे दिया गया था।

भारत संघ में विलीन हुई रियासतों के संघ के एकीकरण की प्रक्रिया को समझना आवश्यक है। इस दिशा में पहला कदम तो भारत में विलीन हुई सभी रियासतों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में भारत की संविधान सभा में प्रतिनिधित्व देना था। जम्मू-कश्मीर से भी चार सदस्य संघीय संविधान सभा में भेजे गए। दूसरा कदम इन राज्यों के लिए संविधान का निर्माण करना था। शुरू में ऐसा माना गया था कि यदि इन रियासतों या रियासती समूहों के लिए संघ की संविधान सभा संविधान बनाएगी तो यह उनके आंतरिक मामलों में दखलंदाजी मानी जाएगी। इसलिए यह सोचा गया था कि रियासतों या रियासती समूहों की अपनी-अपनी संविधान सभा होगी, जो अपना-अपना संविधान बनाएँगी। बस, इतना ध्यान रखना होगा कि उन रियासतों के संविधान भारतीय संविधान के प्रावधानों के अनुकूल हों।

विभिन्न राज्यों में संविधान सभाओं के चुनावों में देरी के कारण संविधान निर्माण की प्रक्रिया प्रभावित हो रही थी। यह भी अनुभव किया जाने लगा कि इस प्रकार विभिन्न रियासतों के जो अलग-अलग संविधान बनेंगे, उनमें एकरूपता और तारतम्यता नहीं रह पाएगी, जिससे बाद में उलझनें पैदा हो सकती हैं। इसलिए बी.एन. राव की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई। इस समिति को रियासतों के लिए एक आदर्श संविधान तैयार करना था। यह संविधान विभिन्न रियासतों की संविधान सभाओं के लिए संविधान बनाते समय उदाहरण का कार्य कर सकता

था।

जब यह प्रक्रिया शुरू हो गई तो ऐसा लगा कि भारत संघ की कुछ इकाइयाँ अपने लिए अलग संविधान का निर्माण करें, यह उचित नहीं होगा। इस पर विचार करने के लिए विभिन्न रियासतों के प्रधानमंत्रियों की बैठक 19 मई, 1949 को बुलाई गई। उनकी सहमति से यह निर्णय किया गया कि रियासतों के लिए संविधान भी भारत की संविधान सभा ही बनाएगी और ये संविधान समग्र भारतीय संविधान का ही हिस्सा होंगे। लेकिन अब तक भारतीय संविधान का प्रारूप लगभग तैयार हो चुका था। इसलिए एम.के. वेलोडी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति को भारत के प्रारूप संविधान का अध्ययन कर उसमें आवश्यक संशोधन प्रस्तावित करने थे, ताकि उनका संविधान में समावेश कर लिया जाए। ये संशोधन संविधान में प्रांतों और रियासतों को समान धरातल पर लाने के लिए किए जाने थे।

इस समिति ने संविधान की प्रारूप समिति से विचार-विमर्श के बाद आवश्यक संशोधन प्रस्तावित किए। इन प्रस्तावित संशोधनों पर जिन-जिन रियासतों में संविधान सभाएँ थीं, उन्होंने चर्चा की। उस समय केवल तीन रियासतों या रियासती समूहों में संविधान सभाएँ थीं—सौराष्ट्र, मैसूर और त्रावणकोर-कोचीन में। सौराष्ट्र की संविधान सभा ने तो इस प्रस्तावित संविधान को ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया। शेष दो संविधान सभाओं ने कुछ संशोधन स्वीकार कर लिये और कुछ नए संशोधन सुझाए। इनके प्रतिनिधियों से चर्चा के बाद सुझाए गए कुछ संशोधन शामिल कर लिये गए और शेष त्याग दिए गए।

1.5 धारा-370 का समावेश

भारत की संविधान सभा ने वर्ष 1949 के मध्य तक संविधान निर्माण का कार्य लगभग पूरा कर लिया था। प्रारूप समिति द्वारा प्रस्तावित विभिन्न अनुच्छेदों को बहस के बाद संविधान सभा द्वारा स्वीकृति दे दी गई थी। संघ के समस्त राज्यों को तीन भागों में विभाजित किया गया था। (क) श्रेणी में वे राज्य थे, जो ब्रिटिश भारत में अलग-अलग प्रांतों का दर्जा रखते थे। (ख) श्रेणी में उन कुछ बड़ी रियासतों को रखा गया था, जो भारत सरकार अधिनियम 1935 और भारत स्वतंत्रता 1947 के तहत भारत अधिराज्य में शामिल हुई थी। क और ख श्रेणी के राज्यों में विधानसभाओं के गठन का प्रावधान था। क श्रेणी के राज्यों में राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जानी थी और ख श्रेणी के राज्यों में राष्ट्रपति द्वारा राजप्रमुख की नियुक्ति की जानी थी। ये राजप्रमुख इन रियासतों के पूर्व शासक ही थे। इसके अतिरिक्त ग श्रेणी के राज्य थे। ये भी भारत में शामिल हुई रियासतों या रियासती समूहों को मिलाकर बनाए गए थे। ये राज्य सीधे केंद्र-शासित थे। संविधान निर्माण का कार्य चाहे अंतिम चरण में था, लेकिन फिर भी अनेक मुद्दे अभी तक लटके हुए थे।

1.5.1 धारा 370 की आवश्यकता

जम्मू-कश्मीर उनमें एक था। वहाँ पाकिस्तान का आक्रमण चल रहा था। पाकिस्तान ने रियासत का काफी भूभाग बलपूर्वक अपने कब्जे में कर रखा था। भारत सरकार पाकिस्तान को आक्रांता घोषित करवाने और उससे यह भारतीय भूभाग खाली करवाने के लिए इस प्रश्न को सुरक्षा परिषद् में ले गई थी। वहाँ यह अभी तक लंबित था। सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव के बावजूद पाकिस्तान रियासत का बलपूर्वक हथियाया गया भूभाग खाली नहीं कर रहा था।

लेकिन अनिश्चितता की इस स्थिति में भी आखिर रियासत के लोगों को लोकतांत्रिक व्यवस्था से महरूम कैसे रखा

जा सकता था? इसलिए रियासत में भारतीय संविधान को लागू करने के लिए संघीय संविधान में धारा 370 की अवधारणा आई। धारा 370 जम्मू-कश्मीर में भारत का संविधान लागू करने की अतिरिक्त प्रक्रिया थी, जिसमें इस काम के लिए एक पद्धति निश्चित की गई थी। संविधान सभा में गोपाल स्वामी आयंगर ने धारा 370 का प्रस्ताव 17 अक्तूबर, 1949 को प्रस्तुत किया। धारा की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा कि ''हम इस समय कश्मीर को लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ में फँसे हुए हैं। पता नहीं कश्मीर का प्रश्न सुलझने में कितना समय लगेगा। इसलिए धारा 370 अस्थायी प्रावधान है।'' धारा 370 के अनुसार—

भारत के संविधान में किसी बात के होते हुए भी... (क) अनुच्छेद 238 के उपबंध जम्मू-कश्मीर राज्य के संबंध में लागू नहीं होंगे।

(ख) उक्त राज्य के लिए विधि बनाने की संसद् की शक्ति,

(1) संघ सूची और समवर्ती सूची के उन विषयों तक सीमित होगी जिनको राष्ट्रपति उस राज्य की सरकार से परामर्श करके उन विषयों के तत्स्थानी विषय घोषित कर दे, जो भारत डोमिनियन में उस राज्य के अधिमिलन को शासित करनेवाले अधिमिलन-पत्र में ऐसे विषयों के रूप में विनिर्दिष्ट हैं, जिनके संबंध में डोमिनियन विधानमंडल उस राज्य के लिए विधि बना सकता है।

1. उक्त सूचियों के उन अन्य विषयों तक सीमित होगी, जो राष्ट्रपति उस राज्य की सरकार की सहमति से आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करे।

स्पष्टीकरण—इस अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए उस राज्य की सरकार से वह व्यक्ति अभिप्रेत है, जिसे राष्ट्रपति ने जम्मू-कश्मीर के महाराजा की 5 मार्च, 1948 की उद्घोषणा के अधीन तत्समय पदस्थ मंत्रिपरिषद् की सलाह पर कार्य करनेवाले जम्मू-कश्मीर के महाराजा के रूप में तत्समय मान्यता प्राप्त थी।

(ग) अनुच्छेद 1 और इस अनुच्छेद के उपबंध उस राज्य के संबंध में लागू होंगे।

(घ) इस संविधान के अन्य ऐसे उपबंध ऐसे अपवादों और उपांतरणों के अधीन रहते हुए, जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करे, उस राज्य के संबंध में लागू होंगे।

परंतु ऐसा कोई आदेश जो उपखंड

(ख) के पैरा (1) में निर्दिष्ट राज्य के अधिमिलन-पत्र में विनिर्दिष्ट विषयों से संबंधित है, उस राज्य की सरकार से परामर्श से ही किया जाएगा, अन्यथा नहीं। परंतु यह और कि ऐसा कोई आदेश जो अंतिम पूरवर्ती परंतुक में निर्दिष्ट विषयों से भिन्न विषयों से संबंधित है, उस सरकार की सहमति से ही किया जाएगा, अन्यथा नहीं।

2. यदि खंड (1) के उपखंड (ख) के पैराग्राफ (2) में या उपखंड (घ) के दूसरे परंतुक में निर्दिष्ट उस राज्य की सरकार की सहमति उस राज्य का संविधान बनाने के प्रयोजन के लिए संविधान सभा के बुलाए जाने से पहले दी जाए तो उसे ऐसी संविधान सभा के समक्ष ऐसे विनिश्चय के लिए रखा जाएगा, जो वह उस पर करे।

3. इस अनुच्छेद के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी राष्ट्रपति लोक अधिसूचना द्वारा घोषणा कर सकेगा कि यह अनुच्छेद प्रवर्तन में नहीं रहेगा। या ऐसे अपवादों और उपांतरणों सहित ही और ऐसी तारीख से प्रवर्तन में रहेगा, जो वह विनिर्दिष्ट करे। परंतु राष्ट्रपति द्वारा ऐसी अधिसूचना निकाले जाने से पहले खंड (2) में निर्दिष्ट उस राज्य की संविधान की सिफारिश आवश्यक होगी।

मोटे तौर पर जब तक जम्मू-कश्मीर में स्थिति सामान्य नहीं हो जाती तब तक भारत के संविधान को राज्य में लागू करने के लिए धारा 370 एक अतिरिक्त प्रक्रिया के तौर पर काम करेगी। संविधान में ही व्यवस्था कर दी गई

कि स्थिति सामान्य हो जाने पर जम्मू-कश्मीर का भी अन्य रियासतों की तरह एकीकरण हो जाएगा तो यह अतिरिक्त प्रक्रिया अनुपयोगी हो जाएगी और हटा ली जाएगी। अत: इस धारा को अस्थायी प्रावधान ही कहा गया।

1.6 रियासतों में संघीय संविधान की स्वीकृति

लेकिन मुख्य प्रश्न यह था कि भारत के संविधान को विलीन हुई रियासतों पर लागू करने की प्रक्रिया क्या हो? काफी विचार-विमर्श के बाद यह निर्णय किया गया कि भारत के संविधान, जिसमें अब रियासतों का अपना आंतरिक संविधान भी शामिल हो गया था, को भाग (ख) की रियासतों के राजप्रमुख स्वीकृति देंगे। राजप्रमुख यह स्वीकृति रियासत की संविधान सभा द्वारा पारित प्रस्ताव के आधार पर देंगे। इस प्रकार तीन रियासतों, जहाँ संविधान सभाएँ थीं, को भारतीय संविधान के रियासतों से संबंधित प्रावधानों पर चर्चा का अवसर दिया गया।
लेकिन जिन शेष रियासतों में संविधान सभाएँ नहीं गठित हुई थीं, वहाँ इस संविधान को स्वीकृति कैसे मिलेगी? रियासती मंत्रालय के मंत्री ने इस विषय पर स्थिति स्पष्ट की। उन्होंने कहा, ''दुर्भाग्य की बात है कि अभी शेष रियासतों में संविधान सभाएँ नहीं हैं। संविधान लागू होने से पहले उनका गठन करना भी संभव नहीं है। इसलिए हमारे पास एक ही विकल्प है कि शेष रियासतों में संविधान को लागू करने के लिए वहाँ के राजप्रमुखों से स्वीकृति ली जाए। लेकिन राजप्रमुख अपनी स्वीकृति देने से पहले निश्चय ही अपने मंत्रिमंडल से सलाह करेंगे। न तो भारत की संविधान सभा में इन रियासतों का प्रतिनिधित्व कर रहे सदस्य और न ही इन रियासतों की जनता यह चाहेगी कि जब तक इन रियासतों में संविधान सभाओं का गठन नहीं हो जाता, तब तक इनमें संविधान लागू न किया जाए। नए संविधान के अंतर्गत जब इन रियासतों में विधानसभाओं का गठन हो जाएगा तो उनकी प्रथम विधानसभाएँ यदि संविधान में कोई संशोधन सुझाएँगी तो उनपर जरूर विचार किया जाएगा।'' [37]

1.6.1. जम्मू-कश्मीर में भारतीय संविधान लागू होना

संविधान के बी श्रेणी के राज्यों के राजप्रमुखों ने 1949 के नवंबर मास में सार्वजनिक उद्घोषणा द्वारा अपने-अपने राज्य में उस संघीय संविधान को लागू किया, जिसे 26 जनवरी, 1950 को विधिवत् भारत के लोगों को अर्पित किया जाना था और जिसके लागू होने से भारत एक गणतंत्र बनने वाला था। ऐसी ही एक उद्घोषणा उस समय के जम्मू-कश्मीर के रीजेंट युवराज कर्ण सिंह बहादुर ने 25 नवंबर, 1949 को की। उद्घोषणा के अनुसार, ''रियासत आर्थिक, राजनैतिक और अन्य क्षेत्रों में शेष भारत से सुसंबंधित है। अत: यह वांछित है कि रियासत के भारत डोमिनियन के साथ सांविधानिक संबंधों को पूर्ववत् जारी रखा जाए, भारत की संविधान सभा ने जिसमें रियासत के भी विधिवत् नियुक्त प्रतिनिधि थे, भारत के लिए जो संविधान प्रारूपित किया है, वह इन संबंधों के लिए उचित आधार है।... अत: भारत का संविधान जिस प्रकार से जम्मू-कश्मीर रियासत पर लागू है, रियासत व भारत संघ के सांविधानिक रिश्तों को परिभाषित करेगा और उसे रियासत में प्रभावी बनाया जाएगा।'' [38] भारतीय संविधान की धारा 1 और धारा 370 जम्मू-कश्मीर पर लागू हो रही थी और इसी धारा 370 के माध्यम से राष्ट्रपति को प्राधिकृत किया गया था कि वे राज्य सरकार की सहमति से संविधान के अन्य प्रावधान राज्य में लागू कर सकते हैं।

धारा 370 में राज्य सरकार की परिभाषा को भी स्पष्ट कर दिया गया। उसके अनुसार, राज्य की सरकार से वह व्यक्ति अभिप्रेत है, जिसे राष्ट्रपति से जम्मू-कश्मीर के महाराजा की 5 मार्च, 1948 की उद्घोषणा के अधीन तत्समय पदस्थ मंत्रिपरिषद् की सलाह पर कार्य करनेवाले जम्मू-कश्मीर के महाराजा के रूप में तत्समय मान्यता

प्राप्त थी। इसका अर्थ स्पष्ट था कि राज्य सरकार से अभिप्राय उस व्यक्ति से है, जिसे राष्ट्रपति ने जम्मू-कश्मीर के महाराजा के तौर पर मान्यता दी है, लेकिन महाराजा को उस मंत्रिपरिषद् की सलाह पर चलना था, जिसकी नियुक्ति महाराजा ने 5 मार्च, 1948 की अधिसूचना से की थी!

भारत सरकार ने श्वेत पत्र में जम्मू-कश्मीर की स्थिति भी स्पष्ट की, ताकि संदेह की कोई गुंजाइश ही न रहे। श्वेत पत्र के अनुसार, ''जम्मू-कश्मीर के महाराजा ने भी भारत में अधिमिलन के लिए उसी अधिमिलन-पत्र को निष्पादित किया, जिसे अन्य रियासतों के राजाओं ने किया। इसलिए कानूनी दृष्टि से और सांविधानिक दृष्टि से भी इस रियासत की वही स्थिति है, जो संघ में विलीन होनेवाली अन्य रियासतों की। यह ठीक है कि भारत सरकार लोगों की राय जानने के लिए वचनबद्ध है, लेकिन इससे रियासत के अधिमिलन की कानूनी स्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ता। यही कारण है कि रियासत को भारतीय संविधान के (ख) भाग के राज्यों में शामिल किया गया है।'' [39]

1.7 जम्मू-कश्मीर राज्य की संविधान सभा

जिन दिनों भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ब्रिटिश भारत में स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रही थी, उन्हीं दिनों देश की विभिन्न रियासतों में भी प्रजा मंडलों से कांग्रेस का अनेक स्थानों पर आपसी तालमेल भी था। जम्मू-कश्मीर रियासत में भी शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में मुसलिम कॉन्फ्रेंरस के नाम से इसी प्रकार की एक पार्टी प्रारंभ हुई थी। यह आंदोलन कश्मीर घाटी में से डोगरा राज को समाप्त कर लोकतांत्रिक राज की स्थापना के लिए चलाया गया था। बाद में पार्टी में फूट पड़ गई। शेख अब्दुल्ला ने नया राजनैतिक दल नेशनल कॉन्फ्रेंरस बना लिया। महाराजा हरि सिंह रियासत में प्रगतिशील विचारों के सुधारवादी शासक माने जाते थे। उन्होंने शासन में प्रजा को भागीदारी देने के लिए राजनैतिक दलों के आग्रह को स्वीकारते हुए 1934 में एक संविधान लागू किया, जिसके अंतर्गत प्रजासभा के नाम से विधायिका स्थापित की गई। अनेक संशोधनों के बाद यह संविधान जम्मू-कश्मीर संविधान अधिनियम 1939 के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस संविधान के अंतर्गत प्रजासभा के लिए विधिवत् चुनाव होते थे। यहाँ यह जानना भी रुचिकर होगा कि ब्रिटिश भारत में विधानसभाओं के लिए होनेवाले चुनावों में विभिन्न श्रेणियों के मतदाताओं को जोड़कर केवल 13 प्रतिशत लोगों को मतदान करने का अधिकार था। जबकि जम्मू-कश्मीर रियासत में यह अधिकार 14 प्रतिशत लोगों के पास था। रियासत के संविधान के अनुसार, प्रजासभा के अंतिम विधिवत् चुनाव जनवरी 1947 में संपन्न हुए थे। उसके कुछ महीने बाद ही भारत स्वाधीन हुआ और रियासत का भारत में अधिमिलन हो गया। यद्यपि प्रजासभा की अधिकांश अवधि अभी तक बची हुई थी, लेकिन सभा के अनेक सदस्य बदली परिस्थितियों में पाकिस्तान चले गए थे। इसलिए व्यावहारिक रूप से जम्मू-कश्मीर संविधान के अंतर्गत चुनी गई इस प्रजा सभा के लिए अब कार्य करना उतना व्यावहारिक नहीं रह गया था। इसी बीच रियासत पर पाकिस्तान का आक्रमण हो गया। इस आपात-स्थिति में महाराजा हरि सिंह ने तुरंत आपात प्रशासन की व्यवस्था की और शेख अब्दुल्ला को आपात प्रशासक नियुक्त किया। तदुपरांत जब स्थिति में कुछ सुधार हुआ तो महाराजा ने आपात प्रशासन को निरस्त करके 5 मार्च, 1948 को अपने मंत्रिमंडल का पुनर्गठन किया और मेहर चंद महाजन के स्थान पर शेख अब्दुल्ला को प्रधानमंत्री नियुक्त किया। उद्घोषणा के अनुसार, ''मेरी इच्छा है कि मैं आपात प्रशासन के स्थान पर लोकप्रिय अंतरिम सरकार की स्थापना करूँ।'' [40] जाहिर है कि हरि सिंह राज्य में पूर्णत: लोकतांत्रिक संविधान के इच्छुक थे। इसी उद्घोषणा में उन्होंने स्पष्ट किया था कि नया लोकतांत्रिक संविधान वयस्क मताधिकार

पर आधारित होगा और वंशानुगत शासन वंश का व्यक्ति उसका केवल संवैधानिक मुखिया ही होगा। रियासत में सन् 1934 से ही धीरे-धीरे लोकतांत्रिक संविधान की स्थापना हेतु प्रगति हो रही थी। इसी को निरंतरता में महाराजा हरि सिंह की 5 मार्च, 1948 की यह उद्घोषणा थी।

जिन रियासतों का भारत में अधिमिलन हुआ था, उनमें से कुछ बड़ी रियासतों में, किसी-न-किसी रूप में, अधिमिलन से पूर्व भी विधानसभाएँ कार्यरत थीं। जम्मू-कश्मीर भी ऐसी ही एक रियासत थी। लेकिन कुल मिलाकर 26 जनवरी, 1950 से पहले इन सभी रियासतों का भारत में सांविधानिक एकीकरण मुकम्मल हो गया और उनके संविधानों को भी संघीय संविधान में समाहित कर दिया गया।

जम्मू-कश्मीर में पाकिस्तानी आक्रमण के कारण युद्ध चल रहा था। वहाँ ये सभी प्रक्रियाएँ पूरी करना संभव नहीं था। युद्ध-विराम घोषित हो जाने के बाद इन प्रक्रियाओं की ओर ध्यान दिया गया। अब वहाँ विधिवत् संविधान सभा के गठन की प्रक्रिया प्रारंभ करना जरूरी था, ताकि इस रियासत के एकीकरण की गति को भी त्वरित किया जा सके। संविधान सभा का गठन इसलिए भी जरूरी हो गया था, क्योंकि उसे रियासत के भारत में अधिमिलन का अनुमोदन भी करना था।

उधर जिस प्रकार सुरक्षा परिषद् में ब्रिटिश-अमेरिकी कूटनीति जम्मू-कश्मीर के प्रश्न को उलझा रही थी और बार-बार लोगों की राय लेने की आड़ में अपने साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति कर रही थी, उन सभी का लोकतांत्रिक उत्तर देने के लिए राज्य की संविधान सभा का गठन एवं उसके द्वारा अधिमिलन का अनुमोदन और संघीय संविधान को स्वीकार करना ही एकमात्र विकल्प रह गया था। सुरक्षा परिषद् की जम्मू-कश्मीर मामले में षड्यंत्रकारी भूमिका का लोकतांत्रिक उत्तर भी राज्य की संविधान सभा ही हो सकती थी। सुरक्षा परिषद् पाकिस्तान से 13 अगस्त, 1948 के प्रस्ताव का पालन तो करवा नहीं पा रही थी, जिसके अंतर्गत पाकिस्तान को रियासत के कब्जा किए गए क्षेत्र खाली करने थे। इसके स्थान पर वह जनमत-संग्रह करवाने की व्यवस्था हेतु अपने प्रतिनिधि बार-बार कश्मीर में भेज रही थी।

ऐसे ही एक प्रतिनिधि आस्टेउलिया उच्च न्यायालय के सेवामुक्त न्यायाधीश सर ओवन डिक्सन श्रीनगर आए और उन्होंने 15 सितंबर, 1950 को सुरक्षा परिषद् में अपनी रिपोर्ट पेश की। इसके अनुसार पाकिस्तान द्वारा रियासत का कब्जे में किया गया सारा भूभाग पाकिस्तान के पास ही रहने दिया जाए। लद्दाख भारत में ही रहने दिया जाए। जम्मू को भारत व पाकिस्तान में बाँट दिया जाए। कश्मीर में जनमत-संग्रह करवाया जाए, लेकिन उससे पहले वहाँ की सरकार को हटाकर उसे संयुक्त राष्ट्र प्रशासन के हवाले कर दिया जाए। यदि संयुक्त राष्ट्र का यह प्रशासन चाहे तो कानून व्यवस्था के लिए वह भारत व पाकिस्तान के सैनिकों को बुला सकता है। भारत ने इन प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया।

पूरी रियासत में सुरक्षा परिषद् के रवैए को लेकर गुस्सा था। राज्य के प्रमुख राजनैतिक दल नेशनल कॉन्फ्रेंरस ने तो इन प्रस्तावों को राज्य की जनता की ओर से अस्वीकार करने और संविधान सभा के गठन की माँग को लेकर 27 अक्तूबर, 1950 को श्रीनगर में बाकायदा अपना अधिवेशन बुलाया। अधिवेशन में पारित किया गया कि ''सुरक्षा परिषद् ने अभी तक जो प्रक्रिया अपनाई है वह अव्यावहारिक तो है ही, अनिर्णय की स्थिति को बरकरार रखने में सहायक भी है। इसने रियासत के लोगों को अनिश्चय की दु:खद स्थिति में डाल दिया है। नेशनल कॉन्फ्रेंरस इस पर चिंतित तो है ही, लेकिन वह संशय और निराशा की इस स्थिति को स्थायी नहीं बने रहने दे सकती।''अत: सामान्य परिषद् की राय में वह वक्त आ गया है, जब अनिर्णय व दोलायमान स्थिति को समाप्त करने के लिए लोगों को ही

पहल करनी होगी। इसलिए यह सामान्य परिषद् लोगों की सर्वोच्च कार्यकारिणी को संस्तुति करती है कि वयस्क मताधिकार के आधार पर संविधान सभा के गठन के लिए तुरंत कदम उठाए जाएँ। संविधान सभा में जम्मू-कश्मीर रियासत के स्वरूप और संघ से संबंधों को निर्धारित करने के लिए रियासत के सभी वर्गों के लोगों एवं रियासत के सभी संभागों को शामिल किया जाए।'' [41]

शेख अब्दुल्ला ने अमेरिका की एक पत्रिका को दिए गए साक्षात्कार में कहा, ''यदि सुरक्षा परिषद् निकट भविष्य में कोई निर्णय लेने में अक्षम सिद्‍ध होती है, तब राज्य के लोग स्वयं अपनी राय अभिव्यक्त करने के मार्ग तलाशेंगे, ताकि वर्तमान में व्याप्त अनिश्चितता एवं कठिनाइयाँ समाप्त हो सकें। तब वे संविधान सभा का गठन कर अपने मत की अभिव्यक्ति करेंगे।[42] संविधान सभा के गठन की इस प्रक्रिया से जाहिर है, संयुक्त राष्ट्र में ब्रिटिश-अमेरिकी कूटनीति पराजित होती, इसलिए सुरक्षा परिषद् ने संविधान सभा गठित किए जाने का विरोध किया। ऐसा एक प्रस्ताव परिषद् में प्रस्तुत किया गया। शेख ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा कि, ''संविधान सभा के प्रति इन प्रस्तावकों का रवैया देखकर लगता है कि वे उन लोगों के रास्ते में रुकावट डालना चाहते हैं, जो लोकतांत्रिक विकास की दिशा में लोकतांत्रिक ढंग से सरकार की रचना करना चाहते हैं।'' [43] शेख अब्दुल्ला ने स्पष्ट किया, ''इस संविधान सभा को संयुक्त राष्ट्र की देख-रेख में प्रस्तावित जनमत-संग्रह का स्थानापन्न माना जाए।'' [44]

❑

2.

प्रजा परिषद् की स्थापना

2.1. जम्मू-कश्मीर में राजनैतिक चेतना और राजनैतिक दलों की स्थापना

जम्मू-कश्मीर रियासत के महाराजा हरि सिंह की ख्याति शुरू से ही देशभक्त और भारत की स्वतंत्रता के पक्षधर शासक की थी। उन्होंने 1925 में राजकाज सँभाला था और उसी समय घोषणा की थी कि मेरा एकमात्र धर्म न्याय है और मैं उसी के अनुसार शासन का संचालन करूँगा। महाराजा हरि सिंह ने अपनी इस घोषणा को अंत तक निबाहा भी। राजकाज में उन्होंने मजहब या संप्रदाय के आधार पर भेदभाव नहीं किया। महाराजा ने रियासत के सभी मंदिरों के दरवाजे तथाकथित अछूत जातियों के लिए भी खोल दिए थे और प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया था। उच्च शिक्षा के लिए भी उन्होंने महाविद्यालयों की स्थापना की। शायद यही कारण था, जब दूसरी रियासतों में वहाँ के शासकों के खिलाफ प्रजा मंडल आंदोलन चल रहे थे तो जम्मू-कश्मीर में शांति थी। लेकिन अपने इन्हीं गुणों के कारण हरि सिंह अंग्रेज शासकों की आँखों में खटकने लगे थे। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें सन् 1930 के कालखंड में लंदन में हुए प्रथम गोलमेज सम्मेलन में भारतीय रियासती राजाओं के नरेंद्र मंडल के अध्यक्ष के तौर पर आमंत्रित किया था। अंग्रेज सरकार को शायद आशा रही होगी कि वे कम-से-कम देश की स्वतंत्रता के विषय में बात नहीं करेंगे और अपने अधिकारों तक ही सीमित रहेंगे। परंतु उन्होंने स्पष्ट कहा कि हम सभी नरेश भारतीय होने के नाते और अपनी मातृभूमि के प्रति निष्ठा के कारण अपने सभी देशवासियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़े हैं और ब्रिटिश कॉमनवैल्थ में भारत के लिए सम्मानजनक व बराबरी का स्थान चाहते हैं। तभी से वे गोरे शासकों की आँख की किरकिरी बन गए। हरि सिंह ने ब्रिटिश सरकार के रेजिडेंट को कभी रियासत के मामलों में ज्यादा प्रभावी नहीं होने दिया और न ही उन्होंने वहाँ अंग्रेजों को स्थायी रूप से बसने को प्रोत्साहित किया। देश में चल रहे स्वतंत्रता आंदोलन का प्रभाव रियासतों में भी पड़ रहा था। जम्मू-कश्मीर के महाराजा हरि सिंह स्वयं अंग्रेज-विरोधी और भारतीय स्वतंत्रता के पक्षधर थे, इसलिए रियासत में राजनैतिक चेतना का स्तर भी ऊँचा था। अंग्रेज सरकार का महाराजा हरिसिंह पर विश्वास समाप्त हो रहा था। अंग्रेज सीमा पर रूस के बढ़ते प्रभाव से भी चिंतित थे। इसलिए महाराजा पर दबाव डालकर सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण गिलगित को भी अपने नियंत्रण में लेना चाहते थे। वे रियासत के प्रशासन में अपनी भूमिका भी बढ़ाना चाहते थे, क्योंकि वे अब महाराजा की अंग्रेज विरोधी नीति से परिचित हो गए थे।

2.2. मुसलिम कॉन्फ्रेंरस का उदय

सन् 1930 में देश भर में नमक सत्याग्रह प्रारंभ करने पर जब महात्मा गांधी को गिरफ्तार किया गया तो पूरी जम्मू-कश्मीर रियासत में उनकी गिरफ्तारी की खबर की स्वत: स्फूर्त प्रतिक्रिया हुई। जम्मू, श्रीनगर व अन्य नगरों में हड़ताल रही। ''श्रीनगर में प्रदर्शनकारियों ने ब्रिटिश-विरोधी नारे लगाते हुए शहर के प्रमुख रास्तों पर जुलूस निकाला और बीच चौराहे विदेशी कपड़ों की होली जलाई।'' [45] जाहिर है ब्रिटिश सरकार इस साम्राज्य-विरोधी भावना से सतर्क हुई और उसने देश के अन्य हिस्सों की तरह रियासत में भी हिंदू-मुसलिम समुदाय में दरार डालकर

सांप्रदायिकता की विष-बेल बोने की तैयारी कर ली। राज्य के एक अंग्रेज मंत्री पहले ही श्रीनगर में मुसलिम रीडिंग रूम को प्रोत्साहित कर रहे थे, जो सही अर्थों में अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय की पूर्व छात्र परिषद् ही थी। इसी माहौल में अलीगढ़ से पढ़कर आए शेख अब्दुल्ला शहर की मसजिदों में भड़काऊ भाषण दिया करते थे। उन्हीं दिनों श्रीनगर में किसी अंग्रेज अफसर के रसोइए अब्दुल कादिर ने आग लगानेवाला भाषण दिया, जिससे सांप्रदायिक सद्भावना को पलीता लग सकता था। दरअसल उसने पलीता लगा ही दिया था। कादिर को बंदी बना लिया गया। उसकी रिहाई को लेकर श्रीनगर का मुसलिम समाज सड़कों पर उतर आया और पुलिस को गोली चलानी पड़ी। यह घटना 13 जुलाई, 1931 की है। इस गोली कांड में 21 लोगों की मौत हो गई। शहर में मुसलमान दंगाइयों ने हिंदुओं की दुकानें जमकर लूटीं और तीन हिंदुओं की हत्या भी कर दी। लेकिन जेल से छूटने के बाद अब्दुल कादिर और उसका अंग्रेज मालिक कश्मीर से गायब हो गए। वे कहाँ से आए थे और क्यों आए थे और कौन थे, यह रहस्य ही बना रहा। लेकिन इस कांड ने रियासत में पहले राजनैतिक दल मुसलिम कॉन्फ्रेंस की स्थापना की नींव डाल दी। अक्तूबर्1932 में राज्य में विधिवत् मुसलिम कॉन्फ्रेंस की स्थापना की घोषणा की गई। शेख मोहम्मद अब्दुल्ला इसके अध्यक्ष बने। ऐसा माना जाता है कि रियासत के पहले राजनैतिक दल मुसलिम कॉन्फ्रेंस की स्थापना में परोक्ष रूप से किसी-न-किसी रूप में ब्रिटिश शक्ति का भी योगदान रहा है।

मुसलिम कॉन्फ्रेंस का आंदोलन रियासत के कश्मीर संभाग से जम्मू के डोगरों के राज्य को हटाना था। इस मुसलिम कॉन्फ्रेंस का नारा था—'डोगरो कश्मीर छोड़ो'। इसे संयोग ही कहना होगा कि रियासत के राजा महाराजा हरि सिंह भी डोगरा ही थे। इसलिए जब कश्मीरी मुसलमानों ने डोगरों के खिलाफ युद्धघोष किया तो जम्मू के डोगरे भावात्मक रूप से महाराजा के साथ अपनी पहचान जोड़ने लगे। जबकि महाराजा के शासन का स्वरूप पाँचों खंडों के लिए उन्नीस-इक्कीस के फर्क से एक जैसा ही था। लेकिन कारण जो भी हो, अपने प्रारंभिक दौर में राज्य के सबसे पहले और एकमात्र राजनैतिक दल ने अपनी लड़ाई मुसलिम समाज को आधार बनाकर उसी के लिए शुरू की थी। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि कश्मीर घाटी की अधिकांश जनसंख्या मुसलमान ही थी, अत: उनकी समस्याएँ ही प्रकारांतर से कश्मीर की समस्याएँ थीं।

2.3. मुसलिम कॉन्फ्रेंरस में फूट

जल्दी ही मुसलिम कॉन्फ्रेंस के भीतर श्रीनगर के मीरवाइज घराने और शेख अब्दुल्ला में वर्चस्व की लड़ाई शुरू हो गई। यह लड़ाई लंबे अरसे तक कश्मीर में शेर-बकरे की लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध रही। मीरवाइज घराना परंपरा से कश्मीर के सुन्नी मुसलमानों में सम्मानजनक स्थान रखता था। नए बने मीरवाइज यूसुफ शाह भी युवा थे और उत्तर प्रदेश के देवबंद के इसलामी विश्वविद्यालय से पढ़कर लौटे थे। उधर शेख भी अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय के परास्नातक थे। विचारों की लड़ाई भी थी और अहं भी टकराता था। दोनों गुटों में धीरे-धीरे दरार बढ़ने लगी। लेकिन इन्हीं दिनों शेख अब्दुल्ला साम्यवादियों और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता पं. जवाहरलाल नेहरू के संपर्क में आए। साम्यवादियों को रियासत में अपनी भावी योजनाएँ दिखाई देने लगीं, क्योंकि रियासत की सीमाएँ रूस और चीन के साथ लगती थीं। इसलिए वे शेख अब्दुल्ला के साथ मिल गए। नेहरू भी उन दिनों कांग्रेस में समाजवादियों के प्रिय थे। इन संपर्कों ने शेख अब्दुल्ला को रियासत के भीतर और बाहर राजनीति का एक व्यापक फलक प्रदान किया।

सन् 1938 तक आते-आते यह फूट बहुत बढ़ गई। मुसलिम कॉन्फ्रेंस के चतुर्थ वार्षिक सम्मेलन में 28 मार्च, 1938 को शेख ने कहा, ''राजनैतिक समस्याओं की बात करते समय हमें मुसलिम और गैर-मुसलिम के भाव से सोचना

छोड़कर सांप्रदायिकता को समाप्त करना चाहिए। द्वितीय, संयुक्त मतदाता के आधार पर समान मताधिकार मिलना चाहिए। इन दोनों के बिना लोकतंत्र निर्जीव हो जाएगा।'' शेख के इस भाषण से ही संकेत मिल रहा था कि इन लोगों का मुसलिम कॉन्फ्रेंस में रह पाना संभव नहीं होगा। मुसलिम कॉन्फ्रेंस में फूट सामने आ गई।

2.4. नेशनल कॉन्फ्रेंरस की स्थापना

शेख के नेतृत्ववाले गुट ने अपने दल का नाम 'जम्मू-कश्मीर नेशनल कॉन्फ्रेंस' कर लिया। नेहरू के संपर्कों से शेख अब्दुल्ला देशभर में रियासतों में चल रहे प्रजा मंडलों से जुड़ गए। देश के दूसरे हिस्सों में नेशनल कॉन्फ्रेंस को जम्मू-कश्मीर रियासत में प्रजा मंडल का पर्याय ही मान लिया गया।

ज्यों-ज्यों यह स्पष्ट होने लगा कि अंग्रेज भारत से जानेवाले हैं त्यों-त्यों रियासतों में भावी शासन का स्वरूप कैसा होगा, इसको लेकर रियासतों के लोगों के मन में आशंकाएँ घिरने लगीं। रियासतों में भी लोकतांत्रिक प्रणाली की स्थापना हो, इसको लेकर रियासतों में हलचल होने लगी। शेख अब्दुल्ला की नेशनल कॉन्फ्रेंस ने भी सही समय देखकर वर्ष 1946 में 'कश्मीर छोड़ो' का आंदोलन छेड़ दिया। रियासत की सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया।

2.5. जम्मू में राजनैतिक दल का अभाव

नेशनल कॉन्फ्रेंस का जम्मू में कोई विशेष आधार नहीं था और न ही लद्दाख से उसका कोई संबंध था। वास्तव में कॉन्फ्रेंस का अपना इस प्रकार का कोई दावा भी नहीं था। उसकी राजनीति कश्मीर घाटी तक ही सीमित थी। यह ठीक है कि जब नेशनल कॉन्फ्रेंस ने कश्मीर में राजशाही के खिलाफ आंदोलन प्रारंभ किया तो शुरू में जम्मू क्षेत्र के कुछ लोग भी उसके साथ थे और वे इस पार्टी में शामिल भी हुए। परंतु धीरे-धीरे जब नेशनल कॉन्फ्रेंस का यह आंदोलन महाराजा हरि सिंह का विरोध करते-करते डोगरों के विरोध की ओर चल पड़ा तो जम्मू क्षेत्र के गिने-चुने लोग भी इस आंदोलन से हाथ खींचने लगे। जम्मू में किसी राजनैतिक आंदोलन अथवा राजनैतिक दल का अभाव ही ऐसा कारण था कि 26 अक्तूबर, 1947 को जब रियासत का भारत में अधिमिलन हुआ तो शेख अब्दुल्ला को पूरी रियासत का आपात प्रशासक बना दिया गया। ऐसी कल्पना शायद शेख ने खुद भी नहीं की थी।

इससे जम्मू एवं लद्दाख में एक नई स्थिति पैदा हो गई। शेख की राजनीति का आधार ही जम्मू की खिलाफत पर टिका हुआ था। शेख महाराजा हरि सिंह को जम्मू और डोगरों का प्रतिनिधि मान रहा था, इसलिए 1946 में उसने रियासत में राजशाही खत्म करने की माँग के साथ डोगरों के कश्मीर छोड़ने तक की माँग भी करनी शुरू कर दी थी। कश्मीर से डोगरा राज हटना चाहिए, ताकि घाटी में लोकतांत्रिक व्यवस्था कायम हो सके तथा शेष रियासत में महाराजा हरि सिंह का राज रहता है, इससे उसे कुछ लेना-देना नहीं था। यही कारण था कि शेख अब्दुल्ला और उसकी नेशनल कॉन्फ्रेंस सन् 1846 की अमृतसर संधि समाप्त करने की माँग कर रही थी। ईस्ट इंडिया कंपनी और जम्मू के महाराजा गुलाब सिंह के बीच हुई अमृतसर की इस संधि ने ही जम्मू के राजा को कश्मीर का भी महाराजा बनाया था और इसी संधि को खारिज करने के लिए शेख का आंदोलन टिका हुआ था। शेख कश्मीर घाटी में अपनी पार्टी नेशनल कॉन्फ्रेंस की सरकार कायम करना चाहते थे। जम्मू या लद्दाख का उनके आंदोलन से कुछ लेना-देना नहीं था।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि जब कश्मीर घाटी में राजनैतिक उछल-पुथल जोरों पर थी तो जम्मू में राजनैतिक तौर पर सन्नाटा था। राजनैतिक शून्यता व्याप्त थी। इसी शून्यता ने शेख को जम्मू और लद्दाख की सत्ता भी सौंप दी थी। जम्मू नरेश को कश्मीर की सत्ता 1846 की अमृतसर संधि से मिली थी और अब कश्मीर के

शेख अब्दुल्ला को जम्मू व लद्दाख दोनों की ही सत्ता बिना किसी प्रयास के कारण मिल गई थी। इसके लिए कोई शब्द गढ़ना ही हो तो कहा जा सकता है कि 1947 की नेहरू-शेख संधि के कारण मिल रही थी। इतिहास का एक पूरा चक्र घूम चुका था।

वैसे तो जम्मू संभाग में डोगरा सभा और हिंदू सभा नाम की संस्थाएँ थीं, लेकिन इनका सामान्य जनता से कोई संबंध नहीं था। ये जन-प्रतिनिधि संस्थाएँ न होकर मात्र दरबारी संस्थाएँ थीं। दरबारी संस्थाओं की जैसी मानसिकता होती है वैसी ही इनकी थी। दरबारी लोग शासक बदलने पर नए शासक के प्रति भी व्यक्तिगत वफादारी की उसी प्रकार कसमें खा लेते हैं, जिस प्रकार उन्होंने पूर्ववर्ती शासक के सम्मुख खाई थीं। डोगरा सभा और हिंदू सभा के लोग नए शासक शेख अब्दुल्ला के दरबार में शासकीय पद मिलने की आशा में मौन बैठे थे। लेकिन इधर रियासत के भारत में अधिमिलन और नेशनल कॉन्फ्रेंस को पूरी रियासत की सत्ता सौंप दिए जाने के कारण जम्मू के लोगों में तो किसी राजनैतिक दल के गठन की सुगबुगाहट शुरू हो ही गई थी। परंतु डोगरा सभा और हिंदू सभा से संबंधित नेताओं ने (किसी राजनैतिक दल के गठन के प्रति) हिचकिचाहट दिखाई। उनका कहना था कि शेख अब्दुल्ला को सत्ता पं. नेहरू ने दी है। जम्मू के लोगों द्वारा नेशनल कॉन्फ्रेंस के मुकाबले अपना अलग राजनैतिक दल बनाने से शेख अब्दुल्ला तो अप्रसन्न होंगे ही, पं. नेहरू भी इसे पसंद नहीं करेंगे। इस समय पं. नेहरू को अप्रसन्न करना ठीक नहीं होगा। शेख अब्दुल्ला जब अपना मंत्रिमंडल बनाएँगे तो उसे जम्मू से भी कुछ लोग तो लेने ही होंगे। यहाँ नेशनल कॉन्फ्रेंस तो है नहीं, इसलिए उसे जम्मू के नेताओं में से ही कुछ को लेना होगा। इसलिए ऐसा कुछ करना, जिससे मंत्रिमंडल में शामिल होने का रास्ता बंद हो जाए, ठीक नहीं होगा।3 जाहिर है, जम्मू संभाग के परंपरागत दरबारी अभी भी आम जनता के सुख-दु:ख में भागीदार बनने की बजाय दरबारी तरीके से ही सत्ता में भागीदारी की योजनाएँ बना रहे थे। जबकि लोकतंत्र में सत्ता का रास्ता जन-संघर्ष में से ही निकलता है, शेख इसे अरसा पहले समझ चुके थे। शेख अब्दुल्ला ने इसे स्वीकार करते हुए इसका उल्लेख भी किया। 5 मार्च, 1948 को मुझे राज्य के सबसे बड़े राजनैतिक दल का नेता होने के कारण ही प्रदेश की सरकार सँभालने के लिए कहा गया।[46] शेख अब्दुल्ला और उनकी नेशनल कॉन्फ्रेंस ने कश्मीर में राजशाही के खिलाफ कुछ वर्ष संघर्ष किया था। चाहे किन्हीं कारणों से भी सही, अंतत: नेशनल कॉन्फ्रेंस का संघर्ष सफल हुआ और कश्मीर में कश्मीरियों का शासन स्थापित हो गया। लेकिन जो स्थिति कुछ समय पहले तक कश्मीर घाटी की थी, वही अब लद्दाख व जम्मू की हो गई थी। लेकिन जम्मू व लद्दाख के लोग इसलिए आश्वस्त थे कि अब सारे देश में लोकतांत्रिक सरकार की स्थापना हो रही है तो उन्हें भी यह अधिकार मिलेगा ही। फिर, शेख अब्दुल्ला तो स्वयं कश्मीरियों के लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए निरंतर संघर्ष करते रहे हैं। वे वही अधिकार अब जम्मू व लद्दाख के लोगों को देने से कैसे मना कर सकते हैं? परंतु इतना तो स्पष्ट था कि लोकतंत्र में शासन का रास्ता राजनैतिक दलों में से ही निकलता है। दरबारी संस्थाएँ चाहे चुप रहीं, लेकिन जम्मू संभाग के लोग अब पुरानी भूल की भरपाई करने की कोशिश कर रहे थे। पूरे देश में लोकतंत्र की बयार बह रही थी, जिसका अनुभव जम्मू के लोग भी कर रहे थे। ऐसे वातावरण में प्रदेश में एक ऐसे राजनैतिक दल की स्थापना का अनुकूल वातावरण था, जो सचमुच जन-आकांक्षाओं का प्रतिनिधि हो। जम्मू में कोई राजनैतिक दल चाहे नहीं था, लेकिन पूरे क्षेत्र में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की संरचना विद्यमान थी। उसकी सहायता से इस राजनैतिक शून्य को भरा जा सकता था।

2.6. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की आधारभूत संरचना

जम्मू-कश्मीर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्य वर्ष 1940 में शुरू हुआ था। महाराष्ट्र से माधवराव मुल्ये पंजाब में संघ के प्रचारक बनकर आए थे। संघ की पंजाब प्रांत की अवधारणा में उन दिनों अविभाजित पंजाब, उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत और जम्मू-कश्मीर रियासत शामिल थी। पश्चिमी पंजाब के स्यालकोट नगर से उस समय के वहाँ के प्रचारक के.डी. जोशी ने रवींद्र वर्मा को रियासत के निकटस्थ नगर जम्मू में संघ की शाखा स्थापित करने की संभावनाओं का पता लगाने के लिए भेजा। यह वर्ष 1939 के अंतिम दिनों की बात है। जम्मू में बलराज मधोक के सहयोग से 1940 में पहली शाखा स्थापित हुई। 1940 में ही जम्मू में जगदीश अबरोल पहले विभाग प्रचारक बनकर आए। नवंबर 1941 में संघ द्वारा जम्मू में आयोजित विजय दशमी महोत्सव में उस समय के अखिल भारतीय बौद्धिक प्रमुख बाबा साहिब आप्टे आए थे और इस कार्यक्रम की अध्यक्षता पं. प्रेमनाथ डोगरा[47] ने की थी।[48] इसी कार्यक्रम में डोगरा पहली बार संघ के संपर्क में आए थे। उस समय के प्रांत प्रचारक माधवराव मुल्ये के आग्रह पर डोगरा ने जम्मू के कार्य का नेतृत्व ग्रहण किया।[49] उन्हें जम्मू के विभाग संघचालक का दायित्व दिया गया। इसी समय देवेंद्र शास्त्री रियासी और चमन स्वरूप कठुआ में प्रचारक के नाते गए। 1942 में जगदीश अबरोल सरगोधा चले गए और जम्मू में प्रो. बलराज मधोक प्रचारक के नाते काम करने लगे। लेकिन वे अगस्त 1943 तक ही यहाँ रहे, बाद में उनके स्थान पर जगदीश अबरोल पुन: जम्मू आ गए और 1948 तक वहाँ रहे। 1944 में श्रीनगर में डी.ए.वी. कॉलेज खुला। प्रो. मधोक वहाँ इतिहास विभाग में नियुक्त हुए। उन्होंने कश्मीर घाटी में संघ कार्य शुरू कर दिया था। कश्मीर में माखनलाल ऐमा, अवतार कृष्ण काक व ओंकार नाथ काक प्रचारक के नाते काम कर रहे थे। इसी बीच 1946 में भगवत स्वरूप जम्मू में पंजाब से प्रचारक के नाते आ गए थे।

सन् 1940 से लेकर 1947 तक के वर्षों में रियासत के जम्मू संभाग में संघ ने गहरी पैठ बना ली थी। 1942 में मध्य प्रदेश के खंडवा में संघ का एक मासीय शिक्षा वर्ग लगा तो उसमें जम्मू संभाग के 20 स्वयंसेवकों ने भाग लिया था। 1945 के आते-आते जम्मू संभाग के प्रत्येक नगर व बड़े गाँव में संघ की शाखा लगती थी। 1947 में जम्मू नगर के अतिरिक्त जम्मू संभाग में संघ की 60 शाखाएँ लगती थीं। बलराज मधोक के प्रयत्नों से श्रीनगर, अनंतनाग व बारामूला में भी संघ कार्य शुरू हो चुका था। यह संघ कार्य का विस्तार ही था कि 1946 में रियासत के तत्कालीन दीवान रामचंद्र काक ने विभाग प्रचारक जगदीश अबरोल को बुलाकर संघ के बारे में जानकारी ली। 1947 के अंतिम दिनों में भारत सरकार के प्रतिनिधि कुँवर दिलीप सिंह ने विभाग संघचालक प्रेमनाथ डोगरा को आमंत्रित किया और उनसे रियासत की स्थिति के बारे में विस्तृत चर्चा की। रियासत के भारत में अधिमिलन में संघ ने भी यथाशक्ति योगदान दिया था। संघ ने पं. प्रेमनाथ डोगरा की अध्यक्षता में 1947-1948 में पुरुषार्थी सहायता समिति गठित की, जिसने जम्मू से लेकर लखनपुर तक पश्चिमी पंजाब से आनेवाले शरणार्थियों के लिए शरणार्थी राहत शिविर खोले। रियासत में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की इस सशक्त आधारभूमि के कारण राज्य में नए राजनैतिक दल की स्थापना में ज्यादा समय नहीं लगा।

2.7. प्रजा परिषद् की स्थापना

प्रो. बलराज मधोक 7 नवंबर, 1947 की शाम को श्रीनगर से बचकर जम्मू पहुँचे। उन्होंने आते ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अधिकारियों एवं अन्य प्रमुख लोगों से राज्य में एक राजनैतिक दल स्थापित करने के लिए विचार-विमर्श करना शुरू कर दिया। 16 नवंबर को पं. प्रेमनाथ डोगरा के घर प्रदेश के प्रमुख लोगों की बैठक हुई।

इस बैठक में अन्य लोगों के अलावा माधवराव मुल्ये, जगदीश अबरोल, दुर्गादास वर्मा, प्रो. बलराज मधोक, केदारनाथ साहनी, श्यामलाल शर्मा, भगवत स्वरूप, ओम प्रकाश मैंगी, सहदेव सिंह, हंसराज शर्मा भी शामिल थे। बैठक में राज्य में एक नए राजनैतिक दल की स्थापना का निर्णय लिया गया। नए राजनैतिक दल का नाम जम्मू-कश्मीर प्रजा परिषद् तय किया गया। सभी का आग्रह था कि पं. प्रेमनाथ डोगरा इस नए राजनैतिक दल का अध्यक्ष पद सँभालें; लेकिन वे उस समय राज्य में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विभाग संघचालक थे, इसलिए किसी राजनैतिक दल में शामिल नहीं हो सकते थे। इस कारण उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की। ''हरि वजीर को पार्टी का अध्यक्ष बनाया गया। हंस राज पंगोत्रा को नए दल का महासचिव और ठाकुर सहदेव सिंह को सह सचिव बनाया गया। बलराज मधोक को संगठन सचिव का दायित्व दिया गया।'' [50] 17 नवंबर, 1947 को जम्मू में प्रो. बलराज मधोक ने सार्वजनिक रूप से नए राजनैतिक दल की स्थापना की घोषणा की। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्कालीन प्रांत प्रचारक माधव राव मुल्ये, जिनका बैठक में मार्गदर्शन प्राप्त हुआ था, ने बताया कि विभाग संघचालक पं. प्रेमनाथ डोगरा और विभाग प्रचारक भगवत स्वरूप प्रजा परिषद् के मार्ग दर्शक होंगे और उस समय जम्मू-कश्मीर में कार्यरत संघ के सभी प्रचारक और कार्यकर्ता अब प्रजा परिषद् के काम में सहयोग करेंगे।[51] जाहिर है, प्रजा परिषद् को स्थापना काल में ही पूरे प्रदेश में काम करने लिए लगभग 30 लोगों की ऐसी टीम मिल गई, जो पूरी निष्ठा और निस्स्वार्थ भाव से इस राजनैतिक दल को एक जनांदोलन बनाने में सक्रिय हो गई।

2.7.1 प्रजा परिषद् का घोषणा-पत्र

स्थापना के तुरंत बाद परिषद् ने अपना घोषणा-पत्र जारी किया। उसके अनुसार—शेख अब्दुल्ला का सारा राजनैतिक आंदोलन कश्मीर घाटी की जनता के नाम पर वहाँ की राजसत्ता प्राप्त करने के लिए था। इसके द्वारा 1946 में चलाए गए कश्मीर छोड़ो आंदोलन का मुख्य उद्देश्य भी कश्मीर घाटी को जम्मू से अलग करना और जम्मू-कश्मीर के साँझे राज्य शासन को खत्म करना था। इसलिए उसे और उसकी पार्टी को कश्मीर घाटी की सत्ता सौंपना समझ में आता है। परंतु उसे कश्मीर घाटी के साथ साथ जम्मू और लद्दाख का भी शासक बना देना ऐतिहासिक, व्यावहारिक और लोकतंत्र की दृष्टि से सरासर अनुचित था।[52]

घोषणा-पत्र में प्रजा परिषद् के भावी लक्ष्य भी स्पष्ट किए गए।

1. जम्मू-कश्मीर राज्य को भारत के एक अभिन्न अंग के रूप में भारत गणराज्य के अन्य राज्यों के समक्ष लाना और इस पर भारत के संविधान को, जो उस समय बनाया जा रहा था, पूरी तरह लागू करवाना।
2. जम्मू-कश्मीर राज्य का जो भाग पाकिस्तान ने बलपूर्वक अपने कब्जे में ले लिया है, वहाँ से उसे खदेड़ने के काम में भारत सरकार और सेना को हर प्रकार का सहयोग देना।
3. जम्मू-कश्मीर राज्य के अंतर्गत जम्मू और लद्दाख को प्रशासन व विकास में समान स्थान दिलाना।
4. इन क्षेत्रों की भौगोलिक सीमाओं की रक्षा करना और उनमें राजनैतिक व सांप्रदायिक कारणों से फेर-बदल को रोकना।
5. सारे राज्य के सम्यक् आर्थिक विकास के लिए ऐसी आर्थिक नीति अपनाना, जिसमें पिछड़े इलाकों और वर्गों की ओर विशेष ध्यान दिया जाए।
6. छुआछात का उन्मूलन करके हरिजन बंधुओं और शेष समाज में एकता, बराबरी और सद्भावना का वातावरण

पैदा करना।
7. पाकिस्तान और रियासत के पाकिस्तान अधिकृत क्षेत्रों से आए हुए शरणार्थियों के रियासत में पुनर्वास के लिए भरसक प्रयत्न करना।
8. अवकाश प्राप्त सैनिकों के पुनर्वास की ओर विशेष ध्यान देना।
9. कृषि के विकास की ओर विशेष ध्यान देना और जम्मू क्षेत्र में बहनेवाली नदियों रावी, चिनाव इत्यादि के पानी से जम्मू के सूखाग्रस्त कंडी क्षेत्र में सिंचाई का प्रबंध करना और पनबिजली उत्पादन की ओर विशेष ध्यान देना।
10. जम्मू क्षेत्र के रमणीय स्थानों यथा—कुद, बटोत, सनासर, पतनीटाप, भद्रवाह, किश्तवाड़, बनिहाल का पर्यटन की दृष्टि से विकास करना।[53]

2.7.2 प्रजा परिषद् का संविधान

पार्टी की सबसे छोटी इकाई स्थानीय समिति थी। किसी भी गाँव में कम-से-कम 25 सदस्य होने पर इस समिति का गठन किया जाता था। 18 वर्ष या इससे ज्यादा उम्र का कोई भी व्यक्ति, जो पार्टी के उद्देश्यों में आस्था रखता हो, चार आना वार्षिक सदस्यता शुल्क देकर पार्टी का सदस्य बन सकता था।[54] स्थानीय समिति के तीन पदाधिकारी प्रधान, सचिव और कोषाध्यक्ष साधारण सदस्यों द्वारा चुने जाते थे।[55] स्थानीय समिति से अगली इकाई मंडल समिति थी। सोलह स्थानीय समितियों के ऊपर एक मंडल समिति का गठन किया जाता था। स्थानीय समितियों के सदस्य मंडल प्रधान का चुनाव करते थे। प्रधान अपनी कार्यकारिणी का गठन करता था, जिसमें एक सचिव और कोषाध्यक्ष के अलावा छह सदस्य होते थे।[56] मंडल समिति से ऊपर तहसील समिति होती थी। एक तहसील में जितनी मंडल समितियाँ गठित हो चुकी हों, उन सभी की कार्यकारिणी के सदस्य तहसील समिति के लिए एक प्रधान, कम-से-कम दो उपप्रधान, एक कोषाध्यक्ष और नौ कार्यकारिणी के सदस्य चुनते थे। पार्टी की साधारण परिषद् के लिए प्रत्येक तहसील परिषद् से दो प्रतिनिधि भी चुने जाते थे। इसी प्रकार संगठन मंत्री का मनोनयन भी किया जाता था।[57] तहसील समिति से ऊपर जिला समिति थी, जिसका गठन जिले में गठित तहसील समितियों की कार्यकारिणी के सदस्य, जिला समिति के लिए प्रधान, सचिव और संगठन सचिव का चुनाव करके करती थीं। प्रधान सचिव व संगठन सचिव की सलाह से जिला समिति की पंद्रह सदस्यीय कार्यकारिणी का मनोनयन करता था।[58] पार्टी संगठन के हिसाब से जम्मू नगर और श्रीनगर को अलग जिला मानती थी। जिला समिति से आगे संभाग समिति थी। पार्टी ने पूरे राज्य में जम्मू, कश्मीर घाटी और लद्दाख तीन संभाग समितियों का गठन किया हुआ था।[59] लेकिन प्रजा परिषद् का मुख्य आधार जम्मू संभाग में ही था।

पार्टी के प्रधान का चुनाव साधारण परिषद् के सदस्य करते थे।[60] साधारण परिषद् में प्रत्येक तहसील समिति द्वारा साधारण परिषद् के लिए चुने गए दो-दो सदस्यों के अलावा तहसील व जिला समितियों के प्रधान, सचिव व संगठन सचिव सदस्य होते थे। जो अन्य संगठन प्रजा परिषद् से जुड़े थे, उनमें से प्रत्येक संगठन के पाँच प्रतिनिधि साधारण परिषद् के सदस्य थे।[61] पार्टी की सबसे बड़ी निकाय उसकी केंद्रीय समिति थी। इसमें प्रधान के

अतिरिक्त 20 सदस्य होते थे। प्रधान इन सदस्यों का मनोनयन साधारण परिषद् के सदस्यों में से करता था।[62] प्रजा परिषद् ने अपने संविधान में प्रधान के अतिरिक्त दूसरे मुख्य पद का नाम प्रधानमंत्री निश्चित किया। यह शायद शेख अब्दुल्ला द्वारा स्वयं को राज्य का प्रधानमंत्री कहने के कारण किया गया होगा। संविधान की धारा 17 के अनुसार, ''प्रधानमंत्री प्रजा परिषद् के संगठन का प्रमुख अधिकारी होगा। वह प्रधान और कार्यकारिणी समिति के आदेशानुसार प्रजा परिषद् की संगठन नीति और कार्यक्रम को चलाने का उत्तरदायी होगा। प्रजा परिषद् की नीति के संबंध में किसी प्रकार का बयान देने का अधिकार प्रधान के अतिरिक्त केवल प्रधानमंत्री को ही होगा।'' [63]

2.8. प्रजा परिषद् शिष्टमंडल की नेहरू से भेंट

यह प्रजा परिषद् की संगठन गाथा है। लेकिन प्रजा परिषद् की पहचान और उसकी प्रसिद्धि का कारण उसकी कर्म गाथा बनी। कबाइली हमले के भेष में पाकिस्तान की सेना ने जम्मू संभाग के सीमांत क्षेत्रों पर अपना दबाव बनाया हुआ था। कश्मीर घाटी में पाक सेना पिट चुकी थी। अब उसकी रणनीति जम्मू क्षेत्र के कुछ भाग को हस्तगत कर लेने की थी। जम्मू के मीरपुर, कोटली, भिंबर, पुंछ इत्यादि क्षेत्र पंजाबी-भाषी थे। इन क्षेत्रों में मुसलिम लीग का भी कुछ प्रभाव था। पश्चिमी पंजाब क्योंकि पाकिस्तान के हिस्से में आ गया था, अत: वहाँ से भी हजारों हिंदू सिक्ख शरणार्थी इन क्षेत्रों में टिके हुए थे। पाकिस्तानी सेना का दबाव अब इन्हीं क्षेत्रों पर था। मीरपुर खास तौर पर खतरे में था। वहाँ हजारों हिंदू सिक्खों की जान खतरे में थी। जम्मू-कश्मीर में भारतीय सेना मौजूद थी, लेकिन उसको कहाँ भेजना है, इसका निर्णय लेने का अधिकार उस समय के मुख्य आपात प्रशासक शेख अब्दुल्ला को था।[64] इसलिए 15 नवंबर, 1947 को जम्मू हवाई अड्डे पर प्रो. बलराज मधोक और पं. प्रेमनाथ डोगरा पं. नेहरू को मिले। उन्होंने नेहरू को मीरपुर की स्थिति से अवगत करवाया और वहाँ सेना भेजने की प्रार्थना की। परंतु नेहरू ने शिष्टमंडल को शेख अब्दुल्ला से मिलने के लिए कहा।[65] और मीरपुर में सेना नहीं भेजी गई। जम्मू में आम चर्चा होने लगी कि नेहरू और शेख आक्रमणकारियों से कश्मीर घाटी मुक्त करवाने में तो रुचि ले रहे थे, लेकिन उन्होंने जम्मू के इलाकों को पाकिस्तान के हाथों जाने से रोकने में ज्यादा रुचि नहीं दिखाई। मेहरचंद महाजन ने तो चारों ओर से निराश होकर 2 नवंबर, 1947 को ही नेहरू से अपील की थी कि मीरपुर, कोटली, पुंछ और नौशहरा में घिरी हुई (रियासत की) सेना को बचाया जाए।[66] दरअसल शेख अब्दुल्ला ही उत्सुक नहीं थे कि भारतीय सेना राज्य के पश्चिमी क्षेत्र को पाकिस्तानी टुकड़ियों से आजाद करवा ले। इसका कारण था कि वे पाक द्वारा कब्जा किए रियासती क्षेत्र के लोगों में अपनी लोकप्रियता और स्वीकार्यता के प्रति निश्चित नहीं थे। उनके नेतृत्व और उनकी पार्टी नेशनल कॉन्फ्रेंस को उन क्षेत्रों में अन्य क्षेत्रों की तरह जन-समर्थन प्राप्त नहीं था।[67] इसके छह दिन बाद ही 21 नवंबर को मीरपुर का पतन हो गया। हिंदू गाजर-मूली की तरह काटे गए। अनेक हिंदू स्त्रियों ने अपनी लाज बचाने के लिए आत्महत्या कर ली। 5,000 के लगभग स्त्रियाँ बंदी बनाकर पाकिस्तान ले जाई गईं। केवल कुछ हिंदू ही भागकर जम्मू पहुँच सके। उन्होंने जो करुण कथाएँ सुनाईं, उससे सारे जम्मू में मातम छा गया।[68] भारत के गवर्नर जनरल भी नहीं चाहते थे कि जम्मू संभाग के पश्चिमी पाकिस्तान के साथ लगते इलाके भारत में शामिल हों। इसलिए सेना को इच्छानुसार काम करने की अनुमति नहीं दी जा रही थी। पाकिस्तानी एवं भारतीय सेना

के सेनापति अंग्रेज ही थे। वे ब्रिटिश हितों की पूर्ति हेतु मिलकर काम कर रहे थे। उनकी रणनीति जम्मू के सीमांत क्षेत्र पाकिस्तान के हवाले करने की थी। लेकिन उनके दुर्भाग्य से लॉर्ड माउंटबेटन को अपने एक संबंधी के विवाह में 9 नवंबर को लंदन जाना पड़ा। वहाँ से वे 29 नवंबर को वापस आए। उनकी गैर-हाजिरी में भारतीय सेना ने पाक से जम्मू के कुछ इलाके खाली करवा लिये थे। उन्होंने लंदन से दिल्ली पहुँचते ही नेहरू को चिट्ठी लिखी—''भारत सरकार मीरपुर और पुंछ के लोगों पर सैन्य बल से अपना आधिपत्य थोपना चाहती है। वहाँ के निवासी ज्यादातर मुसलमान हैं, इसलिए उन्हें भारत में शामिल होने के लिए बाध्य करना सर्वाधिक अन्याय होगा।'' [69] जम्मू के इन भागों को वापस लेने में न शेख रुचि रखते थे और न ही भारत के गवर्नर जनरल। नेहरू ने सारी कमान शेख के हाथ में दे रखी थी। महाराजा हरि सिंह के हाथ में अब कुछ बचा नहीं था और उधर आक्रमणकारियों की रणनीति स्पष्ट थी। 'डेली एक्सप्रेस' के संवाददाता सिडनी स्मिथ, जिसका बारामूला में कबाइलियों ने अपहरण कर लिया था, ने लिखा—''सभी कबाइली नेता इस युद्ध के तीन उद्देश्यों से सहमत थे। कश्मीर से सर हरि सिंह की अल्पसंख्यक सरकार खत्म करना, मुख्य सिक्ख रियासत पटियाला को मिट्टी में मिलाना, अमृतसर पर कब्जा करना और यदि हो सके तो एक दिन दिल्ली पहुँचने का प्रयास करना।'' [70] लगता था, जम्मू अनाथ हो गया है। ऐसी स्थिति में प्रजा परिषद् की ओर लोग आशा भरी नजरों से देखने लगे थे। प्रजा परिषद् ने यथाशक्ति, जिस सीमा तक संभव था, भारतीय सेना के साथ सहयोग किया। प्रजा परिषद् का नेशनल कॉन्फ्रेंरस के साथ राजनैतिक धरातल पर वैचारिक भेद अवश्य था, लेकिन उसकी इच्छा थी कि राज्य पर आए इस बाहरी संकट के समय समस्त राजनैतिक दल एकत्रित होकर चलें, ताकि राज्य के लोगों में आक्रमण का सामना करने के लिए उत्साह का संचार हो।

2.9. प्रजा परिषद् के संगठन सचिव का राज्य से निष्कासन

इन परिस्थितियों में प्रजा परिषद् ने निर्णय किया कि दिल्ली जाकर वहाँ प्रमुख लोगों से मिलकर उन्हें राज्य की स्थिति से अवगत करवाया जाए। इस काम के लिए परिषद् के संगठन मंत्री प्रो. बलराज मधोक ने दिल्ली जाने का निर्णय लिया। उन्होंने 29 जनवरी, 1948 को जम्मू से प्रस्थान किया। लेकिन इसके बाद उनके राज्य में वापस आने के रास्ते बंद हो गए। राज्य सरकार ने उनके राज्य में आने पर प्रतिबंध लगा दिया। 30 जनवरी, 1948 को महात्मा गांधी की दुर्भाग्यपूर्ण हत्या के बाद 4 फरवरी, 1948 को भारत सरकार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबंध लगा दिया। इसका प्रभाव जम्मू-कश्मीर पर भी पड़ा। उनके अनुसार, ''मुझे रत्ती भर भी आभास नहीं था कि यह यात्रा जम्मू से मेरी स्थायी विदाई सिद्ध होगी।''

2.10. प्रजा परिषद् का 1948 व 1949 का काल

प्रजा परिषद् का उद्देश्य नेशनल कॉन्फ्रेंस के विरोध में कोई राजनैतिक दल खड़ा करना है, ऐसा कभी नहीं रहा। भारत स्वतंत्र हो गया था। रियासतें भी खत्म हो गई थीं। राजशाही भी समाप्त होने के कगार पर आ गई थी। रियासत के प्रशासन में परिवर्तन हो रहे थे। नया युग लोकतंत्र का था और लोकतंत्र राजनैतिक दलों के माध्यम से ही चलता है। कश्मीर में नेशनल कॉन्फ्रेंस पहले से ही काम कर रहा था। जम्मू में भी आनेवाले समय को देखते हुए राजनैतिक दल होना चाहिए। इसी जरूरत में से प्रजा परिषद् का जन्म हुआ था। नेशनल कॉन्फ्रेंस की अपनी विशिष्ट राजनैतिक विचारधारा थी। जो लोग उस विचारधारा से सहमत नहीं थे, उन्हें भी अलग राजनैतिक दल बनाने का अधिकार है।

केवल अधिकार ही नहीं बल्कि लोकतंत्र की यह अनिवार्यता भी है। यदि दूसरा कोई राजनैतिक दल न हो तो एक दल का अधिनायकवाद ही लोकतंत्र के नाम पर स्थापित हो जाता है। विचारधारा अलग भी हो, फिर भी राज्य के कुछ साँझे हित होते हैं। उन हितों के प्रश्न पर प्राय: सभी राजनैतिक दल मिल-जुलकर काम कर सकते हैं। प्रजा परिषद् ने नेशनल कॉन्फ्रेंस के साथ मिलकर राज्य के साँझे हितों के लिए काम करने का बहुत प्रयास किया। जाहिर है, राज्य पर संकट की उस घड़ी में प्रजा परिषद् शेख प्रशासन के साथ सहयोग करने की मानसिकता में थी और उसने इसके लिए सहयोग का हाथ बढ़ाया भी।

इसलिए सत्ता प्राप्त करने के बाद नवंबर में जब शेख अब्दुल्ला जम्मू आए तो प्रजा परिषद् ने उनका विरोध नहीं किया बल्कि स्वागत ही किया। ''शेख ने अपने भाषण से लगभग सभी को सम्मोहित कर दिया। सांप्रदायिक शांति के लिए उन्होंने हिंदू धर्म, भगवान् कृष्ण और महात्मा गांधी को उद्धृत किया।'' [71] दरअसल शेख प्रजा परिषद् के सहयोग के आश्वासन पर ही जम्मू आ पाए थे। बाद में प्रेमनाथ डोगरा ने कहा भी कि ''अब्दुल्ला तब तक जम्मू में दाखिल नहीं हो सके जब तक (मैंने) उन्हें समर्थन का भरोसा नहीं दिय।'' [72] ''प्रजा परिषद् के इस व्यवहार से स्वत: सिद्ध होता है कि वह संकीर्ण सत्ता-स्वार्थ के लिए कार्य नहीं कर रही थी बल्कि उसकी प्राथमिकता व्यापक राष्ट्रीय हित थे। जम्मू-कश्मीर के नामी पत्रकार मुल्कराज सर्राफ के शब्दों में, ''प्रेमनाथ डोगरा का देश-प्यार इसी से प्रकट होता है कि सन् 1947 में जब अपने प्रदेश में लोक-लाज की स्थापना हुई तो पंडितजी ने सरकार के मुखिया शेख अब्दुल्ला को पूरा सहयोग दिया। सरकार का काम सुचारु रूप से चलाने के लिए बनाई गई वित्त समिति का अध्यक्ष बनना सहर्ष स्वीकार कर लिया।'' [73] परंतु दुर्भाग्य से शेख अब्दुल्ला बहुत देर तक राष्ट्रीय हितों के इस मार्ग पर चल नहीं पाए।

2.11. प्रजा परिषद् द्वारा स्थिति का विश्लेषण

समय की जरूरत राज्य के सभी वर्गों और संप्रदायों को साथ लेकर चलने की थी, लेकिन शायद शेख अब्दुल्ला और उनकी नेशनल कॉन्फ्रेंरस इस कसौटी पर पूरी नहीं उतर रही थी। परिषद् के अनुसार, ''जैसा कि विदित ही है कि शेख अब्दुल्ला के सत्ता सँभालने से पूर्व जम्मू में नेशनल कॉन्फ्रेंस का नामोनिशान नहीं था। जम्मू में हमलावरों का सामना करने के लिए उत्साहपूर्ण वातावरण बनाने के लिए जरूरी था कि इस क्षेत्र के लोगों का सहयोग प्राप्त किया जाता। लेकिन दुर्भाग्य से अभी तक ऐसा नहीं किया गया है। इसके विपरीत कुछ कट्टर एवं कुख्यात मुसलिम लीग आपात प्रशासन के विश्वासपात्र बन गए हैं। इससे स्वाभाविक ही लोगों में भय एवं निराशा का संचार हुआ है। 26 अक्तूबर, 1947 के बाद लीगी विचारधारा के जो लोग नेशनल कॉन्फ्रेंस में घुस गए हैं, वे पूरी रणनीति से महत्त्वपूर्ण पदों से हिंदू अधिकारियों को हटवा रहे हैं। कुछ उच्च पदों पर जाने-पहचाने लीग समर्थक लोग, उदाहरण के लिए कर्नल अदालत खान और एम.ए. शाहमीरी इत्यादि, नियुक्त कर दिए गए हैं। इसके कारण जम्मू में गतिरोध पैदा हो गया है। संकट की इस घड़ी में जम्मू के सभी साधनों को दुश्मन से लड़ने के लिए प्रयोग करना चाहिए था। लेकिन दुर्भाग्य से सरकार ऐसा नहीं कर रही है। यदि यही स्थिति ज्यादा देर चलती रही तो निश्चय ही इसका जम्मू के भविष्य और प्रकारांतर से पूरे देश के भविष्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

इसका एक ही समाधान है। डोगरों को भी यह लगना चाहिए कि वे अपने घर में स्वयं अपने भाग्य-विधाता हैं, ताकि राज्य पर हुए हाल ही के सैनिक व राजनैतिक प्रहारों से उत्पन्न पराजय भाव समाप्त हो सके। यह तभी संभव

है जब राज्य के भीतर ही जम्मू व लद्दाख को स्वायत्तशासी बना दिया जाए। समस्या के समाधान का यही बुद्धिमत्तापूर्ण लोकतांत्रिक रास्ता है। क्योंकि जम्मू व लद्दाख के लोग हर हालत में भारत के साथ रहना चाहते हैं। विश्वास व सहयोग के इस वातावरण में यहाँ के लोग प्रजा परिषद् के नेतृत्व में आक्रमणकारियों से एक-एक इंच भूमि मुक्त करवाने और उन्हें यहाँ से खदेड़ने हेतु संकल्पित होंगे और उनमें शेख अब्दुल्ला के आपात प्रशासन को सहयोग देने का भाव भी पैदा हो सकेगा।'' [74]

शेख बार-बार आरोप लगाने लगे कि जम्मू में मुसलमानों का नर-संहार हुआ है और इसके लिए वे प्रजा परिषद् को दोषी ठहराने लगे। ऐसा आरोप वे वास्तविक स्थिति को जानते हुए भी केवल राजनैतिक कारणों से ही लगा रहे थे। भारत में सत्ता-हस्तांतरण और विभाजन की भूमिका के कारण पश्चिमी पंजाब में हिंदुओं व सिक्खों का कत्ले-आम शुरू हो गया था। प्रो. इश्तियाक अहमद, जो स्वीडन के स्टॉकहोम विश्वविद्यालय में समाज विज्ञान के प्रोफेसर हैं, के अनुसार, ''20 फरवरी, 1947 को ब्रिटिश सरकार द्वारा सत्ता हस्तांतरण की घोषणा के बाद पंजाब में मुख्यमंत्री खिजर टिवना ने घबराकर त्यागपत्र दे दिया। मुलतान, रावलपिंडी, अटक और जेहलम जैसे स्थानों पर हिंदू सिक्खों पर इसी समय हमले शुरू हो गए। पूर्वी पंजाब के मुसलमानों पर तो हमले 17 अगस्त के बाद जब रेडिक्लफ की रपट आई, तब शुरू हुए।'' [75] दरअसल जब जम्मू के सीमावर्ती क्षेत्रों में हिंदू, सिक्खों का कत्लोगारत शुरू हुआ तो वे भागकर जम्मू संभाग के क्षेत्रों में आने लगे। आनेवाले ये शरणार्थी अपने साथ मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा किए गए पाशविक अत्याचारों की कहानियाँ भी लाते थे। इन घटनाओं की प्रतिक्रिया जम्मू संभाग में हुई और अनेक स्थानों से मुसलमान भी निकाले जाने लगे थे। हिंदू-सिक्खों और मुसलमानों पर ये आक्रमण-प्रत्याक्रमण पूरे पंजाब में हो रहे थे। जम्मू भी उससे अछूता नहीं था। शेख अब्दुल्ला जब जम्मू में मुसलमानों की हत्याओं का आरोप बार-बार जम्मू वासियों पर लगाते थे तो वे जान-बूझकर इस पूरी पृष्ठभूमि को भूल जाते थे। धीरे-धीरे शेख प्रशासन के निर्णयों से जम्मू व लद्दाख संभाग के लोग स्वयं को प्रताड़ित अनुभव करने लगे। ऊधमपुर के विभाजन से तो शेख की नीयत पर ही सवाल उठने लगे।

2.12. ऊधमपुर जिले का विभाजन

ऊधमपुर जिला जम्मू प्रांत का जम्मू के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण जिला माना जाता है। यह जिला जनसंख्या के हिसाब से हिंदू बहुल जिला था। शेख अब्दुल्ला ने सत्ता सँभालते ही इस जिले का सांप्रदायिक आधार पर विभाजन कर दिया। सरकार ने जिले के मुसलिम बहुल इलाकों को एकत्रित कर नया डोडा जिला बना दिया। इस नए डोडा जिले के बनने से लद्दाख का शेष क्षेत्र से सीधा संबंध टूट गया और यह भी चर्चा होनी शुरू हो गई कि डोडा को देर-सबेर कश्मीर घाटी में मिला लिया जाएगा। इसी प्रकार हिंदू बहुल रियासी जिला को समाप्त कर दिया गया। उसके कुछ भाग पुंछ जिले और शेष ऊधमपुर जिले में शामिल कर दिए गए। स्वाभाविक ही सत्ता सँभालते ही शेख का जम्मू के प्रति यह सांप्रदायिक व्यवहार जम्मू में असंतोष का कारण बना। इसी प्रकार चैनानी के कुछ हिस्से डोडा में मिला दिए गए। चैनानी शुरू से नेशनल कॉन्फ्रेंस के साथ रहा था, लेकिन उसे भी बख्शा नहीं गया।

प्रजा परिषद् का काम पूरे जम्मू संभाग में तेजी से फैलने लगा। संघ ने प्रदेश भर में जो राष्ट्रीयता का जन-ज्वार पैदा किया था उसका लाभ प्रजा परिषद् को मिलना ही था। संघ के स्वयंसेवकों ने प्रजा परिषद् का संदेश जल्दी ही जम्मू संभाग के कोने-कोने में पहुँचा दिया। प्रो. मधोक के अनुसार, ''प्रजा परिषद् जम्मू के लोगों की हार्दिक इच्छा और

आकांक्षा का प्रतिनिधित्व कर रही थी। इसलिए लोगों ने इसे बहुत जल्दी अपना लिया और सारे जम्मू क्षेत्र में एक सशक्त राजनैतिक दल के रूप में इसे शीघ्र मान्यता मिल गई।'' [76] प्रजा परिषद् की स्थापना के कुछ मास बाद ही पार्टी के अध्यक्ष हरि वजीर को सेना में कमीशन मिल गया था। उनके स्थान पर रूपचंद नंदा को नया अध्यक्ष बनाया गया। वे राज्य के जाने-माने वकील थे। हरि वजीर बारामूला सैक्टर में पाकिस्तानी आक्रमणाकारियों से मुलाकात करते हुए शहीद हो गए। प्रजा परिषद् ने देश की अखंडता व एकता के लिए अपनी यात्रा शहादत से ही प्रारंभ की।

2.13. आंदोलन की शुरुआत प्रजा परिषद् का कार्यकाल 1949-50

फरवरी 1949 में जम्मू की स्थिति का मौके पर अध्ययन करने के लिए ''संविधान सभा के सदस्यों का एक शिष्टमंडल जम्मू आया। इसमें आचार्य रघुवीर, मिहिर लाल चट्टोपाध्याय और खाडिलकर शामिल थे। मीरपुर के शरणार्थी नेता कविराज विष्णु गुप्त भी इनके साथ थे।'' [77]

इस शिष्टमंडल से प्रेमनाथ डोगरा की अध्यक्षता में जम्मू संभाग के लोगों का एक प्रतिनिधिमंडल मिला और राज्य की वर्तमान स्थिति और शेख सरकार के व्यवहार पर प्रकाश डाला। शिष्टमंडल जम्मू के लोगों से मिलकर दिल्ली चला गया; लेकिन उसके तुरंत बाद सरकार ने 15 फरवरी को प्रेमनाथ डोगरा को गिरफ्तार कर लिया। शेख अब्दुल्ला सरकार ने प्राथमिकी में उनपर जम्मू में मुसलमानों की सामूहिक हत्या का आरोप लगया। प्रजा परिषद् के कुछ अन्य लोग मसलन शिवराम गुप्ता, श्यामलाल शर्मा, दीवान शिवनाथ नंदा और धन्वंतर सिंह को भी गिरफ्तार कर लिया। ऐसे वातावरण में ये गिरफ्तारियाँ जम्मू प्रांत को एक चुनौती ही मानी गई। प्रजा परिषद् का पहला आंदोलन प्रारंभ होने की भूमिका तैयार हो गई। जम्मू में पूर्ण हड़ताल हुई।'' [78] प्रजा परिषद् के इन नेताओं को श्रीनगर के केंद्रीय कारागार में स्थानांतरित कर दिया गया।[79] और बड़े स्तर पर गिरफ्तारियाँ शुरू हो गईं। प्रजा परिषद् सरकार द्वारा जम्मू से किए जा रहे भेदभाव और प्रजा परिषद् को शेख द्वारा अलोकतांत्रिक ढंग से कुचलने के प्रयासों का पर्दाफाश करना चाहती थी। लेकिन सरकार ने पूरे जम्मू नगर में सभा करने की अनुमति नहीं दी। परिषद् ने नगर के बाहर सीमांत तवियों में जनसभा की। सभा की अध्यक्षता मीर बख्श गुज्जर ने की। परिषद् के अध्यक्ष रूपचंद नंदा ने सरकार की तानाशाही पर प्रहार किए और इस बात पर दु:ख प्रकट किया कि राज्य सरकार प्रजा परिषद् को सामान्य राजनैतिक गतिविधियाँ भी नहीं करने दे रही। जम्मू में प्रेमनाथ डोगरा को छोड़ देने की माँग को लेकर प्रजा परिषद् का आंदोलन आरंभ हो गया था। डोगरा अब तक जम्मू संभाग के प्रतीक बन गए थे।

जम्मू संभाग के लोगों की दूसरी भी अनेक शिकायतें थीं। सरकार द्वारा उनका समाधान करना तो दूर, उनकी माँग उठानेवालों को ही बंदी बनाना शुरू कर दिया। जम्मू की जनता इस विरोध में प्रजा परिषद् के साथ खड़ी हो गई तो सरकार ने आश्वासन दिया कि जल्दी ही बंदियों को छोड़ दिया जाएगा और लोगों की उचित शिकायतें भी दूर की जाएँगी। परिषद् ने इस आश्वासन पर आंदोलन रोक दिया। लेकिन सरकार अपने वचनों से फिरने लगी।

2.14. लद्दाख में असंतोष

उधर लद्दाख में भी असंतोष गहराता जा रहा था। लद्दाख बौद्ध संघ के अध्यक्ष छेवांग रिगजिन ने 4 मई, 1949 को जवाहरलाल नेहरू को एक ज्ञापन दिया। ज्ञापन के अनुसार, लद्दाख ऐसे किसी भी जनमत-संग्रह से बँधा नहीं

है, जिसमें रियासत के बहुसंख्यक मुसलमान पाकिस्तान में जाने का निर्णय ले लेते हैं। लद्दाख में भारत का प्रत्यक्ष शासन होना चाहिए, ऐसा वहाँ के लोग चाहते हैं। यदि ऐसा संभव नहीं तो लद्दाख को जम्मू में मिला एक अलग प्रांत बना दिया जाए, या फिर इसे पूर्वी पंजाब में मिला दिया जाए।[80]

2.15. प्रजा परिषद् का सत्याग्रह का निर्णय

प्रजा परिषद् ने शेख अब्दुल्ला सरकार के प्रेमनाथ डोगरा को छोड़ देने के आश्वासन पर अपना आंदोलन रोका हुआ था। लेकिन सरकार अपने आश्वासन से फिरने लगी थी। ''अपनी माँगें मनवाने के लिए प्रजा परिषद् जून तक सभी विधि सम्मत तरीकों का इस्तेमाल करती रही। राज्य सरकार और भारत सरकार को ज्ञापन दिए गए। परिषद् के शिष्टमंडल सरकार को मिले। लेकिन किसी भी सरकार पर कोई असर नहीं हुआ। जून महीने में शेख सरकार ने परिषद् के अनेक कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी के वारंट निकाल दिए।'' [81] नेशनल कॉन्फ्रेंस और प्रजा परिषद् में सहयोग की सभी संभावनाएँ समाप्त हो चुकी थीं। जम्मू में उफान जोरों पर था।

23 जून, 1949 को प्रजा परिषद् की कार्यकारिणी की बैठक बुलाई गई। बैठक में पारित किया गया—जम्मू के लोगों का वर्तमान सरकार से विश्वास उठ गया है। जम्मू के लोगों ने शेख प्रशासन की ओर सहयोग का हाथ बढ़ाया था, लेकिन वह ठुकरा दिया गया। वर्तमान सरकार राज्य के लोगों की निर्वाचित प्रतिनिधि सरकार नहीं है। यह न तो जम्मू के लोगों का प्रतिनिधित्व करती है और न ही उनकी इच्छाओं का सम्मान करती है। इसलिए जम्मू के लोगों से हो रहे अन्याय और उनकी माँगों की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए प्रजा परिषद् ने शांतिपूर्वक और अहिंसक ढंग से सत्याग्रह प्रारंभ करने का निर्णय लिया है।

2.15.1 परिषद् ने अपनी माँगों को भी सूचीबद्ध किया—

1. परिषद् के नेताओं व कार्यकर्ताओं को तुरंत रिहा किया जाए और उनपर लगाए गए जुर्माने वापस लिये जाएँ।
2. जम्मू के जिन क्षेत्रों, मसलन रामवन, किश्तवाड़ इत्यादि को जम्मू संभाग से अलग किया गया है, उन्हें तुरंत वापस जम्मू में शामिल किया जाए। डोडा को पुनः ऊधमपुर में मिलाया जाए।
3. प्रजा परिषद् को एक मान्यता प्राप्त प्रतिनिधि दल के तौर पर काम करने की अनुमति दी जाए।
4. जम्मू के साथ भेदभाव की नीति बंद की जाए और पठानकोट से लेकर बनिहाल तक पूरे जम्मू संभाग में लोकतांत्रिक स्वशासन का अधिकार दिया जाए, अर्थात् भारत के अभिन्न अंग के रूप में प्रशासकीय स्वायत्तता।

''22 जून को ही प्रजा परिषद् के अध्यक्ष लाला रूपचंद नंदा ने राज्य के प्रधानमंत्री शेख मोहम्मद अब्दुल्ला और उप-प्रधानमंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद को तार देकर कहा कि परिषद् ने सरकार के आश्वासन पर फरवरी में अपना आंदोलन स्थगित किया था। लेकिन सरकार ने अपने वायदे पूरे नहीं किए, इसलिए परिषद् 23 जून से अपना आंदोलन पुनः प्रारंभ कर देगी।'' [82] सरकार ने आंदोलन का मुकाबला करने के लिए पहले ही कश्मीर सुरक्षा नियमों की धारा 50 के तहत आंदोलनात्मक गतिविधियों पर रोक लगाई हुई थी। ''23 जून को परिषद् के कार्यकर्ताओं ने धारा 50 का उल्लंघन कर 'बंदी नेता रिहा करो, प्रेमनाथ डोगरा को छोड़ दो, हम चाहते हैं अवामी राज' के नारे लगाते हुए जम्मू में प्रदर्शन किया। पुलिस ने दस प्रदर्शनकारियों को बंदी बना लिया और अनेक कार्यकर्ता भूमिगत हो गए और राज्य के अन्य भागों से भी कुछ पकड़े गए। उसके दो दिन बाद ही सरकार ने परिषद् के अध्यक्ष रूपचंद नंदा को सुरक्षा नियमों की धारा 24 के अंतर्गत जम्मू नगर से निष्कासित कर दिया। उन्हें 100

मील दूर डोडा में अपनी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए कहा, जहाँ उन्हें नजरबंद किया जाना था।'' 83
बाद में वे स्वयं ही सत्याग्रह कर गिरफ्तार हो गए। उनको सजा भी हो गई। सजा होने पर वे घबरा गए और पैरोल पर छूटकर आ गए। सत्याग्रह की नीति पैरोल पर छूटने के पक्ष में नहीं थी। नंदा के इस व्यवहार से कार्यकर्ताओं में कुछ निराशा फैली। परंतु तभी उनके लड़के माधोलाल ने अपने आपको सत्याग्रह के लिए प्रस्तुत कर दिया। जम्मू के हरि टॉकीज के सामने मुलख राज, नरसिंह दयाल शर्मा, चौधरी चग्गर सिंह और माधो लाल ने धारा 144 का उल्लंघन करते हुए सत्याग्रह किया। हेडकांस्टेबल गांधर वली ने सभी को गिरफ्तार कर लिया और जम्मू के सिटी थाना में ले जाकर हवालात में बंद कर दिया। रात को डेढ़-दो बजे हवालात से निकालकर बहुत पिटाई की गई। ''वह चाहता था कि हम मुऑफी माँग लें। लेकिन हम चारों में से कोई भी टस-से-मस नहीं हुआ। सुबह होते ही चारों को जेल ले जाया गया। इस सत्याग्रह की पूरे शहर में बहुत दिनों तक चर्चा होती रही, क्योंकि माधो लाल ने पिता के मना करने पर भी सत्याग्रह किया था।'' 84
शेख अब्दुल्ला की सरकार ने सत्याग्रहियों को मारने-पीटने की सभी हदें पार कर दीं। तब प्रजा परिषद् ने निर्णय लिया कि दिल्ली जाकर केंद्रीय नेताओं को शेख सरकार के लोकतंत्र-विरोधी रवैये के बारे में बताया जाए। कविराज विष्णु गुप्त और चतुरु राम डोगरा समेत कुछ लोग दिल्ली पहुँचे। प्रतिनिधिमंडल में श्रीमती शक्ति शर्मा और सुशीला मैंगी भी थीं। वहाँ उन्होंने अनेक नेताओं से भेंट की और उन्हें जम्मू में शेख सरकार के कारनामों के बारे में बताया। जाहिर है, जम्मू की इस स्थिति से दिल्ली में चिंता बढ़ी। ग्रीष्म ऋतु का ताप बढ़ने के साथ-साथ शेख की जेलों में प्रजा परिषद् के सत्याग्रहियों की संख्या 294 तक पहुँच गई। बिना मुकदमा चलाए कार्यकर्ताओं को बंदी बनाकर रखा गया था। लगता था, जम्मू में स्थिति किसी समय भी बिगड़ सकती है। ''स्थिति को बिगड़ता देखकर दिल्ली से कुछ सांसद बीच-बचाव के लिए आए। इस बीच-बचाव के कारण प्रजा परिषद् के सभी गिरफ्तार नेता बिना शर्त छोड़ दिए गए।'' 85 सरकार ने पं. प्रेमनाथ डोगरा पर लगाए सभी आरोप वापस ले लिये और उन्हें भी 8 अक्तूबर, 1949 को श्रीनगर केंद्रीय कारागार से रिहा कर दिया गया। इस प्रकार परिषद् का पहला आंदोलन सफलतापूर्वक समाप्त हुआ।
चौधरी चग्गर सिंह के ही अनुसार, ''इस आंदोलन के दौरान बहुत सख्तियाँ हुईं। लेकिन जम्मू के शेर टस से मस नहीं हुए। आखिर आंदोलन खत्म हुआ और सब सत्याग्रही बा-इज्जत रिहा हुए। पं. प्रेमनाथ डोगरा भी सम्मान सहित रिहा होकर जेल से बाहर आए। जगह-जगह उनका स्वागत हुआ। प्रजा परिषद् का नाम राजनैतिक दल के तौर पर जम्मू-कश्मीर से बाहर भी जाना जाने लगा। लोगों में काफी जोश-खरोश था। गाँव-गाँव में प्रजा परिषद् की शाखाएँ खुल गई थीं।'' 86
महाराजा हरि सिंह को रियासत से बाहर का रास्ता दिखाने के बाद पं. नेहरू जम्मू आए। कुछ लोगों ने नेहरू के खिलाफ प्रदर्शन किया। लोगों में महाराजा हरि सिंह के साथ किए जा रहे व्यवहार के कारण गुस्सा था। प्रदर्शनकारी महाराजा को वापस राज्य में लाने की माँग करते हुए नारे लगा रहे थे। ऐतिहासिक परेड ग्राउंड में हुई जनसभा में नेहरू ने प्रदर्शनकारियों के नारों का उत्तर यह कहकर दिया कि, ''जिसने मुझे गिरफ्तार किया था, क्या मैं उसे वापस आने दे सकता हूँ?'' 87

2.16. प्रजा परिषद् का संगठनात्मक प्रसार

अब प्रजा परिषद् के संगठन को नए सिरे से संगठित करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। प्रजा परिषद् का कार्य धीरे-धीरे पूरे क्षेत्र में बढ़ रहा था। नए हालात में पार्टी का अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा को बनाया गया और दुर्गादास वर्मा को महासचिव का दायित्व दिया गया। अन्य पदाधिकारी भी नियुक्त किए गए। उपाध्यक्ष—धन्वंतर सिंह सलाथिया, उपाध्यक्ष—जैलदार रणजीत सिंह परोल, लुदरमणि सांगडा कूटा, महासचिव—दुर्गादास वर्मा, श्यामलाल शर्मा, संगठन मंत्री—भगवत स्वरूप, कार्यालय मंत्री—गोपाल दास सच्चर, राज्य से बाहर प्रचार प्रभारी—माखनलाल ऐमा, रामनाथ बलगोत्रा एडवोकेट। कठुआ जिला के अध्यक्ष पद की जिम्मेदारी राधा कृष्ण शर्मा और ऊधमपुर-डोडा जिला के अध्यक्ष की जिम्मेदारी रूपलाल रोहमित्रा को दी गई। कार्यकारिणी का भी गठन किया गया, जिसमें निम्न सदस्य बनाए गए—

चतरू राम डोगरा, शिवराज गुप्ता, संतराम बड़ू, ज्ञानचंद सदाव्रती, जगत राम एशियन, लुदर मणि साँगड़ा, जैलदार रणजीत सिंह, ठाकुर धन्वंतरि सिंह, तहसीलदार रघुनाथ सिंह और जगदीश खद्दर भंडार थे।

इसके अतिरिक्त सभी तहसीलों के लिए संगठन मंत्री भी नियुक्त किए गए।

रामवन—नत्था सिंह

किश्तवाड—शिव कुमार शर्मा

भद्रवाह—बलदेव राज

ऊधमपुर—मुलकराज अरोड़ा

रियासी—ऋषि कुमार कौशल

रामनगर—हंसराज गुप्ता

जम्मू—राजेंद्र सिंह और शादीलाल शर्मा

अखनूर—सोमनाथ ओगरा

नौशहरा—ठाकुर सहदेव सिंह

राजौरी पुँछ—जगदीश चंद्र शास्त्री

सांबा—नरसिंह दास शर्मा

बसहोली—द्वारकानाथ

हीरानगर—ईश्वर दास शास्त्री

बिलावर—स्वर्णदेव सिंह

कठुआ—जगदीश सिंह

रणवीर सिंह पुरा—वेद ग्रोवर और यश भसीन[88]

प्रजा परिषद् का राज्य में इतनी तेजी से विस्तार हुआ कि वर्ष 1952 तक आते-आते केवल जम्मू जिला में ही प्रजा परिषद् के 16,000 सदस्य थे।[89]

2.17.1 प्रजा परिषद् की जनरल कौंसिल की बैठक

प्रजा परिषद् के लिए 1949 का पूरा वर्ष शेख अब्दुल्ला की सरकार की भेदभावपूर्ण एवं सांप्रदायिक नीतियों के

खिलाफ लड़ते हुए ही बीता था। लेकिन इससे राज्य की जनता में यह विश्वास अवश्य पैदा हो गया था कि संघर्ष के माध्यम से तानाशाही शक्तियों को भी पराजित किया जा सकता था। प्रजा परिषद् ने (1952 से पहले) शेख अब्दुल्ला सरकार के खिलाफ अनेक प्रदर्शन किए। जैसे-जैसे शेख की भारत से दूर रहने की नीति स्पष्ट होती गई, वैसे-वैसे हिंदू विरोध तीव्र होता गया। प्रदर्शनकारियों को हर बार दबा दिया गया और अनेक लोग गिरफ्तार किए गए।[90] ऐसे वातावरण में प्रजा परिषद् की जनरल कौंसिल की बैठक जम्मू में 13अगस्त, 1950 को हुई, जिसमें निम्न प्रस्ताव पारित किए गए—

(क) जम्मू में कश्मीर सुरक्षा नियम की धारा 50 को तुरंत समाप्त किया जाए, ताकि सभी संस्थाएँ लोकतांत्रिक तरीके से काम कर सकें। इसके चलते किसी भी संस्था के लिए अपना काम करना असंभव हो गया है। इस धारा के चलते तो नेशनल कॉन्फ्रेंस ही काम कर सकती है, क्योंकि वह कानून से ऊपर है।

(ख) सरकार ने सामाजिक संस्थाओं द्वारा संचालित सभी स्कूलों को अनुदान देना बंद कर दिया है, जबकि इन स्कूलों में जाति व संप्रदाय का भेदभाव किए बिना सभी छात्रों को प्रवेश दिया जाता है। इन स्कूलों में राज्य सरकार द्वारा प्रस्तावित पाठ्यक्रम ही पढ़ाया जाता है। सरकार के इस कदम से सैकड़ों अध्यापक बेरोजगार हो जाएँगे और हजारों छात्रों का भविष्य अंधकारमय हो जाएगा।

(ग) डोडा व भद्रवाह तहसीलों को पुन: ऊधमपुर जिला में मिलाने की, स्थानीय लोगों की माँग को तुरंत स्वीकार किया जाए।

(घ) दूर-दराज के लोगों को देश के दूसरे हिस्सों में जाने के लिए परमिट हासिल करने में बहुत कठिनाई होती है। परमिट के लिए उन्हें बच्चों व औरतों समेत लंबा सफर तय करके तहसील मुख्यालय में आना पड़ता है; क्योंकि जिनको परमिट चाहिए उन सभी की संबंधित अधिकारी के सामने हाजिरी अनिवार्य कर दी गई है। लोगों की सुविधा के लिए व्यक्तिगत हाजिरी की शर्त को समाप्त किया जाए।[91]

अब तक प्रजा परिषद् यह प्रयास करती रही कि शेख अब्दुल्ला कश्मीर तक सीमित अपना संकुचित दृष्टिकोण बदलें और राज्य के सभी संभागों के लोगों को अपने साथ लेकर चलें और वहाँ भी लोकतांत्रिक संस्थाओं के निर्माण में सहायता दें। प्रजा परिषद् की इच्छा थी कि रियासत के अधिमिलन के बाद अब अन्य रियासतों की तरह इस रियासत का भी भारत में एकीकरण किया जाना चाहिए। इस दिशा में परिषद् अभी भी नेशनल कॉन्फ्रेंस के साथ सहयोग करने को तैयार थी। बलराज मधोक ने लिखा—‘‘जम्मू केसरी पं. प्रेमनाथ डोगरा और शेर-ए-कश्मीर शेख अब्दुल्ला साथ मिलकर समान उद्देश्य के लिए कार्य करें तो राज्य का भला होगा।’’ [92] लेकिन शायद शेख इसके लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने नेशनल कॉन्फ्रेंस के लिए अलग रास्ता चुन लिया था और वे पूरी रियासत को उसी पर धकेल रहे थे।

2.18. सामाजिक कार्यों में भी भेदभाव

प्रजा परिषद् राजनैतिक आंदोलन के साथ-साथ प्रदेश के सामाजिक कार्यों में भी सक्रिय थी। अक्तूबर 1950 में बाढ़ ने राज्य में भयंकर तबाही मचाई। प्रजा परिषद् ने बाढ़-पीड़ितों के लिए अनेक राहत शिविर और मेडिकल कैंप लगाए। जम्मू प्रशासन ने बाढ़ राहत समिति का गठन किया, जिसमें प्रजा परिषद् के अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा का नाम

भी रखा था, ''लेकिन शेख अब्दुल्ला ने डोगरा का नाम काट दिया।'' [93] राज्य में परिस्थितियाँ बड़ी तेजी से बदल रही थीं। संयुक्त राष्ट्र संघ में जम्मू-कश्मीर का प्रश्न शीतयुद्ध की भेंट चढ़ रहा था। ऐसे समय में राज्य में संविधान सभा के गठन और उसके चुनावों की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई। प्रजा परिषद् ने इन चुनावों को जनता में जाने का स्वर्णिम अवसर माना।

प्रजा परिषद् और नेशनल कॉन्फ्रेंरस दोनों ओर से मोर्चाबंदी होने लगी। फैसला तो अंतत: जनता को ही करना था। इसलिए दोनों राजनैतिक दल अपना-अपना पक्ष लेकर जनता के दरबार में उपस्थित होने लगे। पं. जवाहरलाल नेहरू स्पष्ट ही नेशनल कॉन्फ्रेंरस के साथ खड़े थे। श्रीनगर में 2 अप्रैल, 1951 को प्रेमनाथ डोगरा ने भारत सरकार की संयुक्त राष्ट्र संघ में जाने की नीति पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए कहा कि भारत सरकार ने राज्य के लोगों को संयुक्त राष्ट्र नामक नरभक्षी के आगे चारे के तौर पर इस्तेमाल किया है। उन्होंने स्पष्ट किया कि महाराजा हरि सिंह ने रियासत को लोगों की सहमति से ही भारत में शामिल किया था।[94] कुछ दिन बाद प्रेमनाथ डोगरा ने स्पष्ट किया कि प्रजा परिषद् महाराजा हरि सिंह का वंशानुगत शासन वापस लाने के पक्ष में नहीं है, लेकिन हम चाहते हैं कि महाराजा को भारत के संविधान में जो स्थान दिया गया है उसकी रक्षा की जानी चाहिए। प्रजा परिषद् न तो सांप्रदायिक है और न ही हिंदू व मुसलमान के दृष्टिकोण से विचार करती है। परिषद् रियासत के पूर्ण अधिमिलन में विश्वास करती है।[95]

3 अप्रैल को नेहरू ने जम्मू आकर जम्मूवासियों को चेतावनी दी—''जम्मू के लोगों को सदा ध्यान रखना चाहिए कि राज्य का प्रश्न अब अंतरराष्ट्रीय हो गया है।'' शेख अब्दुल्ला का बचाव करते हुए नेहरू ने महाराजा हरि सिंह पर हमला बोला और कहा कि ''यदि उन्होंने अपने लोगों के प्रति गलतियाँ न की होतीं तो पाकिस्तान की आक्रमण करने की हिम्मत न पड़ती।'' [96] नेहरू के जाने के अंतरराष्ट्रीय छह दिन बाद ही शेख अब्दुल्ला ने महाराजा हरि सिंह और उनके बेटे कर्ण सिंह पर हमला बोला। एक जनसभा में उन्होंने कहा कि, ''महाराजा और महारानी अब रियासत में वापस आने का सपना भूल जाएँ। कर्ण सिंह ने भी यदि अपनी संगति न सुधारी और अपने सलाहकार न बदले तो उनका हश्र भी उनके माता-पिता जैसा ही होगा। यदि कर्ण सिंह प्रजा परिषद् के उपप्रधान धनवंतर सिंह को ही अपना शुभचिंतक मानते हैं तो मेरे पास राजशाही खत्म करने के सिवा कोई चारा नहीं होगा।'' उसके बाद उन्होंने मुसलमानों के बारे में बोलते हुए कहा कि ''मैं यहाँ के मुसलमानों को प्रेमनाथ डोगरा और धनवंतर सिंह की तलवार के नीचे सिर रखने के लिए नहीं कह सकता।'' [97] इसके पूरे दो सप्ताह बाद 26 अप्रैल को शेख अब्दुल्ला ने प्रेमनाथ डोगरा द्वारा श्रीनगर में संयुक्त राष्ट्र को 'नरभक्षी' कहने का उत्तर एक बार फिर जम्मू में दिया। शेख ने कहा, ''प्रजा परिषद् महाराजा हरि सिंह को वापस लाने के प्रयास करके जम्मू के लोगों को शेर के मुँह में ले जा रही है। परिषद् हमारी पूरी योजना को ही बीच भँवर में डुबो देना चाहती है। इसलिए राज्य के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह परिषद् को नष्ट कर दे।'' [98] संविधान सभा के चुनावों के ठीक पहले शेख अब्दुल्ला प्रजा परिषद् को नष्ट करने के मंसूबे ही नहीं पाल रहे थे बल्कि उसकी स्पष्ट घोषणा भी कर रहे थे।

2.19. संविधान के गठन की प्रक्रिया की अधिसूचना—रियासत के रीजेंट युवराज कर्ण सिंह ने 20 अप्रैल, 1951 को संविधान सभा के गठन की प्रक्रिया की उद्घोषणा की। बाद के वर्षों में अपनी आत्मकथा में उन्होंने

इसका जिक्र किया—''रियासत का संविधान बनाने के लिए संविधान सभा की अवधारणा जनमत-संग्रह के प्रश्न को निरर्थक बनाने की एक बृहत्तर नीति का हिस्सा भी थी। हालाँकि जवाहरलालजी ने अनेक अवसरों पर संयुक्त राष्ट्र और पाकिस्तान को बार-बार यह आश्वासन दिया था कि भारत लोगों की राय जानने के प्रति वचनबद्ध है। लेकिन यह स्पष्ट था कि अगर संविधान सभा बैठती है और रियासत के भारत में अधिमिलन का अनुमोदन कर देती है तो इसका अंतरराष्ट्रीय मत पर असर पड़ेगा।'' 99

संविधान सभा के लिए 100 सदस्यों की संख्या निर्धारित की गई, जिनमें से 25 स्थान उन क्षेत्रों से भरे जाने थे, जो अभी तक पाकिस्तान के कब्जे में थे। शेष 75 स्थान बाकी रियासत से चुने जाने थे। इन 75 स्थानों के लिए अगस्त-सितंबर 1951 में चुनाव हुए। 31 अक्तूबर, 1951 को संविधान सभा के पहले अधिवेशन का उदघाटन हुआ।

2.20. संविधान सभा के चुनाव

इस मामले में शेख अब्दुल्ला की पहली परीक्षा अगस्त-सितंबर 1951 में हुई, जब राज्य की संविधान सभा के लिए वयस्क मताधिकार के आधार पर पहली बार आम चुनाव घोषित हुए। इसी से पता चलने वाला था कि शेख नए कश्मीर को लेकर कितने गंभीर हैं या फिर उनकी रुचि केवल जम्मू के हितों पर कुठाराघात करने तक ही सीमित थी। अपनी इस पहली ही परीक्षा में वे अनुत्तीर्ण हुए।

संविधान सभा के लिए अगस्त-सितंबर 1951 में चुनाव होनेवाले थे। शेख अब्दुल्ला के प्रधानमंत्रित्व में स्थापित नए निजाम में होनेवाले ये पहले चुनाव ही सिद्ध करनेवाले थे कि शेख राज्य में किस प्रकार की व्यवस्था करनेवाले थे और जम्मू व लद्दाख संभाग को राज्य के भीतर कितनी स्वायत्तता देने की मंशा रखते थे। इन्हीं चुनावों से यह संकेत मिल सकते थे कि क्या शेख नए प्रशासन को कश्मीर घाटी केंद्रित बनानेवाले थे या फिर राजनैतिक सत्ता को तीनों संभागों में समान रूप से बाँटना चाहते थे। जम्मू संभाग की नए राज्य में स्थिति को जम्मू के लोग उत्सुकता से देख रहे थे, क्योंकि इसी से उनका भविष्य तय होनेवाला था। भविष्य में राज्य प्रशासन चीन और रूस की तर्ज पर एक दलीय व्यवस्था होनेवाली थी या फिर देश के बाकी हिस्से की तरह यह बहुदलीय व्यवस्था होनेवाली थी। इसको लेकर इसलिए भी संदेह पनप रहा था, क्योंकि शेख अब्दुल्ला ने अपनी नेशनल कॉन्फ्रेंस में साम्यवादी लोगों को अग्रणी भूमिका में रखा हुआ था।

राज्य की संविधान सभा के लिए 100 सीटें निर्धारित की गईं। इनमें से 25 सीटें उन क्षेत्रों में आती थीं जिन पर पाकिस्तान ने कब्जा कर रखा था। शेष 75 सीटों में से कश्मीर संभाग के लिए 43, जम्मू संभाग के लिए 30 और लद्दाख संभाग के लिए 2 सीटें निर्धारित की गईं। दरअसल इस सीट विभाजन से ही शेख अब्दुल्ला की भावी सियासत, नीयत और रणनीति के संकेत मिलने प्रारंभ हो गए। कश्मीर की आबादी व क्षेत्रफल उस समय जम्मू की आबादी व क्षेत्रफल से कम थी। लेकिन इसके बावजूद कश्मीर के लिए 43 सीटें और जम्मू संभाग के लिए 30 सीटें निर्धारित की गईं। अर्थ स्पष्ट था कि नई व्यवस्था ऐसी तैयार की जा रही थी, जिसमें संख्या और क्षेत्रफल कम होने पर भी राज्य की सत्ता में कश्मीर का प्रभुत्व सदा के लिए बना रहे। जम्मू संभाग में असंतोष की लहरें यहीं से बननी शुरू हो गई थीं।

संविधान सभा के लिए चुनावों की तैयारी प्रारंभ हुई। प्रदेश के दोनों प्रमुख राजनैतिक दलों नेशनल कॉन्फ्रेंस और प्रजा परिषद् ने इन चुनावों के लिए तैयारी शुरू कर दी। दोनों के अलग-अलग चुनावी मुद्दे थे और अपने-अपने

घोषणा-पत्र थे। कांग्रेस ने राज्य में अपनी शाखा ही नहीं खोली थी। उसने नेशनल कॉन्फ्रेंस को ही अपनी शाखा घोषित कर रखा था। दोनों की जम्मू-कश्मीर को लेकर नीति समान ही थी। जम्मू संभाग में प्रजा परिषद् ही सबसे सशक्त राजनैतिक दल था। जिस प्रकार नेशनल कॉन्फ्रेंस को कश्मीर संभाग का प्रतिनिधि राजनैतिक दल समझा जा रहा था, वही स्थिति प्रजा परिषद् की जम्मू संभाग में थी। प्रजा परिषद् की विचारधारा और नीतियाँ नेशनल कॉन्फ्रेंस की विचारधारा और नीतियों से बिलकुल दूसरे सिरे पर थीं। इसलिए संभावना व्यक्त की जा रही थी कि संविधान सभा के चुनावों में इन दोनों दलों में सशक्त टक्कर होगी। जम्मू-कश्मीर में चुनाव भारत के निर्वाचन आयोग की देख-रेख में नहीं हो रहे थे, क्योंकि शेख अब्दुल्ला ने इसका विरोध किया था। ये चुनाव शेख के नेतृत्व में चल रहा प्रशासन ही करवा रहा था। लेकिन जिस प्रकार से चुनाव संपन्न करवाए गए, उसने जम्मू संभाग के लोगों की रही-सही आशाओं पर भी पानी फेर दिया। कश्मीर संभाग की सभी सीटों पर नेशनल कॉन्फ्रेंस के प्रत्याशी निर्विरोध चुने गए। जिन प्रत्याशियों ने नेशनल कॉन्फ्रेंस के प्रत्याशियों के विरोध में नामांकन पत्र दाखिल करवाए उनके नामांकन पत्र रद्द कर दिए गए। दो प्रत्याशी बच गए। वे स्वयं ही चुनाव के मैदान से हट गए।

जम्मू संभाग में प्रजा परिषद् ने 30 में से 28 सीटों के लिए अपने प्रत्याशी उतारे। लेकिन 13 स्थानों पर उनके नामांकन रद्द कर दिए गए। विरोध-स्वरूप प्रजा परिषद् चुनाव मैदान से हट गई। जम्मू संभाग में केवल 2 सीटों काहनचक्क और अखनूर में आजाद उम्मीदवार खड़े थे। ''शेष बचे दो प्रत्याशी भी मतदान से ठीक पहले चुनाव मैदान से हट गए। अत: शेख के अनुयायी 75 ही सीटों पर जीत को लेकर निश्‍चिंत थे।... इससे अच्छी जीत कोई तानाशाह भी प्राप्त नहीं कर सकता।'' [100] इस प्रकार राज्य में हुए पहले चुनाव में संविधान सभा की सभी 75 सीटों पर नेशनल कॉन्फ्रेंस ने बिना किसी चुनाव के विजय प्राप्त की। लेकिन जम्मू संभाग के लोगों में शेख के निजाम में रही-सही आस्था भी जाती रही। जो संविधान सभा राज्य के लिए भावी विधान की रचना करेगी, उसमें व्यावहारिक रूप से जम्मू संभाग का कोई प्रभावी नेतृत्व नहीं था। क्रियात्मक रूप से राज्य की भावी सत्ता रचना कश्मीर केंद्रित होने जा रही थी और उसमें जम्मू संभाग की हिस्सेदारी को नकारा जा रहा था। यह भी स्पष्ट हो रहा था कि इस पूरी प्रक्रिया में या तो नेहरू की सहमति थी या फिर वे शेख के तुष्टीकरण के मोह में इसे स्वीकृति प्रदान कर रहे थे।

प्रजा परिषद् ने संविधान सभा के चुनावों को नाटक बताया और 'बिना चुनाव लड़े चुनाव जीतने की नेशनल कॉन्फ्रेंस पद्धति' की न्यायिक जाँच करवाने की माँग की। उसके नेता पं. प्रेमनाथ डोगरा ने शेख अब्दुल्ला की सरकार पर आरोप लगाया—

1. जम्मू संभाग एवं कश्मीर संभाग में चुनाव की तिथियाँ अलग-अलग निर्धारित की गईं, ताकि नेशनल कॉन्फ्रेंस के प्रत्याशियों को लाभ पहुँचाया जा सके।
2. विधानसभा क्षेत्रों की सीमाएँ इस प्रकार निर्धारित की गईं, ताकि हिंदू बहुल क्षेत्रों को मुसलिम क्षेत्र बनाया जा सके।
3. प्रजा परिषद् के प्रत्याशियों के नामांकन बिना किसी आधार के रद्द कर दिए गए।
4. चुनाव में नेशनल कॉन्फ्रेंस के प्रत्याशियों को निर्विरोध जताने के लिए सरकारी मशीनरी का खुलकर दुरुपयोग किया गया।[101]

शेख अब्दुल्ला के शब्दों में, ''बख्शी गुलाम मोहम्मद नेशनल कॉन्फ्रेंस के चुनाव अभियान के इंचार्ज थे। और जम्मू

तो बस उन्हीं का कार्यक्षेत्र था। हो सकता है कि वहाँ कुछ चुनावी अनियमितताएँ हुई भी हों, क्योंकि बक्शी गुलाम मोहम्मद जिस प्रकृति के मालिक थे, उसको देखते हुए यह बात असंभव नहीं थी।'' 102 ''इन हालात में आश्चर्यजनक नहीं था कि प्रजा परिषद् ने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वैकल्पिक रास्तों की तलाश की।'' 103

❑

3.

शेख अब्दुल्ला का शासनकाल

3.0 शेख अब्दुल्ला का आचरण और व्यवहार तथा नेहरू-अब्दुल्ला गठबंधन— जम्मू-कश्मीर रियासत में प्रजा परिषद् के आंदोलन को **स**मझने के लिए शेख अब्दुल्ला की कार्यप्रणाली, उसके शासनकाल के कामों और उसको प्रभावित या संचालित करनेवाली शक्तियों की मानसिकता को समझना जरूरी है। जैसा कि पहले दो अध्यायों में संकेत किया गया है कि प्रजा परिषद् राज्य और देश के व्यापक हितों को देखते हुए नेशनल कॉन्फ्रेंस के साथ सहयोग करने की इच्छुक थी। लेकिन नेशनल कॉन्फ्रेंस के अध्यक्ष शेख अब्दुल्ला ज्यों-ज्यों विदेशी शक्तियों के बहकावे और अपने साम्यवादी मित्रों के सब्जबागों में फँसते गए, त्यों-त्यों उनकी महत्त्वाकांक्षाएँ बढ़ती गईं। इस घातक रास्ते पर शेख को आगे बढ़ाने में उस समय की साम्यवादी पार्टी ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। नेहरू की काल्पनिक अंतरराष्ट्रीयता और शेख की महत्त्वाकांक्षाओं ने मिलकर राज्य व देश की राष्ट्रवादी शक्तियों को प्रजा परिषद् के नेतृत्व में आंदोलन करने के लिए विवश किया। नेहरू द्वारा इस पूरे कालखंड में शेख अब्दुल्ला को संरक्षण दिए जाने के कारण भी रियासत की राष्ट्रवादी शक्तियों को धक्का लगा और उनमें निराशा फैली। लेकिन इसका एक लाभ भी हुआ। निराशा के प्रारंभिक आघात के बाद राज्य की राष्ट्रवादी शक्तियों का अन्याय से लड़ने का संकल्प और भी दृढ़ हुआ।

3.1 शेख अब्दुल्ला की पृष्ठभूमि— शेख अब्दुल्ला का जन्म 1905 में श्रीनगर के सुबरा में हुआ था। यह परिवार शाल उद्योग के काम-धंधे में लगा हुआ था। शेख के बचपन में ही उनके माता-पिता का देहांत हो गया था। अत: उनका पालन-पोषण उनके बड़े भाइयों ने किया। उन्होंने श्रीनगर के श्री प्रताप कॉलेज से इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण की और लाहौर में पंजाब विश्वविद्यालय के स्नातक हुए। आगे की पढ़ाई के लिए वे सन् 1928 में अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय में चले गए और वहाँ से उन्होंने 1930 में रसायन-शास्त्र में एम.एम.सी. की डिग्री प्राप्त की। वापस आकर वे श्रीनगर में सरकारी हाई स्कूल में अध्यापक नियुक्त हो गए।[104] उन दिनों महाराजा ने उच्च पद की नौकरियों के लिए सिविल सर्विस भर्ती बोर्ड की स्थापना कर दी थी, जिसमें योग्यता के आधार पर चयन होता था। शेख अब्दुल्ला ने सरकार की इस नीति का विरोध करते हुए नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया।[105] ''शेख शहर की मसजिदों में मुसलमानों को एकत्रित करने लगे और वहाँ उत्तेजक भाषण देने लगे। इन भाषणों में वे प्राय: कहा करते थे कि मुसलमानों को सरकारी नौकरियों से बाहर रखा जा रहा है। ज्यादा कराधान के कारण कश्मीर के उद्योग तबाह हो रहे हैं। गो-हत्या के मामलों में मुसलमानों को सख्त सजाएँ दी जा रही। महाराजा की नौकरशाही जनता का दमन कर रही है और बेगार प्रथा शोषण का माध्यम है।'' [106]

अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय से पढ़कर आए युवकों का वहाँ के मुसलिम नेताओं और इसलाम की वैश्विक अवधारणावाले संगठनों से संपर्क हुआ था। इन्हीं युवकों ने श्रीनगर के मुसलिम रीडिंग रूम में बैठकों का सिलसिला शुरू किया। शेख अब्दुल्ला भी इस मुसलिम रीडिंग रूम मंडली के सक्रिय सदस्य थे।[107] शेख अब्दुल्ला के भाषणों से ''वातावरण सांप्रदायिक भावना से तनावग्रस्त हो ही गया था और अब केवल चिंगारी की जरूरत थी।''

[108] इसी रीडिंग रूम ग्रुप ने जुलाई 1931 में महाराजा हरि सिंह के खिलाफ आंदोलन की शुरुआत की। 1931 के आंदोलन में कश्मीरी हिंदुओं की दुकानें जलाई गईं, उनसे लूटपाट की गई और कुछ की हत्या भी की गई। सामान्य मुसलमानों द्वारा हिंदुओं पर आक्रमण करना कश्मीर की परंपरा नहीं थी। यह इस बार नई शुरुआत हुई थी।

इसी वातावरण में शेख अब्दुल्ला ने 1932 में श्रीनगर में मुसलिम कॉन्फ्रेंस की स्थापना की थी। मुसलिम कॉन्फ्रेंस का उद्देश्य जम्मू-कश्मीर राज्य के तमाम निवासियों के अधिकारों के लिए लड़ना नहीं था बल्कि वह केवल घाटी के कश्मीरी मुसलमानों के लिए ही लड़ रही थी। वर्ष 1931-36 के इस आंदोलन में चाहे शेख आर्थिक और सामाजिक जुमलों का भी प्रयोग कर रहे थे, लेकिन इसमें कोई संशय नहीं है कि अपने समग्र स्वरूप में यह आंदोलन सांप्रदायिक था। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार के सतर्कता ब्यूरो ने भी स्वीकार किया कि उसे ऐसे प्रमाण मिले हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि ''1931 के शुरू में शेख अब्दुल्ला ने महाराजा हरि सिंह के खिलाफ जो मुक्ति आंदोलन चलाया था, वह केवल अंग्रेजी शासन की योजना ही नहीं थी, बल्कि उसे चलाने में उनकी सक्रिय सहायता भी थी। कुछ प्रमाण तो स्पष्ट ही थे और कुछ पंजाब के अहमदिया संप्रदाय के नेताओं के माध्यम से मिले थे। इन अहमदिया नेताओं से शेख के गहरे संबंध थे। अंग्रेजी शासन ने इसी माध्यम को कश्मीर में हिंदू-मुसलिम समुदाय में दरार डालने के लिए भी प्रयोग किया।'' [109]

गहराई से अध्ययन करने पर कहा जा सकता है कि उपर्युक्त पूरे आंदोलन में ब्रिटिश सरकार का सहयोग ही नहीं था बल्कि सक्रिय सहभागिता भी थी। वर्ष1930 के लंदन में हुए गोलमेज सम्मेलन में, जिसका जिक्र द्वितीय अध्याय में किया गया है, महाराजा के व्यवहार को देखकर उस समय के वायसराय ने उन्हें कहा था कि ''आप महाराजा हो, इसलिए अपनी सीमा में रहो। इस पर महाराजा ने उत्तर दिया था कि मैं पहले भारतीय हूँ और उसके बाद महाराजा।'' [110] तभी से महाराजा ब्रिटिश सरकार की आँखों में खटकने लगे थे। महाराजा को काबू में लाने के लिए ''अंग्रेजों ने सांप्रदायिक आधार पर मुसलिम दबाव बनाने का सुविधाजनक रास्ता चुना। इसके कारण राज्य में सामाजिक-सांप्रदायिक आंदोलन शुरू हुआ और वही बाद में सांप्रदायिक-राजनैतिक उपद्रवों की आधारशिला बना।'' [111] मुसलिम रीडिंग रूम के ''इस आंदोलन को ब्रिटिश सरकार का पूरा समर्थन था। इतना ही नहीं, महाराजा के विश्वासपात्र प्रधानमंत्री वेकफील्ड भी इनका समर्थन कर रहे थे।'' [112] पंजाब से बहुत बड़ी मात्रा में साहित्य प्रकाशित करवाकर जम्मू-कश्मीर में भेजा जा रहा था। इस साहित्य के माध्यम से कश्मीर घाटी के मुसलमानों को हिंदू राजा और हिंदुओं के खिलाफ भड़काया जा रहा था। पंजाब सरकार यदि चाहती तो इस प्रकार की आपत्तिजनक प्रचार सामग्री पर रोक लगा सकती थी, लेकिन उसने ऐसा करना उचित नहीं समझा। इस साहित्य में ''राजा के शासन को हिंदू शासन बताया जा रहा था, जिसका उद्देश्य मुसलमानों को सदा के लिए गुलाम बनाए रखना था। मुसलमानों से दीन व मजहब के नाम पर अपनी कौम के लिए सबकुछ कुर्बान कर देने का आग्रह किया जा रहा था।'' [113] लाहौर में कश्मीर मुसलिम कॉन्फ्रेंरस के नाम से एक संगठन खड़ा हो गया था, जो घाटी में विद्रोह और सांप्रदायिकता को हवा दे रहा था। महाराजा भी अंग्रेजों के इस षड्यंत्र को समझ रहे थे। उन्होंने

प्रधानमत्री वेकफील्ड को पद-मुक्त करके एक योग्य प्रशासक हरि कृष्ण कौल को प्रधानमंत्री बना दिया। कौल के प्रयासों से आंदोलनकारियों और राज्य सरकार में सम्मानजनक समझौता हो गया। आंदोलन स्थगित कर दिया गया और राजनैतिक बंदियों को मुक्त करना स्वीकार कर लिया गया। महाराजा ने सभी घटनाओं की जाँच के लिए राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में एक जाँच आयोग भी स्थापित कर दिया। महाराजा हरि सिंह और हरि कृष्ण कौल की सूझ-बूझ से कश्मीर मुसलिम कॉन्फ्रेंरस और उसके संरक्षक ब्रिटिश अधिकारियों का राज्य में विद्रोह करवाने का मनसूबा रास्ते में अटक गया। ऐसे मौके पर कश्मीर मुसलिम कॉन्फ्रेंरस ने लाहौर में बैठकर नया मोर्चा खोला। उसने इस समझौते का विरोध ही नहीं किया बल्कि लोगों से नया आंदोलन शुरू करने का आह्वान भी किया। एक बार फिर पंजाब से भड़कानेवाली सांप्रदायिक सामग्री घाटी में आने लगी। कश्मीर मुसलिम कॉन्फ्रेंस के पीछे अंग्रेजों का हाथ था। शेख अब्दुल्ला ने कश्मीर मुसलिम कॉन्फ्रेंरस की इच्छा को पूरी करते हुए महाराजा को मुसलिम-विरोधी बताते हुए एक बार फिर आंदोलन प्रारंभ कर दिया। पुलिस ने उन्हें 24 सितंबर, 1931 को गिरफ्तार कर लिया। ''ब्रिटिश सरकार मानो इस अवसर की प्रतीक्षा ही कर रही थी। उसने तुरंत इस पूरे परिदृश्य में नियंत्रक की भूमिका ग्रहण कर ली। रेजिडेंट ने महाराजा को अल्टीमेटम जारी कर दिया और उसे 24 घंटे के अंदर-अंदर स्वीकार करने के लिए कहा। उसके अनुसार (1) मुसलमानों की शिकायतों एवं माँगों की जाँच करने के लिए ब्रिटिश अधिकारी नियुक्त किया जाए और महाराजा इसके लिए तुरंत अंग्रेज सरकार से प्रार्थना करें। (2) किसी अंग्रेज को राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त किया जाए। (3) वर्तमान प्रधानमंत्री हरि कृष्ण कौल के भाई दया कृष्ण कौल को तुरंत रियासत से निकाल दिया जाए।'' [114]

इन्हीं दिनों पंजाब के सांप्रदायिक मुसलिम संगठनों ने एक और चाल चली। मुसलमानों ने रियासत के पंजाब से लगते क्षेत्रों मीरपुर पुंछ इत्यादि में हिंदुओं पर संगठित आक्रमण करने प्रारंभ कर दिए। पंजाब की अहरार पार्टी इसमें सक्रिय भूमिका निभा रही थी और अपने जत्थे रियासत में भेज रही थी। ये जत्थे मीरपुर में हिंदुओं पर आक्रमण कर सांप्रदायिक आग लगा रहे थे। ब्रिटिश सरकार का इसको परोक्ष समर्थन प्राप्त था। स्थिति बिगड़ती देखकर महाराजा ने ब्रिटिश सरकार से अपनी सेना भेजने की प्रार्थना की। ब्रिटिश सरकार इसी दिन का इंतजार कर रही थी। ''3 नवंबर को ब्रिटिश सेना रियासत में आई और 7 नवंबर को अंग्रेज सरकार ने पंजाब से रियासत में जत्थों के आने पर प्रतिबंध लगा दिया।'' [115] 12 नवंबर को महाराजा ने अंग्रेज सरकार के राजनैतिक विभाग के अधिकारी बी.जे. गलैंसी की अध्यक्षता में जाँच आयोग गठित कर दिया। मार्च 1933 में ब्रिटिश सरकार के एक दूसरे राजनैतिक अधिकारी इलियट जेम्स डोवेल कॉलविन को राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त किया और ब्रिटिश सरकार के ही तीन अधिकारियों को राज्य का गृह, राजस्व एवं पुलिस मंत्री नियुक्त कर दिया। अब अंग्रेज सरकार का रियासत पर शिकंजा पूरी तरह कस गया था। अब उनके लिए शेख अब्दुल्ला और उसके साथियों की कोई उपयोगिता नहीं बची थी। काम पूरा हो जाने पर ''अंग्रेज सरकार ने शेख अब्दुल्ला को उसके साथियों सहित उपयोग कर लेने के बाद निचुड़ गए नींबू की तरह उठाकर बाहर फेंक दिया। शेख ने सिविल अवज्ञा आंदोलन चलाना चाहा तो इन अंग्रेज अधिकारियों ने उसे बुरी तरह कुचल दिया।'' [116]

अब राज्य का सारा प्रशासन परोक्ष रूप से ब्रिटिश सरकार के हाथ में आ गया था। दरअसल ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रशासन अपने हाथ में लेने और राज्य में शेख अब्दुल्ला[117] और उसके साथियों की मुसलिम सांप्रदायिकता को

बढ़ावा देने का उद्देश्य महाराजा हरि सिंह पर दबाव बनाकर गिलगित को लीज पर प्राप्त करना था। इससे पूर्व महाराजा इसके लिए तैयार नहीं थे। लेकिन अब ब्रिटिश सरकार ने राज्य में ऐसी स्थिति पैदा कर दी थी कि उनके पास यह माँग स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचा था। ''ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य पूरा हो गया। महाराजा ने सन् 1935 में 60 साल की लीज पर गिलगित अंग्रेजों को दे दिया। इस पर गिलगित में नियुक्त ब्रिटिश पॉलिटिकल एजेंट के नियंत्रण में हुंजा व नागर समेत पूरा गिलगित आ गया।'' [118] अब अंग्रेज अधिकारियों के रियासत में बने रहने की कोई उपयोगिता नहीं रह गई थी। इसलिए वे सभी अपने-अपने पुराने बसेरों में लौट गए।

3.1.1. मुसलिम कॉन्फ्रेंस से नेशनल कॉन्फ्रेंरस तक की यात्रा (1931-1946)

इस प्रकार शेख अब्दुल्ला की राज्य में राजनीति की शुरुआत ब्रिटिश सरकार के षड्यंत्रों की अमावस्या में हुई। उस समय शेख अपने आपको पूरी रियासत का नेता भी नहीं मानते थे। उनकी राजनीति केवल घाटी के सुन्नी मुसलमानों तक ही सीमित थी। कश्मीरी हिंदू भी उसमें शामिल नहीं थे। अब अंग्रेजी शासन द्वारा रुचि न दिखाए जाने के कारण शेख अकेले पड़ते जा रहे थे। इन्हीं दिनों उनका संपर्क पं. जवाहरलाल नेहरू से हो गया, जो कश्मीरी मूल के ही थे। उसके कारण उनका संपर्क भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से भी हुआ और उसके माध्यम से अन्य रियासतों में राजशाही के खिलाफ चल रहे प्रजा मंडल आंदोलनों से भी। नेहरू कश्मीर में शेख को प्रगतिशील पंथनिरपेक्ष नेता के तौर पर देखने लगे थे। नए हालात में अपनी भावी योजनाओं को ध्यान में रखते हुए शेख ने 1939 में मुसलिम कॉन्फ्रेंस से नाता तोड़कर अपनी नई पार्टी नेशनल कॉन्फ्रेंस बना ली। मुसलिम कॉन्फ्रेंस के उनके दूसरे साथी भी उनके साथ नेशनल कॉन्फ्रेंस में शामिल हो गए। पार्टी के दरवाजे अब केवल मुसलमानों के लिए न रखकर सभी के लिए खोल दिए गए। लेकिन फिर भी, नेशनल कॉन्फ्रेंस में कश्मीरी हिंदू बहुत बाद में भारतीय साम्यवादी पार्टी की रणनीति के तहत शामिल हुए, जब पार्टी को लगने लगा कि शेख को आगे कर साम्यवादी रूस की योजना के अनुसार कश्मीर में स्वतंत्र साम्यवादी सरकार स्थापित की जा सकती है। साम्यवादी पार्टी ने कश्मीरी हिंदुओं में उन दिनों एक गुट खड़ा कर लिया था। लेकिन इस सबके बावजूद तब भी शेख का नेतृत्व केवल घाटी तक ही सीमित था। उसके कद को विस्तार देने और उसे पूरी रियासत के नेता के तौर पर प्रचारित करने में नेहरू का ही हाथ था।

3.1.2 कश्मीर छोड़ो आंदोलन

जून 1945 में जम्मू-कश्मीर के प्रधानमंत्री सर बी.एन. राऊ पद-मुक्त हुए। महाराजा ने उनके स्थान पर राय बहादुर रामचंद्र काक को नया प्रधानमंत्री बनाया। देश की राजनीति में अब तक यह स्पष्ट हो गया था कि ब्रिटिश सरकार देश की सत्ता यहाँ के राजनैतिक दलों को सौंपकर जा रही है। भारत सरकार अधिनियम 1935 के प्रावधानों से पहले ही संकेत मिलने लगे थे कि रियासतों में भी राजशाही के दिन समाप्त होनेवाले हैं और अंतत: लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित होने वाली है। लोकतंत्र में राजनैतिक दलों की महत्ता कितनी होती है, यह किसी से छिपा हुआ नहीं है। सही समय देखकर कश्मीर घाटी में भी नेशनल कॉन्फ्रेंस ने महाराजा के खिलाफ 'कश्मीर छोड़ो' का आंदोलन छेड़ दिया। आंदोलन के नाम की साम्यता कांग्रेस के 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन से ली गई थी। यह ठीक है कि आंदोलन पूरी रियासत के एक छोटे से हिस्से तक ही सीमित था, लेकिन फिर भी राजशाही के खिलाफ रियासत में पहला राजनैतिक आंदोलन होने के नाते इसकी महत्ता तो थी ही। रामचंद्र काक की पुलिस ने शेख को गिरफ्तार कर लिया और न्यायालय से उन्हें नौ साल के कारावास की सजा हुई। लेकिन इसके कुछ महीनों के भीतर ही वितस्ता में

इतना पानी बह गया कि रियासत का पूरा परिदृश्य ही बदल गया। रियासत का भारत में अधिमिलन हो गया और शेख अब्दुल्ला रियासत के आपातकालीन प्रशासक बने।

3.2 शेख अब्दुल्ला का शासनकाल (1947-1953)

नेहरू रियासत का भारत में विलय इसी शर्त पर करने को तैयार थे कि रियासत की सत्ता शेख अब्दुल्ला को दे दी जाए। उसके इसी संग्रह के कारण शेख अब्दुल्ला को 30 अक्तूबर, 1947 को रियासत का आपात प्रशासक बनाया गया था। उसके बाद नेहरू शेख को राज्य का प्रधानमंत्री बनाने के लिए दबाव डालने लगे। अत: 5 मार्च, 1948 को महाराजा ने उन्हें रियासत का प्रधानमंत्री बना दिया और मंत्रिमंडल के गठन का भी अधिकार दे दिया। शेख की जिद के कारण भारत सरकार ने महाराजा हरि सिंह को रियासत छोड़ने को मजबूर कर दिया। कालांतर में जम्मू-कश्मीर संविधान अधिनियम 1939 में संशोधन करते हुए महाराजा को रियासत का सांविधानिक मुखिया बना दिया। नए रीजेंट कर्ण सिंह अनुभवहीन तथा अवयस्क थे। इस प्रकार प्रधानमंत्री शेख अब्दुल्ला के पास ही शासन की सभी शक्तियाँ निहित हो गईं। राज्य के लोगों का शेख अब्दुल्ला के शासन का अब तक अनुभव बहुत ज्यादा उत्साहवर्धक नहीं था। दरअसल शेख अब्दुल्ला उदार लोकतंत्र के मसीहा कभी थे ही नहीं। उसके आंदोलन में ही तानाशाही प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं। 1947 तक ये छिपी हुई थीं, लेकिन 1947 के उत्तरार्ध में नेशनल कॉन्फ्रेंस के हाथ राज्य की सत्ता आई तो ये प्रकट होनी शुरू हो गईं। सन् 1948 से लेकर 1953 तक शेख अब्दुल्ला ने नई दिल्ली और नेहरू के समर्थन से राज्य का शासन नेशनल कॉन्फ्रेंस की जागीर समझकर ही चलाया। शुरुआती दौर में ही राज्य में अलोकतांत्रिक राजनीति स्थापित करने में इस शेर-ए-कश्मीर की भूमिका असंदिग्ध है।[119] शेख के तौर-तरीकों को लेकर मेहरचंद महाजन ने सरदार पटेल को लिखा—''शेख प्रशासन को हिटलर के तरीके से चला रहे हैं, जो बदनामी का कारण बन रहा है। इसलिए मेरे लिए यहाँ से शीघ्रातिशीघ्र विदा हो जाना ही अच्छा है। मैं इस गुंडाराज से अपने आप को रत्ती भर भी संबंधित नहीं करना चाहता। राज्य में कहीं भी कानून का शासन नहीं है।'' [120] शेख के शासन की अवधि जम्मू व लद्दाख के लोगों के लिए तो अलोककारी, दमनकारी और अन्यायपूर्ण ही रही। उनके इस कालखंड में जम्मू में राजकाज चलाने के लिए ज्यादातर कश्मीर सुरक्षा नियम और लोक सुरक्षा अधिनियम का ही सहारा लिया गया।

3.2.1 बदला लेने की भावना

जम्मू क्षेत्र के बारे में भी और महाराजा द्वारा नियुक्त कर्मचारियों के मामले में भी शेख प्रतिशोध की भावना से कार्य करते दिखाई देते थे। जम्मू के पूर्व राज्यपाल चेतराम चोपड़ा का पहले कश्मीर में स्थानांतरण किया गया और बाद में उन्हें निलंबित कर दिया गया। जम्मू में तथाकथित सांप्रदायिक घटनाओं में उनकी संलिप्तता को लेकर विशेष प्राधिकरण में उनपर मुकदमा चलाने की तैयारियाँ होने लगीं। उनके श्रीनगर से बाहर जाने पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया।[121]

3.2.2 जम्मू विभाजन की नीति

शेख अब्दुल्ला ने कश्मीर के साथ जम्मू का प्रशासन सँभालते ही इस संभाग का भूगोल और जनसांख्यिकी बदलने के प्रयास प्रारंभ कर दिए। 1948 में ऊधमपुर जिला हिंदू-मुसलिम मिश्रित क्षेत्र था। इस जिले में जनसंख्या के लिहाज से हिंदू बहुमत में थे। शेख ने सन् 1948 में इसमें से मुसलिम बहुल क्षेत्र निकालकर एक नया डोडा जिला

बना दिया। डोडा में भद्रवाह, रामवन और किश्तवाड़ को मिलाकर वहाँ मुसलमानों की संख्या बढ़ाई गई। डोडा जिला जम्मू संभाग को लद्दाख से अलग करता है। शेख की योजना बाद में डोडा जिले को कश्मीर संभाग में ही मिला लेने की थी। इसी प्रकार रियासी जिले को समाप्त कर उसका बहुत सा हिस्सा पुंछ में मिला दिया गया। शेख द्वारा इस प्रकार जम्मू संभाग की रचना बदलने के इन प्रयासों का जम्मू में विरोध शुरू हो गया था।

3.2.3 धर्मार्थ न्यास में हस्तक्षेप

सन् 1846 में महाराजा गुलाब सिंह ने 'श्री रघुनाथजी की निधि' के नाम से एक धर्मार्थ कोष स्थापित किया था, जिसमें 5 लाख रुपए उन्होंने अपनी निजी संपत्ति में से दिए थे। इसके ब्याज से निम्न काम किए जाने थे—तीर्थों पर सदाव्रत की स्थापना, मंदिरों का जीर्णोद्धार निर्माण तथा प्रबंधन करना, संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना एवं संचालन करना तथा इसी प्रकार के अन्य धार्मिक कार्य करना। 1884 में महाराजा रणवीर सिंह ने निधि का संविधान बनाकर इसे न्यास बना दिया, ताकि भविष्य में भी यह चलता रहे। 1932 में न्यास ने सभी मंदिरों के दरवाजे हरिजनों के लिए भी खोल दिए। शेख सरकार ने सत्ता में आने पर न्यास की संपत्ति को जब्त कर लिया। ''पुरातत्त्व विभाग में संस्कृत शोध खंड था। इस विभाग ने लद्दाख और गिलगित से प्राप्त अनेक संस्कृत पांडुलिपियाँ छापी थीं। इस विभाग का बजट भी कुल मिलाकर 20 हजार रुपए ही थे। लेकिन शेख की सरकार ने यह विभाग बंद कर दिया।'' [122] राज्य में संस्कृत अनुसंधान विभाग कार्यरत था, जिसमें संस्कृत के अध्ययन एवं शोध कार्य को प्रोत्साहन मिलता था। नेशनल कॉन्फ्रेंस सरकार ने वह विभाग बंद करवा दिया और उसके स्थान पर अरबी भाषा के अध्ययन के लिए दारुल उलूम की स्थापना की।

3.2.4 विस्थापितों से भेदभाव

पाकिस्तान द्वारा कब्जा किए गए क्षेत्र से निर्वासित हजारों हिंदू और सिक्ख जम्मू-कश्मीर में ही बसना चाहते थे। लगभग 7 लाख कनाल उपजाऊ भूमि अकेले जम्मू में खाली थी, इसलिए इन निर्वासितों को आसानी से यहाँ बसाया जा सकता था। किंतु अब्दुल्ला सरकार उन्हें यहाँ बसाना नहीं चाहती थी, फलत: उन्हें भोपाल, भरतपुर और गंगानगर जैसे दूरस्थ इलाकों में भेजा गया। किंतु इसके विपरीत चीनी तुर्किस्तान से आए कजाक मुसलमानों को बसाने के लिए शेख सरकार उत्सुक थी।[123] पाकिस्तान बनने के कारण वहाँ से उजड़कर आनेवाले हिंदू सिक्खों के पुनर्वास में राज्य सरकार सहायता करने के स्थान पर व्यवधान उपस्थित कर रही थी। कश्मीर संभाग के मुजफ्फराबाद क्षेत्र से विस्थापित होकर आए दुर्भाग्यशाली हिंदू सिक्खों को भी कश्मीर घाटी में नहीं रहने दिया गया, अपितु उन्हें जम्मू और हिमाचल प्रदेश में कांगड़ा के पास योल कैंप में पहुँचा दिया।

3.2.5 सरकार व पार्टी के भेद समाप्त

शेख अब्दुल्ला ने नारा दिया—'एक ही पार्टी—नेशनल कॉन्फ्रेंस! एक ही रहबर शेख अब्दुल्ला। एक ही कार्यक्रम नया कश्मीर।' [124] इस नारे का अर्थ स्पष्ट था कि शेख राज्य में एक पार्टी का शासन स्थापित करना चाहते थे और उसमें जम्मू व लद्दाख को उनकी उचित हिस्सेदारी देने को तैयार नहीं थे। ''जनता का साधारण-से-साधारण काम भी नेशनल कॉन्फ्रेंस के कार्यकर्ता की सिफारिश पर ही होता था। राशन कार्ड बनवाने के लिए भी नेशनल कॉन्फ्रेंस के कार्यकर्ता की सिफारिश चाहिए थी। किसी को राज्य से बाहर तीर्थ यात्रा पर जाना हो या फिर घर में

किसी के देहांत के बाद गंगा में उसकी अस्थियाँ प्रवाहित करने के लिए हरिद्वार जाना हो तो परमिट नेशनल कॉन्फ्रेंस के कार्यकर्ता की सिफारिश के बिना नहीं मिल सकता था। उपायुक्त से लेकर पटवारी तक नेशनल कॉन्फ्रेंस के सदस्यता अभियान में जुटे हुए थे। सरकारी कर्मचारी शासक दल की जनसभाओं का आयोजन करते थे। पुंछ जिला का उपायुक्त तो एक से प्रकार नेशनल कॉन्फ्रेंस का जिला प्रभारी था। पुंछ का ही स्कूल इंस्पेक्टर गुलाम रसूल आजाद अपने सरकारी काम के साथ साथ नेशनल कॉन्फ्रेंस की स्थानीय शाखाओं का गठन भी करता था। सरकार नेशनल कॉन्फ्रेंस के घोषणा पत्र 'नया कश्मीर' का प्रचार सरकारी खर्चे पर कर रही थी। नेशनल कॉन्फ्रेंस ने अमन ब्रिगेड की स्थापना की, जिसका सारा खर्च सरकारी धन से चल रही कश्मीर-मिलिशिया द्वारा ही हो रहा था। अमन ब्रिगेड नेशनल कॉन्फ्रेंस के विरोधियों को डराने-धमकाने का काम करती थी।[125] सामान्य अधिवेशन राज्य का सरकारी बजट भी नेशनल कॉन्फ्रेंस में पारित किया जाता था। श्रीनगर में 1 जून, 1951 को नेशनल कॉन्फ्रेंस का वार्षिक अधिवेशन था। अधिवेशन में राज्य के मंत्री गिरधारी लाल डोगरा ने राज्य का 1951-52 का वार्षिक बजट पेश किया, जिसे उपस्थित प्रतिनिधियों ने बाकायदा बहस के बाद पारित किया।'' [126]

3.2.6 तानाशाही शासन

कश्मीर पर कबाइलियों के आक्रमण के समय नेशनल कॉन्फ्रेंस मिलिशिया का गठन किया था, जिसे भारत सरकार ने हथियार मुहैया करवाए थे और भारतीय सेना ने उन्हें प्रशिक्षण दिया था। बाद में यह मिलिशिया सरकारी खर्च पर चलनेवाली नेशनल कॉन्फ्रेंस की निजी सेना ही बन गई थी। ''साम्यवादी तत्त्व भी उसमें घुसकर उस पर नियंत्रण के प्रयास में थे।'' [127] जम्मू में व अन्यत्र भी नेशनल कॉन्फ्रेंस की सरकार नेशनल मिलिशिया का प्रयोग अपने विरोधियों को डराने के लिए करती थी। इस सशस्त्र बल में 6,500 जवान थे। लोकसभा में 7 जुलाई, 1952 को इस सशस्त्र बल पर मजेदार नोंक-झोंक हुई, लेकिन इसके साथ ही इसकी असलियत भी सामने आ गई। ''यह पूछे जाने पर कि क्या मिलिशिया नेशनल कॉन्फ्रेंस की शाखा है, नेहरू ने उत्तर दिया कि संविधान की दृष्टि से तो नहीं, लेकिन राज्य सरकार इस लोकप्रिय संगठन को मान्यता देती है। जब यह पूछा गया कि क्या मिलिशिया सरकारी मान्यता प्राप्त करने से पहले नेशनल कॉन्फ्रेंस का स्वयंसेवी अंग थी, तो संबंधित मंत्री टी.टी. कृष्णामाचारी जवाब देने के लिए उठे तो नेहरू ने उन्हें यह कहकर रोक दिया कि इन्हें इसका पता नहीं है। मैं कश्मीर के बारे में ज्यादा जानता हूँ। इस पर किसी ने पूछ लिया कि क्या नेशनल कॉन्फ्रेंस के पदाधिकारी ही नेशनल मिलिशिया के अधिकारी हैं, तो नेहरू को कहना पड़ा कि मैं यह तो नहीं जानता, लेकिन मुझे लगता है कि ऐसा ही है।'' [128]

''हिंदुस्तानी फौज या पुलिस से घाटी के लोग इतना नहीं डरते थे जितना पीस ब्रिगेड (नेशनल कॉन्फ्रेंस ने इस नाम से अपनी वॉलंटियर फोर्स बना रखी थी) और नेशनल कॉन्फ्रेंस के हलका प्रेजिडेंटों से। हलका प्रेजिडेंटों और पीस ब्रिगेड ने शेख साहिब के सत्ता काल में वही स्थान प्राप्त कर लिया था, जो नाजी जर्मनी में स्टार्म पर्स और गसटापो का था। कबाइलियों ने जितने अपराध बारामूला में कुछ सप्ताहों में किए थे, उनसे कुछ कम हलका प्रेजिडेंटों ने पीस ब्रिगेड द्वारा अपने-अपने क्षेत्रों में नहीं किए। यही संस्थाएँ और यही मशीनरी थी जिसे शेख साहिब ने बहुत से लोगों को सीमा पार फिंकवाने के लिए इस्तेमाल किया। राजनैतिक अपराधी जो कैद में थे, उनके साथ दूसरे अपराधियों से अप्राकृतिक यौनाचार करवाया गया और इसके बदले में उनकी सजाओं में कमी की गई।'' [129]

''शेख लोकतंत्र के आवरण में तानाशाह बनना चाहते थे, इसलिए उन्होंने स्वतंत्र कश्मीर की अवधारणा पर विचार करना शुरू कर दिया था। जहाँ तक कश्मीर में लोकतंत्र का प्रश्न था, उसके बारे में शेख की इतनी कल्पना थी कि एक चुनी हुई संसद् होगी, जिसमें उसी के द्वारा चुने हुए सदस्य भरे होंगे। विपक्ष के लिए कोई स्थान नहीं होगा। यदि होगा भी तो नाममात्र का होगा। ऐसी संसद् उसकी हर तानाशाही इच्छा पर अपना ठप्पा लगा दिया करेगी।'' [130] लेकिन जम्मू में तो उन्होंने लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित करने की बजाय वहाँ पुलिस राज ही कायम कर दिया। कलकत्ता का अंग्रेजी दैनिक 'द स्टेटसमैन' शेख अब्दुल्ला की नीतियों का सबसे बड़ा समर्थक था, लेकिन उसे भी लिखना पड़ा—'पुलिस राज की स्थापना के लक्षण प्रकट हो रहे हैं।' [131]

3.2.7 भूमि अधिग्रहण अभियान

शेख अब्दुल्ला के पास अभी तक सत्ता लोकतांत्रिक तरीके से नहीं आई थी। अभी वे महाराजा द्वारा मनोनीत प्रधानमंत्री के तौर पर ही कार्य कर रहे थे। लेकिन इसी कालखंड में उन्होंने ऐसे अनेक विवादास्पद निर्णय लेने शुरू कर दिए, जो नई परिस्थिति में चुनी हुई लोकतांत्रिक सरकार ही ले सकती है। उनमें से सबसे विवादास्पद निर्णय था लोगों की संपत्ति का बिना कोई मुआवजा दिए अधिग्रहण। इसे बिग लैंड एस्टेट अबोलिशन अधिनियम का नाम दिया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत जिस व्यक्ति के पास 20 एकड़ से ज्यादा जमीन है, उसका अधिग्रहण करके दूसरे किसानों को दे दिया गया। तर्क यह था कि नेशनल कॉन्फ्रेंस ने अपने 'नया कश्मीर' दस्तावेज में इसका वायदा किया था। ''नया कश्मीर के मुताबिक नागरिकों को सभी प्रकार के मौलिक अधिकार, प्रेस की आजादी, संगठित होने की आजादी, निर्वाचित विधायिका, शिक्षा का अधिकार, सभी को समान अवसर, आर्थिक शोषण से मुक्ति का प्रावधान था। अब 1947 की ऐतिहासिक घटनाओं ने शेख को नया कश्मीर कार्यान्वित करने का अवसर भी प्रदान किया था।'' [132] लेकिन शेख ने नया कश्मीर की बाकी घोषणाओं को भुला दिया।

1944 में जब शेख अब्दुल्ला ने नया कश्मीर का दस्तावेज तैयार किया था तो उसके क्रियान्वयन हेतु उनके सामने केवल कश्मीर घाटी थी। लेकिन अब इतिहास के एक घटना चक्र में शेख के पास पूरे राज्य की सत्ता आ गई थी। नया कश्मीर में 'भूमि उसकी जो उसको जोतें' वाले प्रस्ताव को लागू करने में तो शेख ने देरी नहीं की। इसको केवल कश्मीर में नहीं बल्कि पूरे राज्य में लागू किया गया। भूमि अधिग्रहण के उनके इस अभियान को लेकर विवाद भी उठा; क्योंकि प्रभावित होनेवाले लोग ज्यादातर जम्मू क्षेत्र के हिंदू थे। सरकार ने उनकी भूमि पर कब्जा करके उसे उनपर खेती करनेवाले लोगों में बाँट दिया। लेकिन सरकार ने इस भू अधिग्रहण में प्रभावित लोगों को मुआवजा नहीं दिया। सरकार यदि जनहित में भूमि का अधिग्रहण करती, तब भी उसका तर्क समझ में आ सकता था। वैसे तो नियमानुसार जनहित के लिए अधिग्रहण की जानेवाली भूमि का भी मुआवजा दिया जाता है। परंतु न भी दिया जाए तो भूमि के मालिक को कम-से-कम यह संतोष तो रहता है कि उसकी भूमि सार्वजनिक हित के लिए ली जा रही है। लेकिन जम्मू-कश्मीर में तो सरकार एक व्यक्ति से भूमि छीनकर दूसरे व्यक्ति को दे रही थी। साम्यवादी देशों में भी, जिनसे उन दिनों शेख खासे प्रभावित लगते थे, इस प्रकार अधिगृहीत भूमि का स्वामित्व सरकार के पास रहता है; लेकिन यहाँ तो स्वामित्व राज्य का न होकर व्यक्तियों का हो रहा था।

जम्मू क्षेत्र में अधिकांश लोग सेना में भरती हो जाते हैं। उनकी जमीन किराए पर दूसरे लोग जोतते थे। शेख के इस नए अभियान की चपेट में ऐसे सैनिक भी आ रहे थे। यहाँ तक कि लद्दाख में अनेक मठों और मंदिरों की

जमीन इस अभियान की चपेट में आ रही थी। वहाँ भी इसको लेकर असंतोष था। तर्क के लिए यह भी माना जा सकता है कि इसमें शेख का कोई साम्प्रदायिक दृष्टिकोण नहीं था। लेकिन यह तर्क तभी माना जा सकता था, यदि शेख नया कश्मीर में प्रस्तावित अन्य वायदों को भी उतनी ही तत्परता से पूरा करते। भूमि सुधार लागू करने के बाद शेख अब्दुल्ला ने नया कश्मीर के बाकी प्रावधानों से मुँह चुराना शुरू कर दिया। नया कश्मीर राज्य के सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के उनके लोकतांत्रिक अधिकार देने की बात करता है। शेख ने जम्मू-लद्दाख तो दूर, ये अधिकार कश्मीर घाटी के लोगों को भी देने से आनाकानी शुरू कर दी।

3.2.8 सांप्रदायिकता व क्षेत्रीयता का भाव

शेख अब्दुल्ला ने पंथनिरपेक्षता का आवरण तब तक ओढ़े रखा जब तक उन्हें आगे बढ़ने के लिए शेष भारत की सहायता की जरूरत थी। जैसे ही उनको लगा कि उनका काम शेष भारत के बिना भी चल सकता है तो उनकी सांप्रदायिक और अवसरवादी प्रवृत्तियाँ जाग्रत् हो गईं और वह अपने असली रंग में आने लगे।[133] शेख महाराजा हरि सिंह से लड़ते-लड़ते प्रकारांतर से डोगरों से ही लड़ने लगे। बाद में उन्होंने डोगरों को भारतीय राष्ट्रीयता से जोड़कर भारतीय राष्ट्रीयता से लड़ना शुरू कर दिया और कश्मीरी राष्ट्रीयता की बात करनी शुरू कर दी। जाहिर है, उनकी इन व्याख्याओं से राज्य के डोगरों, पहाड़ियों, गुज्जरों, बकरवालों, जनजातियों, शियाओं, लद्दाखियों, दरदों, बल्तियों और सामान्य मुसलमानों में असंतोष फैलता।

शेख अब्दुल्ला के करीबी साथी रहे प्रेमनाथ बजाज का कहना है कि वे सांप्रदायिक मनोवृत्ति के शख्स थे और उनका पंथनिरपेक्षता से कुछ लेना-देना नहीं था। शेख अब्दुल्ला व्यक्तिगत सत्ता के लिए जोड़-तोड़ करते थे। जिन दिनों यह स्पष्ट होने लगा था कि देश-विभाजन होने जा रहा है, उन्हीं दिनों शेख ने जिन्ना को श्रीनगर बुलाया था, ताकि वे (शेर-बकरा में) समझौता करवा सकें और शेख को घाटी के मुसलमानों का नेता स्थापित करवा सकें। जिन्ना ने श्रीनगर से जाते समय टिप्पणी करते हुए कहा कि मुझे शेख अब्दुल्ला और मुसलिम कॉन्फ्रेंस ने आपस में समझौते के लिए आमंत्रित किया था।[134]

नेहरू जिसको शेख की पंथनिरपेक्षता समझ रहे थे वह वास्तव में जिन्ना से समझौता न हो पाने के कारण विकल्पहीनता थी। इसे जम्मू के लोग तो अनुभव कर रहे थे, क्योंकि वे उनके प्रशासन को नजदीक से झेल रहे थे और शेष भारत के लोग भी समझ रहे थे; क्योंकि मुसलिम तुष्टीकरण उनकी मजबूरी नहीं थी। शेख अब्दुल्ला का कालांतार में मुसलिम नेतृत्व के प्रश्न पर जिन्ना से विवाद हो गया। जिन्ना अपने आपको हिंदुस्तान के मुसलमानों का निर्विवाद नेता मानते थे। दूसरी ओर, शेख अब्दुल्ला भी कहीं भीतर-ही-भीतर अपने आपको मुसलमानों का कद्दावर नेता मानने लगे थे। लेकिन जिन्ना की कश्मीर योजना में शेख अब्दुल्ला के लिए कोई स्थान नहीं था। ''जिन्ना कश्मीर को अपनी जेब में मानकर चल रहे थे, चाहे वह स्वयं आ जाए या फिर उसे जबरदस्ती छीन लिया जाए। ब्रिटिश सरकार ने उसे पाकिस्तान को देने का वायदा भी किया हुआ था। तर्क सीधा था कि रियासत मुसलिम बहुल है और उसके आने-जाने के रास्ते भी पाकिस्तान में से ही हैं।'' [135] जाहिर है, जिन्ना के नेतृत्व में बन रहे पाकिस्तान में शेख अब्दुल्ला के लिए सम्मानजनक जगह नहीं हो सकती थी।

शेख ने आपात प्रशासक का पद सँभालते ही सचिवालय के अधिकारियों से बात की। उन्हीं के शब्दों में, ''मैंने कहा कि हमें पाकिस्तान से कोई वैर नहीं है। हमारा उद्देश्य सदा यही रहा है कि कश्मीर के भविष्य का फैसला करने

का अधिकार कश्मीर के लोगों को है। इसलिए हिंदुस्तान से अधिमिलन का रूप अस्थायी है और हम जनमत-संग्रह के द्वारा इसका फैसला करना चाहते हैं। जिन्ना साहिब को यदि अब भी यह लोकतांत्रिक तरीका स्वीकार हो तो मैं उनसे बात करने के लिए कराची भी जा सकता हूँ।'' [136] दरअसल लोकतंत्र का तरीका शेख अब्दुल्ला को भी स्वीकार नहीं था। वे भी जिन्ना द्वारा नकार दिए जाने के बाद मुसलमानों के नाम पर नेहरू का सांप्रदायिक भयदोहन कर रहे थे।

शेख अब्दुल्ला वैसे तो कश्मीर, कश्मीरियत इत्यादि के पक्षधर होने का दम भरते रहते थे, लेकिन उनका कश्मीरियत या कश्मीरी संस्कृति से कितना लगाव है, यह भी जल्दी ही स्पष्ट होने लगा। शेख ने राज्य में उर्दू को राजभाषा बना दिया। जबकि उर्दू राज्य के तीनों संभागों में से किसी की भी भाषा नहीं थी। जम्मू में डोगरी, लद्दाख में भोटी और कश्मीर में कश्मीरी भाषा प्रचलित है। शेख यदि चाहते तो कम-से-कम कश्मीर में तो कश्मीरी भाषा लागू कर ही सकते थे; लेकिन उन्होंने वहाँ भी कश्मीरी पर उर्दू को ही अधिमान दिया। उर्दू उनकी दृष्टि में मुसलमानों की भाषा थी। अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के दिल्ली में निदेशक पं. मौलि चंद्र शर्मा के अनुसार, ''पहले राज्य के स्कूलों में हिंदी और उर्दू दोनों भाषाएँ पढ़ाई जाती थीं। दसवीं कक्षा तक हिंदी शिक्षा का माध्यम भी थी। जम्मू में ज्यादा छात्र हिंदी माध्यम के ही थे; लेकिन शेख ने अब उर्दू लागू कर दी है और जो विद्यालय हिंदी माध्यम से पढ़ाते थे, उनका अनुदान बंद कर दिया।'' [137]

शेख मोहम्मद अब्दुल्ला की मानसिकता उनके कार्यकलापों व भाषणों से यदा कदा झलकती रहती थी। वैसे वे अपनी वास्तविकता को आवरण में छिपाकर रखने का प्रयास करते थे, लेकिन फिर भी क्रोध या उत्तेजना में वे कई बार पकड़े जाते थे। दिल्ली में शेख अब्दुल्ला ने कहा कि रियासत का कोई भी हिस्सा हिंदू बहुल नहीं है। वर्ष 1941 की जनगणना में जम्मू में 56 प्रतिशत मुसलमान हैं और लद्दाख में 50 प्रतिशत।[138] दिल्ली में तो वे लोगों को धोखा दे सकते थे, लेकिन जम्मू व लद्दाखवालों को धोखा देना संभव नहीं था, क्योंकि वे उन्हीं के बीच के थे। शेख के बारे में धीरे-धीरे एक उक्ति प्रसिद्ध होती जा रही थी कि 'वे कश्मीर में घोर सांप्रदायिक हैं, जम्मू आते-आते कम्युनिस्ट बन जाते हैं और दिल्ली तक जाते-जाते राष्ट्रवादी हो जाते हैं।' 5 अगस्त, 1952 को जब नेहरू के कश्मीर संबंधी वक्तव्य पर राज्यसभा में चर्चा हो रही थी तो एक सदस्य एस. मोहंती ने शेख की सांप्रदायिकता को नंगा किया।

प्रश्न राजशाही हटाने का था। राज्य में से वंशानुगत शासन समाप्त होना चाहिए, इस पर किसी को क्या आपत्ति हो सकती थी? राज्य सरकार ने वंशानुगत शासन को समाप्त करने को तार्किक आधार पर सिद्ध करने के लिए अंग्रेजी भाषा में एक पुस्तिका The case for the abolition of hereditary monarchy का प्रकाशन किया था। इस पुस्तिका में वंशानुगत शासन समाप्त करने हेतु दिए गए तर्क को मोहंती ने उद्धृत किया—''अरब के इतिहास पर सरसरी तौर पर भी नजर डालने से पता चलता है कि किस प्रकार वहाँ मानवाधिकारों की वकालत की गई है। हजरत मोहम्मद ने मानवाधिकारों का प्रश्न उठाया और मानव-मानव की समानता की अवधारणा को स्पष्ट किया। उन्होंने निहित स्वार्थों का विरोध किया और विश्व के सामने लोकतंत्र का उदाहरण प्रस्तुत किया। हजरत मोहम्मद के अनुसार इसलाम वंशानुगत शासन को मान्यता नहीं देता।'' [139] मोहंती ने फिर शेख को ही उद्धृत

किया। शेख ने, मोहंती के अनुसार, ''कश्मीर की संविधान सभा की बुनियादी सिद्धांत समिति में कहा था कि हजरत मोहम्मद की मृत्यु के बाद इसलाम का इतिहास दुनिया के सामने एक आदर्श नमूना है। इसमें हम क्या देखते हैं कि उनकी मृत्यु के बाद जो पहला खलीफा नियुक्त किया गया, वह उनका बेटा नहीं था और न ही उनका कोई सगा-संबंधी था।'' मोहंती ने पूछा कि यह क्या तर्क है कि इसलाम वंशानुगत शासन को मान्यता नहीं देता, इसलिए उसे कश्मीर से भी जाना होगा? मोहंती ने फिर स्वयं ही उत्तर भी दिया। उनके अनुसार, ''जिनकी रग-रग में सांप्रदायिकता भरी हुई है, वे सबसे ऊँची आवाज में पंथनिरपेक्षता का नारा लगा रहे हैं।... शेख साहिब किसी गहरी चाल में हैं। वे कोशिश कर रहे है कि जम्मू को भी मुसलिम बहुल राज्य बना दिया जाए या फिर उसके कुछ हिस्से निकालकर उसे पंगु बना दिया जाए। पहले ही जम्मू से राजौरी और डोडा को अलग कर दिया है, ताकि उन्हें निकट भविष्य में कश्मीर में मिला दिया जाए। यह सब इसलिए किया जा रहा है, ताकि यदि कल रायशुमारी करवानी पड़ी तो जम्मू समस्या पैदा न कर सके।'' [140] शासन द्वारा जो नए पद विज्ञाप्ति किए जाते थे, उनमें अनेक को केवल मुसलमानों के लिए आरक्षित कर दिया जाने लगा। ''शेख पंथनिरपेक्षता के नाम पर इसलामीकरण, लोकतंत्र के नाम पर एकदलीय तानाशाही और जनता की राय के नाम पर शताब्दियों से चले आ रहे सांस्कृतिक व ऐतिहासिक रिश्तों को तोड़ना चाहते थे।'' [141]

3.2.9 जम्मू-लद्दाख से भेदभाव

जहाँ तक जम्मू एवं लद्दाख के लोगों की भावनाओं का प्रश्न था, शेख की इन क्षेत्रों के लोगों से एक समान दूरी बनी हुई थी। इन दोनों संभागों के लोग रियासत का भारत में पूरी तरह से अधिमिलन चाहते थे, जबकि शेख की योजनाएँ कुछ और थीं। इस पूरे मामले में नेहरू दृढ़ता के साथ अब्दुल्ला और नेशनल कॉन्फ्रेंरस के साथ खड़े थे। जाहिर है, रियासत के अन्य संभागों से उनकी मानसिक और राजनैतिक दूरी विद्यमान थी, जिसके कारण जम्मू में निराशा उत्पन्न हो रही थी। शेख अब्दुल्ला जो अधिकार कश्मीर और वहाँ के राजनैतिक दल नेशनल कॉन्फ्रेंरस को दे रहे थे, वे ये अधिकार जम्मू एवं लद्दाख के लोगों को देने के लिए तैयार नहीं थे। कश्मीर घाटी में वहाँ के मुख्य राजनैतिक दल नेशनल कॉन्फ्रेंरस ने कश्मीरियों के लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए कुछ वर्षों तक संघर्ष किया था। इसमें किसी-न-किसी रूप में नेहरू ने भी उनका साथ दिया था। नेहरू के प्रयासों और नेशनल कॉन्फ्रेंरस के संघर्ष के कारण कश्मीर की सत्ता नेशनल कॉन्फ्रेंरस को मिल गई थी। परंतु नेशनल कॉन्फ्रेंरस की यह सत्ता जम्मू एवं लद्दाख पर अलोकतांत्रिक ढंग से थोपी जा रही थी। जम्मू में वहाँ के मुख्य राजनैतिक दल प्रजा परिषद् को सत्ता में भागीदारी की बात तो दूर, उसे अपने सामान्य क्रियाकलाप भी नहीं करने दिए जा रहे थे। शेख अब्दुल्ला तो उसका दमन कर ही रहे थे, नेहरू भी जम्मू के लोगों और प्रजा परिषद् को सांप्रदायिक बताकर लगभग अपशब्दों का प्रयोग कर रहे थे। सरकार जम्मू से महत्त्वपूर्ण कार्यालय श्रीनगर लेकर जा रही थी। जम्मू का सरकारी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय श्रीनगर ले जाया गया। यहाँ तक कि जम्मू के पुस्तकालयों से पुस्तकें भी श्रीनगर भेजी जाने लगीं। तोशखान भी श्रीनगर ले जाया गया। जम्मू संभाग की भाषा डोगरी को भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान नहीं दिया गया था। इसमें कश्मीरी भाषा को शामिल कर लिया गया था; जबकि उसके बोलनेवालों की संख्या डोगरी से कहीं कम थी। जहाँ तक लद्दाख का प्रश्न था, शेख के नक्कारखाने में उनकी आवाज तूती की आवाज बनकर रह गई थी।

3.3. विदेशों से साँठ-गाँठ

शेख अब्दुल्ला को भारत सरकार ने सन् 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ में जम्मू-कश्मीर पर भारत का पक्ष रखने के लिए न्यूयार्क भेजा था। वहाँ शेख पाकिस्तान से आए हुए प्रतिनिधिमंडल से भी 'एक होटल में मिले और चार घंटे तक इकट्ठे रहे।' [142] जाहिर है कि चार घंटों में लंबी बात हुई होगी, जिसका खुलासा शेख ने स्वयं ही किया—''मैंने अपनी बातचीत के दौरान (कश्मीर के) विभिन्न संभावित समाधान सुझाए और कहा कि रियासत को दो देशों के बीच एक स्वतंत्र बफर रियासत की हैसियत से रखना भी इस समस्या का एक विवेकपूर्ण हल हो सकता है। लेकिन स्वतंत्र रियासत की स्थापना की जमानत दोनों देशों, भारत-पाकिस्तान के अलावा संयुक्त राष्ट्र और चीन को भी देनी होगी।'' [143] लेकिन पाकिस्तान इसके लिए तैयार नहीं था। शेख को इसका कष्ट हुआ। ''मैंने उनसे कहा कि समय आएगा, जब आप चाहेंगे कि अगर केवल घाटी को ही आजाद रखा जाता तो बड़ी बात हो। लेकिन उस समय तक झेलम का इतना पानी बह चुका होगा कि कोई आपकी बात पर कान धरने को भी तैयार न होगा।'' [144] वैसे तो 1948 में ही संयुक्त राष्ट्र संघ में ब्रिटेन-अमेरिका कूटनीति ने अपनी भावी कश्मीर नीति के संकेत देने शुरू कर दिए थे। अर्जेंटीना के प्रतिनिधि डॉ. होजे अरसे ने कहा कि जरूरी नहीं कि कश्मीर भारत या पाकिस्तान दोनों में से किसी एक में शामिल हो ही। कश्मीर आजाद रहने का निर्णय भी कर सकता है।[145]

मई में शेख अब्दुल्ला ने 'लंदन ऑब्जर्वर' अखबार के संवाददाता माइकल डेविडसन को इंटरव्यू दिया था, जो 6 मई, 1949 के 'मांट्रियल डेली स्टार' में भी छपी थी। इसमें शेख ने कहा था कि जम्मू-कश्मीर का भारत या पाकिस्तान, दोनों में से किसी एक के साथ अधिमिलन शांति स्थापित नहीं कर सकता। हम इन दोनों के साथ शांति से रहना चाहते हैं। इसका एक ही मार्ग हो सकता है कि दोनों के बीच हम दोनों से अच्छे आर्थिक संबंध बनाकर रहें। लेकिन इस आजाद कश्मीर की गारंटी केवल भारत और पाकिस्तान को ही नहीं देनी होगी, बल्कि ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका सहित संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्य देशों को भी देनी होगी।'' [146]

माना जाता है कि अमेरिका में जाकर ही शेख की स्वतंत्र कश्मीर की सुप्त इच्छा को पंख लगे। ''जब 1949 में शेख दूसरी बार विदेश प्रवास पर गए, वहीं निहित स्वार्थोंवाले अभिकरणों ने उनके आजादी के इन विचारों को प्रोत्साहित किया। शेख की कश्मीर वापसी के तुरंत बाद ही ब्रिटिश मीडिया ने उनके प्रशासन में हुई प्रगति एवं विकास की प्रशंसा में कहानियाँ छापनी शुरू कर दीं, जबकि इससे पहले वही मीडिया उन्हें हेय और तुच्छ मानता था।'' [147] लगता है, शेख ने अपने भीतर स्वतंत्र जम्मू-कश्मीर की इच्छा को कभी मरने नहीं दिया। जिन दिनों नेहरू शेख को कंधों पर उठाए घूम रहे थे उन दिनों भी शेख आजादी का जाल बुन रहे थे। वे दिल्ली में अमेरिकी राजदूत हैंडरसन से मिलकर राज्य की आजादी की संभावनाएँ तलाश रहे थे। राजदूत ने 29 सितंबर, 1950 को अमेरिका के विदेश मंत्री को इसका ब्योरा दिया—''कश्मीर में मेरी शेख अब्दुल्ला की पहल पर दो गुप्त मंत्रणाएँ हुईं। उसने उत्साह के साथ आग्रहपूर्वक कहा कि कश्मीर स्वतंत्र होना चाहिए। उसका कहना था कि ज्यादातर लोग यही चाहते हैं। उसे विश्वास था कि आजाद कश्मीर के नेता भी इसमें सहयोग करेंगे। कश्मीरियों को यह समझ नहीं आ रहा कि संयुक्त राष्ट्र कश्मीर समस्या के समाधान के लिए इस तीसरे विकल्प की उपेक्षा क्यों कर रहा है। शेख

अब्दुल्ला की पत्नी उनसे भी एक कदम आगे जाने को तैयार थीं। बेगम अब्दुल्ला ने श्रीनगर में भारत-पाक हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ की समिति (UNCIP) को संदेश भेजा कि चाहे उनके पति कश्मीर की आजादी के लिए पुख्ता स्टैंड नहीं ले सकते, लेकिन मैं इसके लिए तैयार हूँ।'' [148]

सबसे बड़ी बात यह थी कि शेख की इस पूरी योजना में राज्य के डोगरों, गुज्जरों, पहाड़ियों, शियाओं और जनजातियों को जबरदस्ती नत्थी किया जा रहा था। शेख कश्मीरी बोलनेवाले मुसलमानों की लड़ाई लड़ रहे थे, लेकिन राज्य में भारत की लड़ाई लड़नेवाला कोई नहीं था। पं. नेहरू भी इस पूरी लड़ाई में शेख के साथ थे। सरदार पटेल यह लड़ाई लड़ सकते थे और जब तक वे जिंदा रहे, उन्होंने अपने सामर्थ्य के अनुसार यह लड़ाई लड़ी भी, चाहे नेहरू ने जम्मू-कश्मीर का प्रश्न उनके रियासती मंत्रालय से छीनकर अपने पास रख लिया था। लेकिन 15 दिसंबर, 1950 को उनका भी देहावसान हो गया।

शेख अब्दुल्ला अब धीरे-धीरे अपने असली रंग में आ रहे थे। वे ऐसा मानकर चल रहे थे कि जनमत-संग्रह के जिस जाल में भारत सुरक्षा परिषद् में फँस चुका है, उसमे भारत सरकार के पास उनकी माँगें और शर्तें मानने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है। इसलिए उनके भाषण और टिप्पणियाँ दिन-प्रतिदिन आपत्तिजनक होती जा रही थीं। जम्मू संभाग के रणवीर सिंह पुरा में 10 अप्रैल, 1952 को एक जनसभा को संबोधित करते हुए जब उन्होंने कहा कि रियासत का भारत में अधिमिलन सीमित प्रकृति का है। जो लोग चाहते हैं कि कश्मीर अपनी अलग पहचान त्याग दे वे इस समय के राजनैतिक यथार्थ से परिचित नहीं हैं, तो दिल्ली तक खलबली मच गई। लेकिन शेख अब्दुल्ला नहीं रुके। एक सप्ताह बाद ही 18 अप्रैल, 1952 को उन्होंने श्रीनगर में इससे भी आगे जाकर फिर कहा कि ''रियासत केवल सुरक्षा, संचार व विदेशी मामलों में भारत से जुड़ी है। बाकी वह पूरी तरह स्वतंत्र है।'' [149]

3.4 शेख प्रशासन में साम्यवादी पार्टी की भूमिका

जम्मू-कश्मीर राज्य में शेख सबसे अधिक विश्वास साम्यवादी पार्टी के लोगों पर ही करते थे। वास्तव में शेख के प्रशासन के प्रारंभिक वर्षों में साम्यवादी कैडर ही शेख का पूरा अभियान चला रहे थे। साम्यवादी पार्टी के थोड़ी-बहुत संख्या में प्रतिबद्धित कार्यकर्ता तो राज्य में विद्यमान थे, परंतु उनका कोई उल्लेखनीय जनाधार नहीं था। 10-15 ऐसे कार्यकर्ता जम्मू में भी थे। विभाजन से पहले साम्यवादी पार्टी पाकिस्तान बनाए जाने का समर्थन करती थी और विभाजन के उपरांत पार्टी जम्मू-कश्मीर को स्वतंत्र देश बनाए जाने के पक्ष में थी। इस काम में पार्टी शेख के जनाधार का इस्तेमाल कर रही थी। राज्य की राष्ट्रवादी शक्तियाँ साम्यवादी पार्टी के इस राष्ट्र-विरोधी और राज्य के हितों को आघात पहुँचानेवाली नीति से खिन्न थी। परंतु शेख की नाक का बाल यही कामरेड बने हुए थे। जम्मू-कश्मीर रियासत में अस्थिरता पैदा करने और उसकी स्थिति को लेकर संशय व अनिश्चितता निर्माण करने में उस समय के साम्यवादी दल की भूमिका का विश्लेषण करना भी आवश्यक है। वास्तव में राज्य को लेकर भ्रम फैलाने और अनिश्चितता की स्थिति बनाए रखने में शेख अब्दुल्ला को प्रोत्साहित करने में जितना हाथ इंग्लैंड-अमेरिकी कूटनीति का है उतना ही उस समय की भारतीय साम्यवादी पार्टी का भी है। सी.पी.आई. का 'राष्ट्रीयता' के विरोध का पक्ष तो सर्वविदित है ही, क्योंकि मार्क्सवादी अवधारणा में राष्ट्रीयता मानवता-विरोधी है और अंतरराष्ट्रीयता के आधार पर ही विभिन्न समस्याओं का आकलन व समाधान खोजा जाना चाहिए। उन्होंने जम्मू-कश्मीर को भी अपनी अंतरराष्ट्रीय रणनीति की प्रयोगशाला बना लिया और इसमें शेख अब्दुल्ला को भी शामिल कर लिया। शेख को

इसमें कोई हिचकिचाहट नहीं थी। श्रीनगर में लाल चौक का नामकरण उन दिनों शेख ने साम्यवादियों के प्रभाव में ही किया था।

3.4.1 साम्यवादियों की समानांतर योजना

रूस में साम्यवादी क्रांति के बाद दुनिया भर में साम्यवादी विचारों का प्रचार-प्रसार भी बढ़ा था और लोगों में एक नई आशा पनपी थी। रूस की सफल क्रांति के बाद अनेक देशों में साम्यवादी दलों की स्थापना हुई थी। भारत में भी उन्हीं दिनों सी.पी.आई. ने आकार ग्रहण करना शुरू किया था। जिन्ना भारत को लेकर द्विराष्ट्रवाद का सिद्धांत प्रतिस्थापित कर रहे थे। लेकिन सी.पी.आई. की दृष्टि से तो भारत पहले ही एक राष्ट्र नहीं था, बल्कि अनेक राष्ट्रों का समूह था। पार्टी की मान्यता थी कि प्रत्येक राष्ट्र को भारत से अलग होने का अधिकार है। अंग्रेजों के जाने से लगभग एक वर्ष पहले सी.पी.आई. के मुखपत्र 'पीपुल्स एज' ने अपने 5 मई, 1946 के एक अंक में लिखा था—''सांप्रदायिक आधार पर संवैधानिक हल तलाशने के बजाय बेहतर होगा कि भारत में रह रही सभी राष्ट्रीयताओं को देश से अलग होने का अधिकार दे दिया जाए।'' अखबार ने आगे लिखा कि ''देश का भाषा और संस्कृति के आधार पर वैज्ञानिक वर्गीकरण कर दिया जाए और प्रत्येक राष्ट्रीयता को अलग होने का अधिकार दिया जाए।'' 150 इसके साथ ही कम्युनिस्ट पार्टी सशस्त्र क्रांति के माध्यम से सत्ता हथियाने का ताना-बाना भी बुन रही थी; क्योंकि रूस में सत्ता का परिवर्तन खूनी क्रांति के माध्यम से हुआ था। कम्युनिस्ट पार्टी देश के भीतर ऐसे स्थानों की तलाश में लगी हुई थी, जहाँ अंग्रेजों के चले जाने के बाद सशस्त्र क्रांति के बल पर सत्ता प्राप्त कर कम्युनिस्ट शासन की स्थापना की जा सकती थी। बीसवीं शताब्दी के पाँचवें दशक में जब अंग्रेज यहाँ से बोरिया-बिस्तर समेट रहे थे तो ई.एम.एस. नंबूदरीपाद और ए.के. गोपालन केरल में पाकिस्तान जिंदाबाद और मोपलास्तान जिंदाबाद के नारे लगाते हुए घूम रहे थे। उद्देश्य था सशस्त्र क्रांति के बल पर केरल के मोपलास्तान में स्वतंत्र कम्युनिस्ट सत्ता की स्थापना करना।

3.4.2 साम्यवादी योजना में कश्मीर का स्थान

कम्युनिस्टों ने सशस्त्र क्रांति के लिए पहला चयन तो हैदराबाद रियासत का किया, जो पार्टी के सशस्त्र क्रांतिकारी आंदोलन के नाम पर प्रसिद्ध हुआ और दूसरे स्थान के लिए कम्युनिस्टों की दृष्टि में कश्मीर सबसे उपयुक्त स्थान हो सकता था। उसका मुख्य कारण इस रियासत की भौगोलिक सीमा थी। रियासत की सीमा रूस और चीन के साथ लगती थी। चीन में माओ के नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी सत्ता पर कब्जा करने के लिए आंदोलन चला रही थी। कश्मीर में ऐसा सशस्त्र आंदोलन चलने पर रूस से आसानी से सहायता प्राप्त हो सकती थी और देर-सबेर सशस्त्र शक्ति के बल पर कश्मीर को एक स्वतंत्र साम्यवादी देश बनाया जा सकता था। लेकिन इसके लिए जरूरी था कि रियासत भारत में पूर्ण तौर पर शामिल न हो और साथ ही नेशनल कॉन्फ्रेंरस पार्टी में घुसपैठ करके उसके ढाँचे का भविष्य में इस्तेमाल किया जाए।

3.4.3 साम्यवादी दल व शेख अब्दुल्ला

हितों का समझौता—उधर शेख अब्दुल्ला को भी लगता था कि यदि उनकी छवि मुसलमान नेता की बनी तो रियासत का शासक बनने का उनका स्वप्न पूरा नहीं हो सकता और न ही उन्हें अपने इस आंदोलन में भारत की सहायता प्राप्त हो सकती है। इसलिए शेख अब्दुल्ला भी चाहते थे कि यदि साम्यवादी उनके साथ मिल जाते हैं तो उनकी छवि पंथनिरपेक्ष नेता की बन जाएगी। इन नई परिस्थितियों में कांग्रेस भी सहायता कर सकती थी। साम्यवादी

अपनी योजना के कारण शेख अब्दुल्ला के साथ जाने को लालायित थे और अब्दुल्ला अपनी योजना के लिए उनका प्रयोग करने को आतुर थे। कश्मीर में साम्यवादी पार्टी के ज्यादातर सदस्य कश्मीरी हिंदू ही थे। पार्टी ने डॉ. एन.एन. रैना की अध्यक्षता में अपनी एक शाखा वहाँ स्थापित की हुई थी। इन कश्मीरी हिंदू कम्युनिस्टों के नेशनल कॉन्फ्रेंस में आ जाने के कारण शेख अब्दुल्ला की छवि पंथनिरपेक्ष नेता की बनने लगी और इस छवि के कारण पं. जवाहर लाल नेहरू भी अब्दुल्ला के साथ आ खड़े हुए। अब्दुल्ला ने समय व स्थान देखकर मार्क्सवादी और समाजवादी शब्दावली का प्रयोग करना भी शुरू किया। नेशनल कॉन्फ्रेंस में कश्मीरी कम्युनिस्ट हिंदुओं के आ जाने से भविष्य में भी शेख को कोई खतरा नहीं हो सकता था। क्योंकि इन कम्युनिस्ट हिंदुओं का कोई जनाधार नहीं था। अब्दुल्ला को ऐसे जनाधार-विहीन हिंदू नेताओं की ही जरूरत थी। धीरे-धीरे अब्दुल्ला ने ऐसा आभास देना शुरू कर दिया, मानो वे चिंतन के स्तर पर समाजवादी खेमे से ही ताल्लुक रखते हों। पंजाब से जाने-माने कम्युनिस्ट श्री बी.पी.एल. बेदी और उनकी यूरोप मूल की पत्नी करेवा बेदी के आ जाने के बाद अब्दुल्ला को अपनी इस छवि के प्रसार करने के लिए बहुत सहायता मिली। बेदी दंपती ने ही 1944 में 'नया कश्मीर' नाम से नेशनल कॉन्फ्रेंस के लिए नया घोषणा-पत्र तैयार किया था। गहराई से देखने से पता चलता है कि इसका बहुत सा हिस्सा 'पीपुल्स एज' में छपे मार्क्सवादी साहित्य में से लिया गया है। इसे तैयार करने में एन.एन. रैना और मोती लाल मिस्त्री ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। लेकिन यह घोषणा-पत्र शेख अब्दुल्ला के नाम से ही प्रचारित-प्रसारित किया गया। इसके छपने के बाद कम्युनिस्ट नेता अब्दुल्ला को शोषितों का मसीहा बताने लगे।

कम्युनिस्टों की चाल थी कि रियासत भारत में शामिल न हो, ताकि बाद में उसे क्रांति द्वारा आजाद देश घोषित कर दिया जाए। शेख अब्दुल्ला भी रियासत को नाम मात्र के लिए भारत में रखना चाहते थे, ताकि बाहरी या भीतरी संकट के समय भारतीय सेना उनकी रक्षा कर सके। व्यावहारिक रूप से वे स्वतंत्र राज्य के शासक बनना चाहते थे। सन् 1948 से 1953 के बीच सी.पी.आई. और सोवियत रूस शेख अब्दुल्ला को कश्मीर की आजादी के लिए प्रेरित व उत्साहित कर रहे थे। उसके बाद अमेरिका इस काम में आगे आ गया। मई 1953 में अमेरिका के अदलाई स्टीवेंसन ने शेख से लंबी गुप्त मुलाकातों के बाद एक साक्षात्कार में कहा कि कश्मीर का भला इसी में है कि वह भारत व पाकिस्तान दोनों से दूर एक आजाद देश के तौर पर रहे।[151] शेख अब्दुल्ला के अमेरिकी खेमे के नजदीक चले जाने के बाद ही सी.पी.आई. ने उससे नाता तोड़ा और राज्य को भारत का हिस्सा कहना शुरू किया।

रियासत की राष्ट्रवादी शक्तियाँ इन खतरों को भाँप ही नहीं रही थीं बल्कि उनका व्यावहारिक रूप भी देख रही थीं। शेख अब्दुल्ला और सी.पी.आई. की योजनाओं में उन्हें अपना भविष्य अंधकारमय दिखाई दे रहा था। प्रश्न केवल रियासत के हिंदुओं, सिक्खों, शियाओं, गुज्जरों और बौद्धों के भविष्य का ही नहीं था। यह परोक्ष रूप से भारत को कमजोर करने की अंतरराष्ट्रीय शतरंज थी, जिसकी चालें सुरक्षा परिषद् में चली जा रही थीं। शेख अब्दुल्ला तो उसके मोहरे भर थे। सी.पी.आई. के महासचिव सुंदरैया प्रेमनाथ बजाज से कह रहे थे कि शेख हमारा मोहरा है।[152] अपने स्वप्न लोक में विचर रहे नेहरू इसको समझ नहीं रहे थे और जो समझते थे, ऐसे सरदार पटेल अब इस दुनिया में नहीं रहे थे। नेहरू के भय से कांग्रेस में भी सन्नाटा था। कांग्रेसी भारत के संकट को समझ तो रहे थे, पर वे नेहरू के सामने बोलने की हिम्मत नहीं जुटा पाते थे। प्रजा परिषद् को वास्तव में पूरे भारत की यह लड़ाई अकेले अपने बलबूते ही लड़नी थी।

3.5 राजशाही की समाप्ति और संविधान को चुनौती

शेख के शासन काल में संविधान सभा की 31 अक्तूबर, 1951 से लेकर 1953 में उनके अपदस्थ होने तक कुल मिलाकर छह बैठकें हुईं, जिनमें मुख्य तौर पर राज्य के लिए अलग ध्वज और वंशानुगत शासन समाप्त करने के निर्णय ही किए गए। जाहिर है शेख संविधान सभा का उपयोग संविधान निर्माण के कार्य को गति देने के लिए नहीं बल्कि अपने राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कर रहे थे। संविधान सभा ने 20 जून, 1952 को राजशाही समाप्त करने और राजप्रमुख के स्थान पर निर्वाचित सदर-ए-रियासत के पद की स्थापना करनेवाला प्रस्ताव पास किया। लेकिन इस प्रस्ताव के पास होने से पहले ही इसकी सांविधानिकता को लेकर देश भर में बहस छिड़ गई। कर्ण सिंह के ही शब्दों में, ''भारतीय परिसंघ में जम्मू-कश्मीर विलय की कानूनी और सांविधानिक वैधता मेरे पिता द्वारा हस्ताक्षरित अधिमिलन-पत्र पर निर्भर थी। अब उसी व्यक्ति को ऐसी सभा द्वारा अपमानजनक तरीके से अलग किया जा रहा था, जिसे उसी के बेटे यानी मेरे द्वारा हस्ताक्षरित घोषणा-पत्र के जरिए गठित किया गया था। जवाहरलाल नेहरू तथा शेख अब्दुल्ला दोनों ही जिस राजनैतिक परिदृश्य से मेरे पिता को पूरी तरह हटाने को अनिवार्य बाध्यता समझ रहे थे, उससे एक दिलचस्प सांविधानिक गतिरोध पैदा हो गया था।'' [153] राज्य के लिए अलग ध्वज और राज प्रमुख पद की समाप्ति के इन दोनों प्रस्तावों ने राज्य में राष्ट्रवादी शक्तियों को शेख की भावी योजनाओं के स्पष्ट संकेत दे दिए।

भारत के संविधान में (ख) श्रेणी के अन्य राज्यों की तरह जम्मू-कश्मीर राज्य के महाराजा को राजप्रमुख के तौर पर मान्यता दी गई थी। जम्मू-कश्मीर राजप्रमुख का यह पद भारतीय संविधान का अंग था। इस पद को भारतीय संविधान में संशोधन द्वारा ही समाप्त किया जा सकता था। संविधान के पंडितों के अनुसार इस हेतु संविधान की धारा 238 और 263 में संशोधन किया जाना अनिवार्य था। लेकिन जम्मू-कश्मीर संविधान सभा इसे एक प्रस्ताव पारित करके समाप्त करना चाह रही थी। महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि क्या जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा भारत के संविधान में संशोधन कर सकती थी? शेख अब्दुल्ला का कहना था कि भारतीय संविधान की धारा 370 भारत के राष्ट्रपति को यह अधिकार देती है कि वे कार्यकारी आदेश द्वारा जम्मू-कश्मीर के मामले में यह संशोधन कर सकते हैं। शेख अब्दुल्ला ने 29 जुलाई, 1952 को नेहरू को लिखा कि राज्य की संविधान सभा 16 अगस्त, 1952 को राज्याध्यक्ष सदर-ए-रियासत का चुनाव करने जा रही है, इसलिए राष्ट्रपति धारा 370 के अंतर्गत आवश्यक अधिसूचना जारी करें। नेहरू को स्वयं भी इस प्रक्रिया की सांविधानिक वैधता को लेकर संशय था, इसलिए उन्होंने तुरंत उसी दिन शेख को उत्तर दिया, ''वैधानिक दृष्टिकोण से यह स्पष्ट नहीं है कि क्या धारा 370 के अंतर्गत राष्ट्रपति अनेक बार ऐसी अधिसूचनाएँ जारी कर सकते हैं? लेकिन दूसरी समस्या यह है कि वर्तमान महाराजा का क्या किया जाए? बेहतर तो यही है कि वे स्वयं ही पद त्याग दें; लेकिन ऐसा नहीं करते तो राष्ट्रपति को कुछ करना पड़ेगा। परंतु इन सभी कामों में राष्ट्रपति की स्वीकृति अनिवार्य है।'' बैरिस्टर नेहरू इतना तो जानते थे कि संविधान के अनुसार महाराजा राज्य के मुखिया हैं। परंतु शेख अब्दुल्ला नहीं माने। उन्होंने संविधान सभा में रियासत के लिए राजप्रमुख के स्थान पर निर्वाचित अध्यक्ष अथवा प्रधान की स्थापना हेतु प्रस्ताव पारित करवा लिया था और राष्ट्रपति को धारा 370 के अंतर्गत तत्संबंधी अधिसूचना जारी करने के लिए प्रस्तावित प्रारूप की प्रति भी भेज दी। उधर महाराजा हरि सिंह ने भी राष्ट्रपति को एक ज्ञापन भेजकर इस प्रस्ताव की सांविधानिक वैधता पर प्रश्नचिह्न लगा दिया। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति ने 6 सितंबर, 1952 को प्रधानमंत्री को पत्र लिखा, जिसमें सांविधानिक स्थिति स्पष्ट की और इस प्रक्रिया की सांविधानिक वैधता पर भी संदेह व्यक्त किया। शेख अब्दुल्ला

चाहते थे कि धारा 370 के क्लॉज (1) में दिए स्पष्टीकरण में 'जम्मू-कश्मीर के महाराजा' के स्थान पर 'सदर-ए-रियासत' शब्द प्रस्थापित किया जाए।

राष्ट्रपति ने शेख अब्दुल्ला की माँग पर सांविधानिक आपत्तियाँ उठाईं। उनमें से एक प्रमुख आपत्ति का कभी उत्तर नहीं दिया गया। उस समय राज्य में जम्मू-कश्मीर संविधान अधिनियम 1996 लागू था। राष्ट्रपति ने पूछा कि क्या इस संविधान को संशोधित किया गया है? क्योंकि इसी संविधान के अंतर्गत महाराजा राज्य के मुखिया हैं। यदि इस दिशा में परिवर्तन करना आवश्यक हैं तो पहले इस संविधान को संशोधित करना होगा। उसके बाद राष्ट्रपति ने धारा 370 के अंतर्गत जम्मू-कश्मीर में निर्वाचित प्रधान की व्यवस्था हेतु कार्यपालिक के आदेश द्वारा संविधान में परिवर्तन करने की प्रक्रिया पर भी आपत्ति दर्ज की। राष्ट्रपति का कहना था कि इस धारा में राष्ट्रपति को अधिसूचना जारी करने का अधिकार तभी है, जब राज्य की संविधान सभा अपना कार्य समाप्त कर लेगी और समग्र रूप से विचार कर लेगी कि किन-किन विषयों में संशोधन या अनुकूलीकरण करना है। तब समग्र रूप से एक अधिसूचना एक बार ही निकाली जा सकती है, यदा-कदा एक-एक कर अधिसूचनाएँ निकालते रहना अनुचित होगा। राष्ट्रपति ने यह भी स्पष्ट किया कि धारा 370 (3) के अंतर्गत कोई भी अधिसूचना जारी करने के लिए राष्ट्रपति के लिए यह जरूरी है कि उसे राज्य की संविधान सभा की संस्तुति प्राप्त हो। लेकिन राज्य की संविधान सभा की किसी संस्तुति पर राष्ट्रपति अधिसूचना जारी करने के लिए बाध्य नहीं है। नेहरू और शेख अब्दुल्ला के पास इन सांविधानिक तर्कों के कोई उत्तर नहीं थे। लेकिन जैसा कि नेहरू ने 29 जुलाई को शेख को लिखे पत्र में संकेत दे दिया था कि यद्यपि राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है, लेकिन अंतिम फैसला तो सरकार ही करेगी। सरकार ने सांविधानिक दृष्टि से संदेहास्पद और विवादास्पद इस संशोधन की अधिसूचना राष्ट्रपति से जारी करवाकर अंतिम फैसला कर दिया।[154]

पं. जवाहरलाल नेहरू लोकतंत्र के समर्थक और संविधान के अनुसार काम करनेवाले माने जाते हैं। उनके इस गुण को लेकर शंका भी नहीं की जा सकती; परंतु जब भी कश्मीर का प्रश्न आता था तो नेहरू नेशनल कॉन्फ्रेंरस और शेख अब्दुल्ला की योजनाओं की पूर्ति के लिए संविधान और लोकतंत्र की स्थापित मान्यताओं को त्यागने में भी नहीं हिचकिचाते थे। जम्मू-कश्मीर राज्य का संविधान अभी बना नहीं था और न ही लागू हुआ था। इसके बावजूद नेहरू इस अजन्मे संविधान में राज्याध्यक्ष के अधिकारों और कर्तव्यों को जाने बिना ही कर्ण सिंह को राज्य अध्यक्ष का पद स्वीकार करने के लिए कह रहे थे। इसके बारे में स्वयं कर्ण सिंह को भी लगता था कि यह कार्य संविधान सम्मत नहीं है; लेकिन पं. नेहरू ने इसकी चिंता नहीं की। जुलाई 1952 में नेहरू-शेख वार्त्ता के उपरांत 24 जुलाई को दिल्ली में शेख अब्दुल्ला ने नेहरू के साथ संयुक्त प्रेस वार्त्ता में अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय संविधान की निंदा ही नहीं की बल्कि उसे कुछ सीमा तक प्रगति के रास्ते में बाधक भी बताया।

नेहरू स्वयं मानते थे कि महाराजा हरि सिंह द्वारा अधिमिलन-पत्र पर हस्ताक्षर किए जाने के बाद रियासत का अधिमिलन संविधान एवं कानून की दृष्टि में अंतिम है, जिसे किसी भी स्थिति में पलटा नहीं जा सकता। लेकिन इसके बावजूद 26 जनवरी, 1950 को भारत गणतंत्र बन जाने और संविधान के लागू हो जाने के बाद भी नेहरू ने लोकसभा तक में कहना जारी रखा कि यदि राज्य के लोग मतदान द्वारा निर्णय कर लें कि रियासत को भारत से अलग होना है तो हम उनको नहीं रोकेंगे। नेहरू जानते थे कि उनके ये आश्वासन संविधान-विरोधी हैं। भारतीय संविधान संघ के किसी राज्य को मतदान द्वारा संघ से अलग होने की अनुमति नहीं देता। 10 जुलाई, 1952 को आयंगर ने मद्रास में पत्रकारों से कहा, ''जहाँ तक विधिक व सांविधानिक स्थिति है, कश्मीर भारत का अंग है। यह

संविधान में 'ख' श्रेणी का राज्य है। जनमत-संग्रह, यदि होता है—तो, यह जानने के लिए होगा कि क्या कश्मीर के लोग भविष्य में भी भारत के साथ रहना चाहते हैं। आज के युग में आप ताकत के बल पर किसी को अपने साथ नहीं रख सकते। इसके लिए लोगों की सहमति चाहिए।'' 155 अलबत्ता, नेहरू और आयंगर के इस प्रकार के बयानों से राज्य के जम्मू एवं लद्दाख क्षेत्र के निवासियों के मन में आशंकाएँ जरूर जन्म ले रही थीं।

उनके इस कथन का अर्थ था कि जम्मू और लद्दाख को भी पाकिस्तान में जाना पड़ेगा। इन दोनों क्षेत्रों के पाकिस्तान में जाने का अर्थ होगा लाखों हिंदुओं, सिक्खों और बौद्धों को भागना पड़ेगा; क्योंकि पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों की जो दशा हुई थी वह किसी से छिपी नहीं थी। शेख और नेहरू के इस प्रकार के व्यवहार से जम्मू व लद्दाख दोनों क्षेत्रों में यह माँग होने लगी थी कि भविष्य की त्रासदी से बचने का एक ही रास्ता है कि इन दोनों संभागों का तो भारत के साथ पूरा एकीकरण कर दिया जाए। शेख जिस प्रकार की स्वायत्तता की माँग कश्मीर के लिए कर रहे थे, उसमें जम्मू व लद्दाख के उपनिवेश बन जाने का खतरा था और नेहरू जिस प्रकार लोगों की राय जानने की व्याख्या कर रहे थे, उससे जम्मू व लद्दाख के भी पाकिस्तान में चले जाने का खतरा था। यही कारण था कि जम्मू के लोग प्रजा परिषद् के झंडे तले अपने भविष्य के लिए संघर्ष करने हेतु एकजुट हो रहे थे। कहा जा सकता है कि नेहरू के इन आश्वासनों के बावजूद रियासत के भारत संघ से निकल जाने की संभावना मात्र परिकल्पना थी, जिसका उस समय की परिस्थितियों में राजनैतिक कारणों से प्रयोग किया जा रहा था। लेकिन इस पर लोग सहज ही विश्वास करने को तैयार नहीं थे, क्योंकि विभाजन के प्रश्न लेकर भी कांग्रेस के नेता यह कहते रहे थे कि विभाजन हमारी लाश पर होगा। लेकिन जब वक्त आया तो कांग्रेस विभाजन के प्रस्ताव के साथ हो गई और जनसंख्या के स्थानांतरण से लाखों लोग मारे गए।

3.5.1 नेहरू का आत्मसमर्पण

पं. जवाहरलाल नेहरू शेख अब्दुल्ला को ही पूरा जम्मू-कश्मीर मानते थे। वे डोगरों को शेख का नेतृत्व ही नहीं बल्कि उसकी नीयत पर विश्वास करने के लिए कह रहे थे। केवल कह ही नहीं रहे थे बल्कि बलपूर्वक मनवाना भी चाह रहे थे। लेकिन शेख की नीयत पर केवल डोगरों को ही नहीं बल्कि घाटी के मुसलमानों को छोड़कर किसी को भी विश्वास नहीं था। कांग्रेस में भी उनपर कोई विश्वास नहीं करता था। नेहरू को कश्मीर में शेख अब्दुल्ला के सिवा कोई दृष्टिगोचर नहीं होता था। बहुत समय पहले ही उन्होंने कश्मीरी हिंदुओं को कहना शुरू कर दिया था कि, ''यदि कश्मीरी पंडित कश्मीर में रहना चाहते हैं तो उन्हें नेशनल कॉन्फ्रेंस में शामिल हो जाना चाहिए अथवा उन्हें कश्मीर को अलविदा कह देना चाहिए। नेशनल कॉन्फ्रेंस ही असली राष्ट्रीय संगठन है। यदि पंडित इसमें शामिल नहीं होते तो कोई भी उपाय उनकी रक्षा नहीं कर पाएगा। नेशनल कॉन्फ्रेंस में शामिल होने के सिवाय उनके पास कोई विकल्प नहीं है।'' 156

नेहरू शेख के अतिरिक्त और किसी की बात सुनने के लिए तैयार ही नहीं थे। उनकी कश्मीर नीति के एकमात्र वाहक शेख ही थे। अत: वे सभी को शेख के पीछे चलने की सलाह देते थे। हरि सिंह को लिखे एक पत्र में उन्होंने खुलासा किया—''कश्मीर में एक व्यक्ति ही सफल हो सकता है और वह शेख अब्दुल्ला हैं। यह मैं आपको बता ही चुका हूँ। कश्मीर में उनकी लोकप्रियता के बारे में दो राय नहीं हो सकती। संकट की स्थिति में वह जिस प्रकार जूझे हैं, उससे उनकी प्रकृति का अंदाजा हो जाता है। मैं उनकी एकनिष्ठा और वैचारिक संतुलन की बहुत तारीफ

करता हूँ। उन्होंने बहुत संघर्ष किया है और सांप्रदायिक सौहार्द बनाए रखने में वे कामयाब हुए हैं। छोटे-मोटे मामलों में उनसे गलतियाँ हो सकती हैं। लेकिन मेरा खयाल है महत्त्वपूर्ण मामलों में वे गलती नहीं कर सकते।'' 157
यदि नेहरू शेख के आगे आत्म समर्पण न करते तो शायद शेख भी अपनी सीमा में रहकर काम करने के लिए तैयार हो जाते। इसका एक रुचिकर उदाहरण हमारे सामने है। धारा 370 में प्रावधान है कि राष्ट्रपति राज्य सरकार की सहमति से उन विषयों को चिह्नित कर सकता है जिन पर संसद् जम्मू-कश्मीर के लिए कानून बना सकती है। इस विषय पर शेख अब्दुल्ला ने यह पक्ष ले लिया कि धारा 370 में मंत्रिपरिषद् से अभिप्राय महाराजा हरि सिंह द्वारा 5 मार्च, 1948 को नियुक्त मंत्रिमंडल से ही लिया जाना चाहिए। शेख जानते थे कि जब विधान सभा का गठन हो जाएगा और बहुमत के आधार पर नए मंत्रिमंडल का गठन हो जाएगा तो यह मंत्रिमंडल तो स्वत: समाप्त हो जाएगा। उनकी इच्छा थी कि इस व्याख्या से धारा 370 को परोक्ष रूप से स्थायी ही बना दिया जाए, लेकिन भारत सरकार उनकी इस व्याख्या से सहमत नहीं हुई तो उन्होंने भारत की संविधान सभा से त्याग-पत्र तक देने की धमकी दे डाली। ''लेकिन भारत सरकार ने झुकने से इनकार कर दिया।'' 158 इसके बाद शेख पीछे हट गए। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि शेख धमकियों से ब्लैकमेल करने की राजनीति कर रहे थे। इससे स्पष्ट है कि यदि भारत सरकार उस समय शेख अब्दुल्ला की भारत-विरोधी माँगों को स्वीकार करने के स्थान पर किसी जायज सीमा पर अड़ जाती तो शेख के पास अपनी माँग से पीछे हटने के सिवा और कोई विकल्प नहीं था। लेकिन दुर्भाग्य से नेहरू शेख के तुष्टीकरण को ही सही रास्ता मान रहे थे।

3.6 महाराजा हरि सिंह से दुर्व्यवहार

भारत निष्ठ हरि सिंह से जो व्यवहार स्वतंत्र भारत के शासकों ने किया वह उससे बिलकुल विपरीत है, जो सही मायनों में गद्दार और भारत के खिलाफ युद्ध छेड़ देनेवाले हैदराबाद रियासत के निजाम से किया गया।159
महाराजा को नेहरू और शेख के दबाव में वर्ष 1949 में राज्य छोड़ना पड़ा। वे बंबई चले गए। फिर कभी वापस नहीं आए और वहीं 1961 में उनका देहांत हो गया। महाराजा से किए जा रहे इस प्रकार के अपमानजनक व अमानवीय व्यवहार से राज्य के राष्ट्रवादी लोगों का क्षुब्ध होना स्वाभाविक ही था। कोढ़ में खाज यह कि यह सबकुछ सांप्रदायिक दृष्टिकोण के कारण हो रहा था। हैदराबाद के निजाम से, केवल मुसलमान होने के कारण, भारत-विद्रोह के बावजूद सम्मानजनक व्यवहार किया जा रहा था और हरि सिंह को केवल घाटी के कश्मीरी बोलनेवाले मुसलमानों को खुश करने के लिए बलि का बकरा बनाया जा रहा था। हरि सिंह स्वयं भी रियासत में लोकतांत्रिक सरकार की स्थापना करने के अनुकूल थे। इसके संकेत तभी मिलने शुरू हो गए थे जब उन्होंने सन् 1934 में राज्य की पहली विधानसभा प्रजा सभा के चुनाव लोकतांत्रिक तरीके से करवाए। उन दिनों अन्य रियासतों के राजा इस तरह के प्रयोग से यथा संभव बचते थे। उनकी लोकतांत्रिक निष्ठा के बावजूद नेहरू रियासत के भारत में अधिमिलन का श्रेय उन्हें न देकर शेख अब्दुल्ला को दे रहे थे। इन सभी कारणों से जम्मू के लोगों का गुस्सा बढ़ रहा था। लग रहा था कि कश्मीर के मुसलमानों और शेख अब्दुल्ला के तुष्टीकरण में जम्मू को बंधक के तौर पर इस्तेमाल किया जा रहा है।
जम्मू-कश्मीर की नव-निर्वाचत संविधान सभा में बोलते हुए शेख अब्दुल्ला ने जो थीसिस प्रस्तुत की, उसका अर्थ यही था कि भारत सरकार रियासत के भारत में अधिमिलन का निर्णय लेने के लिए नेशनल कॉन्फ्रेंरस को सक्षम

मानती है, न कि महाराजा हरि सिंह को। शेख के अनुसार, भारत सरकार ने रियासत के साथ यथास्थिति समझौता करने से इसीलिए इनकार किया था, क्योंकि यह प्रार्थना महाराजा हरि सिंह की ओर से आई थी, न कि कश्मीर के प्रतिनिधि संगठन नेशनल कॉन्फ्रेंस की ओर से। उसके अनुसार भारत सरकार ने रियासत के भारत में अधिमिलन का प्रस्ताव इसलिए स्वीकार किया, क्योंकि इसके लिए नेशनल कॉन्फ्रेंस सहमत थी। हरि सिंह के हस्ताक्षर तो महज रस्म-अदायगी भर थी।[160] 5 जुलाई, 1952 को नेहरू ने हरि सिंह को लिखा, ''कश्मीर संकट की इस पूरी पृष्ठभूमि में आपकी कोई औकात नहीं है।'' [161] दरअसल इतिहास के इस मोड़ तक आते-आते डोगरों के मनोविज्ञान में हरि सिंह की भूमिका बदल गई थी। अब वे राजा न रहकर डोगरा अस्मिता के प्रतीक बन गए थे। महाराजा हरि सिंह प्रगतिशील और लोकप्रिय शासक थे। हरि सिंह ने लॉर्ड माउंटबेटन के तमाम दबावों को झेलते हुए भी पाकिस्तान में शामिल होने से इनकार कर दिया था, जिससे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी थी। अंग्रेजों के सामने भी वे कभी नहीं झुके थे। लेकिन भारत सरकार और शेख अब्दुल्ला जिस प्रकार उनसे व्यवहार कर रहे थे, उसके कारण जम्मू संभाग व शेष भारत में उनकी छवि ऐसे व्यक्ति की बन गई थी, जिसके साथ केवल शेख को खुश रखने के लिए अन्याय किया जा रहा हो।

3.7 कर्ण सिंह का विश्वासघात

जम्मू संभाग के लोगों के रोष का एक और कारण था। शेख अब्दुल्ला ने महाराजा हरि सिंह द्वारा प्रदत्त राज्य का प्रधानमंत्री पद सँभालने के बाद से ही महाराजा हरि सिंह का सार्वजनिक रूप से अपमान करना शुरू कर दिया था। उसके बाद उन्होंने नेहरू पर दबाव डालना शुरू कर दिया कि महाराजा को रियासत से बाहर निकाला जाए। नेहरू इसके लिए सहमत भी हो गए। ऐसे समय में महाराजा के इस पुत्र युवराज कर्ण सिंह द्वारा रीजेंट का पद स्वीकार कर लेने से राज्य की राष्ट्रवादी शक्तियों को अपमानजनक लगा। डॉ. कर्ण सिंह के आचरण और व्यवहार से डोगरा समुदाय आहत अनुभव कर रहा था। हरि सिंह अप्रत्यक्ष रूप से शेखशाही से पीड़ित व्यक्तित्व के तौर पर उभरे थे। वे डुग्गर प्रदेश की पहचान के रूप में भी स्थापित हो गए थे। इस पूरे घटनाक्रम में नेहरू अपनी कश्मीरी जड़ के कारण कश्मीरी मुसलमानों के साथ एकाकार होने में लगे थे। जम्मू संभाग और कश्मीर संभाग में ध्रुवीकरण लगभग पूरा हो चुका था, जिसे कुछ स्थानों पर हिंदू और मुसलमान के नाम से भी कहा जाने लगा। हरि सिंह को राज्य से बाहर भेजे जाने का यह अर्थ निकाला गया कि शेख की कश्मीरी लॉबी ने जम्मू संभाग को कश्मीर का उपनिवेश बनाना शुरू कर दिया है। नेहरू-शेख ने जम्मू के डोगरों से संवाद करने के स्थान पर उन्हें सत्ताबल से चुप कराने का प्रयास किया। शेख अब्दुल्ला महाराजा हरि सिंह को किस सीमा तक अपमानित कर रहे थे, इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वे उन दिनों हरि सिंह पर युद्ध अपराधी और मानवता के अपराधी के तौर पर मुकदमा चलाने के बारे में सोच रहे थे।[162] ऐसे वातावरण में हरि सिंह के बेटे कर्ण सिंह ने राज्य के रीजेंट का पदभार सँभाल लिया। इससे डोगरों को एक प्रकार से घर के आदमी द्वारा किए गए विश्वासघात का अहसास हुआ।

शेख अब्दुल्ला ने राज्य की संविधान सभा में भी महाराजा हरि सिंह को जमकर कोसा, ''मैं पूरे जोर से कहना चाहूँगा कि हरि सिंह ने राज्य के प्रत्येक वर्ग का विश्वास खो दिया है। बदले हालात में वे अपने आपको ढालने में अक्षम हैं। महत्त्वपूर्ण विषयों पर उनके सदियों पुराने विचार उन्हें लोकतांत्रिक पद सँभालने के लिए पूरी तरह अयोग्य

बना देते हैं। उनका पुराना रिकॉर्ड भी सिद्ध करता है कि वे निष्पक्षता, जिम्मेदारी और गरिमापूर्ण व्यवहार करने में अक्षम हैं।'' [163] लेकिन जहाँ वे महाराजा हरि सिंह को पानी पी-पीकर कोस रहे थे वहीं उनके सुपुत्र की प्रशंसा में कसीदे पढ़ रहे थे, ''पिछले कुछ साल से युवराज कर्ण सिंह से हमारे संबंध बने हैं। मैं और मेरे साथी उनकी बुद्धिमत्ता, व्यापक दृष्टिकोण और देश की सेवा करने की भावना से बहुत प्रभावित हुए हैं। युवराज के ये गुण ही उन्हें सदर-ए-रियासत के पद के योग्य बनाते हैं।'' [164] ऐसे माहौल में शेख अब्दुल्ला के खिलाफ सत्याग्रह का संकल्प और दृढ़ हो गया। संशय के इस वातावरण में कश्मीर के लोग जितनी जोर से स्वायत्तता की माँग करते उतने ही जोर से जम्मू व लद्दाख संभाग के लोग भारत में पूर्ण अधिमिलन की माँग करते।

3.7.1 कर्ण सिंह का सदर-ए-रियासत बनना

शेख अब्दुल्ला की जिद के आगे पं. नेहरू जुलाई 1952 में ही झुक गए थे, जब उन्होंने संविधान विशेषज्ञों की राय की अवहेलना करते हुए राज्य के लिए निर्वाचित प्रधान की माँग स्वीकार कर ली थी। उस वक्त यह प्रश्न उत्पन्न हुआ था कि इस पद का नाम क्या रखा जाए। भारत के राज्याध्यक्ष का संविधान में अंग्रेजी नाम 'प्रेजिडेंट' है। कश्मीर की संविधान सभा ने भी प्रेजिडेंट का उर्दू अनुवाद करते हुए रियासत के अध्यक्ष का पदनाम 'सदर-ए-रियासत' किया। महाराजा हरि सिंह के बेटे युवराज कर्ण सिंह ने इस पद को स्वीकार कर लिया। यह पद स्वीकार करने के पश्चात् वे सीधे जम्मू पहुँचे तो जम्मू में उनके विरोध में ऐसी अभूतपूर्व हड़ताल हुई जिसका कोई सानी नहीं था। प्रजा परिषद् ने हुंकार लगाई। एक देश में—दो निशान, दो विधान, दो प्रधान नहीं चलेंगे, नहीं चलेंगे! और देखते-ही-देखते यह नारा माधोपुर से लेकर पीर पंजाल तक गूँजने लगा और एक ऐतिहासिक आंदोलन ने जन्म लिया। कर्ण सिंह के अपने ही शब्दों में, ''डोगरा समाज की नाराजगी के कारण तो स्पष्ट ही थे। उन्हें न केवल राज्य में प्रमुख की हैसियत खोनी पड़ी थी, बल्कि एक झटके में उन्हें कट्टर दुश्मन शेख अब्दुल्ला के रहमोकरम पर डाल दिया गया था। उल्लेखनीय है, शेख ने अपनी तरफ से भी जम्मू की जनता की उग्र भावनाओं को शांत करने की कोशिश नहीं की, बल्कि अपना रवैया विरोधपूर्ण और आक्रामक ही बनाए रखा।'' [165] नेहरू जम्मू व लद्दाख के लोगों की उचित माँगों से सहमत थे, लेकिन उनकी राजनैतिक माँगों को गौण करना चाहते थे, ताकि अंतरराष्ट्रीय मंच पर चल रही, ''एक महत्त्वपूर्ण राजनैतिक लड़ाई लड़ी जा सके।'' [166] शेख ने हर प्रकार के विरोध को कुचलना शुरू कर दिया था। यदि कोई मुसलमान शेख के खिलाफ बोलता था तो उसे लीगी कहा जाता था और यदि कोई हिंदू बोलता था तो उसे संघी कहा जाता था।[167] ऐसे माहौल में प्रजा परिषद् राज्य की राष्ट्रवादी शक्तियों के संघर्ष का सशक्त माध्यम बनकर उभरी।

3.8 उपसंहार

नेहरू जम्मू-कश्मीर में जिस मुसलिम तुष्टीकरण को अपनी राजनीति का आधार बना रहे थे उसको ठीक परिप्रेक्ष्य में पकड़ पाने के लिए भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की कुछ प्रवृत्तियों को समझ लेना जरूरी है। सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के उपरांत देश का मुसलिम समुदाय मोटे तौर पर अंग्रेजों के पक्ष में खड़ा दिखाई देने लगा था। अंग्रेजी सरकार ने उनको अपने पक्ष में करने के प्रयास भी किए, जिसके परिणाम बीसवीं शताब्दी के शुरू में ही

दिखाई देने लगे थे। ब्रिटिश संसद् ने 1861, 1892 और 1902 में जो भारतीय परिषद् अधिनियम पारित किए, उससे यह आभास मिलने लगा था कि भविष्य में भारत के शासन का स्वरूप कैसा हो सकता है। इन अधिनियमों के अनुसार, देश की सत्ता सीमित वयस्क मताधिकार पर आधारित होनेवाली थी। इन अधिनियमों में चाहे मताधिकार बहुत ही सीमित लोगों पर आधारित था और परिषदों के पास अधिकार भी नगण्य थे, लेकिन भावी संविधान की रूपरेखा का प्रारंभिक आभास तो होने ही लगा था। इस पृष्ठभूमि में अंग्रेज मुसलमानों को यह समझाने में सफल हो गए कि भविष्य के प्रशासन में सत्ता तो हिंदुओं के हाथ ही आएगी; क्योंकि जनसंख्या के लिहाज से उनका बहुमत है। साथ ही यह सिद्धांत भी प्रचारित किया जाने लगा कि अंग्रेजों ने सत्ता छीनी तो मुसलमानों से थी, अब वापस भी वह मुसलमानों को ही मिलनी चाहिए। यह सिद्धांत मुसलमानों के गले उतरने लगा।

लेकिन फिर भी, कहीं बाधा थी तो उसको दूर करने के लिए सन् 1875 में अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय खोला गया। यह संयोग ही नहीं है कि भविष्य का मुसलिम नेतृत्व इसी विश्वविद्यालय ने प्रदान किया। इस विश्वविद्यालय के स्थापित हो जाने के दस साल बाद 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। कोलकाता, मुंबई और मद्रास विश्वविद्यालयों की स्थापना सन् 1857 में ही हो गई थी। तीन दशकों में इन विश्वविद्यालयों ने अच्छी-खासी संख्या में नए शिक्षित पैदा कर दिए थे और अब बिना किसी भय के स्वतंत्रता की अगली लड़ाई का नेतृत्व इस जमात को सौंपा जा सकता था। आजादी की पहली लड़ाई में जो नेतृत्व था वह खालिस देशी था, इसलिए उसके लड़ने के तरीके ऐसे खतरनाक थे कि यदि भाग्य साथ न देता तो सन् 1857 की आजादी की पहली लड़ाई में ही अंग्रेजों का बोरिया-बिस्तर गोल हो जाता। अंग्रेज जानते थे कि आजादी की यह लड़ाई अब थमेगी नहीं। इसलिए कम-से-कम इतना तो किया ही जा सकता है कि लड़ाई के नियम खुद निर्धारित कर दिए जाएँ और इसका नेतृत्व भी उन लोगों को दिया जाए, जो ब्रिटिश शासकों द्वारा निर्धारित लड़ाई के इन नियमों को मानने के लिए तैयार हों। कांग्रेस इसी रणनीति का हिस्सा थी। उसके नेतृत्व में सरकार बहादुर को कोई खतरा नहीं हो सकता था, क्योंकि वे तो अपनी हर एक सभा की शुरुआत ही ब्रिटेन के राजा के गुणगान से करते थे। उधर मुसलिम नेतृत्व तो था ही अंग्रेज सरकार की देन।

सारा कामकाज ठीक तरह से चल रहा था। अंग्रेज भी प्रसन्न थे और कांग्रेस भी संतुष्ट थी। लेकिन लाला लाजपत राय-बाल गंगाधर तिलक-विपिनचंद्र पाल ने कांग्रेस की दिशा बदल दी। उसके बाद कांग्रेस में महात्मा गांधी आ गए। उन्होंने कांग्रेस को अंग्रेजों से छीन लिया। कांग्रेस का कायाकल्प होने लगा। कांग्रेस सचमुच भारतीयों की प्रतिनिधि संस्था बनने लगी। अब कांग्रेस को दूसरी बाधा पार करनी थी। उसे मुसलमानों को भी अंग्रेजों से छीनना था, क्योंकि बिना मुसलमानों को साथ लिये वह अपने आपको प्रतिनिधि संस्था नहीं कह सकती थी। इस काम को अंजाम देने के लिए कांग्रेस ने जो रास्ता अपनाया वह सबसे ज्यादा खतरनाक था। कांग्रेस ने मुसलमानों को आजादी की लड़ाई में जोड़ने की उतावली में उनका तुष्टीकरण करना आरंभ कर दिया। उसको आशा थी कि इससे प्रसन्न होकर मुसलमान अंग्रेजों का साथ छोड़कर कांग्रेस के साथ मिलकर आजादी की लड़ाई में हिस्सेदारी निभाएँगे। मुसलिम तुष्टीकरण में कांग्रेस इतना आगे बढ़ी कि उसने हिंदुस्तान में ही मुसलमानों को साथ लेकर खिलाफत आंदोलन छेड़ दिया। कांग्रेस यह मानकर चल रही थी कि ब्रिटेन द्वारा तुर्की के साथ किए जा रहे व्यवहार से मुसलमान नाराज हैं। यदि इस वक्त उनका साथ दे दिया जाए तो वे अंग्रेजों का साथ छोड़कर कांग्रेस के साथ आ खड़े होंगे। लेकिन हिंदुस्तान के मुसलमानों का नेतृत्व कांग्रेस के साथ तो फिर भी नहीं आया, अलबत्ता वह अफगानिस्तान के अमीर के पास अवश्य चला गया, यह गुजारिश लेकर कि हिंदुस्तान पर हमला कर दिया जाए,

ताकि सत्ता फिर मुसलमानों के हाथ में आ जाए। अफगानिस्तान का अमीर उनकी यह इच्छा तो पूरी नहीं कर सकता था, लेकिन उसने कुछ लोगों को अपने यहाँ शरण अवश्य दे दी।

खिलाफत आंदोलन में मार खा लेने के बाद भी कांग्रेस ने अपनी मुसलिम तुष्टीकरण की नीति नहीं त्यागी। कांग्रेस ने मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन मंडल का सिद्धांत स्वीकार कर लिया। इसी से कुरद्ध होकर बाबा साहेब अंबेडकर ने गांधीजी से कहा था कि मुसलमानों को तो आप कोरे चैक पर हस्ताक्षर करके देते हो, लेकिन अछूतों को उनका अधिकार भी देने के लिए तैयार नहीं हैं। कांग्रेस मुसलमानों की जितनी खुशामद करती थी, मुसलमान उतना ही उससे दूर भागते थे। इसी खुशामद नीति के कारण मुहम्मद इकबाल 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा' गाते-गाते पाकिस्तान के नगमे गाने लगे थे। कांग्रेस की यह खुशामदी नीति अंततः देश को विभाजन की ओर ले गई।

कांग्रेस की इसी मुसलिमपरस्त नीति के परिप्रेक्ष्य में कश्मीर समस्या को समझना होगा। उसकी इसी नीति के कारण कश्मीर का मामला अटक गया। कश्मीर की जनसंख्या का बहुमत मुसलमान था और राजा हिंदू था। इतना निश्चित ही था कि महाराजा हरि सिंह किसी भी हालत में पाकिस्तान में शामिल नहीं हो सकते थे। वे भारत में शामिल होना चाहते थे। नेहरू की भी इच्छा थी कि रियासत भारत में शामिल हो। पर भारत में शामिल होने के रास्ते में एक ही बाधा थी। जवाहरलाल नेहरू की शर्त थी कि महाराजा अपनी सत्ता कश्मीरियों के नेता शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को सौंपें। हरि सिंह इसके लिए किसी भी हालत में तैयार नहीं थे। नेहरू की दृष्टि में हरि सिंह की कोई औकात नहीं थी। नेहरू कश्मीर को भारत में शामिल करवाने में शेख अब्दुल्ला की भूमिका महत्त्वपूर्ण मानते थे, क्योंकि उनकी दृष्टि में शेख कश्मीर के मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करते थे। शेख अब्दुल्ला को काबू में रखने का कांग्रेस की नजर में एक ही तरीका था—कश्मीरी मुसलमानों का तुष्टीकरण। नेहरू की सोच में कश्मीरी मुसलमानों का अर्थ शेख अब्दुल्ला ही थे, अतः वे उसी के तुष्टीकरण में लगे थे। यह सचमुच आश्चर्य का विषय है कि कांग्रेस एक बार इस नीति का दुष्परिणाम भारत विभाजन के रूप में देख चुकी थी, लेकिन कश्मीर में वह फिर उसी प्रयोग को दोहराने लगी थी। शेख अब्दुल्ला कांग्रेस की कमजोरी को अच्छी तरह पहचान गए थे, अतः उन्होंने अपनी नीति उसी के अनुरूप तैयार की।

भारत को विभाजित कर उसके विश्व से स्थल मार्ग को काटने का यह निर्णय साम्राज्यवादी शक्तियों का राजनैतिक निर्णय था। इसका मजहब से कुछ लेना-देना नहीं था। यदि सचमुच भारत का विभाजन इस अवधारणा पर हुआ होता कि इस देश में हिंदू और मुसलमान इकट्ठे रह नहीं सकते तब तो हिंदुस्तान से सभी मुसलमानों को निकाल दिया जाता और दोनों देशों में जनसंख्या की अदला-बदली होती। विभाजन के बाद भी हिंदुस्तान में लगभग 4 करोड़ मुसलमान रह रहे थे। फिर पं. नेहरू तो हिंदू और मुसलमान अलग हैं, इसको सिरे से ही खारिज करते थे। लेकिन दुर्भाग्य से वे जम्मू-कश्मीर रियासत को केवल हिंदू-मुसलमान के दृष्टिकोण से ही देख रहे थे। शायद वे मानते थे कि हिंदू-मुसलमान इकट्ठे रह नहीं सकते। इस सिद्धांत से तो रियासत को पाकिस्तान में जाना चाहिए था। उनको लगता था कि भारत में भी मुसलमान रह सकते हैं। इसे सिद्ध करने के लिए कश्मीरी मुसलमानों की गवाही की सख्त जरूरत है। यही गवाही दिलवाने के लिए वे कभी शेख अब्दुल्ला को सुरक्षा परिषद् में भेजते थे और कभी दिल्ली बुलाकर उनकी प्रेस कॉन्फ्रेंस करवाते थे। अपनी पंथनिरपेक्षता की विफल अवधारणा को सही सिद्ध करने के लिए वे कश्मीर का प्रयोग करना चाहते थे। नेहरू को कभी यह नहीं लगा कि यदि उन्हें इस गवाही की सचमुच ही इतनी जरूरत है तो वे यह गवाही विभाजन के बाद भी भारत में रह रहे 4 करोड़ मुसलमानों की दिलवा सकते

थे।

कश्मीरी मुसलमान पाकिस्तान में नहीं जाना चाहते थे, नेहरू इसे बहुत बड़ी उपलब्धि मानते थे और इसका सारा श्रेय नेशनल कॉन्फ्रेंस के अध्यक्ष शेख अब्दुल्ला को देते थे। पाकिस्तान में न जाने या फिर पाकिस्तान के निर्माण का विरोध केवल कश्मीरी मुसलमानों ने ही नहीं किया था, देश के अनेक अन्य हिस्सों में भी इसका विरोध हुआ था। अफगानिस्तान से सटे हुए पश्चिमोत्तर सीमांत प्रांत के मुसलमान तो पाकिस्तान बन जाने के बाद भी उसका विरोध करते रहे। संयुक्त पंजाब में भी, जहाँ मुसलमान बहुमत में थे और मुसलिम लीग ने पाकिस्तान के प्रश्न पर ही चुनाव लड़ा था, वह बहुमत प्राप्त नहीं कर सकी थी। पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी की सरकार बनी, जिसके मुख्यमंत्री खिजर हयात थे और वे पाकिस्तान का विरोध करते थे। पाकिस्तान बनने के बाद भी जब मुसलिम लीग ने भारत के समस्त मुसलमानों से अपील की कि अब उनका अपना देश बन गया है, इसलिए वे अपने देश में आ जाएँ, तो बहुत कम मुसलमान उस अपने देश में गए और हिंदुस्तान को ही अपना देश मानकर यहीं रहे।

इसलिए यह तथ्य नहीं है कि भारत में रहने का विकल्प केवल कश्मीरी मुसलमानों ने चुना था। दूसरे, उन्होंने भारत में रहने का विकल्प केवल शेख अब्दुल्ला के कहने पर चुना था, यह मान्यता अपने आप में और भी भ्रामक है। कश्मीर का इसलाम पश्चिमी उत्तर प्रदेश या फिर पंजाब के इसलाम से अलग है। जिस प्रकार तिब्बत का बौद्ध मत अपनी अलग ही पहचान रखता है, उसी प्रकार कश्मीर का इसलाम अपने आप में एक अलग श्रेणी है। लारेंस ने तो घाटी के सुन्नी मुसलमानों को 'हिंदू सुन्नी' तक कहा था। कश्मीर का इसलाम किसी सीमा तक ऋषि परंपरा पर टिका हुआ है। ऋषियों के जन्म और मृत्यु के अवसरों पर कश्मीर के मुसलमानों में अभी भी शाकाहारी रहने की परंपरा विद्यमान है। वहाँ के हिंदू और मुसलमानों में सामाजिक अवसरों की अनेक रस्में अभी भी साँझी हैं। कश्मीरी मुसलमानों के रिश्ते कश्मीरियों से इतर दूसरे मुसलमानों से नहीं होते। वे अभी भी अपनी गोत्र परंपरा से बँधे हुए हैं। यही मनोवैज्ञानिक, सामाजिक व सांस्कृतिक आधार हैं, जिनके कारण कश्मीरी मुसलमान मैदानी इलाकों के मुसलमानों की तरह पाकिस्तान में रुचि नहीं रखते थे। भारत में ही रहने का उनका निर्णय राजनैतिक नहीं था, बल्कि सांस्कृतिक था। नेहरू इसे भूल से राजनैतिक निर्णय समझ बैठे, जिसके कारण वे शेख पर आश्रित हो गए।

इनमें कोई शक नहीं कि शेख अब्दुल्ला उस समय घाटी के एकमात्र राजनैतिक दल नेशनल कॉन्फ्रेंस के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता थे। मुसलिम कॉन्फ्रेंस का घाटी में कोई जनाधार नहीं था; लेकिन शेख की अपनी सीमाएँ थीं। उनकी शक्ति उस सीमा के बाहर नहीं जा सकती थी। नेहरू उनकी शक्ति को तो देख रहे थे, लेकिन उनकी सीमा को वे देखकर भी अनदेखा कर रहे थे।

पहले इस पर विचार किया जाए कि शेख अब्दुल्ला के पास क्या विकल्प थे? शेख पाकिस्तान तो जा ही नहीं सकते थे, क्योंकि नेशनल कॉन्फ्रेंस और मुसलिम लीग का छत्तीस का आँकड़ा था। पाकिस्तान सामंती व्यवस्थाओं के आधार पर विकसित हो रहा था। सामंतवाद से बाहर निकलने की बची-खुची आशा सन् 1948 में जिन्ना की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गई थी। पाकिस्तान में सत्ता के लिए हिंसा का प्रयोग शुरू हो गया था। जब जम्मू-कश्मीर में शेख अब्दुल्ला संविधान सभा का गठन कर रहे थे तो 16 अक्तूबर, 1951 को पाकिस्तान के प्रधानमंत्री और उसके संस्थापकों में एक नवाबजादा लियाकत अली खान को भरी जनसभा में गोली से उड़ाया जा रहा था। शेख अब्दुल्ला की राजनैतिक गतिविधियों के लिए पाकिस्तान में कोई स्थान नहीं था। इसे शेख से ज्यादा अच्छी तरह और कौन जान सकता था! पाकिस्तान में शेख का विरोध केवल इसलिए नहीं था कि वे भारत के पक्ष में खड़े थे। दरअसल पाकिस्तान की पूरी राजनैतिक संरचना में बंगालियों, कश्मीरियों, मुहाजिरों के लिए दोयम दर्जे का ही

स्थान था। यही कारण था कि बाद में बंगाली एक लंबे खूनी संघर्ष के बाद पाकिस्तान से अलग हुए।

शेख के पास दूसरा विकल्प स्वतंत्र कश्मीर का था। तर्क के लिए मान भी लिया जाए कि शेख नेहरू की सहायता से स्वतंत्र कश्मीर स्थापित भी कर लेते तो क्या व्यावहारिक होता? जिस दिन कश्मीर से भारत की सेना हटती उसी दिन पाकिस्तान उस पर कब्जा ही नहीं कर लेता बल्कि शेख अब्दुल्ला को भी ठिकाने लगा देता। आखिर शेख के पास भारत में रहने के सिवा क्या विकल्प था?

यही उसकी सीमा थी। यदि नेहरू इस सीमा को पहचान लेते तो आँखें बंद कर शेख की हर माँग के आगे समर्पण करने से बच सकते थे। शेख की इस बात के लिए प्रशंसा करनी पड़ेगी कि उन्होंने अपनी कमजोरी को भी ताकत की तरह इस्तेमाल किया और भारत सरकार ने अपनी ताकत को भी कमजोरी की तरह इस्तेमाल किया। शेख जानते थे कि उन्हें भारत में ही रहना है; लेकिन इसके लिए उनकी शर्त यह थी कि जम्मू-कश्मीर रियासत उनके हवाले कर दी जाए। उसे वे शेखशाही की तरह चलाएँ और पाकिस्तान से इस शेखशाही की रक्षा भारत करे। रियासत पर उनका दावा केवल इस आधार पर था कि उन्होंने कुछ वर्षों तक राजशाही के खिलाफ संघर्ष किया है। लेकिन ऐसा संघर्ष तो अनेक रियासतों में प्रजा मंडलों के नेताओं ने किया था। उनको तो वे रियासतें पुरस्कार में नहीं दी जा रही थीं। शेख राज्य की राजनीति में लोकतांत्रिक ढंग से सत्ता प्राप्त कर सकते थे, इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती थी; लेकिन वे तो रियासत में वहाँ के लोगों को उनके वैधानिक व लोकतांत्रिक अधिकार देने को भी तैयार नहीं थे। विपक्ष को लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार का अनिवार्य अंग माना जाता है; लेकिन शेख उसे शत्रु मानकर व्यवहार कर रहे थे। प्रजा परिषद् के साथ शेख की सरकार जो व्यवहार कर रही थी, वैसा व्यवहार तो नेशनल कॉन्फ्रेंस के साथ राजशाही के दिनों में भी नहीं हुआ था। यदि जम्मू-कश्मीर में स्वतंत्र राजनैतिक गतिविधियों की अनुमति दे दी जाती और वहाँ सचमुच लोकतांत्रिक संस्थाओं को पनपने दिया जाता तो कश्मीर में समानांतर राजनैतिक नेतृत्व विकसित होता और उससे केंद्र को किसी एक व्यक्ति शेख अब्दुल्ला पर आश्रित न रहना पड़ता। लेकिन पं. नेहरू ने राजनैतिक गतिविधियों की बात तो दूर, राज्य में कांग्रेस पार्टी की शाखा तक कायम करने की अनुमति नहीं दी। नेहरू कश्मीरी हिंदुओं को यह सलाह दे रहे थे कि यदि कश्मीर में रहना है तो नेशलन कॉन्फ्रेंस में शामिल हो जाओ। कुल मिलाकर रियासत में राजशाही के स्थान पर शेखशाही स्थापित हो गई। यदि मान ही लिया जाए कि महाराज के शासन में डोगरा राज था और कश्मीर को जम्मू का उपनिवेश बनाकर रखा हुआ था तो अब मानो उसका प्रतिशोध लिया जा रहा था। अब कश्मीर की शेखशाही जम्मू व लद्दाख को कश्मीर का उपनिवेश बनाने का प्रयास कर रही थी। नेहरू और शेख अब्दुल्ला दोनों ही दावा कर रहे थे कि रियासत में लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित कर दी गई है; जब कि धरातल पर शेखशाही स्थापित की जा रही थी।

❑

4.

जम्मू का छात्र आंदोलन(15 जनवरी, 1952-06 अप्रैल, 1952)

जम्मू-कश्मीर रियासत को भारत में शामिल हुए पूरे तीन वर्ष हो गए थे। देश की अन्य रियासतों के भारत में एकीकरण की प्रक्रिया लगभग पूरी हो चुकी थी। लेकिन जम्मू-कश्मीर में यह प्रक्रिया धीमी ही नहीं, बल्कि ठहर-सी गई थी। भारतीय संविधान के जम्मू-कश्मीर में लागू करने की प्रक्रिया धारा 370 के माध्यम से निश्चित की जा चुकी थी। इस धारा का मुख्य उद्देश्य ही यह था कि भविष्य में जम्मू-कश्मीर में संघीय संविधान के प्रावधान लागू करने के लिए संविधान में बार-बार संशोधन न करना पड़े, इसलिए यह शक्ति भी राष्ट्रपति को ही दे दी गई थी। धारा 370 के माध्यम से वे जम्मू-कश्मीर के मामले में संघीय संविधान के विभिन्न प्रावधान लागू करते समय उसमें संशोधन तक करने के लिए प्राधिकृत थे। धारा 370 को समाप्त करने की शक्ति भी कुछ उपबंधों के साथ राष्ट्रपति को दी गई। राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने स्वयं इसे असाधारण शक्ति माना था। परंतु शेख अब्दुल्ला जम्मू-कश्मीर में लोगों को लोकतांत्रिक शक्तियाँ देने के लिए तैयार नहीं थे। लोकतांत्रिक शक्तियों के तीन मुख्य स्रोत होते हैं। नागरिकों के मौलिक अधिकार और उनकी स्वतंत्र न्यायपालिका द्वारा सुरक्षा। निष्पक्ष चुनाव। शेख भारतीय संविधान के इन प्रावधानों को जम्मू-कश्मीर में लागू करने के लिए तैयार नहीं थे। इसके स्थान पर वे एकीकरण की प्रक्रिया को बाधित करने में रुचि लेने लगे। राज्य के लिए अलग संविधान चाहिए, अलग झंडा चाहिए। सांविधानिक मुखिया भी राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत न होकर राज्य की विधानसभा द्वारा निर्वाचित होना चाहिए। जाहिर था कि शेख अब्दुल्ला बाहरी शक्तियों द्वारा सुझाए गए रास्ते पर चलकर राज्य में एक नए प्रकार की तानाशाही लादने के रास्ते पर चल पड़े थे। सन् 1952 में इस रास्ते पर चल रहे शेख अब्दुल्ला का राज्य की जनता से हर मोड़ पर टकराव हुआ। आश्चर्य की बात है कि राज्य के लोगों को स्वतंत्र भारत में भी अपने लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए लड़ना ही नहीं पड़ रहा था बल्कि बलिदान देने पड़ रहे थे। वर्ष 1952 इस संघर्ष का साक्षी बना और इसका कारण बनी एक छोटी सी चिंगारी।

4.1. नेशनल कॉन्फ्रेंस के ध्वज को लेकर उठा विवाद

15 जनवरी, 1952 को जम्मू के राजकीय गांधी मेमोरियल विज्ञान महाविद्यालय में राज्य सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा छात्रों के शारीरिक प्रदर्शन का कार्यक्रम आयोजित था। इसमें स्कूल एवं महाविद्यालयों के छात्रों को अपनी शारीरिक क्षमताओं का भी प्रदर्शन करना था। महाविद्यालय में चर्चा थी कि कार्यक्रम में नेशनल कॉन्फ्रेंस का झंडा फहराया जाएगा। इस संबंध में स्टुडेंट नेशनल एसोसिएशन का एक प्रतिनिधिमंडल प्रधानाचार्य प्रेमनाथ काजी से मिला और किसी राजनैतिक पार्टी का झंडा न फहराए जाने की प्रार्थना की। प्रधानाचार्य का कहना था कि यह सरकारी आदेश है और इसे न मानने पर वे नौकरी से निलंबित हो सकते हैं। अत: उन्होंने छात्रों का यह आग्रह ठुकरा दिया। शेख मुहम्मद अब्दुल्ला इस उत्सव में मुख्य अतिथि थे। छात्रों का मार्च पास्ट था। प्रारंभ में भारत का राष्ट्रीय ध्वज फहराया गया, इसके बाद नेशनल कॉन्फ्रेंस, जिसके प्रधान शेख स्वयं ही थे, का ध्वज फहराया गया। राज्य का नया ध्वज अभी निश्चित नहीं हुआ था, अत: आधिकारिक तौर पर राज्य का अभी तक प्रचलित ध्वज ही

मान्य था। महाविद्यालय का कार्यक्रम भी सरकारी था। इसलिए सरकारी कार्यक्रम में किसी राजनीतिक दल का ध्वज फहराने का कोई औचित्य नहीं था। सबसे बड़ी बात यह थी अब मार्च पास्ट करते हुए छात्रों को इस ध्वज को सलामी देनी थी। ''कुछ छात्रों एवं अन्य लोगों ने इसका विरोध किया। पुलिस ने बलपूर्वक उन्हें वहाँ से निकाल दिया। कुछ समय बाद वे फिर सरकार व नेशनल कॉन्फ्रेंस विरोधी नारे लगाते हुए वहाँ पहुँच गए। इससे अफरा-तफरी मच गई। पुलिस ने एस.एन.ए. के महासचिव यश भसीन समेत छह छात्रों को गिरफ्तार कर लिया और पुलिस वैन में डालकर उन्हें वहाँ से ले गई।[168] लेकिन उसी रात्रि को सभी छात्रों को छोड़ दिया गया।''

4.2. छात्रों की भूख हड़ताल

लेकिन मामला यहीं खत्म नहीं हुआ। ''अनुशासनात्मक कार्यवाही करते हुए महाविद्यालय प्रशासन ने स्टुडेंट नेशनल एसोसिएशन के प्रधान वेद मित्र और महासचिव यश भसीन को महाविद्यालय से निकाल दिया, जबकि विरोध प्रदर्शनवाले दिन वेद मित्र कॉलेज में ही नहीं थे। बाद में हो-हल्ला मचने पर कॉलेज प्रशासन ने उन्हें महाविद्यालय से निकालने का आदेश तो वापस ले लिया, लेकिन दोनों को चार-चार सौ रुपए जुर्माना अवश्य कर दिया। महाविद्यालय प्रशासन की इस तानाशाही के खिलाफ छात्रों में रोष पनप रहा था। लेकिन महाविद्यालय प्रशासन इसके बावजूद अपने निर्णय पर अड़ा रहा। इस पर स्टुडेंट नेशनल एसोसिएशन (कालांतर में यह संगठन वर्ष 1954 में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् में विलीन हो गया था) ने भूख हड़ताल शुरू करने का फैसला किया।[169] दरअसल, ''शेख अब्दुल्ला की सरकार जम्मू के प्रति विद्वेषपूर्ण नीति का आलंबन कर रही थी। सरकार वास्तव में जम्मू के राजनैतिक, सांस्कृतिक व सामाजिक अस्तित्व को ही समाप्त करने का षड्यंत्र रच रही थी। सरकार के इन अत्याचारों के कारण लोगों के मनों के भीतर-ही-भीतर आक्रोश भड़क रहा था। जनवरी 1952 में मानो सरकार ने स्वयं ही यह अवसर प्रदान कर दिया।'' [170] 28 जनवरी, 1952 को छात्रों की एक बैठक में भूख हड़ताल प्रारंभ करने का फैसला हुआ। बैठक में जो छात्र भूख हड़ताल पर बैठने के लिए तैयार थे, उन्हें हाथ खड़ा करने के लिए कहा गया। ''सबसे पहला हाथ कुलदीप चंद्र वर्मा का उठा, लेकिन उसे पहली टोली में शामिल नहीं किया गया, क्योंकि उसका अभी महाविद्यालय में प्रवेश ही हुआ था और उसकी उम्र भी उस समय पंद्रह साल की थी।'' [171] यह भूख हड़ताल 40 दिनों तक चली।

''भूख हड़ताल पर बैठनेवाले पहले जत्थे में तिलक राज शर्मा और विश्व पाल थे। प्रत्येक दिन दो नए छात्र भूख हड़ताल पर बैठ जाते थे, लेकिन पहले बैठे छात्रों की भूख हड़ताल भी जारी रहती थी। चमनलाल गुप्ता, वेद मित्र, राम स्वरूप, हरदेव शर्मा, रामनाथ शर्मा, कुलदीप वर्मा, ज्ञान चंद, द्वारका नाथ भारती, घनश्याम, हंसराज समेत 27 छात्रों ने इस 40 दिन की भूख हड़ताल में भाग लिया। पुलिस भूख हड़ताल पर बैठे छात्रों को केंद्रीय कारागार, जम्मू ले जाती थी और वहाँ उन्हें बलपूर्वक भोजन देने का यत्न किया जाता।'' [172]

''29 जनवरी को महाविद्यालय में पूरी तरह हड़ताल रही। उसी दिन तीन छात्र भूख हडताल पर बैठे। अगले दिन 30 जनवरी को दो और छात्र भूख हड़ताल पर बैठ गए। 1 फरवरी को उनमें दो और छात्र जुड़ गए। महाविद्यालय के अधिकारियों ने उन छात्रों की जायज माँगें स्वीकार करने व सुनने की बजाय नौ छात्रों का नाम महाविद्यालय से काट

दिया।'' [173] महाविद्यालय के छात्र जुर्माना रद्द करने की माँग कर रहे थे और महाविद्यालय प्रशासन का रवैया उतना ही अड़ियल होता जा रहा था। ''3 फरवरी को पुलिस ने महाविद्यालय से दस छात्रों को गिरफ्तार कर लिया। इसके अतिरिक्त तीन अन्य छात्र हिंसक प्रदर्शन के आरोप में बंदी बना लिए गए। महाविद्यालय अधिकारियों ने इन सभी छात्रों के नाम महाविद्यालय में से काट दिए और महाविद्यालय में भारी पुलिस बंदोबस्त कर दिया गया।'' [174]

एस.एन.ए. ने इस पूरे कांड को लेकर दो प्रश्न उठाए। संगठन के महासचिव के अनुसार, ''लंबे समय से राज्य का लाल व केसरिया रंग का अपना ध्वज है। अब शेख अब्दुल्ला राज्य के लिए केवल अलग ध्वज ही नहीं चाहते बल्कि यह भी चाहते हैं कि उनकी पार्टी का झंडा ही राज्य का झंडा हो। इस संदर्भ में दो प्रश्नों का उत्तर दिया जाना लाजिमी है। क्या जम्मू-कश्मीर राज्य का अलग झंडा होना चाहिए? क्या सरकार महाविद्यालय के छात्रों को किसी राजनैतिक दल का झंडा फहराने हेतु विवश कर सकती है?'' [175]

इस छात्र आंदोलन पर 7 फरवरी को महाविद्यालय के प्रिंसिपल ने राज्य सरकार को अपनी रपट भेजी—''सर्दियों में सरकार जम्मू में स्थानांतरित हो गई तो विभाग ने जम्मू संभाग के छात्रों के लिए शारीरिक प्रदर्शन व एथलेटिक्स मीट का एक कार्यक्रम निश्चित किया और उसका पहला आयोजन राजकीय गांधी मेमोरियल महाविद्यालय में 15 जनवरी को किया। महाविद्यालय के छात्रों ने इस कार्यक्रम में राष्ट्रीय ध्वज के साथ हलवाला झंडा फहराने का विरोध किया। मुझे इस मामले में कोई शक नहीं है कि ये छात्र महाविद्यालय में गड़बड़ फैलाने व हुड़दंग के लिए आमादा हैं। इसलिए मेरे पास यह संस्तुति करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है कि महाविद्यालय को अनिश्चित काल के लिए बंद कर दिया जाए, जब तक इन छात्रों को सद्बुद्धि नहीं आ जाती।'' [176] और सरकार ने प्रिंसिपल की संस्तुति स्वीकारते हुए 8 फरवरी से महाविद्यालय अनिश्चित काल के लिए बंद कर दिया।

4.3. छात्र आंदोलन फैलने लगा

सरकार की हठधर्मिता के कारण धीरे-धीरे छात्रों का यह विरोध पूरे जम्मू क्षेत्र में जनांदोलन का रूप धारण करने लगा। यदि सरकार महाविद्यालय में नेशनल कॉन्फ्रेंस का झंडा फहराने की घटना पर खेद प्रकट कर देती और छात्रों पर बदले की कार्यवाही करने से संकोच करती तो यह घटना जन-आंदोलन में न बदलती। परंतु सरकार शायद यह समझती थी कि जम्मू क्षेत्र की जन-भावनाओं के आगे झुकना उसकी कमजोरी माना जाएगा। आंदोलन धीरे-धीरे जम्मू संभाग की अस्मिता से जुड़ने लगा था।

6 फरवरी को नगर में प्रदर्शन की अनेक घटनाएँ हुईं। इसको देखते हुए सरकार ने सिनेमाघर बंद करने के आदेश जारी कर दिए। जम्मू के जिलाधीश ने इस झगड़े को सुलझाने के लिए प्रजा परिषद् के नेताओं से सहायता करने का आग्रह भी किया। उसके आग्रह पर परिषद् ने बीच में पड़कर महाविद्यालय प्रशासन और छात्रों में समझौता करवा ही दिया था। 6 फरवरी को ही यह झगड़ा सुलझ जाता, ''लेकिन राज्य के उप-प्रधानमंत्री बक्शी गुलाम मुहम्मद के दुराग्रह के कारण यह सिरे न चढ़ सका। वे चाहते थे कि छात्र पूरी तरह आत्मसमर्पण करें।'' [177]

4.4. छात्रों पर लाठी चार्ज और गोलीबारी

भूख हड़ताल पर बैठे छात्रों को अब तक व्यापक जन-समर्थन मिलने लगा था। 8 फरवरी को छात्र जब

महाविद्यालय पहुँचे तो पता चला कि सरकार ने महाविद्यालय बंद कर दिया है। धीरे-धीरे छात्रों की संख्या बढ़ने लगी। शहर में भी छात्रों के प्रति सहानुभूति थी, इसलिए बड़ी संख्या में लड़कियाँ भी महाविद्यालय में प्रतीकात्मक समर्थन देने पहुँची हुई थीं। छात्र उत्तेजित थे। महाविद्यालय के अधिकारी बात करने के लिए तैयार नहीं थे। छात्र-छात्राएँ प्रदर्शन की शक्ल में आगे बढ़ने लगे। पुलिस ने लाठी चार्ज कर दिया। एक लड़की प्रहार से बेहोश हो गई। उत्तेजित छात्रों ने सचिवालय जाकर सरकार के प्रतिनिधियों से मिलने का निर्णय किया। छात्र समूह एक प्रदर्शन में बदल रहा था और वे नारे लगाते हुए सचिवालय की ओर बढ़ने लगे। रास्ते में रणवीर हाई स्कूल पड़ता था। प्रदर्शनकारी जब वहाँ पहुँचे तो स्कूल के विद्यार्थी भी उनमें आ मिले। स्कूल से प्रदर्शनकारी कच्ची छावनी की ओर बढ़े। वहाँ से महारानी महिला महाविद्यालय की छात्राएँ भी नारे लगाती हुई प्रदर्शन में शामिल हो गईं।178 अब तक प्रदर्शनकारियों की संख्या 2,000 से भी ज्यादा हो गई थी। आश्चर्य की बात यह थी कि यह सब स्वत:स्फूर्त हो रहा था। प्रदर्शन में महिलाओं की संख्या भी काफी थी और वे प्रदर्शन के आगे चल रही थीं।

''प्रदर्शनकारियों को रास्ते में रोकने के लिए पुलिस ने पाँच बार लाठी चार्ज किया और तीन बार गोलियाँ चलाईं।'' 179 लेकिन छात्रों का यह हुजूम रुका नहीं। वे सचिवालय तक पहुँच ही गए। लेकिन यहाँ प्रदर्शनकारियों के प्रतिनिधियों से मिलकर उनकी बात सुनने की बजाय सचिवालय के दरवाजे बंद कर दिए गए। प्रदर्शनकारी अंदर जाने की माँग कर रहे थे। पुलिस ने फिर लाठी चार्ज किया। छात्रों ने पुलिस पर पत्थर फेंकने शुरू कर दिए। पुलिस ने गोली चला दी और प्रशासन ने सेना को गुहार लगाई। अब दोनों पक्षों में जमकर लड़ाई हुई। छात्रों ने सीमा शुल्क अधिकारी के कार्यालय में घुसकर तोड़-फोड़ की। कुछ छात्र दीवार फाँदकर अंदर घुसने में सफल हो गए। उधर कुछ प्रदर्शनकारी पंज तीर्थी चौक पर एकत्र होने लगे थे। वहाँ भी पुलिस और प्रदर्शनकारियों की भिड़ंत हुई। शहर में रघुनाथ मंदिर बाजार में भी जुलूस निकाले गए। कुल मिलाकर आंदोलन व्यापक रूप ले रहा था। सरकार प्रदर्शनकारियों को दबाने के लिए कश्मीर मिलिशिया का प्रयोग कर रही थी, जिससे तनाव और भी बढ़ रहा था।

सरकार ने छात्रों से बातचीत का रास्ता अपनाने की बजाय इस छात्र आंदोलन की आड़ में प्रजा परिषद् को घेरने के प्रयास प्रारंभ कर दिए। जम्मू-कश्मीर के उप-प्रधानमंत्री बक्शी गुलाम मुहम्मद के अनुसार, ''इस आंदोलन के पीछे प्रजा परिषद् का हाथ है। परिषद् सरकार की सत्ता को चुनौती दे रही है, तोड़-फोड़ कर रही है और लोगों में भ्रम पैदा करने का प्रयास कर रही है। सरकार हर हालत में इस आंदोलन को पराजित करेगी।'' 180 ''पंद्रह लोग गिरफ्तार किए गए। लाठी चार्ज और गोलीबारी में छह लोग घायल हुए। पुलिस के छह सिपाहियों को भी चोटें आईं।'' 181

राज्य सरकार की अपनी विज्ञप्ति के अनुसार, जो 8 फरवरी, 1952 को इस पूरे घटनाक्रम पर जारी की गई—''भीड़ ने चेतावनी सुनने से इनकार कर दिया। प्रदर्शनकारियों के आगे-आगे महिलाएँ चल रही थीं, इसलिए पुलिस के लिए इसे तितर-बितर करना बहुत मुश्किल था। लेकिन फिर भी पुलिस की एक टुकड़ी ने महिला प्रदर्शनकारियों से बचते हुए भीड़ में प्रवेश कर उन्हें शेष प्रदर्शनकारियों से अलग कर दिया। तब पुलिस की इस टुकड़ी ने प्रदर्शनकारियों को तितर-बितर करने के लिए हलका लाठी चार्ज किया। यह भी इसलिए करना पड़ा, जब आस-पास के मकानों से पुलिस और ड्यूटी पर तैनात मजिस्ट्रेट पर पत्थरों की बारिश होने लगी और उससे कुछ सिपाही घायल भी हुए। लाठी चार्ज से भीड़ तो छँट गई, लेकिन आस-पास की गलियों से पुलिस पर पत्थर फिर भी बरसते रहे। इसी प्रकार

एक और भीड़ पंज तीर्थी चौक पर एकत्र हो गई और वह स्पष्ट ही पुलिस व मौके पर तैनात मजिस्ट्रेट को घेरने का प्रयास कर रही थी। वहाँ की स्थिति बहुत ही चिंताजनक हो गई थी। इसलिए जिला मजिस्ट्रेट ने इस मौके पर सेना से सहायता माँगी।'' [182] भारतीय सेना, जो राज्य में पाकिस्तानी आक्रमणकारी सेना से लड़ने आई थी, को शेख अब्दुल्ला अब जम्मू के छात्रों से लड़ाना चाहते थे।

4.5. प्रजा परिषद् के अध्यक्ष गिरफ्तार

सरकार ने 8 फरवरी की आधी रात को जम्मू में 72 घंटे के कर्फ्यू की घोषणा कर दी। लोग जब प्रात:काल जागे तो घर से बाहर निकलने की मनाही हो गई। 8 फरवरी को ही प्रजा परिषद् के अध्यक्ष पं. प्रेमनाथ डोगरा समेत कार्यकारिणी के सदस्य शिवराज गुप्ता और चौधरी ज्ञानचंद गिरफ्तार कर लिये गए। पुलिस ने कुल मिलाकर 21 लोग गिरफ्तार किए। उप-प्रधानमंत्री बक्शी गुलाम मोहम्मद ने पुलिस मुख्यालय के मनोरंजन कक्ष में बाकायदा प्रेस वार्त्ता करते हुए ''पुलिस की गोलीबारी में दो लोगों के मारे जाने का खंडन किया। आंदोलन के लिए एक बार फिर प्रजा परिषद् को जिम्मेदार ठहराया और यहाँ तक कहा कि इस योजना के प्रमाण सरकार के पास हैं, जो समय आने पर सार्वजनिक किए जाएँगे।'' [183] 9 फरवरी को जारी राज्य सरकार की विज्ञप्ति के अनुसार, ''गिरफ्तार किए गए लोगों में कुछ प्रजा परिषद् के पदाधिकारी भी हैं, जो कल की घटनाओं में संलिप्त पाए गए थे। अब स्थिति शांत है और पुलिस मुख्य स्थानों पर गश्त लगा रही है। महत्त्वपूर्ण स्थानों की रक्षा सेना कर रही है।'' [184] छात्र आंदोलन की आड़ में नेशनल कॉन्फ्रेंस सरकार ने प्रजा परिषद् को दबाने, डराने व धमकाने का काम शुरू कर दिया। भारतीय जनसंघ ने राज्य के इस घटनाक्रम पर चिंता प्रकट करते हुए कहा, ''(सरकार ने) स्थिति का अनुचित लाभ उठाते हुए राज्य के एकमात्र विरोधी दल प्रजा परिषद् के नेताओं को गिरफ्तार कर लिया।'' [185] ''उधर जामनगर का प्रवास कर रहे कर्ण सिंह को बख्शी गुलाम मोहम्मद और गोपालस्वामी आयंगर ने बताया कि स्थिति पूरी तरह नियंत्रण में है, अत: प्रवास बीच में छोड़कर वापस आने की जरूरत नहीं है।' [186]

4.6. प्रजा परिषद् का संलिप्तता से इनकार

प्रजा परिषद् ने आंदोलन अपनी संलिप्तता के सरकारी आरोपों का खंडन किया। परिषद् के प्रवक्ता के अनुसार, ''प्रजा परिषद् का किसी प्रकार की भी विध्वंसक कार्यवाहियों में विश्वास नहीं है। वह तो राज्य में शांतिमय एवं सद्भावनापूर्ण वातावरण के लिए कार्य कर रही है। चूँकि प्रजा परिषद् भारत समर्थक पक्ष लेती है, इसलिए प्रदेश सरकार उसे अपनी राजनीतिक स्वार्थसाधना के लिए बलि का बकरा बना रही है। परिषद् पूरे घटनाक्रम की निष्पक्ष जाँच की माँग करती है।'' [187] बक्शी गुलाम मोहम्मद सब घटनाओं की रपट बाकायदा लंदन में प्रदेश के प्रधानमंत्री शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को दे रहे थे और उधर जम्मू सन्नाटे में घिरा हुआ था, जिसमें केवल सशस्त्र बलों की पदचाप ही सुनाई दे रही थी। शहर में मिलिशिया आतंक पैदा कर रही थी। मिलिशिया का गठन शेख अब्दुल्ला ने सत्ता सँभालने के बाद किया था और उसके सदस्य शेख के प्रति व्यक्तिगत रूप से निष्ठावान् थे। हिंदू महासभा के अखिल भारतीय संगठन मंत्री विष्णुगुप्त देशपांडे और पंजाब के अध्यक्ष कैप्टन केशवचंद्र स्थिति का अध्ययन करने के लिए जम्मू आए। अनेक लोगों से मिलने के बाद ''उन्होंने सरकार से प्रजा परिषद् के लोगों को

तुरंत रिहा करने की माँग की। उन्होंने पूछा कि महाविद्यालय के अधिकारी आखिर नेशनल कॉन्फ्रेंस के झंडे को सलामी देने के लिए किसी को बाध्य कैसे कर सकते हैं?'' [188]

4.7. सरकारी दमन व अत्याचार

शहर पूरी तरह पुलिस और सेना के नियंत्रण में ही था। राशन की दुकानें बंद थीं। डाक व्यवस्था पूरी तरह ठप्प हो चुकी थी। तार विभाग आंशिक रूप से कार्य कर रहा था। नगर में जल-आपूर्ति की बहाली का प्रयास सरकार कर रही थी। बाहर से आनेवाले यात्रियों के लिए परिवहन व्यवस्था का प्रयास भी किया जा रहा था। सरकार ने राज्य की पंजाब से लगती सीमा सील कर दी थी। केवल दो घंटों के लिए कर्फ्यू में ढील दी गई थी। उसके लिए भी अलग-अलग वार्ड में अलग-अलग समय निर्धारित किया गया था।

जम्मू की केंद्रीय कारागार में बंद दस छात्रों को सरकार ने 9 फरवरी को बिना किसी शर्त के रिहा कर दिया और साथ ही उप-प्रधानमंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद ने घोषणा कर दी, ''अब सरकार का छात्रों से कोई झगड़ा नहीं है। हम सीधे अब प्रजा परिषद् से निपटेंगे।'' [189] प्रजा परिषद् के कार्यकर्ता सरकार की नीयत देखते हुए भूमिगत होने लगे। उधर सरकार ने आंदोलन को बदनाम करने की नई रणनीति अपनाई। सरकारी कर्मचारी प्रचार के लिए उतारे गए। ''रणवीर राजकीय हाई स्कूल और महिला राजकीय महाविद्यालय की प्रधानाचार्य ने जम्मू रेडियो से प्रसारण में बताया कि प्रदर्शनकारी जबरदस्ती उनके संस्थानों में घुसे थे।'' [190]

शुक्रवार की घटनाओं के बाद सचिवालय बंद कर दिया गया था और सरकार ने नगर के अजायब घर भवन को ही ऑपरेशन मुख्यालय बना लिया था। राजकीय गांधी मेमोरियल महाविद्यालय तो पहले ही अनिश्चित काल के लिए बंद कर दिया था। 11 फरवरी को जब कर्फ्यू में कुछ समय के लिए छूट दी गई तो लोग शहर के चौक में फिर एकत्र होकर प्रदर्शन करने लगे। वहाँ स्थिति बिगड़ने के आसार होने लगे।[191] अब सरकार का सारा जोर और ध्यान प्रजा परिषद् को दबाने व सबक सिखाने में लगा हुआ था। शहर भर में उसके कार्यकर्ताओं को पकड़ने के लिए घरों की तलाशियाँ हो रही थीं। सबसे दुर्भाग्यपूर्ण बात यह थी कि तमाम न्यायिक प्रक्रियाओं को ताक पर रखकर लोगों को गिरफ्तार कर तुरत-फुरत सजाएँ भी सुनाई जा रही थीं। 'सार्वभूम साधु मंडल के स्वामी भास्करानंद को तीन मास की कैद और 500 रुपए जुर्माना किया गया। सरकार का कहना था कि स्वामीजी ने छात्रों को आंदोलन के लिए भड़काया है।'' [192] भूख हड़ताल पर बैठे एस.एन.ए. के प्रधान वेद मित्र के पिता को जिला मजिस्ट्रेट ने अपने कार्यालय में बुलाया और वहाँ आते ही गिरफ्तार कर लिया। प्रजा परिषद् के कार्यकर्ताओं की तलाश में पुलिस लोगों के घरों में दरवाजा खटखटाकर नहीं जाती थी, बल्कि दीवार फाँदकर अंदर घुसती थी।[193]

4.8. प्रजा परिषद् के खिलाफ दुष्प्रचार

बक्शी गुलाम मोहम्मद ने प्रजा परिषद् को घेरने की एक नई रणनीति बनाई। सरकार ने अजायब घर भवन में जम्मू के प्रमुख लोगों की एक सभा बुलाई। उसमें अन्य सरकारी अधिकारियों समेत बक्शी स्वयं भी उपस्थित थे। उनकी योजना थी कि सभा प्रजा परिषद् की निंदा करे। लेकिन कुछ लोगों ने हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। ''उनका

कहना था कि केवल सरकारी पक्ष सुनने पर ही तो कुछ नहीं कहा जा सकता। इसके लिए तो दूसरे पक्ष को भी सुनना पड़ेगा। तब बक्शी गुलाम मोहम्मद ने स्पष्ट कर दिया कि यदि आप लोग स्थिति सुधारने की जिम्मेदारी नहीं ले सकते तो कर्फ्यू बढ़ा दिया जाएगा।'' [194] और कर्फ्यू बढ़ा दिया गया। इस मीटिंग में, एक पूर्व न्यायाधीश भी थे। ''जब बख्शी गुलाम मोहम्मद ने कहा कि इन घटनाओं के लिए प्रजा परिषद् जिम्मेदार है, उसकी निंदा करनेवाले बयान पर आप लोग हस्ताक्षर करो। तब उस पूर्व न्यायाधीश ने कहा कि मैं छात्रों की निंदा तो कर सकता हूँ, लेकिन प्रजा परिषद् की निंदा कैसे कर सकता हूँ, जिसका इससे कुछ लेना-देना नहीं है। तब बख्शी गुस्से में आकर कहने लगे कि निकलो यहाँ से, तुम सभी लोग प्रजा परिषद् के आदमी हो।'' [195] सरकार को सबसे ज्यादा तलाश प्रजा परिषद् के महासचिव दुर्गा दास वर्मा की थी। उसे विश्वास था कि उसके काबू आ जाने पर यह आंदोलन दबाया जा सकता है। सरकार महासचिव को तो पकड़ नहीं पा रही थी, लेकिन उसने पं. प्रेमनाथ डोगरा को जम्मू से बाहर भेजने का निर्णय लिया। डोगरा को उनके साथियों समेत जम्मू की केंद्रीय कारागार से निकालकर श्रीनगर की जेल में भेज दिया। आंदोलन को नियंत्रित करने के लिए पंजाब पुलिस को भी राज्य में बुला लिया गया। प्रतिदिन गिरफ्तारियाँ हो रही थीं। प्रदर्शनकारी कर्फ्यू का उल्लंघन कर स्वयं को गिरफ्तारी के लिए प्रस्तुत करते थे। 15 फरवरी को एक साथ दस छात्र गिरफ्तार किए गए।[196] सरकार का जम्मू के लोगों पर इतना गुस्सा था कि उसने नेशनल कॉन्फ्रेंस के हिंदू नेताओं को भी नहीं बख्शा। ऐसे ही एक नेता ओमप्रकाश सर्राफ को पुलिस ने 15 फरवरी की आधी रात को उनके घर से पकड़ लिया। न तो उन्हें गिरफ्तारी का कोई वारंट दिया गया, न ही कोई लिखित आदेश दिया गया और न ही कोई कारण बताया गया। सर्दियों की रात को उन्हें सारी रात थाने में बिठाए रखा गया।[197] कर्फ्यू का समय रात्रि 10 बजे से लेकर प्रात: 7 बजे तक कर दिया गया था। अलबत्ता इस तमाम आंदोलन का केंद्र ''गांधी मेमोरियल विज्ञान महाविद्यालय 18 फरवरी को खोल दिया गया। यह पिछले दस दिनों से बंद था।'' [198]

प्रजा परिषद् ने सरकारी दमन और उसके जम्मू के लोगों के साथ व्यवहार को लेकर एक प्रतिनिधिमंडल दिल्ली भेजने का निर्णय किया, ताकि भारत सरकार को सही स्थिति से अवगत करवाया जा सके। परिषद् के कुछ सदस्य इस हेतु दिल्ली भी पहुँच गए थे।[199] सरकार ने जिन दस छात्रों को 9 फरवरी को रिहा कर दिया था, उन्होंने 17 फरवरी को एक बार फिर गिरफ्तारी दे दी। सरकारी विज्ञप्ति में ''इन गिरफ्तार छात्रों को प्रजा परिषद् के सदस्य बताया गया; जबकि उन छात्रों का कहना था कि उनका राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है। हमारी माँग यह है कि 15 जनवरी के कांड में जिन छात्रों को महाविद्यालय से निकाल दिया गया है, उनका निष्कासन रद्द किया जाए और आर्थिक दंड मुआफ किया जाए।'' [200] सरकार शायद छात्र आंदोलन के बहाने प्रजा परिषद् को खत्म करना चाहती थी। परिषद् के सदस्यों के घरों पर वक्त-बेवक्त पुलिस छापे मार रही थी। ''पार्टी के केंद्रीय कार्यालय पर भी पुलिस ने धावा बोला।'' [201]

4.9. शेख अब्दुल्ला की वापसी

8 फरवरी की घटनाओं के समय शेख अब्दुल्ला लंदन गए हुए थे। वहाँ से वे 13 फरवरी को मुंबई पहुँचे। वैसे तो राज्य सरकार उन्हें सभी घटनाओं की सूचना दे ही रही थी। लेकिन वापस आकर उन्होंने स्वयं स्थिति का आकलन करने के बाद जम्मू रेडियो स्टेशन से राज्य के लोगों को संबोधित किया। अपने प्रसारण में शेख ने कहा, ''आपने स्वयं समझ ही लिया होगा कि मेरी अनुपस्थिति में जम्मू के दिग्भ्रमित दोस्तों की इन हरकतों से विदेशी शत्रुओं ने कितना लाभ उठाया है। जम्मू में हाल ही में हुई दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं पर हमारे शत्रुओं ने क्या-क्या कहा है, वह आपको पता चल ही गया होगा। साथ ही यह भी कि कुछ रास्ता भटके हुए मित्रों की कार्यवाहियों से हमारे राज्य और भारत को बदनाम करने में कितनी मदद मिलती है। इन घटनाओं से न तो इनसे संबंधित मित्रों को, न राज्य को, न ही भारत को कोई लाभ हुआ है। इससे उन दुश्मनों को ही लाभ हुआ है, जो पिछले 4 साल से हमें गुलाम बनाने के प्रयास कर रहे हैं।'' [202] परंतु शेख के आने के बाद भी सरकार के दमन में किसी प्रकार की कमी नहीं आई। 20 फरवरी को ही दो और छात्र गिरफ्तार किए गए। उन्हें मिलाकर बंदी बनाए गए छात्रों की संख्या 16 हो गई। पूर्व में गिरफ्तार 12 छात्रों को इसी दिन दो-दो महीने की कैद के अतिरिक्त 200-200 रुपए का जुर्माना किया गया।

4.10. प्रजा परिषद् के नेताओं का राज्य-निष्कासन

प्रजा परिषद् के महासचिव दुर्गा दास वर्मा एवं उपाध्यक्ष धन्वंतर सिंह को जम्मू-कश्मीर सुरक्षा नियमों के अंतर्गत राज्य से अनिश्चित काल के लिए निष्कासित कर दिया गया। प्रजा परिषद् के अन्य अनेक भूमिगत कार्यकर्ताओं के खिलाफ सुरक्षा नियम 24 के अंतर्गत गिरफ्तारी वारंट जारी कर दिए गए।[203] 8 फरवरी से लगाया गया कर्फ्यू अंततः 21 फरवरी को उठा लिया गया।[204] परंतु प्रजा परिषद् के कार्यकर्ताओं की धर-पकड़ में ढिलाई नहीं आई। प्रजा परिषद् ने पुलिस की पकड़ से बचने के लिए पंजाब के पठानकोट में अपनी प्रादेशिक कार्यकारिणी की बैठक करने का निर्णय लिया। यह बैठक 25 फरवरी को हुई।

4.11. प्रजा परिषद् की कार्यकारिणी की बैठक

परिषद् के उपाध्यक्ष धन्वंतर सिंह की अध्यक्षता में हुई। इस बैठक में राज्य की स्थिति पर प्रस्ताव पारित किए गए। प्रस्ताव के अनुसार, जम्मू के छात्र आंदोलन को संचालित करने में प्रजा परिषद् का कोई हाथ नहीं है। सरकार जान-बूझकर लोगों का ध्यान बँटाने के लिए इसमें प्रजा परिषद् का नाम घसीट रही है। सरकार द्वारा प्रजा परिषद् के कार्यकर्ताओं के खिलाफ गिरफ्तारी वारंट, निष्कासन आदेश निकालना, घरों की तलाशियाँ लेना, कर्मचारियों का निलंबन और 'प्रताप' अखबार पर प्रतिबंध लगाना अन्यायपूर्ण, आपत्तिजनक एवं असंवैधानिक है। प्रस्ताव में माँग की गई कि प्रजा परिषद् के कार्यकर्ताओं को तुरंत रिहा किया जाए, 'प्रताप' अखबार पर प्रतिबंध वापस लिया जाए एवं परिषद् के लोगों के खिलाफ जारी किए गए गिरफ्तारी वारंट व निष्कासन आदेश रद्द किए जाएँ। सरकार से आग्रह किया गया कि वह जम्मू के लोगों के वैधानिक अधिकारों एवं आकांक्षाओं का सम्मान ही न करे बल्कि उनकी रक्षा भी करे। एक अन्य प्रस्ताव में कहा गया कि छात्रों की हड़ताल सत्ताईसवें दिन में पहुँच गई है। सरकार उनसे बातचीत कर उनकी प्राण-रक्षा करे और जम्मू की घटनाओं की स्वतंत्र एवं निष्पक्ष जाँच करवाई जाए।[205]

4.12. नेशनल कॉन्फ्रेंस के झंडे पर सरकार का स्टैंड

लगभग डेढ़ महीने से चले आ रहे इस विवाद में सरकार ने पहली बार झगड़े के असली मुद्दे सरकारी कार्यक्रमों में नेशनल कॉन्फ्रेंस का झंडा फहराने जाने के बारे में अपना पक्ष स्पष्ट किया। इसके लिए सरकार ने स्थान भी डोगरों के गढ़ कठुआ को चुना। 1 मार्च को राज्य के राजस्व मंत्री मिर्जा अफजल बेग ने स्पष्ट किया, ''जब तक राज्य में नेशनल कॉन्फ्रेंस की सरकार है तब तक तो इसका हल वाला झंडा ही राज्य में फहराएगा। यदि लोग नेशनल कॉन्फ्रेंस में शामिल हो जाते हैं, तब तो ठीक है; लेकिन यदि नहीं होते तो वे अपने अलग विचार रख सकते हैं। लेकिन किसी को राज्य की शांति भंग करने की आज्ञा नहीं दी जाएगी। यदि वे चाहें तो पाकिस्तान जा सकते हैं।'' [206]

चार दिन बाद लगभग यही वक्तव्य राज्य के प्रधानमंत्री शेख अब्दुल्ला ने दिल्ली में दोहरा दिया। जम्मू के सरकारी कार्यक्रम में झंडे को लेकर हुए विवाद में उन्होंने कठुआ में मिर्जा अफजल बेग द्वारा लिये गए पक्ष का और भी दृढ़ता से समर्थन किया। उन्होंने कहा, ''हमने अपना संघर्ष नेशनल कॉन्फ्रेंस के झंडे तले लड़ा है। अभी भी इस संघर्ष का कठिन दौर इसी झंडे तले चल रहा है। यह झंडा तब अस्तित्व में आया जब कांग्रेस रियासतों में अपने झंडे का प्रयोग नहीं करने देती थी। तब हमने अपना यह झंडा निश्चित किया। नेशनल कॉन्फ्रेंस का झंडा सांप्रदायिक नहीं है। राज्य में नेशनल कॉन्फ्रेंस की सरकार है। हम जब भी कहीं कार्यक्रम करते हैं तो राष्ट्रीय झंडा और अपनी पार्टी का झंडा साथ-साथ फहराते हैं। आप मुझसे यह आशा तो नहीं कर सकते कि मैं मुसलिम लीग का या किसी और का सांप्रदायिक झंडा फहराऊँ। हम भी अपनी पार्टी के झंडे का उतना ही सम्मान करते हैं जितना सत्ता में आने पर कांग्रेस ने अपने झंडे का किया। महाविद्यालय के कार्यक्रम में भी दोनों झंडे फहरा रहे थे। 10-12 छात्रों ने अपनी अंतरात्मा का नाम लेकर हमारी पार्टी का झंडा फहराने पर विरोध जताया। अधिकारियों ने उन्हें बता दिया कि यदि उनकी अंतरात्मा नहीं मानती तो वे इसमें हिस्सा न लें और झंडे को सलामी न दें। छात्रों ने कहा—हम दूसरों को भी ऐसा नहीं करने देंगे। इन छात्रों को कोई अधिकार नहीं कि जो इस झंडे को प्यार करते हैं, उनको सलामी देने से रोकें। हमें इस झंडे का सम्मान करना ही होगा, जिसने हमें आजादी दी है।'' [207]

लेकिन शेख इस प्रश्न पर चुप ही रहे कि सरकारी कार्यक्रम में किसी राजनैतिक दल का झंडा कैसे फहराया जा सकता है। नेशनल कॉन्फ्रेंरस एक राजनैतिक दल था और उसके झंडे को उसके कार्यकर्ता प्यार करें व सम्मान दें, इस पर भला किसी को क्या आपत्ति हो सकती थी! परंतु शेख तो राजनैतिक दल के झंडे को सत्ता के बल पर दूसरे लोगों पर थोप रहे थे।

4.13. छात्रों की हड़ताल समाप्त

शेख अब्दुल्ला का अपने झंडे को लेकर जो भी स्टैंड रहा हो, जम्मू में छात्र आंदोलन का ताप सहना अब सरकार के लिए मुश्किल होता जा रहा था। सरकार ने 9 मार्च, 1952 को छात्रों पर लगाया गया जुर्माना वापस ले लिया और महाविद्यालय से छात्रों का निष्कासन भी रद्द कर दिया। इस प्रकार छात्रों की 40 दिन की भूख हड़ताल सफलतापूर्वक समाप्त हुई और सरकार ने उनकी सभी माँगें स्वीकार कीं। छात्रों का यह आंदोलन स्टुडेंट नेशनल एसोसिएशन के महासचिव यश भसीन के नेतृत्व में चलाया जा रहा था। यशपाल भूमिगत हो गए थे और उनको पुलिस अंत तक पकड़ नहीं पाई थी। भगवत स्वरूप और रूपलाल रोहमित्रा का भी आंदोलनकारियों से बराबर संपर्क बना रहा।

4.14. प्रजा परिषद् को चेतावनी

जम्मू के छात्रों की, यह शेख सरकार के खिलाफ पहली जीत मानी गई। छात्रों को रिहा करने और उनकी माँगें स्वीकार कर लेने के बाद अब सरकार सीधे-सीधे प्रजा परिषद् पर प्रहार कर सकती थी। परिषद् के कार्यकर्ता अभी रिहा नहीं किए गए थे। इसके विपरीत शेख अब्दुल्ला ने प्रजा परिषद् के बारे में सरकारी दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए अपने मन का खुलासा किया। उनके अनुसार, ''परिषद् के साथ प्रदेश की आम जनता नहीं है। यही कारण था कि वह चुनाव से भाग निकली। जब नेशनल कॉन्फ्रेंस कश्मीर में दो लाख गैर-मुसलमानों की रक्षा कर रही थी तो जम्मू में प्रजा परिषद् क्या कर रही थी, यह सभी जानते हैं। लेकिन हमने प्रजा परिषद् से बदला नहीं लिया। वास्तव में मुझे प्रजा परिषद् ठीक से समझ नहीं पाई। यदि मैं मुसलिम सांप्रदायिकता को कुचलने में सक्षम हूँ तो भला हिंदू या सिक्ख सांप्रदायिकता को कैसे छोड़ दूँगा! मैंने प्रजा परिषद् को सुधरने का मौका दिया था; लेकिन दुर्भाग्य से मैं सफल नहीं हो पाया। मैं समझ नहीं पाता कि आखिर वे चाहते क्या हैं? कभी वे सांप्रदायिकता की बात करते हैं, कभी क्षेत्रवाद की। कभी वे मुझे जम्मू से धकेलकर कश्मीर भेजना चाहते हैं और कभी जम्मू को ही कश्मीर से अलग करना चाहते हैं। मैं हिंदू, मुसलमान या सिक्ख शब्दावली में विश्वास नहीं करता; लेकिन यदि देश उनके दृष्टिकोण का समर्थन करता है तो यह दुर्भाग्यपूर्ण है। मैंने अभी तक प्रजा परिषद् को प्रतिबंधित नहीं किया है। आप उनके भाषण पढ़िए, कितनी गंदी भाषा का प्रयोग किया होता है। वे सरकार ध्वस्त करना चाहते हैं।'' [208]

20 मार्च को शेख ने जम्मू में आकर एक बार फिर प्रजा परिषद् के बारे में अपनी राय व्यक्त की। उनके अनुसार, ''प्रजा परिषद् के प्रधान को उनके साथियों समेत जेल में रखने के लिए हम विवश हैं। हमने परिषद् को सुधरने के अनेक अवसर दिए। हमने उन्हें यह भी बताया कि अपनी गतिविधियों से वे कश्मीर को ही हानि नहीं पहुँचा रहे हैं, बल्कि उस भारत को भी पहुँचा रहे हैं, जिसमें वे मिलना चाहते हैं। हमने प्रजा परिषद् की गालियाँ सुनीं, अपमान सहा, केवल इस आशा में कि अंत में उन्हें वास्तविकता का आभास हो ही जाएगा। अब जब तक प्रजा परिषद् के नेता यह विश्वास नहीं दिलाते कि वे आगे से विधि-सम्मत और सांविधानिक तरीके ही प्रयोग करेंगे, तब तक उन्हें जेल में ही रखा जाएगा।'' [209]

4.15. मीडिया को दबाने के प्रयास

लेकिन धीरे-धीरे जम्मू की इन घटनाओं और सरकार की कार्यवाहियों की खबरें देश भर में फैलने लगी थीं। सरकार ने जम्मू क्षेत्र में सर्वाधिक वितरणवाले दो समाचार-पत्रों 'मिलाप' और 'प्रताप' को राज्य में प्रतिबंधित कर दिया।[210] 17 फरवरी को पुलिस ने जम्मू की प्रेम प्रिंटिंग प्रेस पर छापा मारकर उसका सारा रिकॉर्ड और सामान उठा लिया। पुलिस का कहना था कि इसी प्रेस से आंदोलन की सामग्री प्रकाशित होती है। प्रेस के मालिक साप्ताहिक समाचार-पत्र 'कश्मीर मेल' के संपादक थे। पत्रिका में एक आलेख प्रकाशित हुआ था, जिसका शीर्षक था—'जालिम कंस का बच्चों पर अत्याचार शुभ शगुन'। सरकार ने इसे आपत्तिजनक मानते हुए मुद्रक प्रकाशक से 1,000 रुपए की जमानत माँगी। संपादक ने इसे बोलने की आजादी पर प्रहार बताते हुए सरकार के इस आदेश को राज्य के हाई कोर्ट में चुनौती दे दी।[211] उन दिनों जम्मू से 'रणवीर', 'चाँद' और 'अमर' तीन मुख्य अखबार प्रकाशित होते थे। 'रणवीर' लाला मुलकराज सर्राफ ने शुरू किया था और यह रियासत का पहला अखबार था।

कुछ दिनों बाद सरकार ने दिल्ली से छपनेवाले अंग्रेजी साप्ताहिक 'आर्गेनाइजर' पर भी राज्य में प्रतिबंध लगा दिया। आर्गेनाइजर ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा, ''लोकतंत्र में यदि लोगों की कुछ शिकायतें होती हैं तो उनकी उचित जाँच कर उनका निराकरण करना होता है। शिकायत करने को ही प्रतिबंधित कर देना लोकतंत्र नहीं है। शेख लोकतंत्र की दुहाई देते रहते हैं, पर कहीं ऐसा तो नहीं कि वे लोकतंत्र को राज्य से बाहर पठानकोट तक ही देखना चाहते हैं।'' [212]

4.16. संसद् में गूँज

जम्मू की घटनाओं और वहाँ हो रहे दमन-चक्र की गूँज संसद् में भी पहुँची। संसद् सदस्य प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना ने इस प्रश्न को उठाते हुए कहा, ''भूख हड़ताल पर बैठे छात्रों को जेल में डाल देना तो अत्याचार की हद है। मैं शेख अब्दुल्ला का सम्मान करता हूँ, लेकिन जम्मू की घटनाओं से स्तब्ध भी हूँ। संतराम बारू जैसा व्यक्ति, जो वकील है और नेशनल कॉन्फ्रेंस की कार्यकारिणी का सदस्य रह चुका है, वह विवश होकर फटे-पुराने कपड़ों में दिल्ली आता है और हमें बताता है कि वहाँ क्या हो रहा है। यह शेख के प्रशासन पर कलंक है। जाहिर है कि जम्मू में बहुसंख्यक हिंदू समाज को प्रताड़ित किया जा रहा है। उन्हें डराया-धमकाया जा रहा है। शेख अब्दुल्ला कह रहे हैं कि आंदोलन को जन-समर्थन प्राप्त नहीं है। दूसरी ओर हजारों लोगों के साथ एक हजार हिंदू औरतें प्रदर्शन में भाग ले रही हैं। हालात पर नियंत्रण पाने के लिए सेना बुलानी पड़ती है। इससे ज्यादा जन-समर्थन क्या होता है? 70 साल के प्रेमनाथ डोगरा को बंदी बनाकर श्रीनगर की जेल में रखा हुआ है, जहाँ बर्फ पड़ी हुई है। डोगरा जम्मू में सर्वाधिक सम्मानित नेता हैं। कहा जाता है कि प्रजा परिषद् सांप्रदायिक पार्टी है। तर्क के लिए ऐसा मान भी लिया जाए तो भी वह जम्मू का एकमात्र राजनैतिक दल है। अब विपक्ष से सरकार क्या इस प्रकार का व्यवहार करेगी? एक अन्य सदस्य ने आश्चर्य प्रकट किया कि जो प्रजा परिषद् राज्य के भारत में पूर्ण अधिमिलन की माँग कर रही है, धारा 370 को हटाने की माँग कर रही है, उसे शत्रु पक्ष बताया जा रहा है।' [213]

4.17.प्रजा परिषद् के नेताओं की रिहाई

जाहिर है कि जम्मू के इस आंदोलन की व्याप्तता से भारत सरकार भी चिंतित हो रही थी। 4 अप्रैल, 1952 को रियासती मंत्रालय के मंत्री एन. गोपालस्वामी आयंगर जम्मू पहुँचे। प्रत्यक्ष में तो उनकी कार्य-सूची में जम्मू आंदोलन नहीं था, लेकिन परदे के पीछे उन्होंने राज्य सरकार को प्रजा परिषद् के लोगों को तुरंत छोड़ने के लिए दबाव बनाया। 6 अप्रैल को परिषद् के अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा, उपाध्यक्ष शिवराज गुप्ता और ज्ञानचंद सदाव्रती को कारागार से रिहा कर दिया गया। शेख अब्दुल्ला ने स्वयं यह सूचना जम्मू के नागरिकों द्वारा आयंगर के सम्मान में दिए गए भोज में दी।[214] उस समय अंबाला से प्रकाशित होनेवाले अंग्रेजी दैनिक 'ट्रिब्यून' ने इस पूरे घटनाक्रम पर अपने संपादकीय में प्रसन्नता जाहिर की कि ''दो महीने पहले गिरफ्तार किए गए व्यक्ति छोड़ दिए गए हैं। संपादकीय टिप्पणी के अनुसार, ''लगता है कि गोपालस्वामी आयंगर ने भी प्रजा परिषद् के नेताओं की रिहाई में अपनी भूमिका निभाई है। आयंगर ने स्वयं भी कहा कि सभी पक्षों में सामंजस्य बना है, इसकी खुशी है। सरकार को भी लोगों की भावनाओं को समझना चाहिए।'' [215]

इस पूरे अरसे में सरकार ने प्रजा परिषद् के नेताओं को गिरफ्तार करने और उनपर मुकदमा चलाने के लिए

कुख्यात और जन-विरोधी कानूनों का सहारा लिया। भारत सुरक्षा नियम एवं लोक सुरक्षा नियमों के तहत गिरफ्तारियाँ की गईं। इन नियमों के तहत तथाकथित अपराधी को साधारण न्यायिक प्रक्रिया का लाभ नहीं मिल पाता।

4.18. विश्लेषण

लेकिन मुख्य प्रश्न यह है कि सरकार ने छात्रों[216] के साथ हुए इस विवाद को इतना तूल क्यों दिया? शुरू में ही यदि सरकार छात्रों का निष्कासन समाप्त कर देती और उनपर किया गया जुर्माना वापस ले लेती तो बात इतनी न बढ़ती। लेकिन सरकार ने पूरे मुद्दे को प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया और जम्मू के लोगों को एक प्रकार से चुनौती देनी प्रारंभ कर दी। संविधान सभा का प्रदेश में गठन हो चुका था। जल्दी ही सभा के सत्र शुरू होनेवाले थे और उसे राज्य के लिए संविधान का प्रारूप तैयार करना था। ऐसे समय में सरकार ने बिना वजह छात्रों से संबंधित इस मुद्दे को इतना तूल क्यों दिया? दूसरे, बिना किसी कारण के इस पूरे मामले में प्रजा परिषद् को क्यों घसीटा और उसके अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा समेत प्रमुख नेताओं को बंदी बना लिया।

इतना तो स्पष्ट है कि सरकार इस छात्र आंदोलन को ढाल बनाकर राज्य में प्रजा परिषद् को समाप्त करना चाहती थी और परिषद् के साधारण कार्यकर्ताओं के मन में सत्ता के बल पर भय पैदा करना चाहती थी। महात्मा गांधी की हत्या को ढाल बनाकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को कमजोर करने का ऐसा एक प्रयोग पं. जवाहर लाल नेहरू पहले ही कर चुके थे। जम्मू-कश्मीर में यही प्रयोग शेख अब्दुल्ला प्रजा परिषद् के साथ कर रहे थे। वास्तव में अभी तक जम्मू-कश्मीर में केवल एक ही राजनैतिक दल नेशनल कॉन्फ्रेंस काम रहा था। कांग्रेस ने अपनी शाखा राज्य में खोली ही नहीं थी, क्योंकि वैचारिक दृष्टि से नेहरू नेशनल कॉन्फ्रेंस को अपना सहयोगी दल ही मानते थे। साम्यवादी दल भी नेशनल कॉन्फ्रेंस के भीतर ही घुसा हुआ था। मुसलिम कॉन्फ्रेंस के अधिकांश लोग या तो पाकिस्तान चले गए थे या फिर वे भी अब नेशनल कॉन्फ्रेंस को ही अपना ठिकाना बना रहे थे। इस प्रकार क्रियात्मक रूप से राज्य में नेशनल कॉन्फ्रेंस ही एकमात्र राजनैतिक दल कार्यरत था और उसी के हाथ में सत्ता थी। परंतु वर्ष 1947 के अंतिम दिनों में प्रजा परिषद् के नाम से जो दूसरा राजनैतिक दल बना, उसने थोड़े समय में ही, खासकर जम्मू संभाग में, अपनी जड़ें मजबूत कर ली थीं।

जिस प्रकार शेख अब्दुल्ला कश्मीर घाटी में लोकप्रिय थे, वही स्थिति प्रजा परिषद् के अध्यक्ष पं. प्रेमनाथ डोगरा की जम्मू संभाग में बन गई थी। अब्दुल्ला जानते थे, ज्यों-ज्यों प्रजा परिषद् की ताकत राज्य में बढ़ती जाएगी, उसी अनुपात में नेशनल कॉन्फ्रेंस की दिल्ली से सौदेबाजी की ताकत कम होती जाएगी। यदि प्रजा परिषद् मजबूत होती है तो यकीनन शेख अब्दुल्ला को लोकतांत्रिक हिसाब से प्रजा परिषद् के साथ सत्ता की भागीदारी ही नहीं करनी होगी बल्कि जम्मू व लद्दाख संभाग के लोगों की राजनैतिक आकांक्षाओं का राज्य के संविधान में समावेश करना होगा। शेख इसके लिए तैयार नहीं थे; बल्कि वे इसके विपरीत सत्ता का लाभ उठाकर प्रजा परिषद् को उसके शैशव काल में ही कुचल देना चाहते थे। जम्मू संभाग में भी नेशनल कॉन्फ्रेंस की शाखाएँ कायम करने का प्रयास कर रहे थे। इसलिए वे छात्र आंदोलन की आड़ में प्रजा परिषद् पर प्रहार कर रहे थे। अत: सरकार की रणनीति छात्र आंदोलन को समाप्त करने की बजाय उसे उत्तेजित करने की हो गई थी, ताकि उसके बहाने प्रजा परिषद् से निपटा जा सके। प्रजा परिषद् राज्य में एक सामान्य राजनैतिक दल के तौर पर काम करना चाहती थी। लोकतांत्रिक व्यवस्था की सफलता के लिए यह जरूरी भी है कि विपक्ष जाग्रत् व सशक्त हो। राज्य की संविधान सभा में तो विपक्ष था ही

नहीं, इसलिए प्रजा परिषद् का कार्यक्षेत्र विधानसभा के बाहर ही हो सकता था। शासक दल की गलत नीतियों का विरोध करना और अपनी विचारधारा के प्रति लोगों को जागृत करना लोकतंत्र में राजनैतिक दलों के सामान्य क्रिया-कलाप माने जाते हैं। लेकिन शेख अब्दुल्ला तो राज्य में विपक्ष के लिए कोई स्थान छोड़ने के लिए तैयार ही नहीं थे। साम्यवादी देशों की परंपरा के अनुसार वे राज्य में केवल एक ही राजनैतिक दल नेशनल कॉन्फ्रेंस, जिसके वे स्वयं अध्यक्ष थे, को काम करने की छूट देना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने पं. प्रेमनाथ डोगरा पर ''नेशनल कॉन्फ्रेंस में शामिल होने के लिए दबाव बनाया, जिसके लिए उन्हें कैबिनेट मंत्री बनाने तक का प्रलोभन दिया गया। लेकिन जब उन्होंने अपने जमीर को बेचने और सरकारी प्रलोभनों के आगे झुकने से इनकार कर दिया तो अब्दुल्ला ने उन्हें अपना शत्रु मान लिया।'' [217] शेख ने प्रजा परिषद् की आड़ में राष्ट्रवादी शक्तियों और एकीकरण आंदोलन को कुचलने का प्रयास किया।

❑

5.

उतरते नकाब, भिंचती मुट्ठियाँ

5.1. शेख अब्दुल्ला की भावी योजना प्रकट होने लगी

छात्र आंदोलन के दिनों में ही नेशनल कॉन्फ्रेंस के नेताओं के ऐसे बयान आने लगे थे, जिससे शेख अब्दुल्ला की भावी योजनाएँ धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगी थीं। राज्य की संविधान सभा का गठन हो ही चुका था। 24 मार्च, 1952 का दिन था। कश्मीर सुरक्षा नियमों की धारा 50 पहले ही जम्मू में लागू की जा चुकी थी। इसका पालन सख्ती से हो, इसके लिए पुलिस और सेना को चौकन्ना कर दिया गया था। इस जबरदस्त सुरक्षा व्यवस्था में राज्य की संविधान सभा की कार्यवाही जम्मू में शुरू हुई। ''कार्यवाही केवल 35 मिनट चली। इन 35 मिनटों में ही एक बहुत बड़ा संकेत दिया गया। राजस्व मंत्री मिर्जा मोहम्मद अफजल बेग ने सभा में घोषणा की—'जम्मू-कश्मीर राज्य भारत संघ में एक स्वायत्त गणतंत्र होगा। हम राज्य का संविधान इस प्रकार का बनाएँगे कि हमारा राज्य भारतीय संघ के भीतर स्वायत्त गणतंत्र इकाई हो। यह गणतंत्र अन्य गणतंत्रों के समान ही होगा। हमारी योजना के अनुसार राज्य का अपना प्रधान होगा, अलग राष्ट्रीय विधायिका और न्यायपालिका होगी।'' [218] लेकिन लगता था, अभी तक नेशनल कॉन्फ्रेंरस ने अपने पत्ते पूरी तरह नहीं खोले थे। अफजल बेग, जो उन दिनों कर्ण सिंह के शब्दों में शेख अब्दुल्ला के लिए अकबर के टोडरमल बने हुए थे, [219] ने तो मात्र भविष्य की रणनीति का संकेत ही किया था। उससे 6 दिन बाद संविधान सभा में ही शेख अब्दुल्ला ने आगे का खुलासा किया—रियासत की संविधान सभा शत-प्रतिशत प्रभुसत्ता-संपन्न है। किसी भी अन्य संसद् का हमारे राज्य में कोई अधिकार-क्षेत्र नहीं है।'' [220] इससे जम्मू, दिल्ली और लेह में एक साथ त्वरित प्रक्रिया हुई। लेकिन शेख यहीं तक चुप बैठने वाले नहीं थे। विधानसभा में मार्गदर्शन करने के पूरे दस दिन पश्चात् उन्होंने दूसरा धमाका रणवीर सिंह पुरा में किया।

5.2. रणवीर सिंह पुरा का भाषण

जम्मू से 35 किलोमीटर दूर भारत-पाक सीमा पर स्थित रणवीर सिंह पुरा पाकिस्तान सीमा से केवल 10 मील दूर है। विभाजन से पूर्व जम्मू का शेष देश से रेल व सड़क द्वारा संपर्क स्यालकोट रणवीर सिंह पुरा से होकर ही था। लेकिन विभाजन ने दोनों के बीच दीवार खींच दी थी। 10 अप्रैल को नेशनल कॉन्फ्रेंस ने यहाँ एक जनसभा की। इस सभा में शेख अब्दुल्ला काफी देर तक बोले। दरअसल वे एक प्रकार से भारत-पाक सीमा पर खड़े होकर मानो दोनों देशों को संबोधित कर रहे थे। शेख ने कहा कि कश्मीर भारत और पाक के बीच पुल का काम करेगा। हमारा भारत में अधिमिलन सीमित प्रकृति का है। भारत में सांप्रदायिकता अभी समाप्त नहीं हुई है। कश्मीर को विशेष दर्जा मिलना चाहिए। जो लोग कश्मीर में भारतीय संविधान पूरी तरह लागू करने की बातें कह रहे हैं, वे अव्यावहारिक, बचकानी और पागलों जैसी हरकतें कर रहे हैं। हम पूरा संविधान भी लागू कर सकते हैं, यदि एक बार हमें विश्वास दिला दिया जाए कि भारत में सांप्रदायिकता की कब्र खोद दी गई है। बहुत से कश्मीरी हमसे पूछते हैं कि यदि जवाहरलाल नेहरू को कुछ हो गया तो हमारा क्या होगा? हम यथार्थवादी हैं। हमें सभी संभावनाओं के लिए तैयार

रहना होगा। इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि जो कश्मीर की अलग पहचान समाप्त करने की बातें कर रहे हैं, वे यहाँ की वास्तविकता को नहीं समझते।[221]

इसके बाद शेख अब्दुल्ला ने भारत और पाकिस्तान दोनों को ही पंथनिरपेक्ष लोकतंत्र अपनाने की सलाह दी। फिर उन्होंने मीडिया की ओर मुखातिब होते हुए कहा कि ''मुझे दु:ख है कि भारत का मीडिया और कुछ यहाँ के पत्रकार भी हमारी विशेष दर्जे की चाह की गलत ढंग से आलोचना कर रहे हैं। यदि ये पत्रकार यह समझते हैं कि ऐसा करके वे भारत अथवा कश्मीर की सहायता कर रहे हैं तो वे गलतफहमी में हैं; बल्कि ऐसा करके तो वे भारत और कश्मीर के बीच की कड़ियों को तोड़ रहे हैं। यदि वे अभी भी मेरी चेतावनी को ध्यान से नहीं सुनेंगे तो वे कश्मीर और भारत के संबंधों को तोड़ देंगे।'' अंत में शेख धमकियों पर उतर आए। उन्होंने कहा कि ''नेशनल कॉन्फ्रेंस किसी को भी धोखे में नहीं रखना चाहती। हमारी राजनैतिक, आर्थिक या सांविधानिक स्वायत्तता का प्रश्न हो या फिर रियासत में राजवंश के भविष्य का प्रश्न हो, मैंने अपना पक्ष स्पष्ट शब्दों में सबके सामने रख दिया है। भारतीय प्रेस के लिए मैं कुछ खरी-खरी कहना चाहूँगा। शेख अब्दुल्ला दुनिया में किसी से नहीं डरता। मैं भारत हो या पाकिस्तान, अमेरिका हो या कोई और देश, किसी के आगे सिर नहीं झुकाऊँगा। अच्छा होगा, ये सभी देश इस बात को भलीभाँति समझ लें।'' उसके बाद शेख ने अपना भाषण समाप्त किया और तीन बार 'जवाहरलाल नेहरू—जिंदाबाद' का नारा लगवाया।' [222]

शेख अब्दुल्ला की इस चेतावनी के बाद बिल्ली थैली से बाहर आ गई थी और नकाब उतरने लगे थे। जाहिर था कि 'नेहरू जिंदाबाद' को ढाल की तरह इस्तेमाल किया जा रहा था। शेख के इन इरादों और उनकी चेतावनी से देश भर में हड़कंप मचना ही था। लेकिन रणवीर सिंह पुरा में उनके इस भाषण से तो उनके समर्थक भी चकित थे। आम तौर पर नेहरू और शेख की कश्मीर नीति का समर्थन करनेवाले अंग्रेजी दैनिक 'ट्रिब्यून' ने भी अपने संपादकीय में उनकी इस पैंतरेबाजी पर अफसोस प्रकट किया। उसने टिप्पणी की, ''पिछले सप्ताह गोपालस्वामी आयंगर जम्मू आए थे। उन्होंने आशा व्यक्त की थी कि इस राज्य की परंपरा व गरिमा के अनुकूल ही नया संविधान बनाया जाना चाहिए। साथ ही आगाह भी किया था कि संविधान बनाते समय मजहबी राज्य की अवधारणा और सस्ती नारेबाजी से बचना चाहिए। लेकिन शेख के भाषण से लगता है कि सभी कुछ आयंगर की आशा के अनुकूल नहीं हो रहा। यह समझ पाना कठिन हो रहा है कि बिना किसी उत्तेजना के शेख एकदम उलटा क्यों घूम गए हैं।'' [223]

रणवीर सिंह पुरा के भाषण का क्या कारण था? अलग-अलग कयास लगाए जा रहे थे। जम्मू-कश्मीर संविधान सभा में संविधान बनाने की प्रक्रिया शुरू हो गई थी। शेख दबाव बनाकर सीमित अधिमिलन के अपने उद्देश्य को पूरा कर लेना चाहते थे। सन् 1948 वाली स्थिति राज्य में नहीं रही थी। उन दिनों राज्य में उनकी नेशनल कॉन्फ्रेंस ही एकमात्र राजनैतिक दल था। चाहे वह कश्मीर तक ही सीमित था, लेकिन अन्य किसी दल के न होने से उसका एकाधिकार तो था ही। परंतु अब स्थिति बदल चुकी थी। जम्मू में प्रजा परिषद् भी उतना ही शक्तिशाली था जितना श्रीनगर में नेशनल कॉन्फ्रेंस। अब उनकी मनमानी, नेहरू के चाहने पर भी, उस सीमा तक नहीं चल सकती थी। इसलिए वे दबाव और धमकी का सहारा ले रहे थे। दूसरा कारण भी चर्चा में था। आर्थिक मामलों के विशेषज्ञ इस मत के थे कि वित्तीय मामलों में राज्य का भारत के साथ एकीकरण आर्थिक कारणों से जरूरी है। शेख अब्दुल्ला इससे बच रहे थे। ''अप्रैल 1950 में गोपालस्वामी आयंगर चाहते थे कि वित्तीय मामलों में कश्मीर का भारत के

साथ किसी प्रकार का वित्तीय एकीकरण हो जाए। इस हेतु उन्होंने कश्मीर को भी भारत के महालेखाकार के अधिकार-क्षेत्र में लाने का प्रस्ताव रखा। शेख अब्दुल्ला इतने से ही बिफर गए। उन्होंने कहा कि भारत सरकार तो चाहती है कि मैं उसके पक्ष में प्रतिज्ञा पत्र पर दस्तखत कर दूँ।'' [224] इसकी प्रतिक्रिया में शेख ने रणवीर सिंह पुरा में भाषण दिया।

ऐसा नहीं की वित्तीय एकीकरण की माँग केवल प्रजा परिषद् ही कर रही थी। जम्मू चैंबर ऑफ कॉमर्स की दृष्टि में तो राज्य को बचाए रखने के लिए इसके सिवा कोई चारा ही नहीं था। जम्मू चैंबर ऑफ कॉमर्स के अध्यक्ष गिरधारी लाल आनंद के अनुसार, ''यदि राज्य की आर्थिक स्थिति को सुधारना है तो राज्य का भारत के साथ वित्तीय एकीकरण जरूरी है। उन्होंने कहा कि सीमा शुल्क तुरंत समाप्त किया जाना चाहिए, क्योंकि राज्य में जो वस्तुएँ शेष भारत से आती हैं, इस शुल्क के कारण उनकी कीमत 50 प्रतिशत बढ़ जाती है। राज्य की संविधान सभा में राजस्व मंत्री मिर्जा अफजल बेग के इस बयान पर कि राज्य भारत संघ में स्वायत्त गणराज्य होगा, आपत्ति करते हुए उन्होंने कहा कि राज्य की वित्तीय स्थिति गणराज्य का भार नहीं उठा सकती। राज्य अपनी वित्तीय स्वतंत्रता भी कायम नहीं रख सकता, क्योंकि राज्य ने भारत सरकार से बहुत ऋण लिया हुआ है।[225] रणवीर सिंह पुरा की तोप शेख ने इसी पृष्ठभूमि में दागी थी। अब उन्हें इस पर प्रतिक्रिया का इंतजार था, खासकर नेहरू की प्रतिक्रिया का, क्योंकि अगली रणनीति उसी परिदृश्य में तय होनेवाली थी।

5.3. नेहरू की सफाई

शेख अब्दुल्ला के इस स्पष्ट भाषण के बाद भी नेहरू शेख के समर्थन में ही खड़े दिखाई दिए। नेहरू ने दिल्ली में इतना जरूर कहा कि उन्हें शेख अब्दुल्ला के भाषण का लहजा पसंद नहीं था। उसके बाद वे शेख की सफाई देने में जुट गए। नेहरू ने कहा कि शेख का इशारा अपने भाषण में शायद प्रजा परिषद् की ओर था, जो एक सांप्रदायिक संगठन है। यह संगठन कश्मीरियों में फूट डलवाना चाहता है। यही कारण है कि प्रजा परिषद् की गतिविधियों की रपट पाकिस्तानी मीडिया में ज्यादा छपती हैं। जम्मू-कश्मीर का भारत में विलय अपने आप में मुसलिम लीग के द्वि-राष्ट्रवाद के सिद्धांत का नकार है। यही कारण है कि पाकिस्तान को कश्मीर से सबसे ज्यादा कष्ट होता है। हमें शेख की कठिनाइयों को समझना चाहिए। वे हिंदू, बौद्ध और मुसलमान को इकट्ठा करने का प्रयास कर रहे हैं। प्रजा परिषद् इस रास्ते में रोड़े अटका रही है। इसलिए जरूरी था कि प्रजा परिषद् को साफ-साफ शब्दों में सबकुछ बताया जाता। शेख ने यही किया है। लेकिन ऐसे भाषण का दूसरे लोग गलत अर्थ ले लेते हैं।[226] शायद शेख अब्दुल्ला अब तक समझ गए थे कि यदि भाषण के अंत में 'नेहरू जिंदाबाद' के तीन नारे लगा दिए जाएँ तो नेहरू उनके भाषण के उसी अर्थ को समझेंगे, जिसे शेख समझाना चाहें। शेख अब्दुल्ला और पं. नेहरू के इस प्रकार के उत्तेजक भाषणों के बाद जम्मू का तापमान फिर बढ़ने लगा था। सरकार ने इसे भाँपते हुए जम्मू में कश्मीर सुरक्षा नियम 50 के अंतर्गत जनसभा व प्रदर्शन करने पर 17 अप्रैल को दो मास के लिए पाबंदी और बढ़ा दी।[227] वैसे यह पाबंदी नए साल के शुरू से ही छात्र आंदोलन के कारण चली आ रही थी।

शेख छात्र आंदोलन की आड़ लेकर प्रजा परिषद् को समाप्त करना चाहते थे, ताकि राज्य में नेशनल कॉन्फ्रेंस के सिवा और कोई राजनैतिक दल न रहे और जवाहरलाल नेहरू प्रजा परिषद् पर आरोप लगाकर शेख के कृत्यों पर स्पष्टीकरण देने का काम कर रहे थे। लेकिन जम्मू व लद्दाख के लोगों के लिए शेख के रणवीर सिंह पुरा के

भाषण का अर्थ समाचार-पत्रों की बहसों से कहीं ज्यादा था। इससे रियासत के लोगों का भविष्य जुड़ा हुआ था।

5.4. प्रजा परिषद् ने दोहराया अपना पक्ष

शेख अब्दुल्ला की रणवीर सिंह पुरा में दी गई चेतावनी के दो दिन बाद ही 12 अप्रैल को प्रजा परिषद् के अध्यक्ष पं. प्रेमनाथ डोगरा ने पार्टी का संकल्प दोहराया, ''मैं और मेरी पार्टी प्रजा परिषद् स्पष्ट व साफ शब्दों में बता देना चाहते हैं कि रियासत का पूरी तरह सभी मामलों में भारत के साथ अधिमिलन हो चुका है। यदि इस पूर्ण अधिमिलन को सीमित किया गया तो हम इसके विरोध में कोई भी बलिदान करने के लिए तैयार हैं। राज्य में शेख अब्दुल्ला और मिर्जा अफजल बेग के ये भाषण सुनकर कि जम्मू-कश्मीर राज्य स्वतंत्र है और उनकी पार्टी नेशनल कॉन्फ्रेंस द्वारा मनोनीत रियासती संविधान सभा प्रभुसत्ता-संपन्न है, से सभी को निराशा हुई है। उनके ये भाषण देश-विरोधी तो हैं ही, साथ में भारत को भी चुनौती है जिसने पिछले साढ़े चार साल से राज्य के लोगों की भुखमरी और पाकिस्तान नाम के दो दुश्मनों से रक्षा की है।[228] शेख के रणवीर सिंह पुरा के भाषण के बाद यह उक्ति चल निकली थी कि यदि नेहरू को कुछ हो गया तो जम्मू-कश्मीर का क्या होगा? इस पर दिल्ली विधानसभा के समाजवादी सदस्य मीर मुश्ताक अहमद ने चुटकी ली—''यदि शेख अब्दुल्ला को कल कुछ हो जाता है तो हम उनके उत्तराधिकारियों के बारे में क्या कह सकते हैं?'' [229]

जम्मू-कश्मीर के बारे में नेशनल कॉन्फ्रेंस के रणवीर सिंह पुरा में व्यक्त विचारों को लेकर देश भर में चर्चा हो ही रही थी कि कॉन्फ्रेंस द्वारा अपने गढ़ श्रीनगर में 18 अप्रैल को एक विशाल जनसभा का आयोजन किया गया, जिसमें एक बार फिर शेख ने हुंकार भरी। रणवीर सिंह पुरा के अपने भाषण का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि ''आप लोगों को हैरानी हो रही होगी कि जिस भारतीय प्रेस के लिए मैं कल तक नायक था, आज उसका खलनायक कैसे बन गया? लेकिन जहाँ तक मेरा ताल्लुक है, न मुझे प्रशंसा प्रभावित करती है और न ही निंदा। दरअसल मैं तो उन मित्रों का धन्यवादी हूँ, जो मेरी आलोचना में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रहे हैं। मैं उन्हें समय आने पर ही उत्तर दूँगा। मुझे उनके इस प्रकार की बातें लिखने व बोलने से रत्ती भर भी फर्क नहीं पड़ता।'' [230]

शेख को सारे राज्य का शासन भार तो मिल गया था, लेकिन वे अपनी मानसिकता में कश्मीर घाटी से बाहर निकलकर जम्मू व लद्दाख तक अपने मन का विस्तार नहीं कर पाए।

5.5. प्रजा परिषद् की कार्यकारिणी की बैठक

शेख अब्दुल्ला और उनकी नेशनल कॉन्फ्रेंस राज्य में भ्रम व अनिश्चय की स्थिति पैदा कर रहे थे। जम्मू व लद्दाख संभाग में उनकी गतिविधियों से अनेक आशंकाएँ जन्म ले रही थीं। प्रजा परिषद् की कार्यकारिणी पिछली बार नवंबर 1951 में मिली थी। लेकिन वह आपात बैठक थी और कार्यकारिणी के अध्यक्ष समेत कई सदस्य जेल में थे या भूमिगत थे। पाँच मास में शेख अब्दुल्ला की रणनीति कुछ हद तक अब सामने आ चुकी थी। बदलती परिस्थितियों में प्रजा परिषद् की 20 अप्रैल को जम्मू में कार्यकारिणी की महत्त्वपूर्ण बैठक हुई। सीमांत प्रांत के स्वतंत्रता सेनानी काजी अताउल्लाह की मृत्यु पर शोक संदेश पारित करने के बाद[231] कार्यकारिणी ने भारतीय संविधान की धारा 370 समाप्त करने, राज्य में भारतीय संविधान लागू करने, नेशनल कॉन्फ्रेंस ने लोकसभा के लिए जिन सदस्यों का मनोनयन किया है, उसको रद्द करने एवं राज्य के लिए निर्धारित लोकसभा की सीटों पर अन्य राज्यों की तरह

वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव करवाने की माँग की गई। कार्यकारिणी ने यह भी स्पष्ट किया कि परिषद् इन माँगों की पूर्ति के लिए कोई भी बलिदान देने से नहीं हिचकिचाएगी। पिछले दिनों जम्मू में हुए छात्र आंदोलन में सरकार ने प्रजा परिषद् पर आरोप लगाया था कि उसने इस आंदोलन में हिंसा को भड़काया है। कार्यकारिणी ने माँग की कि इन आरोपों की जाँच के लिए एक निष्पक्ष और स्वतंत्र जाँच आयोग स्थापित किया जाए।'' प्रजा परिषद् ने नेशनल कॉन्फ्रेंस की रणवीर सिंह पुरा घोषणा का जवाब दे दिया था।

5.6. विस्थापितों को लेकर सरकार की नीति

भारत विभाजन और जम्मू-कश्मीर पर पाकिस्तानी आक्रमण के कारण राज्य में विस्थापितों के पुनर्वास की बहुत बड़ी मानवीय समस्या पैदा हो गई थी। लेकिन शेख सरकार ने विस्थापितों को भी अपनी राजनीति का मोहरा बनाना शुरू कर दिया था। भारत पाकिस्तान के बीच पहले युद्ध की शुरुआत 22 अक्तूबर, 1947 को हुई थी। यह हमला दोमेल से शुरू हुआ था।'' इस हमले का एक कारण तो स्पष्ट था कि पाकिस्तान जम्मू-कश्मीर पर कब्जा करना चाहता था। इसके अलावा उसकी एक और रणनीति भी थी। वह थी पूरे इलाके से हिंदू और सिक्खों को बाहर खदेड़ने की। इसमें वह सफल भी हुआ। जानकार बताते हैं कि तब एक रात में ही 10,000 हिंदू-सिक्खों की हत्या कर दी गई थी। आतंक के उस माहौल में मीरपुर, पुंछ और मुजफ्फराबाद से बड़ी संख्या में लोग शरण लेने जम्मू की तरफ आ गए। सरकार के अपने अनुमान के अनुसार, 1947 में जम्मू-कश्मीर पर पाकिस्तानी आक्रमण के समय पाक के कब्जे वाले कश्मीर से 40 हजार परिवार देश के इस भाग में आ गए थे।'' [232] सरकार ने इन परिवारों के स्थायी पुनर्वास के बारे में विचार करना तो दूर, उनका पंजीकरण एवं उनकी संपत्तियों को सूचीबद्ध भी नहीं किया। 1961 में भारत सरकार ने जब इनमें से कुछ शर्तों के साथ चुने हुए परिवारों को कुछ मुआवजा दिया तो 31,600 परिवारों का पंजीकरण उस समय हुआ।

रियासत पर पाकिस्तानी आक्रमण के कारण जम्मू संभाग और पश्चिमी पंजाब के पाकिस्तान में चले जाने के कारण वहाँ के उन इलाकों से भी, जिनकी सीमा जम्मू-कश्मीर के साथ लगती थी, हिंदू-सिक्ख शरणार्थी इधर ही आ रहे थे। उनमें से अधिकांश हिंदू-सिक्ख शरणार्थी रियासत के ही स्टेट सब्जैक्ट थे, लेकिन शेख अब्दुल्ला की सरकार इन रियासती विस्थापितों को भी रियासत में बसाने के लिए तैयार नहीं थी और भारत सरकार इनको बसाने के लिए भोपाल, बीकानेर व देश के दूसरे हिस्सों में भेज रही थी। पहाड़ी इलाकों के ये लोग नए स्थानों पर स्वयं को सहज अनुभव नहीं कर रहे थे। सरकार की इस नीति का विरोध केवल प्रजा परिषद् ही नहीं कर रही थी, बल्कि अन्य संगठन भी कर रहे थे। ''जम्मू-कश्मीर अकाली दल के अध्यक्ष संत सिंह तेग ने भी इस पर आपत्ति जताई और शरणार्थियों को रियासत में ही बसाए जाने की माँग की।'' [233]

यहाँ तक कि कश्मीर संभाग के मुजफ्फराबाद से आनेवाले विस्थापितों को भी शेख ने कश्मीर घाटी में बसने नहीं दिया। प्रजा परिषद् शेख सरकार को इन विस्थापितों और शरणार्थियों को बसाने के लिए कह रही थी और शेख उन लोगों को रियासत में वापस लाने के प्रयासों में लगे थे, जो संकट की घड़ी में वर्ष 1947 में पाकिस्तान के साथ जा मिले थे। उनके छोड़े गए घरों यानी निष्क्रांत संपत्ति को राज्य सरकार पीड़ित व विस्थापितों से अपनी सांप्रदायिक नीति के अंतर्गत खाली कराने में ज्यादा रुचि ले रही थी।

5.7. शेख के प्रजा परिषद् पर प्रहार जारी

जम्मू-कश्मीर में स्थितियाँ निर्णायक मोड़ लेने लगी थीं। ''(असंतोष की) ये भावनाएँ केवल जम्मू तक ही सीमित नहीं थीं, वे लद्दाख में भी व्याप्त हो रही थीं। यह ठीक है कि वहाँ वे उतनी संगठित नहीं थीं।'' [234] राज्य के लिए अलग संविधान रचना का कार्य शुरू हो गया था। शेख जानते थे यदि उन्हें राज्य में अपनी इच्छाओं की पूर्ति करनी है और मन-माफिक संविधान बनाना है तो प्रजा परिषद् व लद्दाख के संगठनों को नेहरू की नजरों में सांप्रदायिक प्रचारित करना ही होगा। 9 मई, 1952 को उन्होंने श्रीनगर में एक बार फिर प्रजा परिषद् को अपना निशाना बनाया। वे संघीय संसद् में नेशनल कॉन्फ्रेंस द्वारा मनोनीत सदस्यों के सम्मान में की जा रही सभा में बोल रहे थे। प्रजा परिषद् पहले ही 20 अप्रैल को अपनी कार्यकारिणी के प्रस्ताव में इस प्रकार के मनोनयन का विरोध कर चुकी थी। उसका कहना था कि अन्य राज्यों की तरह इन सदस्यों के लिए भी चुनाव करवाया जाता। शायद इसीलिए प्रजा परिषद् पर प्रहार करने के लिए शेख को यह उपयुक्त अवसर लगा। प्रजा परिषद् पर कोई भी बात शेख यही कहकर शुरू करते थे कि उसके साथ आम लोग नहीं हैं। इस बार भी उन्होंने यहीं से शुरुआत की कि वे प्रजा परिषद् से चिंतित नहीं हैं, क्योंकि उन्हें पता है कि उसके साथ आम जनता नहीं है। जम्मू के लोग भी परिषद् के उद्देश्यों के साथ सहमत नहीं हैं। लेकिन प्रजा परिषद् भारत की सांप्रदायिकता का प्रतिनिधित्व करती है। इसकी यही सांप्रदायिकता कश्मीर की पंथ-निरपेक्षता को खतरा पैदा करती है। ''मैंने प्रजा परिषद् के नेताओं को अपनी गलतियाँ सुधारने के लिए बहुत समय दिया, लेकिन वे इसे मेरी कमजोरी मान रहे हैं। वे राष्ट्र विरोधी एवं विध्वंसात्मक गतिविधियों में संलग्न हैं। प्रजा परिषद् उन आदर्शों पर चोट कर रही है, जिन आदर्शों के लिए नेशनल कॉन्फ्रेंस लड़ रही है। मुझे इसमें कोई शक नहीं कि ये लोग राज्य की एकता को नष्ट करना चाहते हैं। ये लोग जम्मू में ही नहीं, लद्दाख में भी कार्यरत हैं।[235] लद्दाख के साथ शेख अब्दुल्ला की सरकार क्या कर रही थी, इसका उत्तर इन आरोपों के तीन दिन बाद 12 मई को लद्दाख के लामा कुशक बकुलाजी ने दिया। लामा कुशक बकुलाजी जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा के सदस्य भी थे। संविधान सभा में ही उन्होंने दूध का दूध और पाना का पानी कर दिया। उनके अनुसार, ''लद्दाख के साथ ऐसा व्यवहार किया जा रहा है जैसा किसी युद्ध में जीते गए क्षेत्र के लोगों के साथ किया जाता है। जंस्कार के शरणार्थी कुल्लू में धक्के खा रहे हैं। उनमें से बहुत से तो मर ही गए हैं। लद्दाख को शायद इसलिए साथ रखा गया है, ताकि कश्मीर को यह आत्मसंतोष हो कि उन्होंने हमें जीता है। इसके बाद बकुलाजी ने चेतावनी भी दी कि बदले हालात में लद्दाख के लोग चुप नहीं रहेंगे।[236] परंतु शेख अब्दुल्ला को अपने अधिकारों की माँग कर रहे जम्मू व लद्दाख दोनों ही सांप्रदायिक नजर आ रहे थे। वे रियासत के लिए तो पूर्ण स्वायत्तता की माँग कर रहे थे, लेकिन राज्य के भीतर जम्मू व लद्दाख को स्वायत्तता देने के प्रश्न को सांप्रदायिक बता रहे थे।

5.8. प्रेमनाथ डोगरा की डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी से भेंट

इस परिस्थिति में प्रजा परिषद् को लगा कि इन सभी प्रश्नों पर देश के अन्य लोगों और राजनैतिक दलों को भी विश्वास में लेना चाहिए। प्रजा परिषद् ने संगठन में इस हेतु एक अलग विभाग ही स्थापित किया था। परिषद् अपने जन्मकाल से ही राज्य की कश्मीर घाटी केंद्रित राजनीति में जम्मू व लद्दाख की अवहेलना और उससे किए जा रहे सौतेले व्यवहार के खिलाफ संघर्ष कर रही थी। जम्मू क्षेत्र में तो यह भावना पनप चुकी थी कि उसके साथ बदले की भावना से व्यवहार किया जा रहा है। साथ-ही-साथ लद्दाख को भी ऐसा लग रहा था, मानो वह गुलाम हो गया

हो। इसके अतिरिक्त शेख ने रियासत के भारत के साथ संपूर्ण एकीकरण के प्रश्न पर ही नित्य नए पैंतरे चलने शुरू कर दिए। सबसे बड़ी बात यह है कि शेख अब्दुल्ला को सत्ता किसी लोकतांत्रिक पद्धति से नहीं, बल्कि परिस्थिति वश मिली थी, लेकिन इसके बावजूद उनका व्यवहार किसी तानाशाह जैसा हो गया था। वे रियासत में राजशाही की जगह शेखशाही स्थापित करने लगे थे। परंतु दुर्भाग्य से शेख का वास्तविक चेहरा और राज्य में राष्ट्रवादी शक्तियों को समाप्त करने के उनके प्रयास देश के अन्य भागों में लोगों को पता नहीं चल पा रहे थे। राज्य सरकार ने दिल्ली में कश्मीर सूचना ब्यूरो स्थापित किया हुआ था, जिसका एकमात्र काम शेख की छवि निर्माण का ही था। देश में शेख की छवि निर्माण का असली काम पं. जवाहरलाल नेहरू कर रहे थे। उनकी छत्रच्छाया में शेख का कद बहुत बड़ा दिखाई देने लगता था। अपना पक्ष प्रस्तुत करने के उद्देश्य से पं. प्रेमनाथ डोगरा उस समय के विपक्ष के नेता और नेहरू के मंत्रिमंडल में उद्योग मंत्री रहे डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी से मई 1952 में दिल्ली में मिले। डोगरा ने उन्हें जम्मू-कश्मीर की वास्तविक स्थिति और शेख अब्दुल्ला की कलाबाजियों के बारे में बताया। प्रजा परिषद् के आंदोलन में इस भेंट का बहुत महत्त्व है, क्योंकि इससे आंदोलन को बल मिला और कालांतर में इसका अखिल भारतीय विस्तार भी हुआ।

5.9. राज्य के भीतर क्षेत्रीय स्वायत्तता

जम्मू और लद्दाख को क्षेत्रीय स्वायत्तता देने की माँग जोर पकड़ रही थी। प्रारंभ में शेख रियासत के विभिन्न भागों को सीमित क्षेत्रीय स्वायत्तता देने को सहमत भी हो गए थे। संविधान सभा की बुनियादी सिद्धांत समिति को यह कार्य करने के लिए कह भी दिया था। इसके अनुसार, नए संविधान में पाँच स्वायत्त क्षेत्र बनाने थे—कश्मीर घाटी, जम्मू, गिलगित, लद्दाख और मीरपुर, पुंछ, राजौरी, मुजफ्फराबाद को मिलाकर एक नया अलग क्षेत्र। लेकिन यह योजना छोड़नी पड़ी, ''क्योंकि शेख अब्दुल्ला जम्मू व लद्दाख को वे अधिकार देने के लिए तैयार नहीं थे, जो वे रियासत के लिए भारत से माँग रहे थे।'' [237]

''जब जम्मू व लद्दाख ने तर्क दिया कि जम्मू-कश्मीर रियासत का संघात्मक स्वरूपवाला संविधान रियासत के अलग-अलग लोगों को आपस में बाँध सकता है तो शेख अपने आश्वासन से पीछे हट गए।'' [238] शेख अब्दुल्ला ने ऐसा रास्ता निकाला कि साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। नेशनल कॉन्फ्रेंरस जम्मू संभाग को ही विभाजित कर स्वायत्तता की बात करने लगी। इस नई योजना में ऊधमपुर जिला को तोड़कर, डोडा को पीर पंजाल के दूसरी ओर कश्मीर घाटी से गैर-कुदरती तरीके से केवल सांप्रदायिक कारणों से जोड़ना था। दूसरी ओर शेख राजौरी और मीरपुर, पुंछ इत्यादि को जम्मू से काटकर एक नए संभाग की संभावना तलाश रहे थे। इसी योजना से वे जम्मू को विभाजित कर स्वायत्तता देना चाहते थे और कश्मीर के सांप्रदायिक आधार को मजबूत कर लेना चाहते थे। जम्मू और लद्दाख दोनों जगह ही इसका विरोध हुआ। वास्तव में यह स्वायत्तता नहीं बल्कि उसकी आड़ में जम्मू संभाग की भौगोलिक एकता को नष्ट करने का षड्यंत्र था। श्रीनगर में ही उन्होंने राज्य के अन्य संभागों को क्षेत्रीय स्वायत्तता के प्रश्न पर गोलमोल बात करनी प्रारंभ कर दी थी। उनके अनुसार, ''क्षेत्रीय स्वायत्तता पर इस समय मेरे लिए कुछ भी करना मुश्किल है। जम्मू-कश्मीर की खुशहाली सभी क्षेत्रों की परस्पर संबद्धता पर निर्भर है। यदि मैं बलपूर्वक एकता की बात करूँगा तो मुझे तानाशाह कहा जाएगा। जब मैं कहता हूँ कि क्षेत्रीय स्वतंत्रता के रास्ते में नहीं आऊँगा, तो कहा जाएगा कि मुझे केवल कश्मीर की भलाई की चिंता है। मेरी प्रार्थना है कि मुझे

पूर्व में किए गए संघर्षों और मेरी वर्तमान नीतियों के आधार पर ही पहचाना जाए।[239] संकेत स्पष्ट था। पूर्व में शेख का आंदोलन कश्मीर को जम्मू के महाराजा के शासन से मुक्त करवाना तथा कश्मीर को जम्मू से अलग करवाना था और वर्तमान में वे कश्मीर का राज्य जम्मू व लद्दाख पर थोपना चाह रहे थे।

23 मार्च, 1953 को 'ऑर्गेनाइजर' ने संपादकीय लिखा—''शेख की बनाई सांविधानिक समिति ने जम्मू के लिए भी एक अपने ही प्रकार की स्वायत्तता प्रस्तावित की है। लेकिन जम्मू इसे स्वीकार नहीं करेगा, क्योंकि इसमें स्वायत्तता हेतु जम्मू के ही विभाजन की शर्त है। शेख ने जम्मू में डोडा और राजौरी दो मुसलिम क्षेत्रों का निर्माण किया है। इन्हें वे जम्मू क्षेत्र से तोड़कर पहाड़ के दूसरी ओर, जो साल में नौ महीने अलंघ्य होते हैं, कश्मीर से जोड़ना चाहते हैं। वे सांप्रदायिक आधार पर जम्मू का विभाजन ही नहीं कर रहे, अपितु हिंदू बहुल जम्मू व लद्दाख में दरार भी पैदा कर रहे हैं और इस प्रकार लद्दाख का शेष भारत से सीधा संपर्क भी समाप्त कर रहे हैं।''

5.10. संविधान रचना में अभिव्यक्त होने लगी शेख की भविष्य नीति

इधर शेख अब्दुल्ला के भाषणों से जम्मू व लद्दाख में संदेह के बादल घिर रहे थे, उधर राज्य में संविधान सभा ने जब राज्य के लिए नए संविधान की रचना शुरू की तो इन संदेहों को बल मिलना शुरू हो गया। संविधान सभा में एक हरिजन सदस्य महाशय नाहर सिंह ने एक बिल प्रस्तुत किया। बिल में प्रदेश के हरिजनों को भी भारतीय संविधान की तर्ज पर सभी सुविधाएँ प्रदान करने का प्रावधान था। ये सभी हरिजन हिंदू या सिक्ख ही थे। शेख अब्दुल्ला ने इस बिल का विरोध किया और नाहर सिंह को बिल वापस लेना पड़ा।[240] यदि यह बिल पारित हो जाता तो हिंदुओं के एक वर्ग को आरक्षण प्राप्त हो जाता और उसके आधार पर विधानसभा में भी उनकी संख्या बढ़ जाती।

कुछ महीनों से प्रदेश में नेशनल कॉन्फ्रेंस और शेख अब्दुल्ला अपने अन्य साथियों सहित प्रचार कर रहे थे कि भारत के राष्ट्रीय ध्वज के अतिरिक्त राज्य का अपना अलग ध्वज होगा। जम्मू में हुए छात्र आंदोलन का तो मुख्य मुद्दा ही राज्य का अलग झंडा था। इस आंदोलन के दौरान ही शेख और मिर्जा अफजल बेग ने जम्मू संभाग में जाकर स्पष्ट कहना प्रारंभ कर दिया था कि रियासत के भारत में अधिमिलन के बावजूद राज्य का अपना अलग झंडा रहेगा और वह कमोबेश नेशनल कॉन्फ्रेंस का झंडा होगा। जम्मू व लद्दाख में अलग ध्वज का विरोध हो रहा था। कुल मिलाकर इस मोर्चे पर अभी तक अनिश्चितताएँ बनी हुई थीं। लेकिन शेख अब्दुल्ला ने वह अनिश्चितता 7 जून को समाप्त कर दी। शेख अब्दुल्ला ने स्वयं संविधान सभा में प्रस्ताव रखा—''जम्मू-कश्मीर का राष्ट्रीय ध्वज लाल रंग का आयताकार होगा, जिसमें समान दूरी पर तीन लंबित सफेद धारियाँ होंगी। मध्य में सफेद हल होगा, जिनका दस्ता धारियों की ओर इंगित करेगा। इस झंडे की व्याख्या करते हुए शेख अब्दुल्ला ने कहा कि कश्मीर ने वर्ष 1931 से लंबा संघर्ष किया है। गुलामी के दिनों में कश्मीर की स्थिति बहुत ही खराब थी। इस झंडे में हल किसानों का और लाल रंग मजदूरों का प्रतीक है। तीन धारियाँ जम्मू, कश्मीर और सीमांत जिलों का प्रतिनिधित्व करती हैं। अब हम अपने देश का रास्ता और उसका राष्ट्रीय ध्वज अपनी इच्छानुसार चुन सकते हैं। स्वतंत्रता के बाद अब हमारा एक झंडा भी है।[241] जब संविधान सभा में इस प्रस्ताव को पारित किया जा रहा था तो मीर कासिम के कहने पर झंडे के आगे लिखा 'राष्ट्रीय' शब्द हटा दिया गया। लेकिन तब तक शेख अब्दुल्ला की मानसिकता तो स्पष्ट हो ही चुकी थी। यह स्पष्ट होने लगा था कि शेख धीरे-धीरे किस ओर बढ़ रहे हैं। ध्वज निर्धारित हो जाने पर

शेख ने गीत गाया—'यह झंडा कयामत के दिन तक फहराता रहेगा।' (इसलाम मजहब के अनुसार कयामत का दिन वह है जब सारी कायनात के नष्ट होने पर अल्लाह मुर्दा आत्माओं का हिसाब करता है। शेख राज्य की परंपराओं को इसलाम से जोड़ने का प्रयास कर रहे थे।) इसके दो दिन बाद ही लद्दाख के लामा कुशक बकुलाजी ने दिल्ली जाकर एक बार फिर लद्दाख की स्थिति को स्पष्ट किया—''भारत और केवल भारत हमारा नारा है। हम किसी भी कीमत पर भारत के साथ ही रहेंगे। हाँ, यदि भारत ही इसके विपरीत निर्णय कर ले तो अलग बात है।'' [242] शायद बकुला नेहरू की ओर ही इंगित कर रहे थे, जो शेख की हर बात पर हाँ में हाँ ही नहीं मिला रहे थे बल्कि जम्मू व लद्दाख को भी ऐसा करने के लिए कह रहे थे। शेख अब्दुल्ला की इन चालों का विरोध केवल प्रजा परिषद् व देश के अन्य विपक्षी दल ही नहीं कर रहे थे, बल्कि कांग्रेस के भीतर इसका विरोध भी हो रहा था। मैसूर के मुख्यमंत्री के. हनुमंतैया ने तो सार्वजनिक तौर पर ही कहा, ''जम्मू-कश्मीर को अलग ध्वज रखने की अनुमति अंततः देश की उस एकता को खतरे में डाल सकती है, जिसे संविधान ने सुरक्षित किया है। देश के लोग इसको भी पचा नहीं पा रहे हैं कि कश्मीर का अलग संविधान हो। देश के किसी भाग में भी पूरक ध्वज या गीत नहीं हो सकता।'' [243]

जम्मू में शेख अब्दुल्ला और नेशनल कॉन्फ्रेंस की इन हरकतों का विरोध इतना तीव्र हो रहा था कि जो लोग वैचारिक कारणों से प्रजा परिषद् के साथ नहीं चलना चाहते थे, उन्होंने भी 14 जून को जम्मू में पीपुल्स पार्टी का गठन कर लिया। समाजवाद, प्रगतिवाद व पंथनिरपेक्षता को आधार बनाकर चलनेवाली इस पार्टी ने नेशनल कॉन्फ्रेंस का विरोध करने और भारत के संविधान को राज्य में पूरी तरह लागू करने के लिए अपना निश्चय दोहराया।[244] ''उधर प्रजा परिषद् ने 29 जून को पूरी रियासत में राज्य के अलग झंडे को स्थापित करने का विरोध करने हेतु विरोध दिवस मनाने की घोषणा कर दी।'' [245]

5.11.राजशाही समाप्त करने के बहाने

इधर जम्मू, लद्दाख व देश के अन्य हिस्सों में कश्मीर के अलग झंडे को लेकर ही विवाद खत्म नहीं हो रहा था कि शेख अब्दुल्ला ने मानो दूसरा गोला दागा। राज्य की संविधान सभा की आधारभूत सिद्धांत समिति ने 10 जून, 1952 को राज्य की संविधान सभा में अपनी अंतरिम रपट पेश की। रपट में आनुवंशिक राज को समाप्त करने एवं उसके स्थान पर निर्वाचित राज्य अध्यक्ष की व्यवस्था हेतु सिफारिश की गई थी। 12 जून को संविधान सभा ने इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया। राजशाही नई परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं ही मृत्यु-पथ पर अग्रसर थी, यह देश में सभी को स्पष्ट था। संविधान के बी श्रेणी के राज्यों में सांविधानिक पद पर राजप्रमुख नियुक्त थे। राजप्रमुख को राष्ट्रपति ने नियुक्त किया था और उसकी हैसियत भी राज्यपाल की तरह सांविधानिक मुखिया की ही थी। उसे राष्ट्रपति ही नियुक्त करता है और वही उसको हटा भी सकता है। राजशाही समाप्त करने के प्रश्न पर सभी दलों में कोई महत्त्वपूर्ण मतभेद नहीं था। लेकिन जम्मू-कश्मीर में जिस ढंग से यह किया जा रहा था, उस तरीके पर सभी को एतराज था। सभी राजप्रमुखों में से केवल जम्मू-कश्मीर के राजप्रमुख को ही चिह्नित कर हटाया जा रहा था। नेहरू भी इतना तो जानते ही थे कि राजशाही को हटाने के लिए जिस तरीके का इस्तेमाल हो रहा है, वह असंवैधानिक है। राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत राज्य के राजप्रमुख को हटाने का अधिकार राज्य की संविधान सभा के

पास नहीं है। यह अधिकार भारतीय संसद् के पास ही है। लेकिन वे शेख को रोकने की बजाय इस असंवैधानिक तरीके का ही समर्थन करने लगे। 21 जून को दिल्ली में पत्रकारों से बातचीत में उन्होंने कहा कि हम भी जम्मू-कश्मीर में राजशाही और निर्वाचित मुखिया के प्रश्न को सांविधानिक व विधिसम्मत तरीके से ही हल करना चाहते हैं। लेकिन मूल विषय तो यही है कि जम्मू-कश्मीर का भारत के साथ भविष्य में क्या संबंध रहेगा? और यह प्रश्न विधि की संरचना से परे ही है।[246] नेहरू शेख के मामले में विधिसम्मत या विधि अनुकूल की परिधि से भी बाहर जाने को तैयार थे।

5.12. प्रजा परिषद् का राष्ट्रपति को ज्ञापन

इन्हीं परिस्थितियों में 19 जून, 1952 को प्रजा परिषद् ने 3,000 से भी ज्यादा शब्दों का एक ज्ञापन राष्ट्रपति को दिया। ज्ञापन में शेख सरकार पर जम्मू व लद्दाख संभागों से भेदभाव की शिकायत तो थी ही, साथ ही शेख द्वारा रियासत में जान-बूझकर भ्रम की स्थिति बनाने और सांप्रदायिक माहौल पैदा करने की चर्चा भी की गई थी। परिषद् ने ज्ञापन में कहा कि यदि कश्मीर घाटी के लोग हमारे इस विचार से सहमत होते कि जम्मू-कश्मीर का अधिमिलन भारत का अविभाज्य अंग बन गई अन्य रियासतों की तरह हो गया है तो हमें ये माँगें उठाने की जरूरत ही न पड़ती। लेकिन अब जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा ऐसे महत्त्वपूर्ण मामलों में फैसले ले रही है, जो हमारे भविष्य व अस्तित्व से जुड़े हुए हैं, इसलिए इनको आपके समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक हो गया है। दुर्भाग्य से ये फैसले हमारी एवं भारत की घोषित इच्छाओं व हितों के विपरीत किए जा रहे हैं। परिषद् ने राष्ट्रपति को कहा कि हमारे उचित अधिकारों एवं हितों की रक्षा की जाए, यही गुहार लेकर हम आपके पास उपस्थित हुए हैं। ज्ञापन में इस बात पर खुशी जाहिर की गई कि लद्दाख के लोग भी यही बात कह रहे हैं। हमारी माँग है कि पाक-अधिक्रांत क्षेत्रों समेत पूरी रियासत भारतीय संविधान में दर्ज 'ख' भाग के अन्य राज्यों की तरह भारत का अभिन्न अंग मानी जाए। इसकी प्राप्ति हेतु हम अपने पूर्वजों की तरह प्राण न्योछावर करने के लिए भी तैयार हैं। हम शेख अब्दुल्ला से सहमत नहीं हो सकते कि जम्मू के लोग भी कश्मीर घाटी की तरह भारत में सीमित अधिमिलन से संतुष्ट रहें।

ज्ञापन में स्पष्ट किया गया कि हम चाहते हैं कि जम्मू पर भारत का पूरा संविधान लागू हो। हम भी अन्य भारतीयों की तरह संविधान-प्रदत्त मौलिक अधिकारों का लाभ उठाना चाहते हैं। हम यहाँ भी वही झंडा देखना चाहते हैं, जो 'ख' श्रेणी के अन्य राज्यों में फहराया जाता है। हम जम्मू में शेख द्वारा निर्धारित लाल झंडा नहीं देखना चाहते। हम भारतीय संसद् द्वारा पारित कानूनों से शासित होना चाहते हैं। इसी में जम्मू का भविष्य है। हम किसी के द्वारा भी किए जा रहे उन प्रयासों को सफल नहीं होने देंगे, जो जम्मू के भारत में सांविधानिक एकीकरण को रोकने के लिए किए जा रहे हैं। ज्ञापन में आगे कहा गया कि जम्मू-कश्मीर संविधान सभा प्रभुसत्ता-संपन्न नहीं है। इस संविधान सभा का गठन भी धोखाधड़ी से हुआ है और इसमें केवल एक दल का ही प्रतिनिधित्व है। इसी संविधान सभा ने संघीय संसद् में भी अपने प्रतिनिधि भेजे हैं। इस प्रकार भारतीय संसद् में भी हमारा कोई प्रतिनिधि नहीं है। कश्मीर सुरक्षा नियमों व लोक सुरक्षा अधिनियम के बार-बार दुरुपयोग से जम्मू में सभी प्रकार की आजादी समाप्त कर दी गई है। प्रदेश में उर्दू को लागू कर दिया गया है और विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम भी उर्दू कर दिया गया है। नई प्रस्तावित पुस्तकों के माध्यम से भारतीय राष्ट्रीयता के स्थान पर कश्मीरी राष्ट्रीयता स्थापित करने के प्रयास हो रहे हैं। ज्ञापन में यह भी कहा गया कि सरकार जान-बूझकर जम्मू की आर्थिक सुदृढ़ता को नष्ट कर रही है।[247]
ज्ञापन में प्रजा परिषद् ने कहा कि ''जम्मू के लोगों को इस बात की विशेष चिंता है कि उनका राज्य भारत संघ का

स्थायी और निर्विवाद अंग बने। जिस समय भारत सरकार के कहने पर महाराजा ने दिन-प्रतिदिन के शासन की शक्तियाँ नेशनल कॉन्फ्रेंस को सौंप दीं तो जम्मू के लोगों ने भारत के साथ पूरी तरह मिलने की आशा में नेशनल कॉन्फ्रेंस को भी पूरा सहयोग दिया। यह इस आशा में किया गया था कि इससे नेशनल कॉन्फ्रेंस जम्मू के डोगरों के प्रति अपनी पुरानी दुर्भावनाओं को समाप्त कर, राज्य के सभी लोगों को साथ लेकर भारत के साथ पूर्ण अधिमिलन के साँझे उद्देश्य को प्राप्त कर सकेगी। परंतु दुर्भाग्य से शेख अब्दुल्ला सरकार सहयोग की इस भावना को समझने की बजाय इस सहयोग को हमारी कमजोरी समझने लगी। उसने जम्मू के लोगों के साथ जान-बूझकर योजनाबद्ध तरीके से भेदभावपूर्ण एवं दमनात्मक नीतियाँ प्रारंभ कर दीं। जम्मू की प्रतिनिधि प्रजा परिषद् के साथ भी उसने यही व्यवहार किया। जम्मू के प्रति भेदभाव एवं दमन की यह सरकारी नीति सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक लगभग सभी क्षेत्रों में फैल गई। यहाँ तक कि उनके मजहबी मामलों में हस्तक्षेप होने लगा।'' 248

'ट्रिब्यून' ने संकेत दिया कि यदि सरकार ने प्रजा परिषद् के ज्ञापन पर उचित कार्यवाही न की तो प्रजा परिषद् राज्य में हड़ताल प्रारंभ कर सकती है। 'ट्रिब्यून' के अनुसार, ''संकेत मिलने शुरू हो गए हैं कि यदि प्रजा परिषद् के ज्ञापन में लिखी गई माँगें जल्दी पूरी न की गईं तो परिषद् निकट भविष्य में सरकार के खिलाफ राज्य व्यापी आंदोलन छेड़ेगी। अभी परिषद् जनमत-जागरण के अभियान में लगी हुई है। ऐसी भी चर्चा है कि भविष्य की योजना बनाने के लिए नेशनल कॉन्फ्रेंस को छोड़कर प्रदेश के सभी राजनैतिक दलों की एक बैठक अगले मास के मध्य में बुलाई जाए। परिषद् के अनुसार, पिछले पाँच साल से जम्मू के लोग सरकार का सहयोग कर रहे हैं। लेकिन सरकार शायद इसे हमारी कमजोरी मानने लगी है। इसलिए अब जब भी आंदोलन शुरू किया जाएगा तो वह सन् 1946 में शेख द्वारा चलाए गए 'कश्मीर छोड़ो' आंदोलन जैसा ही होगा। 'ट्रिब्यून' ने आगे लिखा कि नेशनल कॉन्फ्रेंस पिछले कुछ अरसे में जम्मू क्षेत्र में अपनी इकाइयाँ बनाने में कामयाब हो गया है। लेकिन नेशनल कॉन्फ्रेंस की ये स्थानीय शाखाएँ भी जम्मू से किए जा रहे भेदभाव से दु:खी और निराश हैं। चनैनी में तो नेशनल कॉन्फ्रेंस के एक नेता लाला दीनानाथ गुप्ता ने सरकार को चेतावनी ही दे दी कि यदि एक महीने के अंदर-अंदर हमारी माँगें न मानी गईं तो हम सीधी कार्यवाही शुरू कर देंगे। गुप्ता ने कहा कि रियासत की आजादी के लिए हमने लाल झंडे तले सबसे बढ़कर बलिदान दिए, लेकिन जब आजादी मिली तो हम आर्थिक और राजनैतिक तौर पर नष्ट हो गए।249 19 जून को प्रजा परिषद् ने राष्ट्रपति को अपने ज्ञापन में स्पष्ट किया कि कश्मीर की संविधान सभा प्रभुसत्ता संपन्न नहीं है। उधर 24 जून को ईद के अवसर पर शेख ने एक बार फिर घोषणा की कि राज्य की संविधान सभा पूरी तरह से प्रभुसत्ता-संपन्न है।250

शेख की बयानबाजी तो जम्मू व लद्दाख के लोगों में भविष्य को लेकर अनिश्चितता पैदा कर ही रही थी, लेकिन नेहरू के बयान आग में घी का काम कर रहे थे। प्रजा परिषद् के इस ज्ञापन की सर्वत्र चर्चा हो रही थी। ज्ञापन के एक सप्ताह बाद नेहरू ने उत्तर दिया। नेहरू के अनुसार, ''कश्मीर में हमें एक कठिन व संवेदनशील स्थिति से निपटना है। इन सब विषयों पर निर्णय लेने का अधिकार कश्मीर के लाखों लोगों को ही है। वह अधिकार इस संसद् के पास भी नहीं है। यदि हम कश्मीर के लोगों की सद्भावना चाहते हैं तो हमें उनकी इच्छानुसार ही चलना होगा। असली एकता तो हृदय और मन की होती है, संविधान की धाराओं से नहीं। वे तो किसी पर भी थोपी जा सकती हैं। सभी कुछ हमारी संसद् की क्षमता में ही तो नहीं है, चाहे वह कितनी भी प्रभुसत्ता-संपन्न क्यों न हो। हम इस दुनिया

के भाग्य का निर्णय तो नहीं कर सकते। हम कोरिया में युद्ध तो समाप्त नहीं करवा सकते। बहुत सी बातें इस संसद् की परिधि से बाहर हैं। इसलिए हमें बुद्धिमत्ता, दृढ़ता, सावधानी से सीमा में रहकर ही आगे बढ़ना है।'' [251]
नेहरू के इस बयान से यह साफ था कि वे इधर-उधर की अप्रासंगिक कोरिया संबंधी बातों के बहाने यह स्पष्ट कर रहे थे कि भारत की संसद् को जम्मू-कश्मीर के बारे में कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है। संविधान जो मरजी कहता रहे। नेहरू तो फिर भी संसद् के प्रति उत्तरदायी तो थे, लेकिन श्रीनगर के शेख तो स्वयं को किसी के प्रति भी उत्तरदायी नहीं मान रहे थे। प्रजा परिषद् राज्य के भारत में एकीकरण के विषय पर यहाँ तक जाने के लिए तैयार थी कि यदि नेशनल कॉन्फ्रेंस इसे स्वीकार कर लेती है तो प्रजा परिषद् समाप्त कर दी जाएगी। स्पष्ट था कि परिषद् सत्ता की लड़ाई नहीं लड़ रही थी बल्कि सिद्धांतों और राष्ट्र-हित के लिए लड़ रही थी।[252]

5.13. दिल्ली जाने से इनकार

जम्मू-कश्मीर का प्रश्न अब उस चौराहे पर आ गया था कि नेहरू चाहकर भी इसे शेख अब्दुल्ला की फिरन में नहीं छुपा सकते थे। अब तक नेहरू और शेख जम्मू-कश्मीर को व्यक्तिगत प्रश्न मानकर आचरण कर रहे थे। यहाँ तक कि नेहरू ने कश्मीर मामले में लौह पुरुष सरदार पटेल को भी हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं दी। संसद् में किसी ने भी कश्मीर पर अपना मत रखना चाहा तो नेहरू चिल्लाने लगते—''मैं कश्मीर के बारे में तुम सबसे ज्यादा जानता हूँ। लेकिन अब शेख अब्दुल्ला ने कश्मीर के मामले में नेहरू को भी अलग करना प्रारंभ कर दिया था और उसे केवल अपनी जागीर मानकर व्यवहार करना शुरू कर दिया था। परंतु शेख की इस स्थिति को स्वीकार करने के लिए कोई तैयार नहीं था—न कश्मीर, न जम्मू और न ही लद्दाख। गिलगित, बाल्टिस्तान और मीरपुर-पुंछ ने तो पहले ही कभी शेख को अपना नेता नहीं माना था। फिर शेख ने तो स्वयं ही कुछ दिन पहले जम्मू-कश्मीर में से जागीरदारी प्रथा समाप्त की थी। वे अब नए जगीरदार कैसे बन सकते थे? शेख नए संविधान में राजशाही हटाकर शेखशाही लाने का प्रयास कर रहे थे। अब नेहरू के लिए भी कोई रास्ता नहीं बचा था। जम्मू में प्रजा परिषद् की आँधी आसमान में उठ रही थी, लोकतांत्रिक व्यवस्था में नेहरू चाहकर भी इस जनांदोलन की अवहेलना नहीं कर सकते थे। उन्होंने शेख को राज्य के भावी संविधान की रूपरेखा पर चर्चा करने के लिए दिल्ली बुलाया।
राज्य की संविधान सभा शेख की रहनुमाई में किस दिशा की ओर जा रही थी, यह अब किसी से छिपा नहीं था। ''दिल्ली में आम चर्चा थी कि उन्हें दिल्ली आने के लिए कई बार कहा गया, लेकिन उन्होंने कोई-न-कोई बहाना बनाकर टाल दिया।[253] स्पष्ट था, शेख सीनाजोरी पर उतर आए थे।''
''शेख अब्दुल्ला के मन में यह बात आ गई थी कि यदि कुछ बड़ी ताकतें कश्मीर की सुरक्षा का आश्वासन दे दें तो कश्मीर भी स्विट्जरलैंड की तरह आजाद देश हो सकता है। दुनिया भर के पर्यटक उसमें आएँगे और उनके पैसे का उपयोग वह स्वयं करेगा, क्योंकि उस समय वह कश्मीर का निर्विवाद नेता तो था ही।'' [254]
वर्ष 1952 के मध्य तक आते-आते शेख अब्दुल्ला ने स्वतंत्र कश्मीर के सपने देखने प्रारंभ कर दिए थे। 'उससे पूर्व उसके मन में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा करवाए जाने वाले जनमत-संग्रह की तलवार लटकती रहती थी, जिसके परिणामस्वरूप उसकी स्थिति को खतरा हो सकता था। अब उसे साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा स्वतंत्रता के सब्जबाग भी दिखाए जाने लगे थे। लेकिन जैसे ही उसने देखा कि भारत ने राज्य की आंतरिक राजनीति में सुरक्षा

परिषद् की दखलंदाजी के सभी प्रयास नकार दिए हैं, तब उसने भारत के साथ और अपने लोगों के साथ भी विश्वासघात किया।' [255]

5.14. नेहरू-शेख अब्दुल्ला वार्त्ता

नेहरू शेख को वार्त्ता के लिए दिल्ली बुला रहे थे और शेख अच्छी तरह समझ गए थे कि ऐसे अवसर पर एक भी गलत कदम उनकी सौदेबाजी की शक्ति को कम कर देगा। परदे के पीछे के गंभीर प्रयासों के बाद शेख अंतत: नेहरू से बातचीत करने के लिए अपना एक प्रतिनिधि मंडल दिल्ली भेजने के लिए तैयार हुए। बातचीत के मुद्दे राज्य के भविष्य की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण थे। राजवंश की समाप्ति और राज्य के लिए निर्वाचित प्रधान। राज्य का अलग ध्वज। राज्य में उच्चतम न्यायालय एवं महालेखाकार का अधिकार-क्षेत्र। राज्य का भारत के साथ वित्तीय एकीकरण। शरणार्थियों का पुनर्वास। राज्य का भारत में पूर्ण अधिमिलन या सीमित अधिमिलन। जनमत संग्रह। अधिमिलन का संविधान सभा द्वारा अनुमोदन। इन्हीं प्रश्नों के संतोषजनक उत्तरों से राज्य का भविष्य तय होनेवाला था और इसमें जम्मू एवं लद्दाख केवल द्रष्टा की भूमिका में रह गए थे। सारी गोटियाँ नेहरू ने शेख के हाथों में दे दी थीं और अब वही शेख दिल्ली आने से बच रहे थे।

''अंतत: शेख ने अपने तीन प्रतिनिधि नेहरू से बातचीत करने के लिए दिल्ली भेजे—मिर्जा अफजल बेग, डी.पी. धर और मीर कासिम। तीनों प्रतिनिधि 30 जून को श्रीनगर से दिल्ली के लिए सड़क मार्ग से रवाना हुए।'' [256] उनके प्रतिनिधियों से ही बातचीत करने के लिए उपस्थित थे, स्वयं पं. नेहरू और उनके साथ देश के गृहमंत्री डॉ. कैलाशनाथ काटजू और रक्षा मंत्री गोपालस्वामी आयंगर। मीडिया ने इस वार्ता को शीर्षक दिया—भारत-कश्मीर वार्ता। उधर जम्मू-लद्दाख में तापमान बढ़ता जा रहा था, इधर श्रीनगर में शेख हठधर्मिता धारण किए हुए थे। कश्मीर के इस प्रतिनिधिमंडल से उप-राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन की भी लंबी बातचीत हुई। ''दिल्ली में यह चर्चा जोरों पर थी कि यदि शेख के इस तर्क को स्वीकार कर लिया जाए कि रियासत का भारत में अधिमिलन केवल रक्षा, विदेशी मामले और संचार को लेकर हुआ है तो भारत सरकार आखिर कश्मीर में खाद्यान्न समेत अन्य अनेक मदों में जो करोड़ों रुपए खर्च रही है, उसका सांविधानिक आधार क्या है?'' [257] श्रीनगर में 3 जुलाई को शेख ने एक बार फिर स्पष्ट कर दिया कि वे दिल्ली तभी आएँगे जब उनके प्रतिनिधिमंडल और भारत सरकार के बीच हुई प्रारंभिक बातचीत का खुलासा हो जाएगा।[258]

5.15. प्रजा परिषद् ने अपनी भूमिका स्पष्ट की

जब कश्मीर के नेता राज्य के भविष्य को लेकर नेहरू से दिल्ली में बातचीत कर रहे थे तो उधर जम्मू में प्रजा परिषद् आगामी रणनीति तैयार कर रही थी। 29 जून को परिषद् के आह्वान पर पूरे जम्मू क्षेत्र में हड़ताल हुई। परिषद् ने सरकार से माँग की कि प्रदेश में से कश्मीर सुरक्षा नियमों और लोक सुरक्षा अधिनियम का दुरुपयोग बंद किया जाए। राज्य के अलग झंडे एवं निर्वाचित प्रधान का विरोध किया गया। परिषद् द्वारा 19 जून को राष्ट्रपति को सौंपे गए ज्ञापन के समर्थन में व्यापक हस्ताक्षर अभियान प्रारंभ किया गया।[259] 4 जुलाई को प्रजा परिषद् के अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा ने जम्मू में एक वक्तव्य जारी किया। ''हमारे साथ हो रहे भेदभाव और अन्याय, शेख अब्दुल्ला सरकार की नीतियों के कारण हमारे मन-मस्तिष्क में पैदा हो रही आशंकाओं के बारे में किसी को भ्रम

नहीं रहना चाहिए। राष्ट्रपति को दिए गए अपने ज्ञापन में प्रजा परिषद् ने जम्मू क्षेत्र के साथ हो रहे अन्यायों का समाधान भी सुझाया है। हम पूरी रियासत का भारत के साथ संपूर्ण एकीकरण चाहते हैं। लेकिन फिर भी, यदि कश्मीर के नेता सीमित अधिमिलन के पक्ष में हैं तो हम चाहते हैं कि भारतीय संविधान के अन्य 'बी' श्रेणी के राज्यों की तरह जम्मू का भारत में पूर्ण अधिमिलन कर दिया जाए। यदि किसी को शक है कि प्रजा परिषद् यहाँ के लोगों का पूरी तरह प्रतिनिधित्व नहीं करती तो शेख सरकार से अतिरिक्त अन्य किसी भी अभिकरण द्वारा स्थापित लोकतांत्रिक पद्धति से इसको परखा जा सकता है। हमें पूरा विश्वास है कि हमारी माँगों की सच्चाई सामने आ जाएगी। लेकिन इसके पश्चात् भी यदि हमारे साथ अन्याय किया गया तो हम चुप नहीं बैठे रहेंगे। किसी प्रकार की भी स्थिति से निपटने के लिए हमारी तैयारी चल रही है। अगले पंद्रह दिनों में हम प्रजा परिषद् का सम्मेलन बुलाएँगे, जिसमें भविष्य की रणनीति तैयार की जाएगी। प्रजा परिषद् में बहुत से लोग जम्मू-कश्मीर संविधान सभा के हाल ही के निर्णयों से व्यथित हैं। परिषद् के आगामी सम्मेलन में क्या रणनीति बनती है, मैं अभी नहीं कह सकता। यही स्थिति आगे जाकर 'जम्मू छोड़ो आंदोलन' का रूप ले सकती है।[260]

प्रजा परिषद् पूरे जम्मू संभाग में जन-जागरण अभियान में लगी ही हुई थी। ''उसकी सदस्य संख्या 80,000 को पार कर गई थी। प्रजा परिषद् राष्ट्रपति को देने के लिए हस्ताक्षर अभियान चला रही थी, जिसमें 2 लाख से ज्यादा हस्ताक्षर हो चुके थे। कठुआ में प्रजा परिषद् के मुख्य संगठक पं. शामलाल शर्मा हुंकार रहे थे कि हमने पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि कश्मीर के वर्तमान शासक नहीं अपितु जम्मू के लोग ही अपने क्षेत्र के बारे में निर्णय करने के अधिकारी हैं। कश्मीर के कुछ प्रतिनिधि दिल्ली में बैठकर राज्य के लिए अलग झंडे और सीमित अधिमिलन के बारे में जो निर्णय ले रहे हैं वह हमें स्वीकार नहीं है। यदि कश्मीर के लोग सीमित अधिमिलन चाहते हैं तो जहाँ तक जम्मू का संबंध है, उसका भारतीय संविधान में दर्ज 'ख' श्रेणी के राज्यों के समान भारत में पूर्ण अधिमिलन माना जाए।[261]

5.16. शेख अब्दुल्ला अंतत: दिल्ली पहुँचे

शेख ने इस बार अपनी रणनीति अत्यंत सावधानी और चतुराई से तैयार की थी। इतने दिनों तक मीडिया में चर्चित रहने के बाद उन्होंने अपनी दिल्ली यात्रा की घोषणा की। उसके लिए उन्होंने समय और स्थान का चयन भी अत्यंत सावधानी से किया था। नेशनल कॉन्फ्रेंस श्रीनगर में हर साल 13 जुलाई का दिन शहीदी दिन के रूप में मनाती है। वर्ष 1931 में इसी दिन श्रीनगर में महाराजा हरि सिंह के शासन के खिलाफ प्रदर्शन कर रहे लोगों पर गोलीबारी से 22 लोग मारे गए थे। शेख ने इस की भावनात्मक महत्ता को समझते हुए इसी दिन श्रीनगर की विशाल जनसभा में अपने दिल्ली जाने की घोषणा की। शेख अच्छी तरह जानते थे कि पं. नेहरू को किस प्रकार की भाषा अच्छी लगती है। इसलिए इस सभा में भी उन्होंने उसी भाषा का प्रयोग किया। उन्होंने कहा कि, ''भारत में प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ सांप्रदायिक राज्य स्थापित करना चाहती हैं। इन शक्तियों ने महात्मा गांधी तक की हत्या कर दी। भारत की आत्मा भगत सिंह की शहादत और जलियाँवाला बाग में हिंदू, मुसलमान व सिक्खों के लहू से पावन हो चुकी है।'' [262] इस प्रकार के जुमलों का प्रयोग करने के बाद उन्होंने चेतावनी दी, ''हम हर हालत में राज्य से निरंकुश शासन का अंत करके रहेंगे। किसी को अच्छा लगे या बुरा।'' [263] जाहिर था, निरंकुश शासन के अंत से शेख का अभिप्राय राज्य के लिए निर्वाचित प्रधान की व्यवस्था करना था, जिसको लेकर जम्मू से दिल्ली तक विवाद

चला हुआ था। 16 जुलाई को जम्मू-कश्मीर के प्रधानमंत्री फ्रंटियर मेल द्वारा दिल्ली पहुँचे और भारत के प्रधानमंत्री के घर में उनके ठहरने की व्यवस्था की गई।

''बातचीत के अनेक मुद्दे थे। राज्य का भारत के साथ वित्तीय एकीकरण सबसे बड़ा मुद्दा था। इसके साथ ही भारतीय संविधान में 97 विषयों की संघ सूची महत्त्वपूर्ण मुद्दा था, क्योंकि जब तक इसका समाधान नहीं हो जाता तब तक भारत सरकार जम्मू-कश्मीर को इन मदों पर कोई कर्जा, अनुदान या सहायता नहीं दे सकती थी। रियासत से आनुवंशिक राजशाही समाप्त करने के लिए भी संविधान के अनुच्छेद 363 (2) और अनुच्छेद 238 में संशोधन करने का मुद्दा था।'' [264]

5.17. प्रजा परिषद् की चेतावनी

दिल्ली में नेहरू और कश्मीर घाटी के नेताओं की वार्त्ता की तैयारियाँ चल रही थीं, इधर जम्मू में इसके विरोध में अलग-अलग दलों एवं विचारधाराओं के लोग एकजुट हो रहे थे। जम्मू बार एसोसिएशन ने माँग की कि भारतीय संविधान के नागरिकता और मौलिक अधिकारों के खंड को पूरी तरह राज्य पर लागू किया जाए। उच्चतम न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र जम्मू-कश्मीर पर भी हो।[265] नए गठित हुए राजनैतिक दल जम्मू-कश्मीर पीपुल्स पार्टी ने अपनी बैठक में स्पष्ट किया कि रियासत के भारत में पूर्ण अधिमिलन के अतिरिक्त कोई भी निर्णय मान्य नहीं होगा। यदि पूर्ण अधिमिलन के अतिरिक्त कोई निर्णय होता है तो यह लोगों की इच्छा के विपरीत माना जाएगा। ध्यान रहे, इस नए राजनैतिक दल में नेशनल कॉन्फ्रेंस के कुछ लोग और समाजवादी विचारधारा से संबंध रखनेवाले लोग थे। जम्मू के अनेक प्रबुद्ध नागरिकों ने अलग से राष्ट्रपति को ज्ञापन भेजे। इनमें कहा गया कि यदि किसी एक राजनैतिक दल का शासन राज्य में स्थायी कर दिया गया तो यह लोकतंत्र के विपरीत होगा। राज्य के सभी नागरिकों को भारतीय संविधान की नागरिकता प्रखंड में दी गई सुविधाएँ मिलनी चाहिए और उच्चतम न्यायालय का अधिकार क्षेत्र इस राज्य पर भी होना चाहिए।[266]

5.18. प्रजा परिषद् ने रणवीर सिंह पुरा में ही दिया उत्तर

17 अप्रैल, 1952 को शेख अब्दुल्ला और नेशनल कॉन्फ्रेंस ने रणवीर सिंह पुरा से राज्य के सीमित अधिमिलन, संप्रभुता, अलग झंडा इत्यादि अपनी योजनाओं का खुलासा किया था। अपनी इन योजनाओं को पूरा करने के लिए शेख अब्दुल्ला और उनके साथी दिल्ली में पं. जवाहरलाल नेहरू के घर में विशेष मेहमान बन कर बैठे थे। जम्मू में आम चर्चा थी कि नेहरू रियासत के लिए शेख की 'अलग प्रधान, अलग विधान और अलग निशान' की सभी माँगें मानने जा रहे हैं। प्रजा परिषद् तीन साल से शेख अब्दुल्ला की सरकार के साथ परस्पर सहभागिता के आधार पर चलने का प्रयास कर रही थी। लेकिन शेख जम्मू का प्रशासन लोकतांत्रिक ढंग से चलाने की बजाय कुख्यात 'कश्मीर सुरक्षा नियम' के द्वारा ही चला रहे थे। उधर नेहरू भी शेख की हाँ में हाँ मिलाते हुए रियासत को शेष भारत से अलग रखने के लिए सहमत हो गए लगते थे। दिल्ली में हो रही नेहरू-शेख वार्त्ता की जानकारी समाचार-पत्रों से मिल ही रही थी। जम्मू में एक ही चर्चा थी कि भारत सरकार ने शेख अब्दुल्ला व उनकी नेशनल कॉन्फ्रेंस के आगे घुटने टेक दिए हैं। पूरे तीन महीने बाद प्रजा परिषद् ने शेख अब्दुल्ला को उसी रणवीर सिंह पुरा में उत्तर देने का निर्णय किया, जहाँ से उसने अलगाव वादी स्वरों का राग अलापना शुरू किया था।

15 जुलाई, 1952 को रणवीर सिंह पुरा में प्रजा परिषद् के अध्यक्ष पं. प्रेम नाथ डोगरा ने एक विशाल जनसभा में

सिंह गर्जना की। उन्होंने कहा, ''कुछ लोगों की मूर्खता के कारण जम्मू-कश्मीर के संवेदनशील मामले में संविधान संबंधी बहस फिर शुरू हो गई है, जबकि राज्य का विधिक व सांविधानिक तौर पर पूरी तरह से भारत में अधिमिलन हो चुका है। यह दु:ख की बात है कि कश्मीर के वे नेता, जो किसी भी प्रकार जम्मू के लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं करते और सत्ता भी जिन्हें घटनावश ही प्राप्त हो गई है, दिल्ली में पूरे राज्य का प्रतिनिधिव करते घूम रहे हैं। सभी पक्ष इसे अच्छी तरह से समझ लें और गाँठ बाँध लें कि यदि उन्होंने रियासत के भारत में पूर्ण अधिमिलन से कम कोई निर्णय लिया, राज्य के लिए अलग झंडे और अलग प्रधान का कोई निर्णय लिया तो वह हम पर किसी भी तरह लागू नहीं होगा। इससे उत्पन्न होनेवाले हालात की सारी जिम्मेदारी भारत सरकार और उन स्वार्थी तत्त्वों की होगी, जो हमें अपने जन्मसिद्ध मौलिक अधिकारों से वंचित कर सदा के लिए गुलाम बनाना चाहते हैं। हम स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि पूरी रियासत के अधिकांश लोग, विशेषकर जम्मू के तो 90 प्रतिशत लोग, रियासत के पूरी तरह भारत के अधिमिलन के पक्ष में हैं। इसे किसी भी लोकतांत्रिक पद्धति से परखा जा सकता है।[267]

5.19. नेहरू-शेख वार्त्ता : बिल्ली थैली से बाहर आई

18 जुलाई को शेख अब्दुल्ला और उसके सहयोगियों के साथ मंत्रिमंडल की विदेशी मामलों की समिति की पाँच घंटे बातचीत हुई और 22 जुलाई तक वार्त्ता निपट गई। 22 जुलाई को ही शेख अब्दुल्ला ने दिल्ली में कांग्रेस के सभी संसद् सदस्यों का मार्गदर्शन किया। शेख का जादू नेहरू के सिर चढ़कर बोल रहा था। शेख ने कहा, ''आप हम पर पूरा विश्वास रखें। हम कश्मीर में कांग्रेस की नीतियाँ ही लागू करेंगे। हम भारत के नेताओं से सलाह किए बिना कोई निर्णय नहीं करेंगे।'' शेख 50 मिनट तक बोले। नेहरू अत्यंत प्रसन्न नजर आ रहे थे। अपने रणवीर सिंह पुरा के विवाद पर भी उन्होंने टिप्पणी की, पी.टी.आई. ने गलत रपट जारी की।[268]

2.6.(1) नेहरू-शेख वार्त्ता के मुख्य बिंदु—1 भारत के अन्य राज्यों में विधायिका की अवशिष्ट शक्तियाँ केंद्र सरकार में निहित हैं, लेकिन जम्मू-कश्मीर राज्य में ये शक्तियाँ राज्य में ही निहित होंगी। अधिमिलन पत्र में दर्ज विषयों के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों पर संप्रभुता राज्य में ही निहित रहेगी।

(2) राज्य के सभी निवासी भारत के नागरिक होंगे, लेकिन राज्य सरकार स्टेट सब्जेक्ट अधिसूचना 1927 व 1932 में निर्धारित स्टेट सब्जेक्ट को विशेष अधिकार व सुविधाएँ देने के लिए प्रावधान कर सकती है। 1947 में सांप्रदायिक अराजकता से उत्पन्न स्थिति के कारण राज्य छोड़कर पाकिस्तान चले गए स्टेट सब्जेक्ट को वापस लाने के लिए भी राज्य कानून बना सकता है।

(3) क्योंकि भारत के राष्ट्रपति का जम्मू-कश्मीर में भी उतना ही सम्मान है जितना देश के अन्य प्रदेशों में। इसलिए राष्ट्रपति से संबंधित भारतीय संविधान के 52 से लेकर 63 तक के अनुच्छेद इस राज्य पर भी लागू होंगे।

(4) भारत के राष्ट्रीय ध्वज के साथ-साथ राज्य का अपना अलग ध्वज भी होगा। लेकिन राज्य का ध्वज राष्ट्रीय ध्वज का प्रतिद्वंद्वी नहीं माना जाएगा।

(5) अन्य राज्यों में सांविधानिक मुखिया राज्यपाल होता है और उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति करता है, लेकिन जम्मू-कश्मीर में संवैधानिक मुखिया निर्वाचित होगा। उसका मनोनयन केंद्र सरकार व राष्ट्रपति द्वारा नहीं होगा। उसका निर्वाचन राज्य विधानसभा करेगी। लेकिन राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृति मिलने पर ही वह व्यक्ति पद भार सँभालेगा। इस पद का नाम बाद में तय किया जाएगा। राज्य में आनुवंशिक राजशाही समाप्त कर दी जाएगी।

(6) राज्य की विशेष स्थिति के कारण, खासकर शेख अब्दुल्ला के भू-सुधार अधिनियमों के बाद, यह निर्णय किया

गया कि भारतीय संविधान के मौलिक अधिकार राज्य में लागू न किए जाएँ और न ही इन्हें राज्य के संविधान में शामिल किया जाए।

(7) राज्य में बोर्ड ऑफ ज्यूडीशियल एडवाइजरी होने के कारण फिलहाल राज्य को उच्चतम न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र से बाहर रखा जाए। उच्चतम न्यायालय का अधिकार केवल अपील के मामलों में ही होगा।

(8) भारतीय संविधान की धारा 352 के अंतर्गत राष्ट्रपति को राज्य में आंतरिक आपात स्थिति लागू करने का अधिकार राज्य सरकार की सहमति से ही होगा।

नेहरू-शेख वार्त्ता राजनैतिक क्षेत्रों में विवाद का विषय ही रही। इन मुद्दों पर देश में काफी अरसे से बहस हो रही थी। 'प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. आंबेडकर ने सुप्रीम कोर्ट व मौलिक अधिकारों के प्रश्न पर कोई भी समझौता करने से इनकार कर दिया था। उनका आग्रह था कि संविधान का नागरिकता, मौलिक अधिकार और सुप्रीम कोर्ट का अध्याय जम्मू-कश्मीर राज्य पर भी हर हालत में लागू होना चाहिए। राज्य में कराधान का अधिकार भी केंद्रीय सरकार के पास ही रहना चाहिए, उसे चाहे फिलहाल कुछ समय के लिए लागू न किया जाए। उनका तर्क था कि यदि भारतीय संविधान के ये प्रावधान राज्य में लागू न किए तो संप्रभुता खिलवाड़ बनकर रह जाएगी।' [269] 24 जुलाई को पं. नेहरू लोकसभा में अपनी और शेख की वार्ता पर एक स्वेच्छा से वक्तव्य देनेवाले थे। और उसी दिन भारत के प्रधानमंत्री और जम्मू-कश्मीर के प्रधानमंत्री एक संयुक्त पत्रकार वार्त्ता भी करनेवाले थे। सभी की दृष्टि अब 24 जुलाई की ओर लगी थी।

5.20. नेहरू का लोकसभा में नेहरू-शेख वार्त्ता पर वक्तव्य

नेहरू ने पूरे 9.15 पर बोलना शुरू किया। लच्छेदार भाषा में, जिसमें वे पारंगत थे, जम्मू-कश्मीर की भौगोलिक स्थिति स्पष्ट की। उसके बाद बताया कि कश्मीर और भारत के एक हजार साल से संबंध हैं। (मानो कश्मीर कोई अलग देश हो) फिर यह बताया कि कश्मीर भारत और मध्य एशिया के बीच पुल का काम करता है। यह मध्य एशिया के भी केंद्र में है। वे काफी देर इधर-उधर की बातें करने के बाद बीच-बीच में मुद्दों पर भी आते थे। उनके अनुसार, ''जम्मू-कश्मीर राज्य से वंशानुगत शासक का पद हटाकर वहाँ राज्य विधान सभा द्वारा निर्वाचित व्यक्ति राज्य का प्रधान होगा, जिसे राष्ट्रपति से मान्यता प्राप्त होगी। भारत के राष्ट्रीय ध्वज, जिसे केवल विशेष अवसरों पर ही फहराया जाएगा, के अतिरिक्त कश्मीर राज्य का अपना अलग झंडा होगा। मूलभूत अधिकार, नागरिकता, उच्चतम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र तथा वित्तीय एकीकरण के बारे में भी चर्चा हुई, लेकिन कोई अंतिम निर्णय नहीं हो सका।'' [270]

24 जुलाई को ही नेहरू और शेख अब्दुल्ला ने दिल्ली में एक सांझी पत्रकार वार्त्ता की। नेहरू-शेख वार्त्ता के निर्णय कब तक लागू होंगे, इसके बारे में नेहरू का कहना था कि इसकी कोई समय सीमा तय नहीं है। राज्य के भारत के साथ वित्तीय एकीकरण के बारे में नेहरू का कहना था कि अभी कुछ तय नहीं हुआ, लेकिन इसके लिए समय-समय पर मिलते रहेंगे। जब एक पत्रकार ने पूछा कि क्या इस समझौते के बाद नेशनल कॉन्फ्रेंस राज्य में विपक्ष से समझौता करने का प्रयास करेगी, तो शेख अब्दुल्ला तो चुप रहे, लेकिन नेहरू ने कहा कि मुझे इसका उत्तर नहीं देना है। लेकिन मैं समझता हूँ कि नेशनल कॉन्फ्रेंस सदा ही विपक्ष का सहयोग लेने का प्रयास करती है। जाहिर है, नेहरू शेख को बचाने का प्रयास कर रहे थे।[271]

5.21. नेहरू-शेख वार्त्ता पर समाचार-पत्रों की टिप्पणी

नवभारत टाइम्स ने लिखा, ''यह समझौता एक पक्षीय, अदूरदर्शितापूर्ण, जल्दबाजी में किया हुआ और व्यवहार नीति के विरुद्ध है। इस समझौते की शर्तों को देखकर और पढ़-सुनकर किसी के भी मन पर प्रथम प्रभाव यही पड़ेगा कि यह समझौता या तो किन्हीं विजेता और विजितों के बीच हुआ है या फिर दो ऐसे कृपालु मित्रों के बीच में, जिसमें एक मित्र अपरिमित हानि उठाकर भी दूसरे के संतोष एवं प्रसन्नता के लिए सबकुछ न्यौछावर कर देने पर तुला बैठा हो। स्पष्ट है कि इन दोनों पक्षों में विजेता की अथवा निछावर लेनेवाले मित्र की स्थिति कश्मीर की है।'' [272] प्रसिद्ध पत्रकार इंद्र वाचस्पति ने दिल्ली से प्रकाशित 'जनसत्ता' में लिखा—''यह एक ऐसा समझौता है, जिसके दोनों पैर निर्बल हैं। इसलिए इसके चिरस्थायी होने की आशा नहीं करनी चाहिए।'' [273] श्रीनगर के मौलाना अब्दुल अजीज ने कहा कि यह दिन हम लोगों के लिए सदा काला दिन रहेगा, क्योंकि इस दिन भारत सरकार ने कश्मीर की जनता को फासिस्टों को सौंप दिया है, जिन्हें प्रजातंत्र का नाम तक ज्ञात नहीं है।[274] लोकसभा में दिल्ली समझौते पर नेहरू के वक्तव्य के चार दिन बाद ही 28 जुलाई को मेरठ में दीनदयाल उपाध्याय ने 'ध्वज और मौलिक अधिकारों संबंधी शर्तों की तीव्र आलोचना की, जो ऐतिहासिक कारणों से नहीं अपितु सांप्रदायिक कारणों से इस रूप में रखे गए हैं। यह नेहरू के हाथों सांप्रदायिकता की विजय है।'' [275]

5.22. जम्मू व लद्दाख को स्वायत्तता से इनकार

नेहरू-शेख वार्त्ता में तो जम्मू व लद्दाख को स्वायत्त प्रशासन देने का कोई उल्लेख नहीं था। लेकिन पत्रकार वार्त्ता में यह प्रश्न विशेष रूप से पूछा गया। इसका उत्तर नेहरू और शेख दोनों ने अलग-अलग दिए। नेहरू ने तो कहा कि कश्मीर सरकार रियासत के भीतर क्षेत्रीय स्वायत्तता देने के बारे में विचार कर रही है। शेख ने कहा कि हमने तो 'नया कश्मीर' दस्तावेज में अरसा पहले कहा था कि रियासत की प्रत्येक सांस्कृतिक इकाई को पूरी सांस्कृतिक स्वायत्तता का अधिकार है। लेकिन अभी संविधान बन रहा है, इसलिए इन विषयों पर अभी विचार नहीं किया।[276] जम्मू और लद्दाख राजनैतिक स्वायत्तता की माँग कर रहे थे और शेख अपने घोषणा-पत्र में संस्कृति के संदर्भ बता रहे थे। जम्मू-लद्दाख के लोगों को सरकार के इस व्यवहार से सचमुच निराशा भी हुई और इन क्षेत्रों के साथ किए जा रहे भेदभाव के कारण दु:ख भी।

नेहरू के इस वक्तव्य के चार दिन बाद ही ऊधमपुर में एक जनसभा में प्रजा परिषद् के अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा ने स्थिति स्पष्ट कर दी, ''दिल्ली में नेहरू और शेख ने जम्मू के लोगों को किसी गिनती में नहीं रखा है। लेकिन हम भारत में शामिल होने के लिए कोई भी बलिदान देने के लिए तैयार हैं। हमने राष्ट्रपति को जो ज्ञापन दिया है, उससे हम एक इंच भी पीछे हटने को तैयार नहीं हैं।[277] दिल्ली समझौते पर ही नेहरू ने 5 अगस्त को राज्यसभा में वक्तव्य दिया। 11 अगस्त, 1952 को शेख अब्दुल्ला ने जम्मू-कश्मीर संविधान सभा में दिल्ली समझौते पर वक्तव्य दिया। दिल्ली समझौता शेख अब्दुल्ला की जीत थी। अब उसके भीतर का तानाशाह जाग उठा था।

5.23. प्रजा परिषद् का जम्मू सम्मेलन

दिल्ली में हुई नेहरू-शेख की सहमति से स्पष्ट हो गया था कि भारत सरकार ने शेख अब्दुल्ला के आगे घुटने टेक

दिए हैं या फिर यह भी कहा जा सकता है कि स्थिति नेहरू के नियंत्रण में नहीं रही थी और अब वे इसे सार्वजनिक रूप से स्वीकार करने में हिचकचा रहे थे। कारण चाहे कुछ भी हो, जम्मू-लद्दाख में अनिश्चितता घिरने लगी थी। प्रजा परिषद् ने स्थिति पर विचार करने के लिए और भविष्य की रणनीति तय करने के लिए 9 और 10 अगस्त, 1952 को जम्मू में महासम्मेलन बुलाने की घोषणा कर दी। इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए परिषद् ने भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष और लोकसभा के सदस्य डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी को भी आमंत्रित किया। देश के अन्य राजनैतिक दलों को भी बुलाया गया। ''7 अगस्त, 1952 को मुकर्जी ने लोकसभा में घोषणा की कि मैं प्रजा परिषद् के 9-10 अगस्त के सम्मेलन में भाग लेने जम्मू जा रहा हूँ। उनके साथ उमाशंकर त्रिवेदी और रामनारायण सिंह भी थे।'' [278] डॉ. मुखर्जी जम्मू तो जा रहे थे, पर वास्तव में अभी भी उनकी इच्छा थी कि यदि शेख अब्दुल्ला जम्मू व लद्दाख की जन-भावनाओं को भी समझने का प्रयास करें तो टकराव को टाला जाए। यही कारण था कि 8 अगस्त को जब डॉ. मुकर्जी पठानकोट रेलवे स्टेशन पर पहुँचे तो वहाँ शेख अब्दुल्ला का वर्णन सकारात्मक भाव से ही किया। उन्होंने कहा, ''शेख अब्दुल्ला महान् नेता हैं, जिन्होंने अपने लोगों के लिए और देश के लिए बहुत कुछ किया है। लेकिन उन्हें अब ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जिससे देश की, जिसका कश्मीर भी एक हिस्सा है, एकता खंडित होती हो। विपक्ष का धर्म है कि यदि प्रशासन कुछ गलत करे तो उसकी ओर उसका ध्यान दिलाया जाए। इसी के नाते मैं कहता हूँ कि कश्मीर सरकार की नीतियाँ गलत हैं। मैं राज्य में शेख अब्दुल्ला सरकार का विरोध करने नहीं जा रहा हूँ, बल्कि मैं तो नेहरू-शेख वार्ता के बारे में जम्मू के लोगों की प्रतिक्रिया और भावनाएँ जानने के लिए जा रहा हूँ। मेरा मत है कि भारत सरकार की वर्तमान कश्मीर नीति गलत है।'' [279]

पठानकोट से जम्मू जाते हुए रास्ते में कठुआ में जनसभा को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, ''मेरे दिल्ली छोड़ने से पहले कई कांग्रेसी दोस्तों ने कहा कि मुझे जम्मू नहीं जाना चाहिए, क्योंकि प्रजा परिषद् के साथ लोग नहीं हैं। मैं उनसे यहाँ आने के लिए कहूँगा, ताकि वे देख सकें कि प्रजा परिषद् के साथ लोग हैं या नहीं। आप भारतीय संविधान चाहते हैं, आप भारत का झंडा चाहते हैं, आप चाहते हैं कि जो भारत के राष्ट्रपति हैं वे आपके भी राष्ट्रपति हों। ये उचित और देशभक्ति से जुड़ी माँगें हैं। उन्हें मानना ही होगा। मैं आपको भरोसा दिलाता हूँ कि मुझसे जो बन पड़ेगा, मैं करूँगा। हम विधान लेंगे या बलिदान देंगे।'' [280] तब शायद उन्हें नहीं पता था कि उनकी दूसरी भविष्यवाणी ही बाद में सत्य निकलेगी। जम्मू पहुँचने पर डॉ. मुकर्जी को शेख अब्दुल्ला का बातचीत के लिए निमंत्रण मिला। वे श्रीनगर उनसे मिलने के लिए गए। दोनों में क्या बातचीत हुई, इसका आधिकारिक रिकॉर्ड तो उपलब्ध नहीं है, लेकिन बाद में जब फरवरी 1953 में मुकर्जी और शेख अब्दुल्ला का प्रजा परिषद् के आंदोलन को लेकर पत्र-व्यवहार हुआ, उससे इस बातचीत के संकेत मिलते हैं।

मुकर्जी ने शेख अब्दुल्ला को कहा, ''आप जम्मू के लोगों की भावनाओं की गहराइयों को समझने का प्रयास करें और उनके मन से भय व आशंकाओं को दूर करने का प्रयास करें। आप प्रजा परिषद् के प्रति असहयोग का रवैया न अपनाएँ और न ही आपसी दरार को बढ़ने दें।'' [281] अब आपको ऐसे सभी पग उठाने चाहिए, जिससे राज्य में एक नया मनोवैज्ञानिक वातावरण बने, ताकि सभी वर्गों के लोग आपको स्वत: ही इस रूप में अपना नेता स्वीकार कर लें, जिसके हाथों में उनका भविष्य सुरक्षित है। आपने अनेक कठिनाइयों के बावजूद पाकिस्तान निर्माण

के द्वि-राष्ट्रवाद के सिद्धांत को साहसपूर्ण चुनौती दी। इस संदर्भ में तो यह बहुत बड़ा प्रयोग था, जिसे भारत के राष्ट्रीय नेता भी नहीं कर सके। उनकी कमजोर नीति से ही भारत का विभाजन हुआ। आपको न तो जम्मू की मुख्य समस्याओं की अवहेलना करनी चाहिए और न ही ऐसा कुछ करना चाहिए, जिससे अलगाव की वृत्तियों को बढ़ावा मिले।'' [282]

लेकिन शेख ने उनकी सलाह मानने से इनकार कर दिया, क्योंकि उनके अनुसार, ''एक तो प्रजा परिषद् का कोई जनाधार नहीं है और दूसरा परिषद् का पुराना इतिहास इतना निंदनीय है कि मैं उसके प्रवक्ता (प्रेमनाथ डोगरा) से कोई संबंध रख ही नहीं सकता।'' [283]

श्रीनगर से वापस आने पर 10 अगस्त, 1952 को प्रजा परिषद् के सम्मेलन को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि ''जम्मू-कश्मीर के लोगों को इस सारे प्रश्न को राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखना चाहिए। अधिमिलन और हाल ही में संसद् में सूचित किए गए समझौते पर राज्य के लोगों को शांत मन से सोचना चाहिए। पाकिस्तान के जहरीले प्रचार की पृष्ठभूमि में शेख अब्दुल्ला को घाटी के मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करने में जो कठिनाइयाँ आ रही हैं, वे उसे समझ सकते हैं। लेकिन इसके बावजूद बुनियादी राष्ट्रीय हितों की कीमत पर मुसलिम भावनाओं के तुष्टीकरण की नीति जारी रखना घातक होगा। आज इस बात को लेकर विवाद है कि भारतीय संविधान के उपबंध राज्य में कैसे लागू किए जाएँ? जम्मू-कश्मीर की विशेष परिस्थिति को देखते हुए अनुच्छेद 370 की आवश्यकता को कुछ सीमा तक समझा जा सकता है; लेकिन भारतीय संविधान के बुनियादी सिद्धांत, जो लोकतांत्रिक और गैर-सांप्रदायिक हैं, को राज्य में लागू करने में क्या आपत्ति हो सकती है? अलग झंडे के प्रश्न को जिस ढंग से उठाया जा रहा है, उससे जम्मू के लोग उद्वेलित हैं। अलग झंडा रखने के पीछे उसके समर्थकों का उद्देश्य जो हो, लेकिन उससे निष्ठा विभाजित होती है। आखिर राष्ट्रीय ध्वज राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है। जब जम्मू-कश्मीर भारत का अंग है तो अलग झंडे की आवश्यकता क्यों?

''आनुवंशिक राजशाही के सारे प्रश्न को ही गलत परिप्रेक्ष्य में देखा जा रहा है। निर्वाचित राज्याध्यक्ष के प्रश्न पर संविधान सभा में भी बहस हुई थी। शेख अब्दुल्ला भी उसके सदस्य थे। संविधान सभा ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था, क्योंकि इससे निर्वाचित मुख्यमंत्री और निर्वाचित राज्याध्यक्ष में विवाद की संभावना हो सकती है। जब सारे देश में सभी राज्यों के लिए राज्याध्यक्ष राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होगा तो जम्मू-कश्मीर राज्य के लिए अलग व्यवस्था क्यों?

''असली बात राज्य के पाकिस्तान के कब्जे में गए क्षेत्र को छुड़ाने की है। उसके बिना राज्य विभाजित ही रहेगा। नेहरू कहते हैं कि भारत और कश्मीर की जबरदस्ती तो शादी नहीं हो सकती। यदि ऐसा है तो यह तर्क तो कश्मीर बनाम जम्मू/लद्दाख पर भी लागू हो सकता है। पाकिस्तान से लड़ाई अभी खत्म नहीं हुई है। वहाँ से अभी भी घुसपैठ हो रही है। इसलिए कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए, जिससे राज्य की शांति भंग होती हो। दुर्भाग्य की बात है कि शेख रियासत के पूर्व शासक के खिलाफ बोलते-बोलते डोगरों तक पहुँच जाते हैं, जिससे दोनों पक्षों में दूरियाँ बढ़ रही हैं। शेख को जम्मू के लोगों को केवल प्रशासनिक मामलों में ही नहीं बल्कि सांविधानिक मामलों में भी साथ लेकर चलना चाहिए। शेख अब्दुल्ला की इस बात के लिए प्रशंसा की जानी चाहिए कि वे रियासत के मुसलिम बहुल होने के बावजूद उसे भारत में शामिल किए जाने के पक्ष में रहे।'' [284] डॉ. मुकर्जी ने अपनी

बँगलानुमा हिंदी में चुटकी ली, ''पं. नेहरू कहती है कि कश्मीर एक स्त्री के समान है और भारत व पाकिस्तान दो पुरुष हैं। स्त्री जिसके साथ चाहे अपनी मरजी से जा सकती है। नेहरू गलत कहता है। मैं कहता हूँ, कश्मीर भारत की पुत्री है। पुत्री यदि कुमार्ग पर चले तो उसे रोकने का पिता को पूरा अधिकार है।''

5.23.1 जम्मू में 9-10 अगस्त, 1952 के सम्मेलन में पारित प्रस्ताव

''यदि जम्मू-कश्मीर की वर्तमान सरकार रियासत के भारत में संपूर्ण अधिमिलन के लिए सहमत नहीं है तो भारत सरकार को जम्मू व लद्दाख के भारत में पूर्ण अधिमिलन के लिए पग उठाने चाहिए। जम्मू के लोग अपने आपको भारत के पूर्ण नागरिक मानते हैं, इसलिए वे भारतीय संविधान में दिए अपने अधिकारों पर कोई सीमा स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। उच्चतम न्यायालय, नागरिकता, मौलिक अधिकार एवं वित्तीय एकीकरण से संबंधित भारतीय संविधान के उपबंध राज्य में हर हालत में लागू होने चाहिए। नेहरू-शेख अब्दुल्ला वार्त्ता से कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं हुआ है, जिसके कारण प्रजा परिषद् को महीना भर पहले राष्ट्रपति को दिए गए अपने ज्ञापन में कोई परिवर्तन करना पड़े।

पाकिस्तान के कब्जे में गए क्षेत्र में स्वेच्छा से जाकर बस जानेवाले मुसलमानों को वापस लाकर उन्हें राज्य में बसाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। जब तक कब्जे में गए इलाके पाकिस्तान से छुड़वा नहीं लिये जाते और उन इलाकों से आए गैर-मुसलिम शरणार्थियों को अपने पूर्वजों की धरती पर जा बसने का अधिकार नहीं मिल जाता, तब तक उन हिंदू-सिक्ख विस्थापितों को, जो यहाँ बस गए हैं, पुन: उजाड़ा न जाए। जो शरणार्थी अभी तक भी राज्य से बाहर कहीं बस नहीं पाए, उन्हें राज्य में लाकर बसाना चाहिए। युद्ध विराम रेखा के दूसरी ओर के क्षेत्रों को भी दूसरे राज्यों की तरह पूरी तरह भारत में शामिल किए जाने के प्रयास करते रहना चाहिए।'' [285]

जम्मू से वापस दिल्ली आने के बाद डॉ. मुकर्जी पं. नेहरू से मिले। उन्होंने बताया कि ''प्रजा परिषद् कुछ असंतुष्ट और संपत्ति से बेदखल किए गए जमींदारों का संगठन नहीं है। यह एक लोकतांत्रिक राजनैतिक संगठन है, जिसके पास सक्षम नेतृत्व है और व्यापक जन-समर्थन भी। जम्मू में इसका अच्छा-खासा प्रभाव है और परिषद् के खिलाफ कार्यवाही की बात सोचना सही नहीं है। डॉ. मुकर्जी ने सलाह दी कि वे उन्हें भरोसे में लें, जिनकी ईमानदारी और देशभक्ति पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि प्रेमनाथ डोगरा उस राज्य के साथ-साथ भारत की एकता को सुदृढ़ करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।'' [286] लेकिन नेहरू जम्मू-कश्मीर पर शेख के सिवा किसी दूसरे की राय सुनने को तैयार नहीं थे।

उसके बाद इस समझौते के कर्यान्वयन की प्रक्रिया शुरू हुई। कर्ण सिंह को राज्य का निर्वाचित प्रधान बनाया जाना तय हुआ था। लेकिन कर्ण सिंह जानते थे कि जनता इसका विरोध करेगी। प्रजा परिषद् जानती थी कि यह शेख अब्दुल्ला की राज्य को भारत से दूर रखने की एक चाल से अधिक कुछ नहीं है। कर्ण सिंह उस चाल के मोहरे बनने को तैयार हो गए थे। कर्ण सिंह एक बार प्रजा परिषद् को मना लेने का प्रयास कर लेना चाहते थे। उन्होंने दिल्ली में नेहरू से मिलने के बाद श्रीनगर लौटने पर प्रजा परिषद् के अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा सहित जम्मू के अन्य नेताओं के साथ बातचीत की प्रक्रिया प्रारंभ की।[287]

5.24. कर्ण सिंह की प्रजा परिषद् से बातचीत

राज्य के लिए निर्वाचित प्रधान के प्रश्न पर विचार विमर्श करने के लिए कर्ण सिंह ने प्रजा परिषद् का एक प्रतिनिधि

मंडल श्रीनगर आमंत्रित किया था। सितंबर 1952 में इस प्रतिनिधिमंडल ने कर्ण सिंह से अनेक लंबी-लंबी भेंट वार्ताएँ कीं। युवराज कर्ण सिंह ने यह निमंत्रण जम्मू में चैंबर ऑफ कॉमर्स के पास भी भेजा था। ''लेकिन उन्होंने उसे यह कहकर ठुकरा दिया कि उनका पूर्ण अधिमिलन का स्टैंड स्पष्ट है। इस पर किसी चर्चा की जरूरत नहीं है।'' [288] लेकिन प्रजा परिषद् से कर्ण सिंह का यह वार्त्तालाप सितंबर के पहले सप्ताह कई दिनों तक चलता रहा। प्रतिनिधिमंडल में परिषद् के अध्यक्ष पं. प्रेमनाथ डोगरा के अतिरिक्त लाला शिवराम गुप्ता, ठाकुर हकीकत सिंह, दुर्गा दास वर्मा, सी.एन. डोगरा और पं. संतराम शामिल थे। राज्य के गृहमंत्री रह चुके वजीर गंगाराम को भी कर्ण सिंह ने बातचीत के लिए बुलाया था। बाद में वे भी इसी प्रतिनिधिमंडल में शामिल हो गए।[289] इस लंबी बातचीत के बाद प्रेमनाथ डोगरा ने बताया कि कर्ण सिंह से जो भी बातचीत होती है, वह प्रजा परिषद् की कार्यकारिणी के सामने रखी जाएगी और वही इस विषय पर अंतिम निर्णय करेगी।[290]

इसी बीच महाराजा हरि सिंह ने राष्ट्रपति को एक ज्ञापन भेजकर राज्य के लिए निर्वाचित प्रधान के प्रस्तावित प्रावधान को असंवैधानिक बताया और उनसे इसमें हस्तक्षेप करने के लिए कहा। ''परिषद् ने अब कर्ण सिंह को कोई भी सलाह तब तक देना उचित नहीं समझा जब तक महाराजा की इन आपत्तियों का निबटारा नहीं हो जाता।' वैसे भी उनकी दृष्टि में 'वर्तमान संविधान सभा जम्मू का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी।'' [291] इसलिए भी इसे इस प्रश्न पर निर्णय का आधिकार नहीं था। 'बातचीत के बाद पं. प्रेमनाथ डोगरा ने एक बयान जारी किया, जिसमें उन्होंने अपनी यह माँग दोहराई कि जम्मू-कश्मीर का भारत में पूरी तरह अधिमिलन होना चाहिए।'' [292]

''जब तक भारत सरकार महाराजा के पद-त्याग और राजप्रमुख के नाते उनकी मान्यता वापस लेने के बारे में कोई अंतिम निर्णय नहीं ले लेती और जब तक राज्य का संविधान उचित आकार नहीं ले लेता, तब तक श्री युवराज बहादुर को राज्याध्यक्ष का पद स्वीकार या अस्वीकार करना, इस प्रश्न पर राय व्यक्त करना, समय से पहले बोलना होगा।'' [293] लेकिन नेहरू ने कहा, ''मुझे डोगरा का ऐसा कहना बिलकुल पसंद नहीं है।'' [294]

कर्ण सिंह जानते थे कि प्रजा परिषद् के पीछे राज्य की समस्त राष्ट्रीय शक्तियाँ खड़ी हैं। इसलिए यदि प्रजा परिषद् निर्वाचित अध्यक्ष के प्रश्न पर सहमत नहीं होती तो भविष्य में कठिनाइयाँ पैदा हो सकती हैं। इसलिए उन्होंने एक बार फिर प्रयास किया कि नेहरू परिषद् से बात करने के लिए किसी तरह सहमत हो जाएँ। उन्होंने 8 सितंबर, 1952 को नेहरू को लिखा—''जम्मू के लोगों को लगता है कि न तो उनका राज्य की विधानसभा में कोई प्रतिनिधित्व है, न ही राज्य सरकार में और न ही भारतीय संसद् में। क्योंकि हमारे राज्य में भारतीय संसद् के लिए प्रतिनिधियों का मनोनयन हुआ था, चुनाव नहीं। लेकिन उनकी बुनियादी माँग राज्य के भारत में पूर्ण एकीकरण की ही है।'' [295] ''प्रजा परिषद् के प्रेमनाथ डोगरा और उनके साथियों की बहुत इच्छा है कि वे आपसे और भारत सरकार के दूसरे मंत्रियों से मिलकर अपना पक्ष और माँगें प्रस्तुत कर सकें।'' [296] लेकिन नेशनल कॉन्फ्रेंरस के लोग नेहरू को पहले ही समझा चुके थे कि जम्मू की वास्तविक माँग क्या है।

नेहरू ने कर्ण सिंह को उत्तर दिया, ''शेख अब्दुल्ला और बक्शी गुलाम मोहम्मद दोनों ने ही मुझसे जम्मू क्षेत्र की

समस्याओं की चर्चा की है और वे उन्हें दूर करने के इच्छुक भी हैं। उदाहरण के लिए, जम्मू में पानी की कमी बहुत बड़ी समस्या है।'' 297 और साथ ही प्रजा परिषद् के बारे में अपनी राय भी बता दी, ''यदि किसी का अंदाजा उसकी संगत देखकर लगाना हो तो पंजाब और दिल्ली में प्रजा परिषद् के साथी बहुत ही अवांछित लोग हैं।'' 298

''जिस वक्त एकता की सबसे ज्यादा जरूरत है, उस समय प्रजा परिषद् विघटनात्मक प्रभाव पैदा कर रही है।'' 299 प्रजा परिषद् के बारे में नेहरू की ऐसी राय आंदोलन के मुद्दों को लेकर नहीं थी बल्कि उनके व्यवहार को लेकर थी। उन्होंने लिखा—''यदि कोई मेरे या मेरे पद के प्रति असम्मान प्रदर्शित करता है और मुझसे अनुचित लाभ उठाना चाहता है तो मैं इसे किसी भी हालत में पसंद नहीं करता। प्रजा परिषद् के लोगों ने मेरे प्रति ऐसा ही असम्मान प्रदर्शित किया है। अब वे मुझसे भी किसी प्रकार की आशा न रखें।'' 300 नेहरू जम्मू-कश्मीर के सारे प्रश्न को व्यक्तिगत मान-अपमान तक ही सीमित कर रहे थे। पहले महाराजा हरि सिंह के और अब प्रजा परिषद् के प्रति उनकी राय दुर्भावनापूर्ण ही बन गई थी।

उधर 10 सितंबर को लद्दाख में भी मुख्य लामा कुशक बकुलाजी की अध्यक्षता में प्रस्ताव पारित किया गया कि वयस्क मताधिकार के आधार पर लद्दाख सलाहकार परिषद् का चुनाव किया जाए और उस परिषद् की सहमति के बिना जम्मू-कश्मीर संविधान सभा लद्दाख से संबंधित कोई निर्णय न ले।'' 301

इन परिस्थितियों में भारत सरकार ने महाराजा हरि सिंह पर अपना आनुवंशिक पद त्यागने के लिए दबाव बनाना शुरू कर दिया। अंतत: वे विवश हो गए।302 संविधान की भावना के विपरीत महाराजा हरि सिंह पर डाले गए इस दबाव का जम्मू व लद्दाख में बहुत विपरीत असर हुआ।

5.25. प्रजा परिषद् द्वारा विरोध

20 सितंबर को प्रजा परिषद् ने घोषणा कर दी कि यदि उसकी माँगें न मानी गईं तो वे नागरिक अवज्ञा का आंदोलन प्रारंभ कर देंगे।303 प्रजा परिषद् के उपाध्यक्ष ठाकुर धन्वंतर सिंह ने 23 सितंबर को इस आशय का एक तार राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद को भेजा। तार के अनुसार, ''महाराजा हरि सिंह को इस प्रकार पद-त्याग करने के लिए विवश करना अपने आप में बुद्धिमत्ता का काम नहीं है। अब तक इस प्रकार का कोई उदाहरण भी हमारे सामने नहीं है। वे भी अन्य किसी भी 'ख' श्रेणी के राज्यों के राजप्रमुखों की तरह राजप्रमुख हैं। उनके पद त्यागने से सुरक्षा परिषद् में भी हमारा पक्ष कमजोर होगा। इसलिए इस निर्णय पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। यदि राज्य की विभिन्न सांस्कृतिक इकाइयों को आपस में बाँधनेवाला यह सूत्र ही समाप्त हो जाएगा तो भला कोई जम्मू-कश्मीर का पुछल्ला बनकर क्यों रहेगा?'' 304 और इसी दिन पं. नेहरू ने कर्णसिंह को लिखा—''प्रजा परिषद् के लोगों को गलत बात गलत तरीके से कहने की आदत है। वे सदा अल्टीमेटम देते हैं। यदि अमेरिका या इंग्लैंड जैसी बड़ी शक्तियों ने भी मेरी सरकार को ऐसे संबोधित किया होता तो उनको हमारा उत्तर बहुत ही कठोर भाषा में होता। प्रजा परिषद् को अपनी हैसियत का इतना गुमान है कि वे समझते हैं कि वे हमें अपनी शर्तें डिक्टेट करवा सकते हैं। मैं

इस प्रकार की भाषा सुनने का आदी नहीं हूँ और न ही मैं स्वयं को इस प्रकार से संबोधित किया जाना पसंद करता हूँ। वे अपनी इन हरकतों से अपना ही नुकसान करेंगे।'' 305 नेहरू अभी भी कश्मीर को अपना पर्यायवाची मान रहे थे।

5.26. प्रजा परिषद् की कार्यकारिणी की बैठक

वर्ष 1952 के अंत तक पूरे जम्मू संभाग में लोगों का रोष ही नहीं बढ़ रहा था बल्कि प्रजा परिषद् पर दबाव भी बनना प्रारंभ हो गया था कि यदि सरकार उचित शिकायतों की ओर भी ध्यान नहीं दे रही है तो जनांदोलन छेड़ा जाए। कर्ण सिंह से निर्वाचित प्रधान के प्रश्न पर श्रीनगर में लंबी बातचीत के बाद 25 सितंबर की रात्रि को जम्मू में प्रजा परिषद् की पहली बैठक हुई। ''पं. प्रेमनाथ डोगरा ने युवराज से हुई बातचीत का खुलासा किया और बताया कि प्रजा परिषद् ने युवराज को सदरे-रियासत का पद न स्वीकारने की सलाह दी है। इस बात पर दु:ख व्यक्त किया गया कि सरकार कोई भी निर्णय करने से पहले प्रजा परिषद् को विश्वास में नहीं लेती है। प्रेमनाथ डोगरा को इन परिस्थितियों में आगे की कार्यवाही निर्धारित करने के लिए अधिकृत किया गया। वे दिल्ली जाकर निर्वाचित प्रधान के प्रश्न पर भारत सरकार से बातचीत करेंगे।'' 306

इसी से संकेत मिलना प्रारंभ हो गया था कि परिषद् आंदोलन चलाने के बारे में विचार कर रही है। इसी की पूर्व तैयारी की दिशा में ही जनमत को जानने के लिए परिषद् के संगठन मंत्रियों की महत्त्वपूर्ण बैठक 29 सितंबर की रात्रि को जम्मू में प्रेमनाथ डोगरा की अध्यक्षता में हुई। ''संगठन मंत्रियों के अनुसार, अगस्त में हुए जम्मू अधिवेशन को बीते भी दो मास हो गए हैं। आम जनता में इस बात को लेकर असंतोष बढ़ रहा है कि अभी तक आंदोलन प्रारंभ क्यों नहीं किया गया?'' 307

बैठक के बाद प्रेमनाथ डोगरा ने एक प्रेस वक्तव्य जारी किया। उसके अनुसार, ''जिस प्रकार अन्य 'ख' श्रेणी के राज्यों में राजप्रमुख विद्यमान हैं, उसी प्रकार जम्मू-कश्मीर में भी व्यवस्था रहनी चाहिए। यदि राज्याध्यक्ष को बनाने-हटाने का अधिकार जम्मू-कश्मीर विधानसभा को दे दिया गया तो इसका अर्थ रियासत को नेशनल कॉन्फ्रेंस के हवाले कर देना होगा। राज्याध्यक्ष के लिए 'सदरे-रियासत' शब्द भी अनुचित है। इसका अंग्रेजी अनुवाद 'प्रेसीडेंट' होता है। इसका अर्थ हुआ कि भारत गणतंत्र में दो प्रधान होंगे। राज्याध्यक्ष के लिए जिस प्रकार चुनाव का प्रावधान प्रस्तावित है, उसका अर्थ होगा कि राज्याध्यक्ष स्थानीय राजनीति और शासक दल का मोहरा बनकर रह जाएगा। जम्मू-कश्मीर संविधान सभा को राज्याध्यक्ष चुनने का न तो विधिसम्मत अधिकार है और न ही नैतिक अधिकार। संविधान सभा महाराजा की शक्तियों से ही अस्तित्व में आई है। अधिमिलन पत्र महाराजा हरि सिंह ने निष्पादित किया था। उसका चरित्र कोई एक पक्ष नहीं बदल सकता। जब तक हैदराबाद समेत अन्य राज्यों में राज प्रमुख कायम हैं तब तक महाराजा को हटाना देशहित में नहीं होगा।'' 308

5.27. प्रेमनाथ डोगरा का देशभर में प्रवास

प्रजा परिषद् आंदोलन शुरू करने से पहले अपना पक्ष देश की जनता के सामने भी रखना चाहती थी, क्योंकि अपने प्रचार माध्यमों के बलबूते भारत सरकार और जम्मू-कश्मीर सरकार प्रजा परिषद् व उसकी माँगों के बारे में देश भर में नकारात्मक चित्र प्रस्तुत कर रही थी। नेहरू शेख अब्दुल्ला को सारे देश में घुमा रहे थे और शेख शेष भारत में

उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग कर रहे थे, जो श्रोताओं के मनोभावों के अनुकूल थी। इसलिए प्रजा परिषद् ने आंदोलन करने से पहले निर्णय किया कि नेशनल कॉन्फ्रेंस के अध्यक्ष शेख अब्दुल्ला के प्रचार का उत्तर देने के लिए प्रजा परिषद् के अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा भी देश का दौरा करें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 29 सितंबर की संगठन मंत्रियों की बैठक के तुरंत बाद वे देश भर के प्रवास पर निकले। परिषद् के कुछ अन्य वरिष्ठ नेता भी देश के कुछ क्षेत्रों में गए।

5 अक्तूबर को पुणे में उन्होंने संवाददाताओं से बात करते हुए कहा कि ''राज्य के लोग, खासकर जम्मू व लद्दाख के लोग, रियासत का भारत से पूर्ण एकीकरण चाहते हैं और शेख की स्वतंत्र कश्मीर की अवधारणा के खिलाफ हैं। शेख को राज्य की सत्ता किसी लोकतांत्रिक प्रक्रिया से नहीं बल्कि नेहरू की कृपा से प्राप्त हुई है। लेकिन वे राज्य और शेष भारत के सदियों पुराने रिश्तों का संवर्धन करने की बजाय उन्हें तोड़ने का काम कर रहे हैं। अलग प्रधान, अलग संविधान और अलग निशान—ये सभी संकेत अलग कश्मीर की ओर इशारा करते हैं। डोगरा के अनुसार, पाकिस्तान का मुकाबला करने के लिए शेख की भूमिका से कोई इनकार नहीं कर रहा; लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि राज्य में नागरिक स्वतंत्रता को निलंबित कर दिया जाए। इसका यह अर्थ भी नहीं कि भारत के साथ पूर्ण एकीकरण चाहनेवाले जम्मू व लद्दाख को शेख के पक्ष में जाने के लिए विवश किया जाए। भारत सरकार शेख के मोह में अंधी होकर राज्य में यथार्थ से मुँह मोड़ रही है। सरकार एक ओर तो कह रही है कि जम्मू-कश्मीर का मामला सुरक्षा परिषद् में है, इसलिए रियासत में ऐसा कुछ नहीं किया जा सकता जिससे बुनियादी परिवर्तन हो, क्योंकि इससे भारत का पक्ष कमजोर होगा; लेकिन दूसरी ओर स्वयं ही यह परिवर्तन कर रही है। परिषद् इसीलिए राज्य में निर्वाचित प्रधान का विरोध कर रही है, ताकि भारत का पक्ष कमजोर न हो। दूसरे विधानसभा द्वारा चुना जानेवाला राज्य का प्रधान शासकीय दल का पिट्ठू बनकर रह जाएगा। उन्होंने राजशाही पर परिषद् की स्थिति स्पष्ट करते हुए बताया कि हम राजशाही के पक्ष में नहीं हैं। लेकिन अन्य राज्यों में भी राजप्रमुख हैं, उनमें से किसी को नहीं हटाया जा रहा। शेख अब्दुल्ला को खुश करने के लिए केवल महाराजा हरि सिंह को हटाया जा रहा है। परिषद् इस तुष्टीकरण का विरोध कर रही है। प्रजा परिषद् पर लगाए जा रहे सांप्रदायिकता के आरोपों के उत्तर में डोगरा ने बताया कि हजारों मुसलमान परिषद् के सदस्य हैं। राज्य में प्रजा परिषद् ही एकमात्र ऐसा राजनैतिक दल है, जो सांविधानिक ढंग से राज्य का भारत के साथ एकीकरण चाहता है। उनके अनुसार जनमत-संग्रह की बात करना देश व राज्य के लिए घातक है। प्रजा परिषद् को इस बात की भी शिकायत है कि राज्य सरकार रियासत के ही एक हिस्से से दूसरे हिस्से में विस्थापित होकर आए विस्थापितों को राज्य से बाहर कर रही है और देश के दूसरे हिस्सों में बसा रही है।'' [309]

अगले दिन डोगरा महाराष्ट्र और कर्नाटक की सीमा के नगर सोलापुर पहुँचे। वहाँ भी उन्होंने दोहराया कि प्रजा परिषद् राज्य का पूर्ण एकीकरण चाहती है, जबकि शेख सीमित एकीकरण के पक्ष में हैं। उन्होंने कहा कि भारत सरकार को संयुक्त राष्ट्र संघ से अपनी शिकायत वापस ले लेनी चाहिए, क्योंकि राज्य के लोगों को अब यह विश्वास नहीं है कि संघ उनसे न्याय करेगा।[310] 10 अक्तूबर को डोगरा चेन्नई पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक बार फिर प्रजा परिषद् का पक्ष दोहराया। उन्होंने जनमत-संग्रह का विरोध करते हुए कहा कि ''यदि इसे करवाने की नौबत आ ही जाए तो यह क्षेत्रीय आधार पर करवाया जाना चाहिए। जब सारे देश में से राजप्रमुख हटाए जाएँ तो जम्मू-कश्मीर के महाराजा को भी हटा दिया जाए, परिषद् इसका समर्थन करेगी। शेख का राज्य के बारे में गणतंत्र के

भीतर गणतंत्र का निर्णय तो भारत की प्रभुसत्ता को चुनौती है और यह संविधान की मूल आत्मा के विपरीत है।'' [311] 16 अक्तूबर को उन्होंने नागपुर में कहा कि भारत का संविधान राज्य में भी पूरी तरह लागू हो और राष्ट्रपति को जो शक्तियाँ सारे देश में हैं, वे ही जम्मू-कश्मीर में भी होनी चाहिए। नागपुर में ही उन्होंने इन माँगों को लेकर राज्य में शांतिपूर्ण आंदोलन करने की बात पत्रकारों से कही।[312] दक्षिण भारत के अपने प्रवास से प्रेमनाथ डोगरा 19 अक्तूबर को दिल्ली पहुँचे और 20 अक्तूबर को पत्रकारों से बातचीत में उन्होंने कहा कि राज्य के नए झंडे को फहराते हुए हम जम्मू के लोग चुपचाप नहीं देखते रहेंगे। जम्मू व लद्दाख का तो भारत के साथ पूर्ण एकीकरण कर देना चाहिए। यदि कश्मीर के लोग कश्मीर का सीमित एकीकरण चाहते हैं तो इस पर विचार हो सकता है। राज्य में एक दल के निरंकुश शासन को दूर करने के लिए आंदोलन के अलावा कोई रास्ता बचा नहीं है। जो मुद्दे परिषद् ने उठाए हैं, उनपर निर्णय हो जाने से राज्य में अनिश्चय की स्थिति भी समाप्त हो जाएगी।[313]

दिल्ली से वापस जम्मू आने पर प्रेमनाथ डोगरा ने प्रजा परिषद् के प्रमुख कार्यकर्ताओं से भावी आंदोलन को देश में मिल सकनेवाले समर्थन की संभावनाओं पर चर्चा करने के पश्चात् प्रेस वार्त्ता में बताया कि मेरी राय में दक्षिण भारत में आम लोग प्रजा परिषद् के स्टैंड को लेकर सहमत हैं। उन्होंने कहा कि प्रजा परिषद् राज्य के ही अन्य राजनैतिक दलों से शांतिपूर्ण सत्याग्रह के विषय में बातचीत शुरू करेगी।[314] इसके बाद वे डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी से मिलने के लिए जालंधर चले गए। 9 नवंबर को जालंधर में डॉ. मुकर्जी और डोगरा ने प्रेस वार्त्ता की। डोगरा ने बताया कि अगले सप्ताह ही प्रजा परिषद् की कार्यकारिणी की बैठक की जा रही है जिसमें रियासत में अलग झंडे और अलग सदरे-रियासत व अन्य मुद्दों पर शांतिपूर्ण सत्याग्रह शुरू करने पर विचार किया जाएगा। इस पर डॉ. मुकर्जी ने जोड़ा कि यदि प्रजा परिषद् सत्याग्रह शुरू करती है तो जनसंघ उसको ध्यान में रखते हुए अपना कार्यक्रम निश्चित करेगी।[315] उधर कलकत्ता में पं. माखनलाल ने कहा, ''प्रजा परिषद् तब तक चैन से नहीं बैठेगी जब तक रियासत का भारत में पूर्ण अधिमिलन नहीं हो जाता; जब तक हरि पर्वत और बाहु किले पर तिरंगा नहीं फहराता।'' उन्होंने मेरठ में कहा, ''यदि 4 करोड़ मुसलमान शांति व सम्मान के साथ भारत में रह सकते हैं तो कश्मीर के 20 लाख मुसलमानों को अपने सम्मान के लिए अलग झंडा चाहिए, इसका कोई कारण नहीं है।'' [316]

लेकिन शेख तो जल्दी में थे। जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा में प्रस्ताव पारित कर, राज्य से राजशाही को समाप्त कर डोगरा राजवंश का अंतिम अध्याय लिखने में शेख ने देर नहीं लगाई। ''वास्तव में शेख ने पहले ही कहना शुरू कर दिया था कि अंतरराष्ट्रीय विधि के अनुसार यदि हम चाहें तो भारत से रिश्ते तोड़ सकते हैं। यह अधिकार केवल हमारे राज्य को है, और किसी को नहीं।'' [317]

प्रजा परिषद् ने संविधान सभा के इस प्रस्ताव का विरोध किया। पार्टी के अध्यक्ष पं. प्रेमनाथ डोगरा के अनुसार —[318]

1. अन्य 'ख' श्रेणी राज्यों की तरह जम्मू-कश्मीर में भी राजप्रमुख का पद रहना चाहिए।
2. विधानसभा की इच्छा से राज्याध्यक्ष की नियुक्ति या बरखास्तगी नहीं होनी चाहिए।

3. इस विधि से निर्वाचित राज्याध्यक्ष विधानसभा की सांप्रदायिक बहुमतवाली पार्टी के हाथों का खिलौना बन जाएगा।
4. यह संविधान सभा वर्तमान शासक से ही अपनी शक्तियाँ ग्रहण करती है। इसे शासक के प्रभुत्व को बदलने का कोई कानूनी, सांविधानिक या नैतिक अधिकार नहीं है।
5. नेशनल कॉन्फ्रेंस का महाराजा के प्रति व्यवहार बदले की भावना और सांप्रदायिक दृष्टिकोण से संचालित रहा है। इसलिए सभा का यह निर्णय राज्य के या भारत के हितों के विपरीत है।
6. जब तक अन्य राज्यों में राजप्रमुख हैं तब एक राज्य के राजप्रमुख से इस प्रकार का पक्षपातपूर्ण व्यवहार बुद्धिमत्ता नहीं है।

राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद तक ने इस प्रस्ताव की संविधान-सम्मतता पर शंका जाहिर की। कई मास यह प्रस्ताव बहस का विषय बनकर लंबित रहा। लेकिन नेहरू इसे लागू करवाने की जल्दी में थे। 14 नवंबर को युवराज कर्ण सिंह सदर-ए-रियासत चुने गए और उसी दिन प्रजा परिषद् ने संघर्ष का ऐलान कर दिया। महाराजा हरि सिंह का शासन समाप्त हुआ। 106 वर्ष का डोगरा राजवंश अस्त हो गया और इसे अस्त करने के अंतिम अनुष्ठान में पुरोहित की भूमिका निभाई वंश के ही इकलौते चिराग कर्ण सिंह ने, जिसकी चाहत में महाराजा हरि सिंह ने चौथा विवाह करवाया और अनगिनत अनुष्ठान भी किए थे।

❑

6.

बज उठी रणभेरी

6.1. प्रजा परिषद् का सत्याग्रह

14 नवंबर, 1952 का दिन राज्य के इतिहास में अविस्मरणीय रहेगा। इसी दिन प्रजा परिषद् ने लोकतंत्र की रक्षा के लिए सत्याग्रह का शंखनाद किया था और जम्मू धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में परिवर्तित हो गया था। शेख अब्दुल्ला जो कर रहे थे, वह तो लोगों की समझ में आ रहा था; लेकिन कर्ण सिंह जो कर रहे थे, उससे लोगों की भावनाएँ आहत हुई थीं। इसलिए नहीं कि जम्मू या राज्य के लोग महाराजा हरि सिंह के साम्राज्य के लिए लड़ना चाहते थे, इसलिए भी नहीं कि लोग महाराजा को ही सांविधानिक मुखिया देखना चाहते थे। यदि ऐसा होता फिर तो विवाद का कोई कारण था ही नहीं, क्योंकि शेख भी तो सांविधानिक मुखिया युवराज कर्ण सिंह को ही बना रहे थे। यही तो राजवंशों की परंपरा थी। वास्तव में शेख इस प्रतीकात्मक लड़ाई की आड़ में भारतीय संविधान में सामान्य नागरिकों को दिया गया लोकतंत्र राज्य में आने से रोक रहे थे और जब प्रदेश की जनता ने इस तानाशाही के खिलाफ मोर्चा खोला तो कर्ण सिंह, शेख अब्दुल्ला व नेहरू की कतार में खड़े पाया। लेकिन अब मोर्चाबंदी हो चुकी थी।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने कभी लिखा था—

'याचना नहीं अब रण होगा'
जीवन जय था कि मरण होगा।

प्रजा परिषद् ने उसी भीषण संग्राम की रणभेरी बजा दी। राजशाही का युग समाप्त हो गया। अब लोकतंत्र का युग है। प्रजा परिषद् उसी लोकतंत्र के लिए लड़ रही थी, क्योंकि शेख अब्दुल्ला जम्मू व लद्दाख के लोगों को लोकतांत्रिक अधिकार देने के लिए तैयार नहीं थे और नेहरू की दिल्ली में शेख से हुई वार्त्ता एक ढीले-ढाले परिसंघ की ही स्थापना कर रही थी। सरकार ने आंदोलन का मुकाबला करने के लिए पहले ही जम्मू-कश्मीर सुरक्षा नियमों की धारा 50 के अंतर्गत कहीं भी प्रदर्शन, जलसा, जुलूस, सभा-सम्मेलन को प्रतिबंधित कर दिया था।

सभी जिला और तहसील मुख्यालयों में सत्याग्रह कर गिरफ्तारी देने का क्रम चालू हो गया। पूरे जम्मू में एक ही नारा गूँजने लगा—

''एक देश में दो विधान, दो प्रधान, दो निशान—नहीं चलेंगे, नहीं चलेंगे।''

17 नवंबर को कर्ण सिंह ने निर्वाचित सदर-ए-रियासत पद की शपथ ग्रहण की। श्रीनगर में कर्ण सिंह का अभिनंदन हुआ। ''उनके पोलो ग्राउंड पहुँचने पर नेशनल मिलिशिया नें गार्ड ऑफ ऑनर दिया। तीन फायर कर स्वागत किया गया।'' [319] नेहरू ने अपने इस टाइगर को बधाई दी, ''जम्मू-कश्मीर की जनता ने तुम्हें सदर-ए-रियासत चुनकर जो सम्मान दिया है, उसके लिए मैं तुम्हें बधाई देता हूँ।'' [320] लेकिन कर्ण सिंह स्वयं ही जानते थे कि वे क्या कर रहे हैं।

''मुझे एहसास था कि इस नए पद को स्वीकारने के लिए मेरे पिता मुझे आसानी से माफ नहीं करेंगे। मैंने महसूस किया कि शेख हमारे परिवार के कट्टर शत्रु हैं और यह पद स्वीकार करके मैंने खुद को एक तरह से उनके रहमो-

करम पर छोड़ दिया है। मैं अपने लोगों, जम्मू के डोगराओं की प्रतिक्रिया भी जानता था।'' 321 टाइगर के ये अपने लोग आज तक हर सुख में उसके साथ खड़े रहे थे, लेकिन आज जब पहली बार अपने लोगों को टाइगर की जरूरत पड़ी तो वे शेख अब्दुल्ला के साथ खड़े थे। प्रजा परिषद् ने टाइगर के सदर-ए-रियासत बनने के इस दिन को काला दिन मनाया और जम्मू में लोगों से उस दिन पूर्ण बंद का आह्वान किया। लेकिन असली परीक्षा तो जम्मू के बाहु दुर्ग और जम्मू सचिवालय पर होनेवाली थी। सरकार ने घोषणा कर रखी थी कि सदर-ए-रियासत पद पर राज्याध्यक्ष के सुशोभित होते ही बाहु किला और जम्मू सचिवालय पर हल के निशानवाला लाल रंग का नया राज्य ध्वज फहराया जाएगा। प्रजा परिषद् ने घोषणा कर रखी थी कि इसका हर हालत में विरोध किया जाएगा। बाहु दुर्ग पर पुलिस ने भारी बंदोबस्त किया हुआ था। प्रजा परिषद् के कार्यकर्ताओं का वहाँ किसी हालत में भी पहुँचना कठिन था। लेकिन परिषद् के कुछ कार्यकर्ता तवी नदी को तैरकर पार करते हुए बाहु दुर्ग पर पहुँचने में कामयाब हो ही गए। भारी पुलिस के रहते उनके लिए बाहु दुर्ग से राज्य का नया फहराया गया ध्वज उतारना तो कठिन था, लेकिन वहाँ उनका पहुँच जाना ही एक प्रकार से विजय थी। पर तमाम आकांक्षाओं के बावजूद सरकार जम्मू सचिवालय पर झंडा नहीं फहरा सकी।

''संपूर्ण नगर में हड़ताल रही। उस दिन नए विधान, नए प्रधान और नए निशान का विरोध करते हुए जम्मू की जनता ने प्रतिबंधों को तोड़कर एक विशाल जुलूस निकाला, जो अंत में एक सार्वजनिक सभा में परिवर्तित हो गया। जुलूस में जम्मू नगर तथा दूर-दूर के ग्रामों से आई हुई जनता बहुत बड़ी संख्या में सम्मिलित थी। नारों से गगन मंडल गूँज रहा था। नगर में कदम-कदम पर सुरक्षा के लिए सिपाही तैनात थे, जिनकी बड़ी संख्या श्रीनगर से बुलाई गई थी। परंतु प्रजा परिषद् का समस्त आयोजन बहुत ही शांतिपूर्ण रहा।'' 322 कठुआ, ऊधमपुर और अन्य अनेक नगरों में पूरा बंद रहा। लोगों ने अपने घरों पर तिरंगे लहराए।323 प्रजा परिषद् ने प्रतीक रूप में भावी सत्याग्रह की सूचना दे दी। ''प्रजा परिषद् के दो सत्याग्रही एक प्रदर्शन का नेतृत्व करते हुए जम्मू के मुख्य बाजारों में घूमे। सत्याग्रहियों के गले में फूल मालाएँ थीं। सत्याग्रही नारा लगा रहे थे—हम भारतीय संविधान चाहते हैं। राज्य में अलग झंडा नहीं चलेगा। पुलिस ने प्रदर्शन में कोई हस्तक्षेप नहीं किया और प्रदर्शन शांतिपूर्वक गुजर गया।'' 324 जम्मू में प्रतिदिन प्रदर्शन होने लगे। 24 नवंबर को राज्य की राजधानी को परंपरा के अनुसार जम्मू जाना था। कर्ण सिंह भी सदरे-रियासत बनने के बाद पहली बार जम्मू आ रहे थे। प्रजा परिषद् ने शहर में मुकम्मल बहिष्कार की घोषणा की थी। लोगों ने नेशनल कॉन्फ्रेंस द्वारा उनके स्वागत में लगाए गए स्वागत द्वार तोड़ दिए। आगे कर्ण सिंह के अपने शब्दों में, ''24 नवंबर को इंडियन एयरलाइंस के विमान से मैं जम्मू पहुँचा। पहले जब भी, अमेरिका से स्वदेश लौटने पर और फिर विवाह के बाद, मैं जम्मू पहुँचा तो जम्मू की जनता ने मेरा बहुत ही आत्मीयतापूर्ण और उत्साहपूर्ण स्वागत किया था। लेकिन इस बार जनता के तेवर पूरी तरह बदले हुए थे। कटाक्ष भरे आक्रामक नारे लग रहे थे। हवाई अड्डे से महल के दरवाजे तक पूरा शहर काले झंडों के समुद्र से भरा पड़ा था। मैं खुली जीप में था और मेरे साथ बक्शी गुलाम मोहम्मद भी थे। हालाँकि नेशनल कॉन्फ्रेंस ने स्वागत जैसा कुछ करने की कोशिश की, लेकिन वह डोगरा जनता के प्रखर विरोध में दबकर रह गया।'' 325 24 नवंबर को जम्मू में परिषद् ने जुलूस निकाला, जिसका नेतृत्व प्रेमनाथ डोगरा कर रहे थे। उन्हें किसी भी क्षण गिरफ्तार किया जा सकता

था। इसलिए उन्होंने महासचिव दुर्गादास वर्मा को सत्याग्रह का प्रभारी बना दिया। डोगरा ने कहा, ''हम 10 लाख बार स्पष्ट करते हैं कि प्रजा परिषद् की माँग राज्य के भारत में पूर्ण एकीकरण की है। जो कदम इस दिशा में बढ़ता है, हम उसके साथ हैं। जो इस माँग के खिलाफ हैं, हम भी उनके खिलाफ हैं। हमें पूरा विश्वास है कि कश्मीर के लोग हमारे साथ हैं।'' [326] प्रजा परिषद् के कार्यकर्ताओं ने शहर में दो और जुलूस निकाले। चार-चार सत्याग्रही आगे चल रहे थे। उनके हाथों में तिरंगा और डॉ. राजेंद्र प्रसाद का चित्र था। मुख्य बाजारों में से नारे लगाते हुए प्रदर्शनकारी वापस हुए।[327] लेकिन जम्मू के संपूर्ण विरोध के बावजूद शेख अब्दुल्ला अपने रुख पर अड़े हुए थे। जम्मू में राज्य के सचिवालय पर झंडा फहराने का प्रश्न था। नया राज्य ध्वज निश्चित हो गया था। वह एक प्रकार से नेशनल कॉन्फ्रेंस का ही झंडा था। नए सदरे-रियासत ने सुझाव दिया कि नए राज्य ध्वज के साथ राष्ट्रीय ध्वज भी फहराना चाहिए। ''लेकिन शेख ने बड़ी सख्ती से उस सुझाव को ठुकरा दिया।'' [328]

26 नवंबर, 1952 को जम्मू में एक विशाल जनसभा को संबोधित करते हुए पं. प्रेमनाथ डोगरा ने इस आंदोलन में पहली गिरफ्तारी दी। डोगरा की आयु उस समय 68 वर्ष की थी। इसलिए उन्हें इस बात की भी आशंका थी कि मैं शेख की जेल से जीवित बचकर आऊँगा भी या नहीं। इसलिए उन्होंने जेल जाने के पूर्व मृत्यु के बाद किए जानेवाले सारे संस्कार भी कर लिये थे। यहाँ तक कि गोदान भी कर दिया था। अपनी संपत्ति भी प्रजा परिषद् को दान कर दी।[329] पं. प्रेमनाथ डोगरा को उनके चौदह साथियों समेत गिरफ्तार कर लिया गया।[330] डोगरा की गिरफ्तारी पर पुलिस ने भीड़ पर लाठी चार्ज किया, जिससे 95 लोग घायल हो गए। जम्मू की पुरानी मंडी में प्रजा परिषद् के जलसे पर पुलिस ने लाठी चार्ज किया। परिषद् के जम्मू नगर अध्यक्ष ओम प्रकाश मैंगी समेत सात लोग गिरफ्तार किए गए।[331] दुर्गादास वर्मा भूमिगत हो गए। प्रेमनाथ डोगरा पुरानी मंडी के राधाकृष्ण मंदिर के सामने से बंदी बनाए गए थे। कृष्ण का मंदिर नया कुरुक्षेत्र बना था। पूरे भारत में आंदोलन की गूँज सुनाई दे रही थी। जम्मू-कश्मीर को लेकर सारे देश में चिंता थी। लेकिन नेहरू को कोरिया की चिंता खाए जा रही थी। इसी दिन कर्ण सिंह ने नेहरू को लिखा—''कोरिया समस्या को हल करने के लिए हम सभी आपके प्रयासों को अत्यंत प्रशंसा के भाव से देख रहे हैं।'' [332] सत्याग्रह शुरू होते ही प्रजा परिषद् ने स्थान-स्थान पर सत्याग्रह में भाग लेने के इच्छुक लोगों की सूचियाँ बनाने के लिए केंद्र खोल दिए थे। कठुआ जिले में नगरी परोल, खरोट, जंगलोट, बुधी और बटवाल इत्यादि स्थानों पर सत्याग्रह में नाम दर्ज करवानेवालों की भीड़ लगी रहती थी।[333]

6.2. सत्याग्रह को जनसमर्थन

''जिन लोगों को गिरफ्तारी देनी होती थी, उनके गले में हार डाले जाते थे और उनके नेतृत्व में जुलूस निकलता था। हजारों की संख्या में लोग सत्याग्रहियों के पीछे-पीछे नारे लगाते चलते थे। सत्याग्रहियों के हाथों में तिरंगा झंडा और गले में राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद का चित्र होता था। वे हाथ में भारत का संविधान लेकर चलते थे। 'एक देश में दो विधान, दो प्रधान, दो निशान—नहीं चलेंगे, नहीं चलेंगे' का नारा तो था ही, इसके अतिरिक्त धारा 370 तोड़ दो, भारत का संविधान लागू करो। 'प्रजा परिषद् जिंदाबाद' और 'प्रेमनाथ डोगरा जिंदाबाद' के नारे लगाए जाते थे। पुलिस सत्याग्रहियों के गले के हार तोड़कर उन्हें घसीटते हुए थाने ले जाती थी। न तो सत्याग्रही और न ही

प्रदर्शनकारी विरोध करते थे, क्योंकि प्रजा परिषद् ने आंदोलन अहिंसात्मक तरीके से चलाने का निर्णय किया हुआ था। पहली रात थाने में पुलिस सत्याग्रहियों को खाना तक नहीं देती थी। यातनाएँ दी जाती थीं। थानों के आस-पास रहनेवाले लोगों के अनुसार रात भर चीखने-चिल्लाने की आवाजें आती रहती थीं। सर्दी के दिनों में पीटने के बाद ठंडे पानी से नहलाया जाता था। अखनूर व रामवन में तो ऐसी घटनाएँ काफी संख्या में हुई। कंडी के इलाके में कड़ाके की सर्दी में जबरदस्ती रात भर के ठंडे पानी में उन सत्याग्रहियों को नहलाया जाता था। जेल भेजने से पहले पंद्रह-पंद्रह दिन का रिमांड लेकर उन लोगों को हवालात में रखा जाता था। वहाँ रात को सोने के लिए कोई कपड़ा भी नहीं होता था। दस आना रोज का खाना मिलता था। हर थाने के अंदर दो-तीन कश्मीरी मुसलमान अधिकारी रहते थे, ताकि जम्मू का कोई पुलिसकर्मी सत्याग्रहियों से अच्छा व्यवहार न कर सके।'' [334] इधर शेख की सरकार सत्याग्रहियों पर लाठियाँ बरसा रही थी, उधर शेख ''प्रजा परिषद् आंदोलन को कुछ गिने-चुने सामंतों व जमींदारों और परजीवियों का विद्रोह बताते हुए घूम रहे थे।'' [335]

सांबा में 27 नवंबर को डोगरी भाषा के प्रख्यात कवि रघुनाथ सिंह ठाकुर के नेतृत्व में लोगों ने प्रदर्शन किया। रघुनाथ सिंह राज्य सरकार के खाद्य निदेशक के बड़े भाई थे।[336] पुलिस इस प्रदर्शन को रोकना चाहती थी और रघुनाथ सिंह को गिरफ्तार करना चाहती थी। जन-रोष बढ़ता जा रहा था। लोगों ने नेशनल कॉन्फ्रेंस का झंडा जला दिया। पुलिस और प्रदर्शनकारियों में झड़पें होने लगीं। पुलिस रघुनाथ सिंह को पकड़ नहीं पाई। वे गायब हो गए। प्रदर्शनकारी नजदीक के टीले पर चढ़ गए। पुलिस ने उनपर गोली चला दी। अनेक लोग घायल हुए। लोगों की पत्थरबाजी से कुछ पुलिसवाले भी घायल हुए।

''28 नवंबर को ऊधमपुर में भी प्रदर्शनकारियों पर पुलिस ने लाठी चार्ज किया।'' [337]
शेख अब्दुल्ला ऐसा समझ रहे थे कि राज्य के लोगों के गुस्से का एक कारण महाराजा हरि सिंह को राज्य से बाहर बंबई जाने के लिए विवश करना भी था। शायद इसी को ध्यान में रखते हुए स्पष्टीकरण दिया गया कि ''न तो भारत सरकार ने और न ही राज्य सरकार ने महाराजा हरि सिंह के राज्य प्रवेश को प्रतिबंधित किया है।'' [338]लेकिन प्रजा परिषद् का मुद्दा हरि सिंह का राज्य प्रवेश नहीं था, बल्कि राजवंश की समाप्ति पर भारतीय संविधान लागू करवाना था।
देखते-देखते सप्ताह भर के भीतर ही प्रजा परिषद् का आंदोलन राज्य भर में सुदूर गाँवों तक में फैलने लगा। 'पाञ्चजन्य' ने संपादकीय टिप्पणी में सत्याग्रह के समर्थन का आह्वान किया—''सत्याग्रह जम्मू में प्रारंभ हुआ है, परंतु यह लड़ाई केवल जम्मू की नहीं बल्कि पूरे भारत की है। अत: भारत की जनता और सभी दलों के लिए आवश्यक होगा कि वे जम्मू के अपने बंधुओं के साथ मिलकर खड़े हों।'' [339] 'ट्रिब्यून' जो हफ्ता भर पहले तक लिख रहा था कि आंदोलन को जन-समर्थन प्राप्त नहीं है, उसने ही सप्ताह भर बाद शीर्षक दिया—'फैल रहा है आंदोलन।' [340] मानो प्रदेश में स्थान-स्थान पर सरकारी भवनों पर तिरंगा फहराने की होड़-सी लग गई हो।

यहाँ तक कि जम्मू संभाग के कुछ लोग, जो नेशनल कॉन्फ्रेंस से जुड़ गए थे, जब उन्होंने शेख सरकार की जम्मू-विरोधी नीतियों को देखा तो वे भी आंदोलन से जुड़ने लगे थे। चनैनी में तो नेशनल कॉन्फ्रेंरस की शाखा ने

पहले ही शेख अब्दुल्ला सरकार से बगावत कर रखी थी। चनैनी जम्मू में एक छोटी जागीर थी। जिन दिनों नेशनल कॉन्फ्रेंस ने कश्मीर में डोगरा राज के खिलाफ आंदोलन छेड़ा था, उन दिनों चनैनी भी उसमें शामिल हुआ था। लेकिन नेशनल कॉन्फ्रेंस द्वारा सत्ता सँभालने के बाद शेख सरकार ने चनैनी का सांप्रदायिक आधार पर विभाजन करके उसका अधिकांश हिस्सा नए बनाए मुसलिम बहुसंख्यक जिला डोडा में शामिल कर दिया। इसका वहाँ के लोगों ने विरोध किया। विरोध करनेवालों में भी नेशनल कॉन्फ्रेंस के लोग ही थे, क्योंकि वहाँ 1946 से ही पार्टी की सशक्त शाखा थी। शेख सरकार ने चनैनी आंदोलन को बुरी तरह कुचला।

शेख अब्दुल्ला ने अपने उप-प्रधानमंत्री बक्शी गुलाम मोहम्मद को जम्मू संभाग का प्रभारी बनाया हुआ था। आंदोलन के कारण जम्मू के लोगों का गुस्सा भड़क रहा था। नेशनल कॉन्फ्रेंरस का इस क्षेत्र में कोई आधार नहीं था, लेकिन सत्ता के बल पर कुछ लोग इससे जुड़ गए थे। बख्शी सत्ता के बल पर तो आंदोलन को कुचलने का प्रयास कर ही रहे थे, लेकिन उनका यह भी प्रयास था कि राजनैतिक धरातल पर नेशनल कॉन्फ्रेंरस प्रजा परिषद् के आंदोलन का मुकाबला करें। लेकिन उनके दुर्भाग्य से जम्मू के लोगों को, वे चाहे नेशनल कॉन्फ्रेंरस में थे या कहीं-कहीं समाजवादी दल से भी जुड़े हुए थे, नेशनल कॉन्फ्रेंरस की सीमित अधिमिलन की विचारधारा अनुकूल नहीं पड़ रही थी। बख्शी यह विचारधारा अपनी पार्टी के जम्मू के कार्यकर्ताओं के गले उतारने की कोशिश कर रहे थे। वे अपने जम्मू के कार्यकर्ताओं यह समझाने का प्रयास कर रहे थे कि जम्मू संभाग का हित भी रियासत के सीमित अधिमिलन में ही है। उन्होंने जम्मू के अपने कार्यकर्ताओं से आग्रह किया कि ''पहले तो वे खुद प्रजा परिषद् आंदोलन के उद्देश्यों को समझने की कोशिश करें, उसके बाद ही आप आम लोगों को अपना पक्ष समझा पाएँगे।'' [341] नेशनल कॉन्फ्रेंरस के कार्यकर्ता आंदोलन के उद्देश्यों को कितना समझे, यह कहना तो मुश्किल है। लेकिन प्रदेश के लोग इन उद्देश्यों को सचमुच समझ गए थे, क्योंकि ''रियासी में लोगों ने थाने पर कब्जा कर वहाँ तिरंगा फहरा दिया। नौशहरा में प्रदर्शनकारियों ने सभी सरकारी भवनों पर तिरंगे फहरा दिए। भद्रवाह में स्वामी राज वकील के नेतृत्व में सत्याग्रहियों ने जुलूस निकाला और कचहरी पर तिरंगा लहराया। भद्रवाह में सत्याग्रह का नेतृत्व ख्वाजा अब्दुल हसन ने किया और कहा कि हम भारत में इसलिए जाना चाहते हैं, क्योंकि यहाँ का संविधान पंथनिरपेक्ष है और उसने देश के 4 करोड़ मुसलमानों को भी मौलिक अधिकार दिए हैं।'' [342] जम्मू तहसील के शामाचक्क गाँव से एक जुलूस प्रारंभ हुआ और कई गाँवों से होता हुआ काहनाचक्क पुलिस थाने पर तिरंगा लहराकर खत्म हुआ। सभी स्थानों पर पुलिस से झड़पें होती रहीं। अनेक स्थानों पर गिरफ्तारियाँ हुईं। ऊधमपुर और रामनगर में तीन-तीन सत्याग्रही गिरफ्तार किए गए।[343]

6.2.1 जम्मू सचिवालय पर फहराया राज्य का नया झंडा

नेशनल कॉन्फ्रेंस और शेख अब्दुल्ला प्रजा परिषद् के बढ़ रहे आंदोलन को सत्ता बल से कुचलना चाहते थे। प्रजा परिषद् के विरोध के कारण अभी तक राज्य की शीतकालीन राजधानी जम्मू में सचिवालय पर राज्य का नया ध्वज, जो नेशनल कॉन्फ्रेंस के ध्वज का ही थोड़े परिवर्तन के साथ प्रतिरूप था, फहराया नहीं जा सका था। सरकार ने अंतत: 1 दिसंबर को सचिवालय पर इसे फहरा दिया।[344] ''लेकिन इसके साथ ही राष्ट्रीय ध्वज फहराने की सदर-ए-रियासत कर्ण सिंह की सलाह नहीं मानी गई।'' [345] जम्मू में और राज्य के अन्य स्थानों पर इसका तीव्र

विरोध हुआ। जम्मू में विरोध करते हुए 13 और ऊधमपुर में 5 सत्याग्रही गिरफ्तार किए गए। ऊधमपुर और जम्मू में स्थिति बिगड़ती जा रही थी। अब यह आंदोलन प्रजा परिषद् का न रहकर जनांदोलन बनता जा रहा था। ''ऊधमपुर में फिर अश्रुगैस के गोले छोड़े गए। जम्मू में 10 और सत्याग्रही गिरफ्तार किए गए। जम्मू से 125 मील दूर किश्तवाड़ में लाठीचार्ज हुआ। कठुआ में औरतों ने जुलूस निकाला। अखनूर में सत्याग्रहियों ने स्कूल में तिरंगा लहराया। बिश्नाह में 5 सत्याग्रही बंदी बनाए गए।'' [346]

6.3. ऊधमपुर में गोलीकांड

2 दिसंबर को ऊधमपुर में लोगों ने एक विशाल प्रदर्शन किया। पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर गोली चला दी। भीड़ में भगदड़ मच गई। 300 लोग घायल हो गए। सरकारी सूत्रों के मुताबिक 56 प्रदर्शनकारी गिरफ्तार किए गए। लेकिन नगर में अफवाह फैल गई कि गोलीबारी में तीन सत्याग्रहियों की मौत हो गई। नेशनल कॉन्फ्रेंस की जनरल कौंसिल के सदस्य लाला जगन्नाथ वकील को भी पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। उधर प्रदेश भर में प्रजा परिषद् के कार्यकर्ताओं की धर-पकड़ व प्रदर्शनों का सिलसिला जारी रहा। जम्मू में पाँच, विश्नाह में सात, सांबा में तीन सत्याग्रही पकड़े गए।[347]

जम्मू-कश्मीर पीपुल्स पार्टी के महासचिव पं. वाचस्पति ने कहा कि, ''सरकार राज्य के भारत में पूर्ण एकीकरण की माँग स्वीकार कर आंदोलन के आधार को ही समाप्त क्यों नहीं कर देती? जब बख्शी गुलाम मोहम्मद को भारतीय संविधान के प्रति इतनी निष्ठा और विश्वास है तो वे उसे राज्य के लिए स्वीकार क्यों नहीं कर लेते? क्या यह हैरानी की बात नहीं कि आज राज्य के किसी भी सरकारी भवन पर राष्ट्रीय ध्वज नहीं फहरा रहा? पूर्ण एकीकरण की माँग जनता की माँग है। यह आरोप लगाने का कोई लाभ नहीं कि प्रजा परिषद् अपनी राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों के लिए इस माँग को मोहरे के तौर पर इस्तेमाल कर रही है।'' [348] पूरे जम्मू संभाग में आंदोलन फैलने लगा। प्रतिदिन सत्याग्रही गिरफ्तारी देने लगे। आंदोलन में पुरुष-औरतों सभी की भागीदारी तो थी ही, मुसलमान भी काफी संख्या में जुड़ने लगे थे। 7 दिसंबर तक आंदोलन के प्रभारी दुर्गादास वर्मा के अनुसार, ''247 सत्याग्रही गिरफ्तार हो चुके थे और इसके अतिरिक्त 175 कार्यकर्ताओं को राज्य पुलिस ने घरों में छापे मारकर पकड़ लिया था।'' [349]

''भद्रवाह में बिना किसी चेतावनी के पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर लाठी चार्ज कर दिया, जिसमें 200 लोग घायल हो गए। ऊधमपुर में बिना किसी उत्तेजना के पुलिस ने अश्रुगैस के गोले छोड़े और लाठियाँ भाँजीं। 100 प्रदर्शनकारियों को पकड़ लिया गया।'' [350]शेख अब्दुल्ला द्वारा रणवीर सिंह पुरा में 10 अप्रैल के भारत की संप्रभुता को चुनौती देनेवाले भाषण के बाद से ही यह नगर एक प्रतीक के रूप में उभर आया था। 11 दिसंबर को रणवीर सिंह पुरा में ही एक जनसभा करने के लिए राज्य के उप-प्रधानमंत्री बक्शी गुलाम मोहम्मद आनेवाले थे। प्रजा परिषद् ने 10 दिसंबर को ही इसके विरोध में एक विशाल जुलूस निकाला।

''गुस्साए लोगों ने नेशनल कॉन्फ्रेंस का झंडा फूँक दिया। अन्य स्थानों पर सत्याग्रह कर रहे सत्याग्रहियों की धर-पकड़ जारी थी। जम्मू से 8 और सांबा से 5 सत्याग्रही पकड़े। सत्याग्रहियों का मनोबल गिराने के लिए सरकार ने एक और तरीका निकाला। 100 सत्याग्रहियों को जम्मू की केंद्रीय जेल से निकालकर श्रीनगर की जेल में स्थानांतरित कर दिया गया। इनमें श्यामलाल शर्मा, रघुनाथ सिंह ठाकुर, कैप्टन दिलीप सिंह और दीनानाथ गंडोतरा

भी शामिल थे।'' [351]

प्रजा परिषद् के आंदोलन को समाज के सभी वर्गों का सहयोग मिल रहा था। 7 दिसंबर को जम्मू की बार एसोसिएशन ने एक प्रस्ताव पारित कर माँग की कि ''भारतीय संविधान के मौलिक अधिकार राज्य के लोगों को भी मिलने चाहिए। उच्चतम न्यायालय का अधिकार क्षेत्र जम्मू-कश्मीर पर भी लागू होना चाहिए।'' [352]

6.4. जवाहरलाल नेहरू का आंदोलन पर मत

वैसे तो नेहरू यत्र-तत्र अपने भाषणों में प्रजा परिषद् के आंदोलन की चर्चा करते ही रहते थे, लेकिन 12 दिसंबर को उन्होंने आंदोलन को लेकर एक लंबा वक्तव्य दिया। उन्होंने कहा कि, ''परिषद् का यह आंदोलन जम्मू-कश्मीर राज्य की सरकार के खिलाफ नहीं है बल्कि यह तो भारत और भारतीय संसद् के खिलाफ है। परिषद् पंजाब व दिल्ली में पैसा और खाद्य सामग्री एकत्रित कर रही है। जम्मू इस आंदोलन का गढ़ है और इसके आधार पर ये लोग सारे देश में यह आंदोलन चलाना चाहते हैं। अमृतसर में अकाली नेता प्रजा परिषद् के पक्ष में उत्तेजक भाषण दे रहे हैं। यह आंदोलन आपत्तिजनक, समाज-विरोधी, प्रतिक्रियावादी और विध्वंसकारी है।'' [353]

''(नेहरू ने) प्रजा परिषद् पर आरोप लगाया कि वे लोग वहाँ सशस्त्र युद्ध छेड़ रहे हैं। सरकार इसे सहन नहीं करेगी।'' [354] जाहिर है, नेहरू के इस प्रकार के वक्तव्यों से पाकिस्तान लाभ उठाने लगा। नेहरू आंदोलन पर विध्वंसकारी होने का आरोप लगा रहे थे, लेकिन समाचार ये मिल रहे थे कि नेशनल कॉन्फ्रेंस सरकारी मदद से जलती में तेल डालने का काम कर रही थी। एक संसद् सदस्य ने नेहरू से स्पष्ट पूछा—क्या जम्मू में सादी वरदी में चार सिपाही पकड़े गए हैं, जिनके पास से पत्थर मिले? क्या ये सरकार के भाड़े के लोग थे, जिन्हें शांति भंग करने के लिए भेजा गया था? नेहरू के पास इसका कोई उत्तर नहीं था। उन्होंने कहा—मुझे नहीं पता।[355] मीडिया ने चुटकी ली—''नेहरू शायद यह समझते हैं कि यदि शेख अब्दुल्ला को रिश्वत में हमने जम्मू पेश ना किया तो अब्दुल्ला हमें छोड़ जाएँगे। इसलिए वे अनिच्छुक जम्मू को शेख को उपहार के रूप में देना चाहते हैं। लेकिन ऐसा करना शायद शेख का भी अपमान करना होगा। वे बिना जम्मू लिये भी हमारा साथ नहीं छोड़ेंगे।'' [356]

6.5. आंदोलन में पहली शहादत

14 दिसंबर को आंदोलन को शुरू हुए एक मास हो गया था। इस दिन छंब के मेलाराम ने इसमें अपनी पहली शहादत दी। रविवार का दिन था। मेलाराम समेत चार सत्याग्रहियों को छंब तहसील के मुख्यालय पर भारत का राष्ट्रीय ध्वज फहराना था। पुलिस ने तहसील भवन को घेरा हुआ था। परिंदा पर न मार सके, ऐसी व्यवस्था। चारों सत्याग्रही हाथ में तिरंगे झंडे लेकर और छाती पर भारत के राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद का चित्र लटकाकर तहसील मुख्यालय की ओर बढ़ रहे थे। पीछे-पीछे हजारों की संख्या में प्रदर्शनकारी चल रहे थे। सत्याग्रही तहसील के अंदर जाकर भवन पर तिरंगा लहराना चाहते थे। उधर पुलिस और मिलिशिया किसी को पास नहीं फटकने दे रही थी। नारों से आसमान फटा जा रहा था। तभी सभी ने देखा कि एक सत्याग्रही मेलाराम हाथ में तिरंगा लेकर भवन की दीवार पर चढ़ गया है। अब वह किसी भी समय तिरंगा फहरा सकता है। पुलिस को सख्त आदेश था, किसी भी स्थिति में कहीं भी राष्ट्रीय ध्वज नहीं फहराना चाहिए। पुलिस ने नीचे से गोली चला दी। मेलाराम हाथ में ही तिरंगा

पकड़े धड़ाम से नीचे जमीन पर आ गिरा। उसने भारत की अखंडता के लिए अपने प्राण न्योछावर कर दिए थे। लोगों के क्रोध का ठिकाना न रहा। इस गोली-चालन में कुछ दूसरे लोगों को भी चोटें आई थीं। प्रदर्शनकारियों ने शहीद के शव को उठा लिया। वे उसे जम्मू की ओर लेकर चल पड़े। सरकार किसी भी मार्ग से शव को जम्मू ले जाने देना नहीं चाहती थी। लुका-छिपी के इस खेल में अंत में जनता को ही जीत मिली। दूसरे दिन सोमवार को सारा जम्मू शहीद के सम्मान में पूरी तरह बंद रहा। मेलाराम की शव यात्रा में 30,000 से भी ज्यादा लोग श्रद्धांजलि देने के लिए शामिल हुए। दाह-संस्कार के बाद चार जत्थों में सत्याग्रहियों ने गिरफ्तारी दी। कारवाँ किसी भी हाल में रुकना नहीं चाहिए। एक दिन पहले ही नेहरू लोकसभा में आंदोलन को भारत-विरोधी बता रहे थे; लेकिन हाथ में तिरंगा और छाती पर डॉ. राजेंद्र प्रसाद का चित्र लगाकर शहादत प्राप्त कर गए मेलाराम ने बता दिया कि आंदोलन भारत की अखंडता के लिए है। शायद मेलाराम की शहादत से नेहरू भी आंदोलन के राष्ट्रवादी स्वरूप को समझ गए थे; लेकिन उन्होंने इसे अपनी झूठी प्रतिष्ठा से जोड़ दिया था। गुप्त रूप से उन्होंने इसी दिन शेख को लिखा —''प्रजा परिषद् के पास इस समय तो अधिकांश लोगों की सहानुभूति है। जम्मू में व्यापक तौर पर कुंठा का भाव दिखाई देता है। प्रजा परिषद् की कुछ शिकायतें उचित हो सकती हैं और कुछ अकारण भी हो सकती हैं। लेकिन वहाँ बड़े स्तर पर असंतोष व्याप्त है। मुझे लगता है कि जम्मू के लोग ऐसा मानते हैं कि राज्य में कश्मीर को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया जा रहा है और उनकी अवहेलना की जा रही है। इतना ही नहीं, उनको बुराई की जड़ बताकर उनकी निंदा भी की जा रही है।'' [357]

राज्य सरकार ने छंब में हुए गोलीकांड की जाँच के लिए एक समिति का गठन कर दिया। प्रजा परिषद् ने इस जाँच समिति का बहिष्कार करने का निर्णय लिया। ''परिषद् की माँग थी कि जाँच राज्य सरकार द्वारा नहीं बल्कि भारत सरकार द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की देखरेख में करवाई जानी चाहिए।'' [358]

6.6. हैदराबाद का कांग्रेस अधिवेशन

प्रजा परिषद् का आंदोलन चल रहा था कि 18-19 दिसंबर को हैदराबाद में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन निश्चित हो गया। इसमें नेशनल कॉन्फ्रेंस के अध्यक्ष शेख अब्दुल्ला भी भाग ले रहे थे। नेहरू कांग्रेस के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों में शेख को आग्रहपूर्वक बुलाते थे, ताकि वे जम्मू-कश्मीर पर नेशनल कॉन्फ्रेंस का पक्ष प्रतिनिधियों के सम्मुख प्रस्तुत कर सकें। शेख अब्दुल्ला ने अब तक के अनुभव से सीख लिया था कि किस स्थान पर किन श्रोताओं के सामने क्या बोलना है। कांग्रेस के कार्यक्रमों में वे राष्ट्रीय भाव को संपुष्ट करनेवाला भाषण ही देते थे। लेकिन उनकी भारत में कथनी और राज्य में करनी के अंतर को जम्मू व लद्दाख के लोग समझ सकते थे। इसलिए प्रजा परिषद् ने निर्णय किया कि कांग्रेस के इस हैदराबाद अधिवेशन में परिषद् के प्रतिनिधि भी जाएँ और राज्य की स्थिति को लेकर दूसरा पक्ष भी प्रतिनिधियों के सामने रखें। यह भी निश्चित था कि कांग्रेस अधिवेशन में प्रजा परिषद् को उस प्रकार अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान नहीं करेगी, जिस प्रकार वह शेख अब्दुल्ला को देगी। इसलिए परिषद् ने अपने आंदोलन की मुख्य माँगों को छपवाकर वहाँ प्रतिनिधियों में बाँटने का निर्णय किया; परंतु नेहरू नहीं चाहते थे कि प्रजा परिषद् जिन राष्ट्रीय हितों के लिए लड़ रही है; उसका देश के दूसरे लोगों को भी पता लगे। कांग्रेस के कार्यकर्ताओं को यह बिलकुल ही पता नहीं लगना चाहिए। नेहरू और शेख अब्दुल्ला मिलकर जम्मू-कश्मीर के साथ जिस ढीले-ढाले परिसंघ की परिकल्पना कर रहे थे, वे चाहते थे कि कांग्रेस के प्रतिनिधि भी

उसी को राष्ट्र-हित मानकर स्वीकार कर लें। लेकिन प्रजा परिषद् जम्मू के लोगों द्वारा चलाए जा रहे आंदोलन की पृष्ठभूमि देश भर से एकत्रित हुए कांग्रेसी प्रतिनिधियों को बताने के लिए हैदराबाद पहुँच चुकी थी। शायद नेहरू को पहले से ही इसकी भनक रही होगी। इसलिए पुलिस चौकस थी। परंतु उस घेराबंदी को तोड़कर रामनाथ बलगोत्रा के नेतृत्व में प्रजा परिषद् के कुछ कार्यकर्ता छद्म वेश में पंडाल में पहुँच ही गए। देखते-ही-देखते पंडाल के सभी प्रतिनिधियों के हाथ में प्रजा परिषद् के पत्रक थे। पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया और अपने साथ थाने ले जाने लगे। पुलिस के दुर्भाग्य से आगे चौराहे पर लाल बत्ती आ गई और जैसे ही ट्रैफिक रुका, बलगोत्रा पुलिस को चकमा देकर भाग निकले। पुलिस ने उनका गिरफ्तारी वारंट निकाल दिया। लेकिन प्रजा परिषद् के ये कार्यकर्ता जिस उद्देश्य को लेकर हैदराबाद आए थे वह पूरा हो गया था। शेख अब्दुल्ला के भाषण के प्रभाव को ही इस पत्रक ने समाप्त नहीं किया बल्कि शेख की असलियत भी प्रतिनिधियों के सामने आ गई थी। जवाहरलाल नेहरू इस परिवर्तन को भाँप गए थे, इसलिए उन्होंने अपने भाषण में न केवल राज्य के लोगों की माँगों की चर्चा ही की बल्कि उन्हें उचित भी ठहराया। बलगोत्रा के वारंट को मद्रास उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई। बाद में उच्च न्यायालय ने वह वारंट निरस्त कर दिया।

अधिवेशन में पं. नेहरू ने इस बात को स्वीकार किया कि जम्मू के लोगों की जायज शिकायतें हैं और वे दूर होनी चाहिए। इससे जम्मू-कश्मीर राज्य में राष्ट्रवादी शक्तियों में आशा जगी कि नेहरूजी जम्मू क्षेत्र के लोगों की सार-सुध लेने के लिए तैयार हो गए हैं। इससे यह भी आशा जगी कि अब प्रधानमंत्री दोनों पक्षों की बात सुनेंगे और समझौते का कोई रास्ता निकल आएगा। इससे लगने लगा कि सरकार ने सकारात्मक रवैया अपना लिया है। लेकिन शेख अब्दुल्ला ने ऐसी किसी भी शिकायतों से इनकार कर दिया। प्रजा परिषद् के महासचिव और आंदोलन के प्रभारी दुर्गादासवर्मा का फरवरी 1953 के प्रथम सप्ताह में दिया गया बयान इसकी ओर संकेत करता है। वर्मा के अनुसार, ''जिस प्रकार बहुत स्पष्ट शब्दों में पं. जवाहरलाल नेहरू ने यह स्वीकार किया है कि जम्मू की सचमुच उचित शिकायतें हैं, उससे आशा बँधती है कि उनके निराकरण का भी प्रयास होगा। जब से शेख अब्दुल्ला ने सत्ता सँभाली है तब से जम्मू के लोग आर्थिक और राजनैतिक संकट झेल रहे हैं। रियासत के भारत में पूर्ण अधिमिलन का रास्ता साफ हो जाए, इसलिए जम्मू के लोगों ने नेशनल कॉन्फ्रेंस के नेताओं के अपमानजनक रवैए के बावजूद सहयोग का हाथ बढ़ाए रखा। लेकिन हाल ही में दिल्ली में शेख ने कहा कि उन्हें नहीं पता कि जम्मू की शिकायतें क्या हैं? इससे सिद्ध होता है कि अपने षड्यंत्रों की पूर्ति के लिए वे भारत के प्रधानमंत्री तक के वक्तव्य के खंडन तक जा सकते हैं। उनके इस रवैए से जन-भावनाओं को ठेस तो पहुँची ही है, साथ ही (सत्याग्रह कर रहे) लोगों पर प्रशासन के अमानवीय अत्याचार भी बढ़ गए हैं। यदि पं. नेहरू अपने कहे के प्रति गंभीर हैं और हम मानते हैं कि वे होंगे ही तो वे कश्मीर के नेशनल कॉन्फ्रेंस नेताओं को भारत में पूर्ण अधिमिलन के लिए समझाएँगे। हम नेहरू का उनकी इस ईमानदारी के लिए स्वागत करते हैं कि उन्होंने लोगों की शिकायतों को प्राभाषिकता से स्वीकार तो किया।'' [359]

6.7. सुंदरबनी की नर बलि

जब शेख अब्दुल्ला हैदराबाद में कांग्रेसियों की तालियाँ बटोर रहे थे, उधर जम्मू में उनकी पुलिस कहर ढा रही थी। छंब में मेलाराम की शहादत के पूरे 14 दिन बाद शेख अब्दुल्ला सरकार ने सुंदरबनी में तीन सत्याग्रहियों की नरबलि ली। सुंदरबनी में कृष्णलाल, रामजी दास और बेलीराम पुलिस की गोलियों से शहीद हो गए। 28 दिसंबर,

1952 को सुंदरबनी मे तिरंगा झंडा फहराना तय हुआ। इस दिन जमादार फूलाराम और उसके अन्य साथी सत्याग्रह कर गिरफ्तारी देंगे, ऐसा निर्णय था। सुबह से ही आस-पास के गाँवों से लोग सुंदरबनी पहुँचने शुरू हो गए थे। रास्ते में राजपूतों का गाँव वसैया आता है। यह पहलवानों का गाँव कहलाता है। यहाँ के लोग भी सुंदरबनी पहुँचे हुए थे। सत्याग्रह से निपटने के लिए पुंछ के जिलाधीश व पुलिस अधीक्षक भी मौके पर कश्मीर मिलिशिया के सैनिकों को भारी संख्या में साथ लेकर आए हुए थे। तहसील के सामने मोर्चा लग गया। फूलाराम ने तहसील पर तिरंगा फहरा दिया, लेकिन मिलिशिया के सैनिकों ने झंडे की डोर तोड़कर उसे नीचे उतार दिया। लेकिन सत्याग्रहियों ने तिरंगा फिर लहरा दिया। पुंछ के जिलाधीश ने स्वयं झंडा उतारने की कोशिश की। विमला देवी ने उसको ऐसा करने से रोका। इसी आपा-धापी में जिलाधीश नीचे गिर गए। पुलिस ने गोली चला दी।
पच्चीस वर्षीय कृष्णलाल और बीस वर्षीय रामलाल मौके पर ही गोली लगने से दम तोड़ गए। बेलीराम गोली लगने से घायल होकर गिर पड़े। पुलिस ने एक भारी पत्थर उठाकर उसके सिर पर दे मारा। उसकी भी वहीं मृत्यु हो गई। पुलिस ने तीनों के शव घरवालों को देने से इनकार कर दिया। रात को इन तीनों के शव पुलिस कहीं ले गई। उनका दाह-संस्कार कहाँ किया, आज तक उसका पता नहीं चला। गोलीकांड के तीसरे दिन जम्मू के नागरिकों ने मेहता शिवदास, रामलाल सदाव्रती और कुछ अन्य लोगों को सुंदरबनी भेजा। मृतकों के शव उनके घरवालों को देने का अनुरोध पुलिस व अन्य प्रशासनिक अधिकारियों से किया गया। लेकिन पुलिस ने अनुरोध करनेवालों को गिरफ्तार कर लिया और रात के 1 बजे अखनूर के नजदीक, जाकर छोड़ दिया। ''3 औरतों समेत 25 लोग इस गोलीबारी में घायल हो गए थे। उन्हें सेना के अस्पताल में भरती करवाया गया। दूसरे दिन उनमें से एक और व्यक्ति की मौत हो गई। अस्पताल के अधिकारी उसका शव उसके घरवालों को देना चाहते थे, लेकिन पुलिस ने ऐसा करने नहीं दिया। पुलिस ने पूरी तरह सुंदरबनी को सील कर दिया। किसी को न तो शहर के अंदर आने दिया जा रहा था और न ही किसी को बाहर जाने दिया जा रहा था। सरकार ने सारे जम्मू प्रांत में सायं 7 बजे से लेकर सुबह 7 बजे तक वाहनों के चलने पर पाबंदी लगा दी।[360]

6.8. भारतीय जनसंघ के कानपुर अधिवेशन में प्रजा परिषद् की भागीदारी

प्रजा परिषद् देश के लोगों को अपने आंदोलन के उद्देश्यों और शेख अब्दुल्ला की देशघाती नीतियों के बारे में बताने के लिए हर अवसर का उपयोग कर रही थी। जब कानपुर में भारतीय जनसंघ का पहला अधिवेशन हुआ तो अन्य राज्यों में कार्य करने के लिए नियुक्त प्रचार मंत्री मक्खन लाल ऐमा वहाँ भी पहुँचे। अधिवेशन में आए हुए प्रतिनिधियों से संवाद करते हुए उन्होंने कहा, ''प्रजा परिषद् ने यह आंदोलन जम्मू में अपना शासन स्थापित करने के लिए या फिर कश्मीर से जम्मू को अलग करने के लिए अथवा सांप्रदायिकता को फैलाने के लिए नहीं चलाया है। बहुत सोच-विचार के बाद ही हम आंदोलन चलाने के लिए बाध्य हुए हैं। हम जम्मू-कश्मीर को भी भारत के अन्य राज्यों की तरह देखना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि भारत के नागरिकों को जम्मू-कश्मीर में वही अधिकार प्राप्त हों, जो उन्हें शेष भारत में हैं। प्रजा परिषद् ने जम्मू-कश्मीर को भारत में मिलाने के लिए पाँच वर्ष तक आंदोलन किया है। प्रतिनिधिमंडल भेजे, स्मृति-पत्र दिए, सभाएँ कीं, अपने पक्ष को डॉ. मुकर्जी सरीखे सांसदों द्वारा भारत सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करवाया, परंतु सरकार टस से मस नहीं हुई। भारत सरकार के संरक्षण में शेख अब्दुल्ला अपने राष्ट्र विरोधी कदम बढ़ाता ही गया। नेहरू भी संसद् में प्रजा परिषद् आंदोलन के उद्देश्यों की आलोचना नहीं कर सके, केवल उसके हिंसात्मक होने का ही आरोप लगाते रहे। (प्रजा परिषद् शेख या कश्मीरियों के खिलाफ नहीं

थी) प्रजा परिषद् के नेता प्रेमनाथ डोगरा ने तो जम्मू में शेख का स्वागत किया था।'' [361]

4 जनवरी, 1953 को कर्ण सिंह ने नेहरू को लिखा—''14 नवंबर, 1952 से शुरू हुए आंदोलन को आज डेढ़ मास हो गया है। लेकिन मुझे दु:ख है कि इस दौरान हमारी सरकार की ओर से कोई सकारात्मक ठोस कदम नहीं उठाया गया। दो कदम तो राज्य सरकार को तुरंत उठाने चाहिए। प्रथम दिल्ली समझौते के शेष प्रावधानों को लागू करना, द्वितीय क्षेत्रीय स्वायत्तता की व्यवस्था की रूपरेखा तैयार करना और उसे लागू करना। इन दोनों कामों में अब किसी किस्म की देरी नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि नेशनल कॉन्फ्रेंस भी इन दोनों विषयों को लागू करने के लिए वचनबद्ध है। इसके साथ ही जम्मू की आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए कदम उठाने चाहिए।'' [362]

अब तक देश भर में प्रजा परिषद् के आंदोलन की चर्चा होने लगी थी। उसके पक्ष और विपक्ष में बहस भी प्रारंभ हो गई थी। आचार्य कृपलानी ने आंदोलन की चर्चा करते हुए कहा, ''प्रजा परिषद् पर आरोप लगाया जाता है कि यह पार्टी सांप्रदायिक है। कोई भी सांप्रदायिक संस्था, चाहे वह बहुसंख्यक समाज की हो या अल्पसंख्यक समाज की, राजनैतिक व नैतिक तौर पर विषमयी होती है, यदि वह अपने से अलग, समस्त समाज पर आधिपत्य जमाने का प्रयास करती है। क्या प्रजा परिषद् के नेता या उसके कार्यकर्ता, कश्मीर के मुसलिम समाज पर आधिपत्य जमाने की इच्छा रखते हैं? यदि प्रजा परिषद् के बारे में ऐसा कोई सोचता भी है तो उसे अपने मस्तिष्क से तुरंत यह विचार निकाल देना चाहिए।

''मेरी राय में वर्तमान परिस्थितियों में आंदोलन इसलिए फल-फूल रहा है, क्योंकि जम्मू के लोग, खासकर हिंदू, भय एवं अपने भविष्य की आशंकाओं से ग्रस्त हैं। इसलिए उनके डर को दूर करना पड़ेगा। इसे जम्मू प्रांत को स्थानीय स्वायत्तता देकर दूर किया जा सकता है। कांग्रेस के अध्यक्ष और प्रधानमंत्री ने भी माना है कि जम्मू के लोगों की कुछ उचित शिकायतें हैं। उन शिकायतों की जाँच की जानी चाहिए और दूर किया जाना चाहिए, ताकि जम्मू के लोगों के मनों का भय दूर हो सके।[363]

जम्मू में प्रजा परिषद् के आंदोलन की आँच पंजाब में भी अनुभव की जा रही थी, क्योंकि जम्मू संभाग व पंजाब के लोगों की सांस्कृतिक साँझ के अतिरिक्त पारिवारिक रिश्तेदारियाँ भी हैं। पंजाब जनसंघ के वरिष्ठ नेता और जालंधर के जाने-माने वकील लालचंद सभरवाल स्थिति का आकलन करने के लिए 30 दिसंबर, 1952 को जम्मू गए और वहाँ 1 जनवरी, 1953 तक रहे। वहाँ उन्होंने समाज के सभी वर्गों से भेंट करने के बाद अपनी रपट प्रस्तुत की। रपट के अनुसार, ''प्रजा परिषद् का यह आंदोलन जम्मू संभाग के छोटे-से-छोटे गाँव तक फैल गया है। प्रजा परिषद् को जम्मू क्षेत्र के सभी लोगों का समर्थन प्राप्त है। इसे जनता का दल कहना सब प्रकार से उचित है। नेशनल कॉन्फ्रेंस के केवल जम्मू नगर में ही कुछ सदस्य हैं और वे भी किसी-न-किसी रूप में सरकार से ही संबंधित हैं। सत्याग्रह 14 नवंबर, 1952 को शुरू हुआ था। पहले सप्ताह पुलिस ने उन सत्याग्रही जत्थों की गिरफ्तारियाँ कीं, जो जुलूसों का नेतृत्व करते थे। परंतु उसके बाद गिरफ्तारियाँ बंद कर दीं और सत्याग्रहियों पर लाठीचार्ज व अश्रु गैस का खुला प्रयोग प्रारंभ कर दिया। दूसरे ही सप्ताह पंजाब की विशेष पुलिस भी बुला ली गई। सांबा, ऊधमपुर, रणवीर सिंह पुरा, छंब और सुंदरबनी नामक स्थानों पर पुलिस ने गोलियाँ चलाईं और अश्रु गैस छोड़ी। इनसे 5 लोगों की मृत्यु तथा 100 व्यक्ति घायल हो चुके हैं। मेरा यह निश्चित मत है कि ये सभी गोलीकांड अनावश्यक रूप से किए गए। सारे जम्मू क्षेत्र में सरकार ने आतंक फैला दिया है। यह सब शेख अब्दुल्ला, बक्शी गुलाम मोहम्मद, दुर्गा प्रसाद धर

तथा मौलाना मसूदी इत्यादि की अनुमति से किया जा रहा है। मौलाना मसूदी ने खुद मुझसे कहा कि जब हमने देखा कि सत्याग्रह किसी तरह घट नहीं रहा, तब हमने इन सभी उपायों का अवलंबन किया। जम्मू के गाँवों में तो हालात मार्शल लॉ से भी ज्यादा खतरनाक हैं। पुलिस किसी भी समय किसी के घर में भी पुरुष या स्त्री के साथ अत्याचार कर सकती है। जंगलों में ले जाकर सत्याग्रहियों को बर्फ के पानी से नहलाया जाता है।'' [364]

जम्मू में प्रजा परिषद् के आंदोलन को चलते लगभग डेढ़ महीना हो गया था। छंब और सुंदरबनी में 4 सत्याग्रही अभी तक शहादत प्राप्त कर चुके थे। 4 जनवरी, 1953 को राज्य के प्रधानमंत्री शेख अब्दुल्ला आंदोलन शुरू होने के बाद पहली बार जम्मू आए। लेकिन प्रजा परिषद् से बातचीत कर कोई रास्ता निकालने के स्थान पर उन्होंने कहा कि, ''यदि जम्मू के लोग कश्मीर से अलग ही होना चाहते हैं तो मैं क्या कर सकता हूँ? बलपूर्क तो किसी को साथ रखा नहीं जा सकता। लेकिन एक बात स्पष्ट करना जरूरी है कि दबाव के आगे सरकार झुकेगी नहीं। हम पहले भी कभी दबाव में नहीं आए और भविष्य में भी नहीं आएँगे।'' [365] राज्य सरकार ने अपने एक आधिकारिक प्रकाशन में विरोधी राजनैतिक पार्टी प्रजा परिषद् पर आक्षेप किया कि ''वह सांप्रदायिक ताकतों का प्रतिनिधित्व करती है। जम्मू की समस्या न तो राज्य का भारत में पूरी तरह एकीकरण है और न ही किसी प्रतीक (झंडा) के सम्मान की। जम्मू की समस्या तो गरीबी की है।'' लेकिन इसी प्रकाशन में आगे यह भी बता दिया कि, ''अभी भी अनुपात के हिसाब से हिंदू नौकरियों में ज्यादा हैं।'' [366]

6.9. सत्याग्रहियों को प्रताड़ित करना

सत्याग्रह को बंद करवाने के लिए कश्मीर मिलिशिया के सिपाही सत्याग्रहियों की अमानुषिक पिटाई तो करते ही थे, साथ ही राज्य सरकार ने उनके दमन का एक दूसरा उपाय भी खोज लिया था। गिरफ्तार किए गए सत्याग्रहियों को तुरंत संक्षिप्त विचारणा के बाद सजा देने और जुर्माना लगाने का काम शुरू कर दिया। जुर्माना न अदा करने पर उनके घरों के सामान को कुर्क करना शुरू कर दिया।

''सरकार ने अपने अधिकारियों को मैजिस्ट्रेट की शक्तियाँ दे दीं।'' [367] जम्मू केंद्रीय कारागार में ही गिरफ्तार किए गए सत्याग्रहियों पर मुकदमे की सुनवाई शुरू कर दी गई। 8 सत्याग्रहियों को छह-छह मास के सश्रम कारावास की सजा और 100-100 रुपए जुर्माना किया गया।[368] कुछ दिनों बाद दो और सत्याग्रहियों को एक-एक साल की सश्रम कैद और 500-500 रुपए जुर्माना कर दिया गया।[369] अन्य 15 सत्याग्रहियों को संक्षिप्त विचारणा के बाद विभिन्न सजाएँ दी गईं।[370] 3 दिसंबर को जम्मू के केंद्रीय कारागार में ही प्रेमनाथ डोगरा पर मुकदमे की कार्यवाही शुरू की गई''[371] और कुछ ही दिनों में उन्हें 18 मास की सश्रम कैद की सजा सुना दी गई।[372]

6.10. हीरानगर का जलियाँवाला

लोहड़ी से दो दिन पहले 11 जनवरी, 1953 की घटना है। हीरानगर में प्रदेश के उप-प्रधानमंत्री बक्शी गुलाम

मोहम्मद आए हुए थे। 2 बजे के लगभग 5,000 प्रदर्शनकारी एक जुलूस की शक्ल में उन्हें ज्ञापन देने के लिए जा रहे थे कि रियासत का भारत में पूरा अधिमिलन होना चाहिए। पंजाब सशस्त्र पुलिस ने उन्हें विद्यालय से सौ गज पहले ही रोक दिया। लेकिन प्रदर्शनकारी बक्शी से मिलने के लिए दृढ़ निश्चयी थे। पुलिस ने पहले उनपर लाठी चार्ज किया, फिर अश्रुगैस के गोले छोड़े। अनेक लोग घायल हो गए, लेकिन इसके उपरांत भी लोग वहाँ से हटने का नाम नहीं ले रहे थे। जिलाधीश बलदेव चंद ने कहा, इनको इन्हीं के हाल पर छोड़ दो। अपने आप अपने घरों को चले जाएँगे। लेकिन बक्शी ने पुलिस को गोली चलाने के लिए कहा। पुलिस ने 200 राउंड गोलियाँ चलाईं। कश्मीर मिलिशिया ने स्टेनगनों का प्रयोग किया। घायल लोगों पर भी पुलिस ने लाठियाँ भाँजीं। अनेक लोग लापता थे। 70 से भी ज्यादा प्रदर्शनकारी घायल हुए थे, जिनमें से 8 गंभीर रूप से घायल हुए थे। उनकी अवस्था देखकर हीरा नगर के सैनिक अस्पताल ने उन्हें भरती करने से इनकार कर दिया। अत उन्हें जम्मू के अस्पताल में भरती करवाना पड़ा।[373]

इस कांड में दो प्रदर्शनकारियों की मौत हो गई। बिहारी लाल और भीष्म सिंह शहीद हुए। पुलिस उनके शवों को लेकर कठुआ-बसोहली मार्ग पर स्थित बसंतपुर पुलिस चौकी ले गई। बसंतपुर रावी नदी के किनारे बसा है। शवों को जलाने के लिए बक्शी ने चार गैलन पेट्रोल पुलिस के अजीत सिंह और तारा मनी को दिया। उन्होंने दो बोतल पेट्रोल शवों पर डाला और लखनपुर में बाकी पेट्रोल बेचकर शराब पी ली।[374] ''दोनों मृतकों के शव रावी नदी के किनारे अधजली हालत में छोड़कर पुलिस चली गई। प्रात:काल शाहपुर कंडी में लोगों में चर्चा होने लगी कि हीरानगर में इस प्रकार का कांड हुआ है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की प्रभात शाखा के मुख्य शिक्षक तिलकराज गांधी कुछ अन्य स्वयंसेवकों को साथ लेकर रावी नदी पार कर उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ अधजले शव पड़े थे। उन्होंने इसकी सूचना हीरानगर व दिल्ली में दी। वहाँ से इन शवों को हीरानगर लाकर उनका दाह-संस्कार किया गया।'' [375] प्रजा परिषद् ने इस हत्याकांड के विरोध में सात दिन की हड़ताल की घोषणा कर दी। दूसरे दिन जम्मू संभाग के सभी नगरों व बड़े गाँवों में हड़ताल रही।

6.10.1 सरकारी झूठ का परदाफाशकांड के विरोध में सात दिन की हड़ताल की घोषणा कर दी। दूसरे दिन जम्मू संभाग के सभी नगरों व बड़े गाँवों में हड़ताल रही।

6.10.1 सरकारी झूठ का परदाफाश

लेकिन इसके बाद सरकार ने जो हरकत की वह और भी घटिया थी। कश्मीर सूचना केंद्र की ओर से सभी पत्रकारों को सदर-ए-रियासत कर्ण सिंह का एक वक्तव्य वितरित किया गया। इस वक्तव्य में कर्ण सिंह ने प्रजा परिषद् के आंदोलन की निंदा की थी। सरकार की सूचना के अनुसार उन्होंने अपना यह वक्तव्य काँगड़ा के एक पत्रकार को दिया था। कर्ण सिंह अपनी बीमार माँ से मिलने के लिए काँगड़ा के समीप के एक गाँव में गए थे। सरकार ने इसी का लाभ उठाकर यह वक्तव्य जारी कर दिया। जब कर्ण सिंह के ध्यान में यह बात लाई गई तो उन्होंने ऐसे किसी भी वक्तव्य से इनकार कर दिया।[376]

6.10.2 हीरानगर गोली कांड की जाँच रपट

हीरानगर गोली कांड की जाँच के लिए जम्मू-कश्मीर पीपुल्स पार्टी ने एक जाँच समिति गठित की, जिसके सदस्य

पार्टी के महासचिव वाचस्पति और जम्मू चेंबर ऑफ कॉमर्स के प्रधान गिरधारी लाल आनंद थे। समिति ने मौके पर जाकर जाँच करने और प्रत्यक्षदर्शियों से मिलने के बाद अपनी रपट प्रस्तुत की। रपट के अनुसार, ''पुलिस द्वारा की गई गोलीवर्षा किसी वास्तविक या काल्पनिक स्थिति का मुकाबला करने के लिए नहीं बल्कि शक्ति-प्रदर्शन के लिए की गई प्रतीत होती है। प्रदर्शनकारी शांत एवं निहत्थे थे और एक खुले मैदान की ओर सभा करने के लिए बढ़ रहे थे। पहले उनको रोक दिया गया और फिर उनपर अश्रु गैस छोड़ी गई। उसके तुरंत बाद बिना किसी चेतावनी के पुलिस ने उनपर गोली वर्षा शुरू कर दी। यह सब जम्मू-कश्मीर सरकार के दो मंत्रियों बक्शी गुलाम मोहम्मद व गिरधारी लाल डोगरा की नाक के नीचे हुआ। सरकार ने दो लोगों की मृत्यु स्वीकारी है। परंतु यह नहीं पता कि उन लोगों की कब और कहाँ अंत्येष्टि की गई। उन 13 लोगों को छोड़कर, जो अभी भी लापता बताए जाते हैं, हमने अन्य अनेक लोगों को, जिनमें स्त्रियाँ भी शामिल हैं, देखा जो बुरी तरह घायल हैं। बद्रीनाथ नामक एक व्यक्ति को जिसके पेट में गोली लगी थी, स्थानीय डॉक्टर ने जम्मू ले जाने का परामर्श दिया, क्योंकि इस नगर में एक्सरे या गोली निकालने की कोई व्यवस्था नहीं थी। परंतु जैसे ही वह जम्मू जाने के लिए बस में सवार होने लगा, पुलिस ने आकर उसे घसीट लिया और बुरी तरह से पीटा।'' [377]

6.11. जम्मू सचिवालय से उतारा राष्ट्रीय ध्वज

जम्मू के सचिवालय व अन्य सरकारी भवनों पर 26 जनवरी को राष्ट्रीय ध्वज फहराया गया। लेकिन राज्य सरकार ने प्रतीकात्मक रूप से इसे फहराकर उसे उतार दिया। कर्ण सिंह को कहीं-न-कहीं आशा थी (और उन्होंने इसके लिए शेख से अनुरोध भी किया था) कि शायद राज्य सरकार सचिवालय पर से इसे न उतारे और इस प्रकार राष्ट्रवादी शक्तियों की भावनाओं को भी संतुष्ट किया जा सकेगा। ''लेकिन (उन्हें) यह देखकर अत्यंत निराशा हुई कि सचिवालय से इसे उतार दिया गया।'' [378]

6.12. सविनय अवज्ञा आंदोलन

प्रजा परिषद् ने 16 जनवरी, 1953 से सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू कर दिया और उसके अगले ही दिन कर्ण सिंह ने नेहरू को लिखा—''अब तो आंदोलन में महिलाएँ और किशोर भी भाग लेने लगे हैं। उनपर की जा रही पुलिसवालों की कार्यवाही असंतोष व कटुता पैदा कर रही है और इससे आंदोलन को और अधिक बल मिल रहा है। दिन-प्रतिदिन एक और गंभीर बात देखने में आ रही है कि प्रांत के ग्रामीण क्षेत्रों में भी आंदोलन को व्यापक समर्थन व शक्ति मिल रही है।'' [379] लेकिन समर्थन कितना था, इसकी कल्पना शायद कर्ण सिंह को भी नहीं थी। नौशहरा के मोगला गाँव में प्रजा परिषद् के नेतृत्व में जनता ने लोक सरकार की स्थापना कर ली। ठाकुर सहदेव सिंह को जिलाधीश और तिलकराज शर्मा को पुलिस अधीक्षक बनाया गया। इस सरकार का मुख्यालय ठाकुर हरि सिंह के घर मोगला में स्थापित किया गया। एक निजी आवास को जेल घोषित कर दिया गया। आम लोग इस नई सरकार को बागी सरकार कहने लगे। बागी सरकार की स्थापना में ठाकुर ज्ञान सिंह ने बहुत सहयोग दिया। कालाकोट के नंबरदार लक्ष्मण सिंह ने अपने पद से इस्तीफा देने से इनकार कर दिया। बागी सरकार ने उसे तुरंत हिरासत में लेकर जेल में डाल दिया। जम्मू संभाग में आंदोलन की गूँज गाँव-गाँव में सुनाई देने लगी थी।'' [380]

6.13. जोड़ियाँ में 30 जनवरी, 1953 का गोली कांड

30 जनवरी, 1953 को जोड़ियाँ गाँव में हजारों किसान आस-पास के गाँवों से रियासत के भारत में पूर्ण अधिमिलन की माँग करने हेतु एकत्र हुए थे। पुलिस ने गाँव से बाहर जाने के सभी रास्ते घेर लिये। गाँव के चौराहे पर पुलिस ने भीड़ पर गोली चला दी। 125 लोग घायल हुए, अनेक लापता थे। गोली कांड में मोहन लाल, ज्ञान सिंह, त्रिलोक सिंह, बलदेव सिंह, बसंत सिंह और हरि सिंह शहीद हो गए।

इस गोली कांड की जाँच के लिए जम्मू-कश्मीर अकाली दल ने बचन सिंह पंछी को मौके पर जाकर जाँच करने के लिए कहा। जाँच रपट के अनुसार, ''30 जनवरी, 1953 को 3,000 प्रदर्शनकारियों, जिनमें पुरुष व स्त्रियाँ दोनों ही शामिल थे, का एक जुलूस जोड़ियाँ की ओर चला। लोग परिषद् के नारे लगा रहे थे। जुलूस के गाँव में पहुँचने से पहले गाँव के प्रमुख लोग भारतीय सेना के कार्यालय में गए। गाँव में जुलूस ने तभी प्रवेश किया जब सेना के अधिकारियों ने जाँच कर ली कि लोग निहत्थे थे। लेकिन जुलूस अभी ब्रिगेड कार्यालय से 400 गज दूर ही पहुँचा होगा कि पंजाब पुलिस तथा कश्मीर मिलिशिया ने चारों ओर से घेरा डालकर अश्रु गैस छोड़ी। इसके बाद कश्मीर मिलिशिया ने बिना किसी अधिकारी की इजाजत के गोली चला दी। गोली कांड के तीन घंटे बाद तक कश्मीर मिलिशिया आस-पास के गाँवों में लूटपाट करती रही। मैं एक गाँव में गया, जहाँ अभी भी बीस घायल पीड़ा से कराह रहे थे, क्योंकि उनमें से अनेक के शरीर से गोलियों के छर्रे अभी तक निकले नहीं थे।'' [381]

6.14. सरकारी अत्याचार

आंदोलन में सरकारी अत्याचार अपनी सभी सीमाएँ तोड़ रहा था। अखनूर के पास दानु गाँव में लोगों के सभी पालतू पशु नीलाम करवा दिए गए। गाँव में पुलिस आने पर युवा लोग भाग जाते थे। वे समझते थे कि पुलिस महिलाओं और बूढ़ों को तो तंग नहीं करेगी। लेकिन पुलिस ने घर की महिलाओं और बुजुर्गों को घरों से बाहर निकालकर अनेक घर धराशायी कर दिए। हल चलाकर जमीन को भी समतल कर दिया गया। सरकार गाँव में सामूहिक अर्थ दंड लगा रही थी और अर्थ दंड न देने पर सैकड़ों परिवारों की संपत्ति नीलाम करवाकर अर्थ दंड वसूला गया। मिलिशिया के सैनिक कहते थे कि इस प्रकोप से बचने का एक ही रास्ता है कि नेशनल कॉन्फ्रेंस में शामिल हो जाओ या कम-से-कम 'शेर-ए-कश्मीर जिंदाबाद' का नारा लगाओ। लेकिन इतने अत्याचारों के बाद भी कोई तैयार नहीं हुआ।[382]

6.15. सरकारी दमन का उत्तर

शेख प्रशासन ने सत्याग्रह को समाप्त करने के लिए दमन और अत्याचार की पराकाष्ठा कर दी। परिणामस्वरूप आंदोलन भी उग्र होता जा रहा था। समाज का धैर्य भी चुक रहा था। पार्टी के महासचिव दुर्गादास वर्मा भूमिगत रहकर आंदोलन का संचालन कर रहे थे। उन दिनों उनका भूमिगत मुख्यालय रायपुर-दोमाना में था। पुलिस उनको पकड़ने के लिए जगह-जगह छापेमारी कर रही थी, लेकिन वे पकड़ में नहीं आ रहे थे। उन्होंने अपने मुख्यालय पर प्रजा परिषद् के कुछ चुने हुए लोगों की बैठक बुलाई। बैठक में लंबे विचार-विमर्श के बाद निर्णय हुआ कि, ''सरकारी दमन के खिलाफ स्थान-स्थान पर विरोध प्रकट किया जाए और पुलिस का सामना किया जाए। गुप्तचर विभाग के लोगों की नाकाबंदी की जाए। नेशनल कॉन्फ्रेंस के स्थानीय समर्थकों का सामाजिक बहिष्कार किया जाए। अत्याचारों का प्रबल विरोध करने के लिए सांबा, अखनूर, रामबन और हीरानगर का चयन किया गया।

तिलकराज शर्मा के नेतृत्व में बारह कार्यकर्ताओं का एक जत्था गठित किया गया। इस जत्थे में अमरनाथ बजरंगी, दुर्गादास, हकीम रामलाल, वैद्य छज्जू राम, दुर्गादास ड्राइवर, विश्व-बंधु शर्मा, सुरेंद्र सरीन, जगदीश कोहली इत्यादि शामिल किए गए।'' 383

प्रजा परिषद् के इस जत्थे ने तुरंत अपनी कार्यवाही प्रारंभ कर दी। ''दोमाना में लोगों ने थाने को घेर लिया। थाने के भवन पर तिरंगा झंडा फहराने की घोषणा कर दी। सिपाही थाना छोड़कर भाग गए, लेकिन प्रदर्शनकारियों ने उन्हें पकड़ लिया। थाने पर तिरंगा फहरा दिया गया। सिपाहियों से 'प्रजा परिषद् जिंदाबाद' और 'धारा 370 तोड़ दो' के नारे लगवाए गए। तब तक पुलिस मुख्यालय को इस भिड़ंत की खबर मिल गई थी। पुलिस अधिकारी 200 सिपाहियों की कुमुक लेकर पहुँचे। गोलीबारी की गई। सैकड़ों प्रदर्शनकारी घायल हो गए। इस जत्थे के वैद्य छज्जू राम गिरफ्तार कर लिये गए।' 384

प्रजा परिषद् के कार्यकर्ताओं का पुलिस से दूसरा संघर्ष चेनाब नदी के किनारे बसे अखनूर कस्बे में हुआ। ''लोगों ने थाने पर तिरंगा फहरा दिया। पुलिस ने गोली चलाई। आक्रोशित लोगों ने पुलिसकर्मियों को पकड़ लिया और उनकी वर्दियाँ उतारकर जला दीं। हालत का सामना करने के लिए पंजाब की पुलिस को बुलाया गया। पंजाब पुलिस ने नगर को घेर लिया। नगर के अंदर का मोर्चा अमरनाथ मल्होत्रा समाधिवाले और अमरनाथ बजरंगी ने सँभाला। पुलिस रुक-रुककर गोली चलाती रही, लेकिन उसकी गाँव के अंदर घुसने की हिम्मत नहीं हुई।'' 385

6.16. समाचार स्रोतों पर नियंत्रण

आंदोलन के समाचार बाहर न जा सकें, इसकी व्यवस्था भी सरकार ने कर रखी थी। राज्य से बाहर के जिन अखबारों में इस प्रकार के समाचार छप रहे थे या छापे जाने की संभावना हो सकती थी, उन अखबारों को तो सरकार ने राज्य में प्रतिबंधित करके समाधान निकाल लिया। यह व्यवस्था कर ली गई लगती थी कि संवाद समितियाँ आंदोलन से संबंधित जारी सरकारी प्रेस नोट के आधार पर ही समाचार बनाकर प्रेषित करें। जब सदर-ए-रियासत बनने के बाद कर्ण सिंह पहली बार 24 नवंबर को जम्मू आए तो अंग्रेजी संवाद समितियों ने खबर चला दी कि कर्ण सिंह का जम्मू हवाई पत्तन से लेकर उनके निवास-स्थान तक 7 मील के रास्ते में जबरदस्त स्वागत हुआ। संवाद समिति के अनुसार प्रजा परिषद् विरोध में 200 के लगभग स्कूली बच्चे आदि ही इकट्ठा कर पाई, जो तवी पुल पर काले झंडे लेकर खड़े थे। जबकि वास्तविकता क्या थी, इसका वर्णन उस समय के सदर-ए-रियासत कर्ण सिंह ने स्वयं ही अपनी आत्मकथा में किया है। संवाद समितियों के इस प्रकार के व्यवहार को देखकर ही प्रजा परिषद् के महासचिव गोपाल दास सच्चर ने समाचार-पत्रों के संपादकों से अपील की कि वे ''संवाद समितियों द्वारा भेजी गई खबरों को छापने से पहले स्वयं जाँच कर लें, क्योंकि वे आमतौर पर तथ्यों के विपरीत होती हैं।'' 386

लगभग सभी प्रमुख समाचार-पत्रों को, मसलन 'दैनिक मिलाप' (दिल्ली व जालंधर), 'दैनिक प्रताप' (दिल्ली व जालंधर), 'दैनिक प्रभात' दिल्ली, दैनिक हिंदी मिलाप जालंधर, दैनिक हिंद समाचार जालंधर, दैनिक तर्जमान लुधियाना, साप्ताहिक मिलाप पठानकोट, साप्ताहिक हिंदू जालंधर, साप्ताहिक ऑर्गेनाइजर दिल्ली, राज्य में प्रतिबंधित कर दिया गया था। इसके अतिरिक्त जम्मू-कश्मीर से छपनेवाले दैनिक मार्तंड श्रीनगर, साप्ताहिक वकील

श्रीनगर, साप्ताहिक अमर जम्मू, साप्ताहिक सदाकत जम्मू का प्रकाशन बंद करवा दिया।[387]

राज्य के समाचार-पत्र सरकार के भय से आंदोलन की खबर छापते नहीं थे। प्रजा परिषद् के कार्यकर्ताओं ने लोगों तक खबरें पहुँचाने के नए रास्ते निकाल लिये। लिथो/स्टेंसल से प्रतिदिन 'ललकार' पत्रक निकालना प्रारंभ किया। इसी तरीके से अलग-अलग नामों से और भी पत्रक निकाले गए। ये पत्रक गुप्त रूप से घर-घर पहुँचाए जाते थे। साइक्लोस्टाइल मशीनें गुढ़ा सलाथिया, भद्रवाह और रायपुर दोमाना में छिपाकर रखी गई थीं और वहीं से ये सारे पत्रक छापे जाते थे। पोस्टर जालंधर से छपकर आते थे। रात को दीवारों पर चिपकाना बड़ा कठिन था। शहर में जगह-जगह कश्मीर मिलिशिया पहरे देती थी। उनके साथ नेशनल कॉन्फ्रेंस के कार्यकर्ता भी रहते थे। राज्य सरकार का गुप्तचर विभाग अतिरिक्त सक्रिय हो गया था। उसकी सहायता कम्युनिस्ट भी कर रहे थे। इन सबकी पैनी नजर से बचकर प्रजा परिषद् के कार्यकर्ता फिर भी पोस्टर लगा ही देते थे।

लंदन के 'दी टाइम्स' ने समाचार छापा, ''आंदोलन दूर-दूर के गाँवों तक पहुँच चुका है। आम जनता प्रजा परिषद् के जलसे और जुलूसों में भाग ही नहीं ले रही बल्कि पुलिस के लाठी चार्ज और अश्रु गैस के गोलों का भी सीना तानकर सामना कर रही है।'' [388]

उधर न्यूयार्क टाइम्स ने लिखा, ''हाल के सप्ताहों में ही 500 प्रदर्शनकारी गिरफ्तार किए गए। गैर-सरकारी सूत्र इसकी संख्या ज्यादा बताते हैं। पुलिस से विवाद में अनेक लोग मारे जा चुके हैं।'' [389]परंतु राज्य के भीतर समाचार-पत्रों पर सरकारी नियंत्रण करता जा रहा था।

6.17. दिल्ली में पत्र-व्यवहार

दिल्ली में प्रजा परिषद् के इस आंदोलन को लेकर डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी और पं. जवाहरलाल नेहरू में जनवरी 1953 में पत्राचार प्रारंभ हुआ। डॉ. मुकर्जी प्रयास कर रहे थे कि सरकार प्रजा परिषद् के साथ बैठकर उनका भी पक्ष सुने, ताकि देश हित में कोई रास्ता निकाला जा सके। इन प्रयासों के कारण जम्मू-कश्मीर की राष्ट्रवादी शक्तियों में आशा जगी कि कोई-न-कोई समाधान निकल सकता है। सभी की नजरें दिल्ली की ओर लग गईं और आंदोलन की गति भी मंद कर दी गई। इन दिनों सत्याग्रह प्रतीकात्मक रूप से ही चलाया जाने लगा। मुकर्जी-नेहरू का यह पत्र-व्यवहार 23 फरवरी तक चला। नेहरू महाभारत के 'पाँच गाँव भी नहीं दूँगा' पर ही अड़े रहे। ''डॉ. मुकर्जी ने 17 फरवरी, 1953 को लोकसभा में कहा कि प्रजा परिषद् अपना आंदोलन वापस ले सकती है, अगर गिरफ्तार सत्याग्रही रिहा किए जाएँ और उसके बाद राज्य सरकार प्रजा परिषद् के साथ एक गोलमेज कॉन्फ्रेंस करे।'' [390] इस पर कर्ण सिंह ने नेहरू को लिखा—''जम्मू की स्थिति को लेकर लोकसभा में डॉ. मुकर्जी और विपक्ष के अन्य नेताओं द्वारा दिए गए भाषण के स्वर से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ।'' [391] 23 फरवरी को डॉ. मुकर्जी ने नेहरू को अंतिम चिट्ठी लिखी और नेहरू ने बातचीत के दरवाजे बंद कर दिए। स्वाभाविक ही इससे देश भर में राष्ट्रवादियों को निराशा हुई। नेहरू जम्मू-कश्मीर को शेख अब्दुल्ला की आँखों से देख रहे थे, इसलिए स्थिति का उनका आकलन शेख के आकलन पर ही आधारित था। लेकिन सदर-ए-रियासत कर्ण सिंह स्थिति को भीतर से अनुभव कर रहे थे। उन्होंने 23 फरवरी को ही नेहरू को लिखा—''कुछ समय से पुलिस ज्यादतियों, विशेष कर गाँवों में, की रपटों की बाढ़-सी आ गई है। व्यापक स्तर पर बदले के भाव से लोगों को पीटना, घरों में

घुसकर लूटपाट करना, पशुओं को भी हाँककर ले जाना, यहाँ तक कि महिलाओं से दुर्व्यवहार भी इन ज्यादतियों में शामिल हैं।'' 392

कर्ण सिंह को भी लग रहा था कि पुलिस द्वारा किए गए गोली कांडों की जाँच होनी चाहिए। उन्होंने 23 फरवरी को नेहरू को लिखा—''सरकार का कहना है कि गोली कांडों में कुल मिलाकर 11 लोग मारे गए हैं, जबकि आम धारणा है कि इनकी संख्या कहीं ज्यादा है। अनुमान अलग हो सकते हैं, लेकिन जम्मू में सभी लोग विश्वास करते हैं और कहते भी हैं कि कम-से-कम 30 लोग मारे गए हैं और कहीं ज्यादा घायल हुए हैं। निष्पक्ष जाँच सरकार के भी हित में होगी, क्योंकि इससे मरनेवालों की सही संख्या भी पता चल जाएगी और यह भी पता चल जाएगा कि गोली चलाना उचित था या नहीं।'' 393 पं. नेहरू ने कर्ण सिंह के इस पत्र का उत्तर पूरे एक महीने बाद 22 मार्च को दिया, लेकिन तब तक शेख सरकार जम्मू के रामबन में एक और हत्याकांड कर चुकी थी।

6.18. रामबन में गोली कांड

1 मार्च, 1953 को रामवन में प्रात:काल से ही गहमागहमी का वातावरण था। आज रामवन की कचहरी पर लोग तिरंगा झंडा फहराने वाले थे। बाद दोपहर लोग एकत्र होना शुरू हो गए थे। बाजार में ही प्रजा परिषद् का कार्यालय था। सेरी गाँव की ओर से लोगों की भीड़ आ रही थी। प्रजा परिषद् की रामवन शाखा के प्रधान लब्यू राम, सचिव कस्तूरी लाल और संगठन सचिव नत्था सिंह सत्याग्रहियों की व्यवस्था में लगे हुए थे। 3,000 के लगभग प्रदर्शनकारी एकत्र हो चुके थे। लगभग दो बजे का समय था। हाथ में तिरंगा लेकर प्रदर्शनकारी तहसील की ओर बढ़ने लगे। लेकिन इस बार शायद प्रशासन ने और ही षड्यंत्र रच रखा था। जैसे ही प्रदर्शनकारी प्रजा परिषद् के कार्यालय से चलने लगे, मौके पर उपस्थित नायब तहसीलदार ने संकेत किया और पुलिस ने अचानक गोलीबारी शुरू कर दी। लोग कुछ समझ पाते, इससे पहले तीन सत्याग्रही शहीद हो चुके थे। 25 वर्ष के दो युवा बल्यहोत के शिब्बा राम और देवीशरण पुलिस की गोली खाकर गिर पड़े। भीड़ आगे बढ़ी, लेकिन तब तक कैंठी के भगवान दास के सीने से भी गोली पार हो चुकी थी। तीनों वीर खुद गिर गए, लेकिन हाथों से तिरंगा नहीं गिरने दिया। निमिष भर में भारत माता के चरणों में तीनों ने प्राण अर्पित कर दिए। दूसरे दिन जम्मू में पूर्ण हड़ताल रही

''लोगों का गुस्सा इतने उफान पर था कि जम्मू में सभी सरकारी कार्यालय सिविल लाइंस में भेज दिए गए और उस क्षेत्र मे देखते ही गोली मारने के आदेश जारी कर दिए गए।'' 394 इस हत्याकांड के बाद कर्ण सिंह को नेहरू ने उत्तर दिया, ''प्रजा परिषद् पुलिस अत्याचार की जो कहानियाँ प्रचारित करती रहती है, वे इतनी अतिरंजित व निराधार होती हैं कि उनपर रत्ती भर भी विश्वास नहीं किया जा सकता। इनमें से बहुत सी कहानियाँ तो प्रजा परिषद् के पठानकोट कार्यालय में ही गढ़ी जाती हैं।'' 395 रामवन के बाजार में तीन शहीदों की लाशें पड़ी थीं और नेहरू इस पठानकोट के कार्यालय में गढ़ी हुई कहानी बता रहे थे।

6.19. कर्ण सिंह और पं. जवाहरलाल नेहरू में सत्याग्रह को लेकर बातचीत

कर्ण सिंह और पं. जवाहरलाल नेहरू में 21 अप्रैल, 1953 को दिल्ली में जम्मू-कश्मीर में प्रजा परिषद् के आंदोलन पर लंबी बातचीत हुई। किन मुद्दों पर चर्चा हुई और उनपर पं. नेहरू के क्या उत्तर या प्रतिक्रिया थी, वह कर्ण सिंह

के ही शब्दों में लिपिबद्ध है। कर्ण सिंह निम्न विषय चर्चा के लिए लेकर गए थे।[396]

इन सभी प्रश्नों पर बातचीत के बाद कर्ण सिंह ने नेहरू का मत या प्रतिक्रिया भी लिखकर सुरक्षित कर ली। कर्ण सिंह के अनुसार, ''पुलिस ज्यादतियों के बारे में नेहरू ने कहा कि उन्होंने इस विषय पर एक सख्त चिट्ठी बक्शी को लिखी है। वे इससे भी सहमत दिखाई दे रहे थे कि यह गलत हो रहा है। मुझे ऐसा आभास हुआ है कि वे इस संबंध में कुछ करेंगे। जहाँ तक राज्य में राजनैतिक अवरोध को समाप्त करने का प्रश्न था, मुझे नहीं लगता कि वे इसे सुलझाने में कुछ भी करेंगे। उन्होंने कहा कि हमारा सारे का सारा अंतरराष्ट्रीय केस ही शेख अब्दुल्ला पर टिका हुआ है। तब मैंने उनको कहा कि शेख साहिब के मरने के बाद क्या होगा? इस प्रश्न ने उनको हिलाकर रख दिया। मैंने कहा, यदि हमारे संबध किसी व्यक्ति विशेष पर आधारित हैं तो कोई भी व्यक्ति अमर नहीं है। हर एक को एक-न-एक दिन मरना ही है। यही कारण है कि हम व्यक्ति-निरपेक्ष (सांविधानिक) संबंध स्थापित करना चाहते हैं। इस पर उन्होंने, जैसा कि वे प्राय: कहते ही रहते हैं, कहा कि सांविधानिक संबंध ही सबकुछ नहीं हैं। लेकिन वे मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके। उन्होंने (नेहरू ने) कहा कि दिल्ली में जनसंघ के आंदोलन को लोगों का समर्थन नहीं मिला और वह धीरे-धीरे खत्म हो रहा है। लेकिन जब मैंने बताया कि जम्मू में इसको लेकर लोगों की भावनाएँ बहुत गहरी हैं तो वे खामोश हो गए। मैंने (गोली कांडों) की जाँच करवाने की बात भी की, लेकिन वे खामोश ही रहे। मुझे यह स्वीकारने में कोई दिक्कत नहीं है कि इस आंदोलन को समाप्त करने में मुझे उनमें कोई उत्सुकता या गंभीरता दिखाई नहीं दी। लगता था, उन्होंने सबकुछ शेख अब्दुल्ला पर छोड़ दिया था।'' [397] और शेख अब्दुल्ला की एक ही रट थी कि प्रजा परिषद् यह आंदोलन महाराजा के लिए चला रही है। प्रजा परिषद् ने राजशाही पर अपना पक्ष स्पष्ट किया, ''प्रजा परिषद् को राजाओं-महाराजाओं से कोई लगाव नहीं है और वह इस दृष्टिकोण से पूर्णतया सहमत है कि कि देश की परिवर्तित राजनैतिक स्थिति में राजाओं को कायम रखना प्रगति के रास्ते में बाधक और देश की अविकसित अर्थव्यवस्था के लिए भार स्वरूप हो जाएगा। हमारी निश्चित राय है कि उनके भारी-भरकम प्रिवीपर्सों को तुरंत बंद करने और उन्हें अलविदा कह देने का बहुत स्वागत किया जाएगा।'' [398]

6.20. असहयोग आंदोलन

अप्रैल 1953 के अंत में प्रजा परिषद् ने अपना असहयोग आंदोलन प्रारंभ किया। इसमें निर्णय किया गया कि—

1. गाँव में सरकार को राजस्व कर (मालिया) न दिया जाए।
2. सिंचाई के लिए पानी के प्रयोग पर राज्य सरकार द्वारा निर्धारित आबयाना कर न दिया जाए।
3. कृषि उत्पादन पर आधारित टैक्स मुआवजा सरकार को न दिया जाए।
4. पटवारी, नंबरदार, जैलदार और चौकीदार तुरंत अपने पदों से त्यागपत्र दे दें।
5. गाँव में आनेवाले किसी भी राजस्व अधिकारी से सहयोग न किया जाए।

शेख अब्दुल्ला सरकार ने मई 1953 में एक अध्यादेश जारी कर दिया, जिसके अनुसार बिना परमिट के रियासत में प्रवेश करने पर गिरफ्तार किया जा सकेगा।[399]

6.21. प्रेमनाथ डोगरा भूख हड़ताल पर

जम्मू केंद्रीय कारागार प्रजा परिषद् के सत्याग्रहियों से भर गई थी। लेकिन वहाँ ठीक खाने तक की व्यवस्था नहीं

थी। इसकी माँग कर रहे सत्याग्रहियों पर जेल में ही लाठी चार्ज किया गया, जिससे कई सत्याग्रही घायल हो गए। इसके विरोध में पं. प्रेमनाथ डोगरा ने जेल में ही 1 जून से भूख हड़ताल प्रारंभ कर दी।[400] जेल अधिकारियों द्वारा माँगें स्वीकार किए जाने पर ही उन्होंने भोजन ग्रहण किया। 18 जून को डोगरा को जम्मू केंद्रीय कारागार से श्रीनगर स्थानांतरित कर दिया गया। यहीं श्रीनगर की इस उपजेल में डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी को रखा गया था।

प्रजा परिषद् का यह आंदोलन अब अपने निर्णायक मोड़ पर पहुँच गया था। इस आंदोलन के समर्थन में देश के अन्य भागों में भी आंदोलन शुरू हो गया था और उस आंदोलन की तीव्रता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी की जम्मू-कश्मीर में प्रवेश करने पर राज्य सरकार द्वारा की गई गिरफ्तारी ने आंदोलन को गति ही प्रदान नहीं की बल्कि सारे देश की आँखें जम्मू और श्रीनगर की ओर मुड़ गईं।

❑

7.

प्रजा परिषद् आंदोलन का देश भर में विस्तार

7.1. प्रजा परिषद् आंदोलन की देश भर में चर्चा

प्रजा परिषद् का आंदोलन चाहे जम्मू-कश्मीर रियासत तक सीमित था और उसका संचालन भी क्षेत्रीय दल ही कर रहा था, लेकिन जिन मुद्दों को लेकर यह आंदोलन चलाया जा रहा था, वे कहीं व्यापक और राष्ट्रीय महत्त्व के थे। इसलिए राज्य से बाहर भी इन मुद्दों पर और प्रजा परिषद् के आंदोलन पर चर्चा शुरू हो गई थी। नेहरू तो शेख अब्दुल्ला और नेशनल कॉन्फ्रेंस के पक्ष में खड़े ही थे। लेकिन कांग्रेस के भीतर शेख के समर्थन पर मतैक्य नहीं था। साम्यवादी दल भी अपनी लंबी रणनीति के तहत शेख के साथ ही था। भारतीय जनसंघ, राम राज्य परिषद्, हिंदू महासभा व अकाली दल इन प्रश्नों पर प्रजा परिषद् के दृष्टिकोण से सहमत थे। प्रजा परिषद् के अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा ने देश के अधिकांश राजनैतिक दलों के सम्मुख परिषद् का तर्कसम्मत पक्ष प्रस्तुत किया था। भारतीय जनसंघ ने तो अपने स्थापना काल से ही जम्मू-कश्मीर के प्रश्न को अपनी कार्यसूची में रखा हुआ था और समय-समय पर इस प्रश्न पर अपने मत से सरकार को अवगत भी करवाती रहती थी। इसी प्रकार हिंदू महासभा और राम राज्य परिषद् भी जम्मू-कश्मीर में नेहरू-शेख मिलकर जिस रचना को जन्म दे रहे थे, उसका विरोध निरंतर कर रही थी। जम्मू में फरवरी-मार्च 1952 में हुए छात्र आंदोलन के समय भी इन दलों ने राज्य सरकार द्वारा छात्रों से किए जा रहे अन्याय का विरोध किया था। नेहरू क्योंकि जम्मू-कश्मीर पर पाकिस्तान के आक्रमण के प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले गए थे, इसलिए राज्य के भीतर जो घटित होता था, उसकी देश भर में चर्चा शुरू हो ही जाती थी। अंग्रेजी प्रचार तंत्र तो इस प्रश्न पर मोटे तौर पर सरकारी दृष्टिकोण को ही ढोता था; लेकिन भारतीय भाषाओं के समाचार-पत्र इस प्रश्न पर अन्य राजनैतिक दलों प्रजा परिषद्, जनसंघ और अकाली दल के दृष्टिकोण को भी महत्त्व देते थे। देश के अकादमिक क्षेत्रों में भी इस प्रश्न पर चर्चा शुरू हो गई थी। जब राज्य में प्रजा परिषद् ने पूर्ण एकीकरण के प्रश्न को लेकर व्यापक सत्याग्रह शुरू किया तो जाहिर था, देश भर में उसको लेकर हलचल होती और उसके पक्ष या विरोध में चर्चा भी। इसी पृष्ठभूमि में भारतीय जनसंघ ने राज्य की स्थिति को लेकर प्रस्ताव पारित किए और देश का ध्यान इस प्रश्न की ओर खींचा। लेकिन जब नेहरू किसी की बात सुनने के लिए भी तैयार नहीं हुए और उधर राज्य सरकार के सत्याग्रहियों पर अत्याचार बढ़ते गए तो देश भर में प्रजा परिषद् के समर्थन में आंदोलन ही प्रारंभ हो गया।

7.2. भारतीय जनसंघ कार्यसमिति द्वारा 14 जून, 1952 को पारित प्रस्ताव

जम्मू-कश्मीर राज्य के लिए उसकी संविधान सभा संविधान की रचना कर रही थी। यह संविधान कैसा होगा, इसके संकेत मिलने शुरू हो गए थे। शेख अब्दुल्ला राज्य के लिए अलग झंडा रखना चाहते थे, जो देश के और किसी राज्य में नहीं था। इसी प्रकार वे राज्य में राजप्रमुख (उन दिनों भारतीय संविधान के 'ख' श्रेणी के राज्यों के लिए राज्यपाल की जगह राजप्रमुख होता था, जिसकी नियुक्ति राष्ट्रपति करते थे। राजप्रमुख उस रियासत का पूर्व शासक ही होता था।) के स्थान पर 'सदर-ए-रियासत' चाहते थे, जिसका चुनाव राज्य की विधानसभा को करना था। यह प्रक्रिया एक प्रकार से भारत के राष्ट्रपति की तर्ज पर ही थी, जिसका चुनाव संसद् और राज्यों की विधानसभाएँ

करती हैं। इस स्थिति पर भारतीय जनसंघ ने चेतावनी दी, ''हाल ही में राज्य की संविधान सभा ने जो यह फैसला किया है कि उसका अपना निर्वाचित प्रधान और एक पृथक् ध्वज होगा और साथ ही बुनियादी सिद्धांत समिति ने जो यह सिफारिश की कि भारत गणराज्य के भीतर एक स्वशासी गणराज्य होगा, यह सब स्पष्टत: भारत की प्रभुसत्ता और भारत के संविधान की भावना के विपरीत है। वंशानुगत राजतंत्र को मिटाने के लिए निर्णय संसद् को करना चाहिए और इसे भारत संघ के सभी भागों में समान रूप से लागू करना होगा। समिति भारत सरकार से अनुरोध करती है कि वह संयम से काम ले, संसद् से परामर्श किए बिना इस संबंध में कोई निर्णय न करे और जम्मू तथा लद्दाख को कोई ऐसा अवसर न दे कि वे राज्य की संविधान सभा से भिन्न भारत से मिलने का स्वतंत्र रूप से निर्णय करें ''और जनसंघ ने आश्चर्य प्रकट किया कि समझ में नहीं आता भारत सरकार हैदराबाद के उस निजाम के साथ, जिसने भारत की सेना के साथ युद्ध के बाद ही समर्पण किया और जम्मू-कश्मीर के महाराजा के साथ अलग-अलग व्यवहार क्यों कर रही है।'' [401]

भारतीय जनसंघ ने 29 जून को देश भर में कश्मीर दिवस मनाने का निर्णय किया। पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश व राजस्थान में काफी स्थानों पर इस दिन प्रभात फेरियाँ, जलसे, जुलूस और जनसभाएँ की गईं।

साप्ताहिक 'पाञ्चजन्य' ने आंदोलन के विस्तार की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए अपने संपादकीय में लिखा—''सत्याग्रह जम्मू में प्रारंभ हुआ है, किंतु यह लड़ाई केवल जम्मू की नहीं, संपूर्ण भारत की है। अत: भारत की जनता और सभी राजनैतिक दलों के लिए आवश्यक होगा कि वे जम्मू के अपने बंधुओं के साथ मिलकर खड़े हों। जम्मू का प्रश्न भी राष्ट्रीय प्रश्न है और उसे संयुक्त मोर्चा बनाकर सुलझाया जाए। यदि भारत के नागरिकों ने जम्मू सत्याग्रह के पीछे की सच्ची भावना को समझकर उसे अपनाया तो भारत का एक और विभाजन रुक जाएगा, अन्यथा अब्दुल्ला ने कील तो ठोंक ही दी है। 15 लाख की आवाज चाहे कश्मीर सरकार और भारत सरकार दबा दे, किंतु वे 35 करोड़ की आवाज नहीं दबा पाएँगे। जनता की आवाज में वह बल है, जिसके आगे उन्हें झुकना पड़ेगा।'' [402] देश की राष्ट्रवादी शक्तियाँ और बुद्धिजीवी भी जम्मू-कश्मीर के प्रश्न को अब केवल एक राज्य तक ही सीमित नहीं मान रहे थे। इसका प्रभाव भी केवल राज्य तक सीमित रहने वाला नहीं था बल्कि अन्य राज्यों में भी पड़नेवाला था। संघ और राज्यों के संबंधों को लेकर एक नई बहस देश में छिड़ रही थी। ऐसा माना जाने लगा था कि इस प्रादेशिक प्रश्न पर राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाना चाहिए।

इन परिस्थितियों में भारतीय जनसंघ ने प्रजा परिषद् के इस आंदोलन को देशव्यापी विस्तार देने का निश्चय किया। संसद् में विभिन्न दलों के संसद् सदस्यों ने देश के लोगों का आह्वान किया कि वे 14 दिसंबर को देश भर में 'जम्मू-कश्मीर दिवस' मनाएँ। आह्वान पर हस्ताक्षर करनेवालों में डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी के अतिरिक्त निर्मलचंद्र चटर्जी, एन.बी. खरे, एस. रामचंद्र रेड्डी, राजेंद्र नारायण सिंहदेव, हुकुम सिंह, विष्णु घनश्याम देशपांडे, ऐनी मैसकेरीन और उमाशंकर त्रिवेदी थे। इस आह्वान पर देश के अनेक हिस्सों में जम्मू-कश्मीर को लेकर जनसभाएँ की गईं। प्रजा परिषद् के आंदोलन को देश भर में मिल रहे समर्थन को देखते हुए 'पं. जवाहरलाल नेहरू ने सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों को पत्र लिखकर आंदोलनकारियों की धर-पकड़ और उसे कुचलने के लिए कहा।'' [403]

7.3. जनसंघ के कानपुर अधिवेशन में प्रजा परिषद् आंदोलन में चर्चा

इन्हीं परिस्थितियों में भारतीय जनसंघ का 29-31 दिसंबर, 1952 को कानपुर में पहला अखिल भारतीय अधिवेशन हुआ। जनसंघ के अध्यक्ष डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने जम्मू-कश्मीर में चल रहे प्रजा परिषद् के आंदोलन की विस्तार से चर्चा की। उन्होंने कहा, ''प्रजा परिषद् द्वारा चलाए जा रहे आंदोलन को जान-बूझकर बहुत ही गलत ढंग से प्रस्तुत किया जा रहा है। जम्मू की जनता भारत को अपनी पवित्र भूमि मानती है और उसके साथ एकरूप होना चाहती है। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि भारत सरकार न केवल इसमें बाधक बन रही है, बल्कि उन्हें प्रतिगामी, देशद्रोही और यहाँ तक कि पाकिस्तान का मित्र कहकर पुकार रही है। शेख अब्दुल्ला और उसके मित्रों द्वारा प्रस्तुत माँगों के आगे भारत सरकार ने समर्पण कर दिया है। पंथनिरपेक्षता के विकृत विचारों के कारण ही भारत सरकार की दृष्टि धुँधली हो गई है। नेहरू और शेख अब्दुल्ला दोनों ही जम्मू में भयंकर दमन की नीति पर चल रहे हैं। किंतु मैं असंदिग्ध रूप से यह घोषणा करता हूँ कि दमन से यह समस्या हल नहीं होगी। जितना अधिक दमन होगा उतने ही घातक परिणाम होंगे। क्या नेहरू और शेख अब्दुल्ला इतना नहीं जानते कि दमन से तो स्वयं उनके आंदोलन भी नष्ट नहीं हुए थे। यही नहीं, दमन से तो उन्हें भारी लाभ हुआ था। श्री नेहरू और शेख अब्दुल्ला से निवेदन करूँगा कि वे दमन की इस नीति को छोड़ें और झूठी प्रतिष्ठा के फेर में न पड़ें। उन्हें जम्मू के वर्तमान नेताओं से बातचीत करनी चाहिए और एक ऐसे समझौते का मार्ग निकालना चाहिए, जो सभी के लिए उचित व न्यायसंगत हो। जम्मू में आज की हालत चलते रहने देना पूर्णत: अवांछित है और यह भी नेहरू तथा शेख अब्दुल्ला के हाथ में है कि वे जम्मू के जनप्रतिनिधियों के सच्चे भय को दूर करें, जिससे सब मिलकर जम्मू-कश्मीर के एक-तिहाई प्रदेश को मुक्त करवाने का उद्योग करें, जो अभी भी हमारे राष्ट्रीय अपमान के रूप में पाकिस्तान के अधिकार में है। इस बीच हमारी क्रियात्मक सहानुभूति जम्मू के उन सब लोगों के साथ है, जो सरकार के प्रकोप की अग्नि को साहस से सह रहे हैं और एक श्रेष्ठ उद्देश्य के लिए कष्ट उठा रहे हैं।'' [404]

इसी कानपुर अधिवेशन में जनसंघ ने 31 दिसंबर को प्रजा परिषद् के आंदोलन के समर्थन में एक प्रस्ताव पारित किया। प्रस्ताव के अनुसार, ''इस अधिवेशन के मन में (प्रजा परिषद् का) यह आंदोलन न केवल कश्मीर राज्य के भविष्य के लिए ही महत्त्वपूर्ण है, अपितु भारत की अक्षुण्णता एवं सुरक्षा की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। राज्य में कोई भी व्यक्ति सामंतशाही को पुन:स्थापित करना नहीं चाहता और न ही यह आंदोलन, जिसमें सैकड़ों मुसलमान भी खुला भाग ले रहे हैं, सांप्रदायिक कहा जा सकता है। यह अधिवेशन जम्मू की जनता के गौरवपूर्ण संयम की हार्दिक सराहना करता है, जिसका परिचय उसने हार्दिक कष्ट सहकर दिया है और इस आंदोलन के उन वीर हुतात्माओं के प्रति श्रद्धांजलि समर्पित करता है, जिन्होंने राष्ट्रध्वज को ऊँचा रखते हुए अपना बलिदान दिया है। भारतीय जनसंघ शेख अब्दुल्ला को चेतावनी देता है कि इस प्रकार के दमन चक्र से लोकप्रिय जन-आंदोलन को दबाया नहीं जा सकता। अधिवेशन यह सुझाव रखता है कि प्रजा परिषद् के नेताओं एवं अब्दुल्ला सरकार के प्रतिनिधियों तथा भारत सरकार के मान्य नेताओं के बीच तुरंत एक गोलमेज सम्मेलन बुलाया जाए। यदि भारत सरकार इस समस्या को तुरंत हल करने के लिए कोई पग न उठाए तो यह अधिवेशन केंद्रीय कार्यसमिति को यह अधिकार देता है कि वह जम्मू-कश्मीर राज्य के भारत में एकीकरण हेतु एक अखिल भारतीय आंदोलन चलाने के लिए जो भी आवश्यक हो, वह करे।'' [405]

भारतीय जनसंघ देश भर में आंदोलन को समर्थन देने से पहले राज्य में जाकर स्वयं सारी स्थिति का आकलन कर लेना चाहता था। इसलिए उसने सात सदस्यीय प्रतिनिधिमंडल का गठन किया, जिसे जम्मू जाकर हालात का

जायजा लेना था। 'इस प्रतिनिधिमंडल में राजस्थान विधानसभा के उपाध्यक्ष लाल सिंह शक्तावत के अलावा राजस्थान के ही विधायक हरिदत्त, बंगाल से कर्नल डी.एन. भादुड़ी, दिल्ली जनसंघ के अध्यक्ष वैद्य गुरुदत्त, उत्तर प्रदेश से विधायक ठाकुर उम्मीद सिंह, उत्तर प्रदेश से ही चिरंजी लाल मिश्र और पंजाब से प्रेमनाथ जोशी अधिवक्ता शामिल थे।'' [406] लेकिन भारत सरकार ने इस प्रतिनिधिमंडल को राज्य में जाने की अनुमति ही नहीं दी।

7.4. डॉ. मुकर्जी का नेहरू व शेख अब्दुल्ला से पत्र-व्यवहार

भारत सरकार ने इस चेतावनी पर ध्यान देने के स्थान पर शेख अब्दुल्ला की आकांक्षाओं की पूर्ति में सहायता करनी शुरू कर दी। जुलाई में दिल्ली में हुई नेहरू-शेख वार्त्ता में एक प्रकार से शेख की ये सभी माँगें स्वीकार कर ली गईं। सदर-ए-रियासत के चुनाव और आनुवंशिक शासन की समाप्ति में सांविधानिक अड़चनें थीं, लेकिन शेख ने उनकी भी चिंता न करते हुए सदर-ए-रियासत पद की राज्य का संविधान बनने से पहले ही स्थापना कर दी और उस पद पर चुनाव भी करवा दिया। स्पष्ट ही यह असंवैधानिक था। इन सभी प्रश्नों को लेकर जम्मू-कश्मीर में प्रजा परिषद् का आंदोलन 14 नवंबर, 1952 को शुरू हो गया था। अब वह पूरे उफान पर था। अनेक सत्याग्रही पुलिस की गोलियों से शहीद हो चुके थे।

डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने संसद् के अंदर और बाहर पूरा प्रयास किया कि पं. नेहरू कम-से-कम प्रजा परिषद् के नेताओं से मिल तो लें और रियासत में उनके पक्ष को भी सुन लें। लेकिन वे इसके लिए भी तैयार नहीं हुए। नेहरू जम्मू-कश्मीर पर केवल शेख अब्दुल्ला का ही पक्ष सुन रहे थे। प्रजा परिषद् के अध्यक्ष पं. प्रेमनाथ डोगरा से उन्होंने मिलने से भी स्पष्ट इनकार कर दिया था। प्रजा परिषद् के सत्याग्रह को शुरू हुए छह सप्ताह हो गए थे। आंदोलन को पूरे जम्मू क्षेत्र में अपार जन-समर्थन मिल रहा था। इस पर डॉ. मुकर्जी ने प्रजा परिषद् के आंदोलन को लेकर पं. नेहरू और शेख अब्दुल्ला से लंबा पत्र-व्यवहार किया। 9 जनवरी, 1953 को पं. नेहरू को इस विषय पर पहला पत्र लिखा और अंतिम पत्र 17 फरवरी, 1953 को लिखा। नेहरू को लिखे पत्रों की प्रतिलिपि वे शेख मोहम्मद अब्दुल्ला को भी भेजते थे। शेख को उन्होंने पहला पत्र 3 फरवरी और अंतिम पत्र 23 फरवरी को लिखा। इनके माध्यम से डॉ. मुकर्जी ने बहुत प्रयास किया कि किसी तरह सरकार का और आंदोलनकारियों का समझौता हो जाए और प्रजा परिषद् की न्यायपूर्ण माँगें मान ली जाएँ। लेकिन नेहरू व शेख दोनों ही इसके लिए किसी भी कीमत पर तैयार नहीं हुए। डॉ. मुकर्जी ने दोनों से मिलकर भी इस समस्या पर बात करनी चाही, लेकिन उन्होंने इससे भी इनकार कर दिया। न तो नेहरू और न ही शेख के पास डॉ. मुकर्जी के प्रश्नों का कोई उत्तर था और न ही वे प्रजा परिषद् से बात करने के लिए तैयार थे।

9 जनवरी को अपने पहले पत्र में मुकर्जी ने नेहरू को लिखा—''प्रजा परिषद् के आंदोलन को ऐसे लोग भी समर्थन दे रहे हैं, जो परिषद् के सदस्य भी नहीं हैं। प्रजा परिषद् के नेताओं ने आंदोलन से पहले संविधान-सम्मत ढंग से समस्याओं के निराकरण के लिए सभी संभव प्रयास किए। राष्ट्रपति को ज्ञापन दिया। शेख अब्दुल्ला को ज्ञापन दिए। मीडिया के माध्यम से अपना पक्ष प्रस्तुत किया। परंतु उसकी ओर ध्यान देने की बात तो दूर, सभी ने इन प्रयासों को हिकारत से देखा। प्रजा परिषद् पर आरोप लगाया जा रहा है कि वह आंदोलन में हिंसा का प्रयोग कर रही है। परिषद् इसके लिए किसी भी जाँच का सामना करने के लिए तैयार है। पिछले छह सप्ताह से जम्मू में दमन एवं अत्याचार का राज्य स्थापित हो गया है। खैर, आपने तो संसद् में स्वयं ही कहा कि यदि आपके हाथ में होता तो इससे भी ज्यादा ताकत का इस्तेमाल करते और आंदोलन को कुचल देते। आप जानते ही होंगे, इस समय

1,300 सत्याग्रही जेल में हैं। अश्रु गैस, लाठी चार्ज और गोलीबारी सभी साधनों का प्रयोग सरकार कर रही है। दो-चार कपड़ों में ही कैदियों को ठंडे स्थानों में भेजा जा रहा है। सत्याग्रहियों की संपत्तियाँ कुर्क की जा रही हैं। अभी भी समय है कि आप और शेख अब्दुल्ला समझ लें कि यह आंदोलन दमन या ताकत से नहीं कुचला जा सकता।

''जम्मू के लोगों की कुछ आधारभूत माँगें हैं, भविष्य को लेकर उनके अपने डर और आशंकाएँ हैं। उन सभी का निराकरण करना चाहिए। हम चाहते हैं कि जम्मू-कश्मीर रियासत का प्रश्न अंतिम तौर पर हल हो जाना चाहिए। अभी भी ऐसा माना जा रहा है कि अधिमिलन का अंतिम निर्णय लोगों की राय पर निर्भर है। सुरक्षा परिषद् के व्यवहार से यह स्पष्ट है कि वहाँ से हमें न्याय नहीं मिलेगा। लोगों की इच्छा जानने के लिए सामान्य तौर पर जनमत-संग्रह का तो प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए। जम्मू-कश्मीर संविधान सभा अधिमिलन के पक्ष में एक प्रस्ताव पारित कर दे, इसे ही लोगों की राय जानने के लिए पर्याप्त मानना चाहिए। शेख अब्दुल्ला ने मुझे बताया कि वे और उनके साथी इस प्रक्रिया के लिए तैयार हैं, लेकिन आप ही इसके लिए सहमत नहीं हुए। शायद उस समय आपको सुरक्षा परिषद् की न्यायप्रियता पर विश्वास था, जो अब समाप्त हो गया है। इसलिए अब हमें शीघ्रातिशीघ्र अपनी अगली रणनीति बना लेनी चाहिए, ताकि इस प्रश्न पर देश-विदेश में ज्यादा कठिनाइयाँ उत्पन्न न हों।

''परिषद् का केस बिलकुल स्पष्ट है। रियासत के भारत में अधिमिलन का प्रश्न अगर अभी भी अनिश्चित है और इसका अंतिम निर्णय लोगों की राय से ही होना है तो मान लीजिए, कल रियासत का मुसलिम बहुमत भारत के खिलाफ निर्णय दे देता है तो जम्मू का भविष्य क्या होगा? इस स्थिति को काल्पनिक मान कर बचने का प्रयास न करें। हम भारत विभाजन के दु:खांत को भूल नहीं सकते। खान अब्दुल गफ्फार खान और उनके भाई के प्रभावशाली नेतृत्व के बावजूद हम उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत की त्रासदी को क्या भूल सकते हैं? जम्मू के लोगों को आशंका है कि ऐसी स्थिति में उन्हें शरणार्थी बनना पड़ेगा। लोगों की राय जानी जाए या न जानी जाए, वे किसी भी हालत में भारत से संबंध विच्छेद नहीं कर सकते। असल में यही मूल प्रश्न है, जिसका तुरंत निराकरण हो जाना चाहिए। इसके हल होने में जितनी देर लगेगी उतनी ही पेचीदगियाँ और असंतोष बढ़ेगा।

''दूसरा प्रश्न जम्मू-कश्मीर रियासत के भारत में सीमित अधिमिलन की अवधारणा से जुड़ा हुआ है। जम्मू के लोग यही तो कहते हैं कि जिस प्रकार अन्य रियासतों का भारत में अधिमिलन हुआ है, उसी प्रकार इस रियासत का हुआ है और इसे माना जाना चाहिए। तो वे कोई असाधारण या विभेदपूर्ण बात तो नहीं कह रहे। वे तो भारत की स्वतंत्र अखंड अवधारणा के पक्षधर हैं। रियासत के लिए निर्वाचित प्रधान और अलग झंडा देश की राजनैतिक एकता को खंडित करनेवाला सिद्ध होगा।

''दिल्ली समझौते में भी तय हुए नागरिकता, मौलिक अधिकार, उच्चतम न्यायालय और राष्ट्रपति के आपात स्थिति के अधिकार संबंधी मुद्दे अभी तक क्रियान्वित नहीं किए गए। इससे भी लोगों के मन में भ्रम पैदा हो रहा है। ये आधारभूत प्रश्न हैं, जिनके लिए प्रजा परिषद् लड़ रही है। इसका उत्तर दमन व अत्याचार से तो नहीं दिया जा सकता।

''आप तो जम्मू, कश्मीर व लद्दाख क्षेत्रों के सांस्कृतिक व अन्य अंतरों को अच्छी तरह जानते हैं। इन लोगों में एकता के सूत्र ताकत या दमन से तो नहीं बाँधे जा सकते। इसके लिए तो विश्वास व परस्पर स्नेह का समान वातावरण बनाना होगा। यह मनोवैज्ञानिक समस्या है, जिसका संवेदनशील तरीके से ही हल निकाला जा सकता है। आप और शेख अब्दुल्ला ने यदि सही रास्ता पकड़ा होता तो इस दिशा में बहुत कुछ कर सकते थे। लेकिन यह तभी संभव था, यदि रियासत के भविष्य से जुड़े महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर आपसे असहमत होनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को आपने

गलत ही न समझा होता।
''जम्मू के जो लोग हँसते-हँसते बलिदान दे रहे हैं और सरकार के अत्याचार को झेल रहे हैं, वे न तो रियासत के और न ही भारत के शत्रु हैं। उन्हें पाकिस्तान के मित्र कहना तो निहायत बचकानापन होगा। पाकिस्तान जानता है कि यदि प्रजा परिषद् के पक्ष को स्वीकार कर लिया गया तो उसके लिए जम्मू-कश्मीर को हड़पने की संभावना का सदा के लिए अंत हो जाएगा।
''मेरी आपसे प्रार्थना है कि शेख अब्दुल्ला से सलाह करके सभी बंदियों की रिहाई एवं उनको सुनाई गई सजाओं को समाप्त करने से शुरुआत करने के बाद एक साँझा सम्मेलन बुलाकर विवादास्पद मुद्दों पर बातचीत प्रारंभ की जाए और समस्या के समाधान के प्रयास किए जाएँ। आप इसे अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न न बनाएँ। मैंने यह पत्र प्रजा परिषद् के कहने पर नहीं लिखा है; लेकिन मुझे आशा है कि यदि आप सही दिशा में आगे बढ़ेंगे और प्रजा परिषद् की आधारभूत माँगों को समझेंगे तो एक सम्मानजनक समझौता हो सकता है।'' 407

नेहरू ने इन पत्रों के उत्तर में प्रजा परिषद् पर अनेक आरोप लगाए, आंदोलन के बारे में टिप्पणियाँ कीं और कश्मीर समस्या से संबंधित मुद्दे उठाए। नेहरू की प्रमुख आपत्तियाँ थीं—

1. नेहरू का मानना था कि प्रजा परिषद्, आंदोलन को जन-समर्थन के बलबूते नहीं बल्कि डरा-धमकाकर चला रही है। उन्होंने मुकर्जी को लिखा—''प्रजा परिषद् हिंसा का प्रयोग कर रही है। इस हिंसा से अनेक अधिकारी व पुलिसवाले घायल हुए हैं। अनेक भवनों को भी क्षतिग्रस्त किया गया है।'' 408 जिस आंदोलन में नेहरू को जन-समर्थन नहीं दिख रहा था, उसके बारे में यदि डॉ. मुकर्जी के आकलन को दरकिनार भी कर दिया जाए तो नेहरू के अपने विश्वासपात्र कर्ण सिंह को भी 'यह भाँपने में देर न लगी थी कि प्रजा परिषद् का आंदोलन जम्मू क्षेत्र के कोने-कोने में फैलकर गहरी जड़ें पकड़ चुका है।'' 409 कर्ण सिंह ने नेहरू को इस संबंध में लिखा भी —''स्थिति गंभीर है, लेकिन सैन्य दृष्टि से नहीं बल्कि इस दृष्टि से कि प्रजा परिषद् के आंदोलन को जम्मू की अधिकांश जनता का प्रबल समर्थन व सहानुभूति प्राप्त है। मैं यह महसूस करता हूँ कि इसके लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार गहरी जड़ें जमाए अनेक वास्तविक आर्थिक व मनोवैज्ञानिक कारण हैं। मैं नहीं समझता कि समूचे प्रकरण को एक प्रतिक्रियावादी गुट का काम मानकर अनदेखा करना स्थिति का सही आकलन होगा।'' 410 लेकिन जम्मू-कश्मीर के मामले में केवल शेख अब्दुल्ला ही नेहरू के आँख व कान थे और शेख के मुताबिक, ''यह (आंदोलन) तो जम्मू के जमींदारों तथा उच्च वर्गों की एक हिंसक प्रतिक्रिया है।'' 411 और जहाँ तक हिंसा का प्रश्न था, इंटेलिजेंस ब्यूरो के निदेशक मलिक के अनुसार, ''राज्य सरकार ने आंदोलन का मुकाबला बहुत ही सख्ती से किया, कहीं-कहीं तो अत्यंत बर्बरता से भी। लेकिन इसके बावजूद यह आंदोलन तेज होता गया। लेकिन जितना तेज होता गया, सरकार की बदले की भावना उतनी ही बढ़ती गई।'' 412

नेहरू का दूसरा भय था कि इस आंदोलन से मुसलमानों में डर फैल सकता है। वे मुकर्जी को लिखते हैं—''मान लें, कल मुसलिम लीग घाटी में भारत के खिलाफ और पाकिस्तान के पक्ष में आंदोलन छेड़ देती है तो उसका सामना हम कैसे करेंगे? प्रजा परिषद् का यह आंदोलन कश्मीर घाटी तथा शेष भारत में क्या संदेश दे रहा है?''

413 मुकर्जी ने उत्तर दिया, ''आश्चर्य की बात है कि शेख अब्दुल्ला और उसके साथियों के अलगाव की दिशा में किए जा रहे प्रयास आपको राष्ट्रीय व देशभक्तिपूर्ण लग रहे हैं और प्रजा परिषद् की भारत की आधारभूत एकता-अखंडता के लिए इच्छा और भारत के अन्य किसी भी नागरिक की तरह भारतीय संविधान से शासित होने की आकांक्षा देशद्रोह लगती है।'' 414 आश्चर्य है पं. नेहरू इस पर भी दुविधा में हैं कि यदि देश के किसी भाग में मुसलिम लीग पाकिस्तान के समर्थन में आंदोलन करती है तो उसका मुकाबला कैसे करना है? पाकिस्तान बन जाने के बाद भी यदि मुसलिम लीग पाकिस्तान के लिए आंदोलन करती है तो स्वभाविक ही आंदोलनकारियों को कहना होगा कि वे पाकिस्तान चले जाएँ। लेकिन दुर्भाग्य से नेहरू स्वयं ही अपने संकीर्ण राजनैतिक हितों के लिए मुसलमानों के मन में डर ही पैदा नहीं कर रहे थे, बल्कि परोक्ष रूप से उन्हें उत्तेजित भी कर रहे थे। कलकत्ता में 1952 के नववर्ष के अवसर पर उन्होंने जो कहा, उससे स्पष्ट ही ये संकेत मिल रहे थे। नेहरू ने कहा, ''हमारी पंथनिरपेक्ष नीतियों और संविधान की इससे बड़ी पुष्टि क्या हो सकती है कि कश्मीर के लोग भी हमारी ओर खिंचे आए। लेकिन कल्पना करें, यदि जनसंघ415 या ऐसी ही कोई सांप्रदायिक पार्टी सत्ता में होती तो कश्मीर में क्या हुआ होता? कश्मीर के लोग कह रहे हैं कि वे इस सांप्रदायिकता से तंग आ चुके हैं। वे उस देश में क्यों रहें, जहाँ जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ निरंतर उनकी घेराबंदी कर रहे हों। वे कहीं और चले जाएँगे, लेकिन हमारे साथ नहीं रहेंगे।'' 416

लेकिन नेहरू का दुर्भाग्य था कि प्रजा परिषद् के आंदोलन में मुसलमान भी भाग ले रहे थे। शेख अब्दुल्ला को तो इस बात पर विश्वास ही नहीं हुआ कि प्रजा परिषद् के आंदोलन में मुसलमान भी भाग ले सकते हैं। उन्होंने लिखा कि, ''मुझे नहीं लगता कि प्रजा परिषद् के सांप्रदायिक रवैये और कुछ अरसा पहले मुसलमानों से किए गए व्यवहार के बाद भी कोई मुसलमान अपने होशो-हवास में उससे संबंध रखेगा। पाकिस्तान के आक्रमण के समय जब कश्मीर के मुसलमान आक्रमणकारियों का सामना कर रहे थे तो प्रजा परिषद् के नेता जम्मू में मुसलमानों का निर्दयता से कत्ले आम कर रहे थे।'' 417 लेकिन शेख को विश्वास हो या न हो, जम्मू में मुसलमान डोगरे भी आंदोलन में भाग ले रहे थे।

पंजाब विभाजन के कारण पूर्वी पंजाब और पश्चिमी पंजाब से हिंदू-सिक्ख और मुसलमान विपरीत क्षेत्रों की ओर पलायन कर रहे थे। जम्मू क्षेत्र दोनों ओर से आने-जानेवालों का मार्ग था। उन दिनों जिस प्रकार का उत्तेजक वातावरण बना हुआ था उसके कारण दोनों समुदायों के बहुत लोग मारे भी गए। जम्मू- कश्मीर राज्य तो स्वयं ही पाकिस्तानी आक्रमण के कारण युद्ध का अखाड़ा बना हुआ था, जिसके कारण अनेक क्षेत्रों से दोनों समुदायों का विपरीत दिशाओं में पलायन हो रहा था। शेख अब्दुल्ला यह सब जानते-बूझते हुए भी प्रजा परिषद् पर मुसलमानों की हत्या का निराधार आरोप लगाते रहते थे। डॉ. मुकर्जी ने इसी मुद्दे पर शेख अब्दुल्ला को आगाह किया —''प्रजा परिषद् के आंदोलन का विस्तार अपने आप सिद्ध करता है कि इसे जन-समर्थन प्राप्त है। जिन वर्गों (मुसलमानों) के बारे में आप सोचते थे कि वे इसे कभी समर्थन नहीं देंगे, वे भी इसके समर्थन में आ गए हैं। (आपने प्रजा परिषद् के पूर्वकाल की बात उठाई है।) लेकिन आपके अपने केस के बारे में क्या है? मैं आपके पूर्वकाल के बारे में तो नहीं जानता, लेकिन जो कागजात और दस्तावेज मैंने देखे हैं, आपने भी तो अपने राजनैतिक

जीवन की शुरुआत सांप्रदायिक पार्टी से ही की थी। अंग्रेज अधिकारियों ने, हिंदू महाराजा के शासन का अंत करने के लिए, आपके एवं आपके आंदोलन का उपयोग करने में गहरी रुचि प्रदर्शित की थी। इसके बावजूद आपके वर्तमान का मूल्यांकन करने के लिए आपकी पुरानी गतिविधियों की, जो अलीगढ़ से शुरू होती हैं, पर शोध करने की आवश्यकता नहीं है। सन् 1936 व 1947 में बहुत कुछ हुआ है, जिसकी जिम्मेदारी किसी खास पार्टी या समुदाय पर नहीं डाली जा सकती।'' 418

नेहरू स्वयं भी मानते थे कि जम्मू में मुसलमानों की हत्याओं की बिना किसी संदर्भ के एकतरफा चर्चा करना प्रासंगिक नहीं है। मलिक के अनुसार, नेहरू का मत था कि, ''शेख अब्दुल्ला को, कभी तो भड़कावे में और कभी बिना किसी कारण के, जम्मू में 1947 के सांप्रदायिक दंगों में हिंदुओं द्वारा मुसलमानों पर किए गए तथाकथित अत्याचारों की चर्चा करने की आदत है। लेकिन वे उन अत्याचारों की कोई चर्चा नहीं करते, जो पाक द्वारा कब्जा किए जम्मू-कश्मीर में हिंदुओं पर किए गए थे। जम्मू में हिंदुओं द्वारा किए गए अत्याचारों को मुआफ नहीं किया जा सकता, लेकिन ऐसी वारदातें हिंदोस्तान के और कई हिस्सों में हुई हैं और यह उन दिनों पाकिस्तान में जो हुआ था, उसकी प्रतिक्रिया ही थी।'' 419

2. जब भी कश्मीर की बात होती थी तो तुरंत पं. नेहरू अंतरराष्ट्रीय जनमत एवं विश्व शक्तियों का राग छेड़ देते थे। डॉ. मुकर्जी को भी उन्होंने यही बात कही। अपने पत्र में उन्होंने लिखा—''कानूनी निर्णयों अथवा संविधान संशोधनों से रियासत का प्रश्न हल नहीं होगा। इसके रास्ते में अनेक अंतरराष्ट्रीय कारक भी हैं, जो सांविधानिक कारकों को गौण कर देते हैं।420 प्रजा परिषद् के लिए जो जन्म-मरण का प्रश्न था, नेहरू के लिए वह केवल अंतरराष्ट्रीय बहसों का विषय मात्र था। डॉ. मुकर्जी ने नेहरू को इसका उत्तर दिया, ''आप जम्मू आंदोलन की बात करते समय बार-बार अंतरराष्ट्रीय पेचीदगियों की बात करते रहते हैं। आज कोई भी यह दावा नहीं कर सकता कि आपने जिस प्रकार कश्मीर के प्रश्न को सँभालने की कोशिश की है, उससे हमारी अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा बढ़ी हो या फिर इस मामले में हमने अंतरराष्ट्रीय समर्थन या सहानुभूति अर्जित की हो। इसके विपरीत आपकी इस नीति ने बाहर-भीतर पेचीदगियाँ ही बढ़ाई हैं। राजनयिकता का तकाजा तो यही है कि आप इस झूठे अंतरराष्ट्रीय भाव से मुक्त होकर ठंडे दिमाग से इस प्रश्न पर विचार करें। आप विभिन्न मतों एवं विचारों में सामंजस्य बिठाकर राष्ट्रीय एकजुटता का वातावरण तैयार करें। यदि आप इसमें सफल हो गए तो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बात करने के लिए भी हमारी ताकत बढ़ेगी।'' 421

3. लेकिन नेहरू अपनी हठधर्मिता पर अडिग थे। प्रथमतया तो वे प्रजा परिषद् की माँगों के रास्ते में अंतरराष्ट्रीय कारक बाधा मानते थे। द्वितीय, 'प्रजा परिषद् की माँगें आधारभूत सांविधानिक मुद्दों से ताल्लुक रखती हैं, इसलिए अनेक कारणों से इन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकता।'' 422 उन्होंने मुकर्जी को लिखा—''मेरी दृष्टि में प्रजा परिषद् का आंदोलन केवल सांप्रदायिक ही नहीं, बल्कि इसको भारत के सांप्रदायिक एवं संकुचित विचार के लोगों का भी समर्थन मिल रहा है। मुझे रत्ती भर भी शक नहीं है कि यदि यह संकुचित मनोवृत्ति देश में रही तो यह केवल जम्मू-कश्मीर के लिए ही नहीं बल्कि पूरे देश के हितों के लिए आत्मघाती होगी। इसलिए मेरे पास प्रजा परिषद् के इस आंदोलन से किसी भी तरीके से टक्कर लेने के सिवा कोई चारा नहीं है और हम इसी नीति का पालन करेंगे।''

[423]
वास्तव में नेहरू देश भर में घूम-घूमकर प्रचार कर रहे थे कि प्रजा परिषद् का आंदोलन मूल रूप में सांप्रदायिक है और देश की दूसरी सांप्रदायिक ताकतें भी इसका साथ दे रही हैं। डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने इसका स्पष्टीकरण दिया, ''आप बार-बार हम पर सांप्रदायिकता का आरोप लगाते हैं। लेकिन आप स्वयं जीवन भर मुसलिम सांप्रदायिकता का सामना करने से बचते रहे, जिसके भयंकर दुष्परिणाम हुए। आपने और आपके साथियों ने, चाहे आपका उद्देश्य अच्छा ही रहा होगा, मुसलिम तुष्टीकरण की नीति को अपनाए रखा, जिसके कारण देश का विभाजन हो गया; जबकि आप स्वयं बार-बार घोषणाएँ करते रहे कि विभाजन नहीं होने दिया जाएगा। उस समय तो विदेशी ताकत हमारे बीच थी जो 'फूट डालो और राज करो' की नीति पर चलती थी। दरअसल पूर्वकाल में इस संबध में जो मूर्खताएँ हो चुकी हैं, हम उससे बचना चाहते हैं। हमारे दिमाग में राष्ट्रहित ही सर्वोपरि है। हमारा (इस आंदोलन में) कोई सांप्रदायिक या संकुचित स्वार्थ नहीं है।'' [424] इस बात के पर्याप्त संकेत मिलते हैं कि नेहरू स्वयं भी शेख के सांप्रदायिक चरित्र को जान गए थे। प्रजा परिषद् के आंदोलन के दौरान ही इंटेलिजेंस ब्यूरो शेख की गतिविधियों के बारे में नेहरू को सूचनाएँ दे रहा था। ब्यूरो के प्रमुख मलिक के अनुसार, ''नेहरू ने कहा कि शेख का ऐसा व्यवहार उसकी सांप्रदायिक सोच की पृष्ठभूमि के कारण है। यद्यपि राजनैतिक सुविधा के लिए उसने अपना आवरण बदल लिया है, लेकिन वह हृदय से अपनी सोच नहीं बदल पाया है।'' [425] शेख के असली चरित्र को जानते हुए भी नेहरू उसकी ओर से आँखें बंद किए हुए थे। इसका स्पष्ट अर्थ था कि नेहरू अभी भी मुसलिम सांप्रदायिकता का समाधान उसका तुष्टीकरण ही मानते थे।

4. नेहरू के अनुसार, ''प्रजा परिषद् का यह आंदोलन, वास्तव में आर्थिक भेदभाव जैसे छोटे-मोटे मुद्दों को लेकर नहीं है, बल्कि यह तो देश की संसद् के निर्णयों को चुनौती देनेवाला है। यह आंदोलन अंतरराष्ट्रीय मसलों से भी संबंधित है।[426] जम्मू के लोगों का एक वर्ग अंतरराष्ट्रीय विषयों तक में दखलंदाजी कर रहा है और भारत की विदेश नीति को आंदोलन से प्रभावित करने का प्रयास कर रहा है। इस आंदोलन से देश के शत्रुओं को ही लाभ होगा। यह विध्वंसात्मक गतिविधियों को शुरू करने के लिए किए जानेवाला प्रयास है।'' [427]

5. प्रजा परिषद् रियासत के भारत में अधिमिलन के प्रश्न का एकबारगी समाधान देने के पक्ष में था, ताकि रोज-रोज की बहस से उत्पन्न हो रही अनिश्चितता समाप्त हो सके। डॉ. मुकर्जी ने नेहरू को लिखा—''आप बार-बार कहते रहते हैं कि जम्मू-कश्मीर के अधिमिलन का प्रश्न लोगों की राय से निर्णीत होगा। हमारा केवल इतना ही कहना है कि इसको अनंत काल तक लटकाया न जाए, बल्कि एक बार सदा-सर्वदा के लिए निपटा दिया जाए। मेरा सुझाव केवल इतना ही है कि राज्य की वर्तमान विधानसभा अधिमिलन के अनुमोदन से संबंधित एक प्रस्ताव पारित करके इस प्रश्न को सदा-सर्वदा के लिए समाप्त करे। यह प्रश्न इस प्रकार के सांविधानिक ढंग से ही समाप्त होगा, आपके या शेख अब्दुल्ला के भाषणों से नहीं। आप प्रजा परिषद् की यह माँग मानने से क्यों बच रहे हैं? हाँ, यदि आपके पास इसके अतिरिक्त कोई और विकल्प है तो वह भी बता दें।'' [428] नेहरू का उत्तर भ्रम को और बढ़ानेवाला था। उन्होंने लिखा—''जम्मू-कश्मीर संविधान सभा तो कलही अधिमिलन के अनुमोदन में प्रस्ताव पारित कर सकती है, लेकिन जिस प्रकार का अंतिम निर्णय आप इस प्रश्न पर चाहते हैं, वह उससे भी प्राप्त नहीं होगा। अधिमिलन पर

अंतिम निर्णय से कई दूसरे कारक जुड़े हुए हैं, वे सभी हमारे नियंत्रण में भी नहीं हैं।'' 429 शुरू में यह माना जा रहा था कि जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा द्वारा ऐसा प्रस्ताव पारित करने पर लोगों की राय जानने का आश्वासन विधि-सम्मत ढंग से पूरा हो जाएगा। प्रजा परिषद् और देश के लोग भी यही मानते थे। बाद में भारत सरकार ने भी इसी पद्धति को स्वीकार किया। लेकिन नेहरू उस समय इस प्रश्न पर स्वयं ही भ्रमग्रस्त हो रहे थे, जिसके कारण जम्मू व लद्दाख में संशय का कोहरा गहराता जा रहा था।

डॉ. मुकर्जी ने नेहरू की इन शंकाओं को भी दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने लिखा—''मेरा आपसे और शेख अब्दुल्ला से अनुरोध है कि जम्मू-कश्मीर संविधान सभा को, अधिमिलन को अनुमोदित करनेवाला प्रस्ताव पारित करने दिया जाए। राष्ट्र संघ एवं पाकिस्तान से हमें जो भी बाधाएँ आएँ, लेकिन इस कदम से हमारी स्थिति कमजोर नहीं होगी। इसके विपरीत भारत में और कश्मीर में भी आपके पक्ष में सभी दलों द्वारा समर्थित सशक्त जनभावनाएँ होंगी। वैसे भी जम्मू-कश्मीर के अधिमिलन के प्रश्न को लेकर तो हम संयुक्त राष्ट्र संघ में गए नहीं थे। यदि आज राष्ट्र संघ यह पूछना चाहे कि लोगों की राय कैसे ली जाएगी तो हम कह सकते हैं कि संविधान सभा के माध्यम से यह राय जान ली गई है और भारत व कश्मीर में अब यह मामला हल हो गया है।430 कर्ण सिंह ने भी प्रजा परिषद् आंदोलन की मूल चेतना को रेखांकित करते हुए पं. नेहरू को लिखा—''तमाम अनावश्यकताओं को अलग कर देने के बाद भी स्थिति यह है कि जहाँ जम्मू और लद्दाख की जनता भारत के साथ पूर्ण अधिमिलन की प्रबल समर्थक है। वहीं शेख साहिब और उनके साथी भारत के साथ सीमित अधिमिलन पर बहुत ज्यादा जोर देते रहे हैं और वे पूर्ण एकीकरण के लिए भी तैयार नहीं हैं।'' 431 कर्ण सिंह के अनुसार तो, ''जम्मू के लोगों के मुकाबले लद्दाख की जनता शेख अब्दुल्ला के प्रशासन में कुछ ज्यादा असहज और असुरक्षित महसूस कर रही थी।'' 432

6. प्रजा परिषद् आंदोलन से जुड़ा एक तीसरा महत्त्वपूर्ण मुद्दा रियासत के पाक द्वारा हथियाए क्षेत्रों को पुनः रियासत में वापस लाने का था। जम्मू व लद्दाख के लिए यह मुद्दा एक और कारण से भी महत्त्वपूर्ण था। कश्मीर घाटी का तो कोई भी भाग अब पाकिस्तान के कब्जे में नहीं था। मुजफ्फराबाद भी पंजाबी भाषी था। जम्मू प्रांत का मीरपुर जिला कोटली समेत पाकिस्तान के कब्जे में था। इसी प्रकार पुंछ नगर एवं कुछ क्षेत्र को छोड़कर अधिकांश पुंछ जिला भी पाकिस्तान के पास ही था। यहाँ से आए हुए हजारों हिंदू-सिक्ख शरणार्थी अपने घरों को वापस लौटने की आशा लगाए बैठे थे। शेख अब्दुल्ला सरकार उन्हें जम्मू-कश्मीर में बसाने को भी तैयार नहीं थी, बल्कि भारत सरकार की सहायता से बलपूर्वक उन्हें देश के दूरस्थ प्रांतों में भेज रही थी। इन लोगों को आशा थी कि भारतीय सेना ने जिस प्रकार कश्मीर घाटी को पाक सेना से मुक्त करवा लिया है, उसी प्रकार जल्दी ही जम्मू क्षेत्र के शेष भागों को भी मुक्त करवाएगी। यही स्थिति लद्दाख में थी। रियासत का उत्तरी क्षेत्र, जिनमें बाल्तिस्तान व गिलगित आता था, पाकिस्तान के कब्जे में चला गया था। बाल्तिस्तान की केवल एक तहसील कारगिल भारत में थी। लेकिन सरकार इस सारे प्रश्न पर मौन साधे बैठी थी। इसी को लेकर डॉ. मुकर्जी ने नेहरू को लिखा—''दूसरा महत्त्वपूर्ण मुद्दा रियासत के उस एक-तिहाई हिस्से का है, जो अभी भी पाकिस्तान के अवैध कब्जे में है। आप बार-बार दहाड़ते हैं कि किसी को भी रियासत के विभाजन की अनुमति नहीं दी जा सकती।433 हम भी रियासत

को बाँटना नहीं चाहते। इस विषय पर आपको भ्रम है। लेकिन शायद आप जान-बूझकर भूल जाते हैं कि रियासत को तो पाकिस्तान ने पहले ही विभाजित कर दिया है। असली प्रश्न तो यह है कि क्या आपके या शेख अब्दुल्ला के पास इस विभाजन को समाप्त करने का कोई समाधान है? आप सदा ही इस प्रश्न से बच निकलने की कोशिश करते रहते हो।'' 434 लेकिन नेहरू के उत्तर इस प्रश्न पर भी दार्शनिक अंदाज में ही थे। वे इस प्रश्न पर डॉ. मुकर्जी को लिखते हैं—''रियासत के पाक अधिक्रांत हिस्से को मुक्त करवाने के प्रश्न पर तो चर्चा ही संभव नहीं है। यह मसला राजनैतिक व सैनिक मामलों से जुड़ा है। कोई भी सरकार, चाहे वह कितनी भी शक्तिशाली क्यों न हो, वह भी सारे काम अपनी इच्छानुसार नहीं कर सकती। विश्व शक्तियाँ भी सारे काम अपनी इच्छा से नहीं कर सकतीं। तभी तो वे आपस में टकराती हैं और गतिरोध पैदा होता है और विश्व-शांति को खतरा पैदा होता है। इस जम्मू आंदोलन ने पाक अधिक्रांत क्षेत्र को वापस लेने के प्रश्न को और उलझा दिया है। इस आंदोलन ने वहाँ के लोगों के मन में दूरगामी शक व डर अवश्य पैदा किए होंगे। हम शस्त्र बल से किसी क्षेत्र को अपने साथ रखने में रुचि नहीं रखते। हमें लोगों को अपनी सद्भावना से विश्वास में लेना होगा।'' 435

डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी को इस बात की भी चिंता थी कि यदि कश्मीर, जम्मू व लद्दाख के लोगों में परस्पर अविश्वास व दूरियाँ बढ़ती गईं तो यह जम्मू-कश्मीर व शेष भारत के भविष्य के लिए भी शुभ संकेत नहीं होगा। इसलिए उनका प्रयास था कि यदि सरकार प्रजा परिषद् की माँगों पर सहानुभूतिपूर्ण ढंग से विचार करने के लिए भी तैयार हो जाए तो इस दु:खद अध्याय को समाप्त किया जा सकता है। वे इस काम के लिए प्रजा परिषद् और सरकार के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाने को भी तैयार थे। इस हेतु उन्होंने पं. नेहरू को सुझाया कि प्रजा परिषद् और सरकार के प्रतिनिधि बैठकर आपसी बातचीत से मसले को सुलझा सकते हैं। मुकर्जी ने इस आपसी बातचीत के लिए निम्न मुद्दे सुझाए—

1. जम्मू-कश्मीर विधानसभा द्वारा प्रस्ताव पारित करके अधिमिलन को अंतिम स्वीकृति।
2. भारतीय संविधान के निम्न प्रावधानों को राज्य में लागू करने के लिए समयावधि निश्चित करना। मौलिक अधिकार, नागरिकता, वित्तीय एकीकरण, सीमा शुल्क की समाप्ति, उच्चतम न्यायालय का अधिकार क्षेत्र, राष्ट्रपति की आपात शक्तियाँ, राज्य में निर्वाचन।
3. भारतीय संविधान के शेष प्रावधानों को लेकर यदि शेख अब्दुल्ला कुछ परिवर्तन चाहते हैं तो वे बताएँ। उनपर गुण-दोष के आधार पर निर्णय किया जाए।
4. जम्मू-कश्मीर का संविधान जब तैयार हो जाए तो वह भारतीय संविधान का हिस्सा होगा।
5. सीमाओं में परिवर्तन किए बिना जम्मू व लद्दाख को स्वायत्तता दी जाए।
6. भारत के राष्ट्रीय ध्वज की सर्वोच्चता को स्वीकारना।
7. पाकिस्तान द्वारा बलात् अधिकृत जम्मू-कश्मीर के भूभाग की मुक्ति के लिए नीति निर्धारित करना।
8. (जम्मू के लोगों की माँगों पर विचार करने के लिए) जाँच आयोग की स्थापना करना, जिसमें न्यायाधीशों का बहुमत राज्य से बाहर का होना चाहिए। यह आयोग धर्मार्थ न्यास की गतिविधियों एवं आंदोलन के दौरान पुलिस द्वारा किए गए अत्याचारों की जाँच करेगा। आंदोलन से प्रभावित लोगों, खासकर जो शहीद हो गए हैं, को मुआवजा निर्धारित करेगा।
9. आंदोलन के कारण जिन लोगों की पेंशन रोक दी गई है, उसे बहाल करना और जिनकी संपत्ति जब्त करने के

आदेश पारित कर दिए हैं, उन्हें निरस्त करना।[436]

दो दिन बाद मुकर्जी ने नेहरू से फिर कहा, ''मेरा आपको व शेख अब्दुल्ला दोनों को ही सुझाव है कि आप प्रजा परिषद् के प्रतिनिधिमंडल से मिलने की स्वीकृति दे दें। इसके बाद आंदोलन स्थगित होने की घोषणा कर दी जाएगी। इससे अपने आप स्थिति के सामान्य होने एवं सद्भावना निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाएगी। यदि प्रजा परिषद् के दृष्टिकोण पर न्यायपूर्ण एवं निष्पक्ष चर्चा होती है तो कोई कारण नहीं कि वह भी उसी प्रकार का उत्तर न दे।'' [437]

लेकिन न तो नेहरू और न ही शेख अब्दुल्ला प्रजा परिषद् से किसी प्रकार की भी बातचीत करने को तैयार थे। नेहरू ने तो शुरू में ही यह कहकर कि ''यदि आंदोलन ऐसे ही चलता रहा तो इससे निपटने के और तरीके भी सोचने होंगे,'' [438] अपना रवैया स्पष्ट कर दिया था। नेहरू और अब्दुल्ला अपने भाषणों में सदा रियासत की स्वायत्तता का राग अलापते रहते थे; लेकिन जब जम्मू-लद्दाख की स्वायत्तता की बात आती तो नेहरू का उत्तर था, ''जहाँ तक इन क्षेत्रों की स्वायत्तता का सवाल है, हम राज्य सरकार को सलाह ही दे सकते हैं, दबाव नहीं डाल सकते।'' [439] इसके बावजूद डॉ. मुकर्जी ने एक बार फिर 17 फरवरी के अपने पत्र में प्रजा परिषद् और सरकार में गतिरोध को समाप्त करने के लिए नए सुझाव प्रस्तुत किए और यह भी बताया कि यदि इन बिंदुओं पर सहमति बन जाती है तो वे पं. प्रेमनाथ डोगरा से संपर्क करेंगे। मुकर्जी ने नेहरू को लिखा—''आप इस बात पर अड़े हुए लगते हैं कि किसी प्रकार की बात से पहले आंदोलन वापस लिया ही जाए। मैं आपके विचारार्थ निम्न बिंदु रख रहा हूँ—1. आंदोलन वापस लिया जाता है। 2. सत्याग्रहियों की रिहाई के आदेश जारी किए जाएँगे और बदले की भावना से कार्यवाही नहीं की जाएगी। 3. आप और शेख अब्दुल्ला, मान लीजिए पंद्रह दिन बाद, एक कॉन्फ्रेंस बुलाएँगे, जिसमें खुले मन से सभी राजनैतिक व सांविधानिक विषयों पर विचार होगा। 4. दोनों पक्ष घोषणा करते हैं कि रियासत की एकता बनाई रखी जाएगी। जम्मू, लद्दाख व कश्मीर पर स्वायत्तता का सिद्धांत लागू होगा। 5. जितना जल्दी हो सके, नया संविधान लागू होगा और उसके छह मास के अंदर चुनाव करवाए जाएँगे। 6. राष्ट्रीय झंडे पर स्पष्टीकरण दे दिया जाए कि वह प्रतिदिन उसी प्रकार लहराया जाएगा, जैसा अन्य राज्यों में होता है। 7. जिन मुद्दों पर अस्पष्टता बनी हुई है, उन्हें स्पष्ट करने के बाद जम्मू-कश्मीर संविधान सभा के अगले सत्र में दिल्ली समझौता क्रार्यान्वित कर दिया जाएगा। मौलिक अधिकार, नागरिकता, उच्चतम न्यायालय, राष्ट्रपति के अधिकार, वित्तीय एकीकरण, निर्वाचन आयोग से संबंधित भारतीय संविधान के प्रावधान राज्य में भी लागू होंगे।

8. जाँच आयोग की परिधि को विस्तृत किया जाएगा, ताकि उसमें सभी प्रकार की शिकायतें शामिल हो सकें। 9. अभी जाँच आयोग में चार सदस्य हैं। मुख्य न्यायाधीश, लेखागार, प्रधान वन संरक्षण अधिकारी और राजस्व आयुक्त। इनमें से अंतिम तीन तो सरकारी अधिकारी ही हैं। इसलिए वे लोगों में आयोग के बारे में भरोसा पैदा कर सकेंगे, यह कठिन लगता है। आयोग का पुनर्गठन किया जाए, जिसमें मुख्य न्यायाधीश के अलावा भारत से दो न्यायाधीश होने चाहिए, ताकि आयोग की निष्पक्षता और उसके प्रतिनिधि चरित्र पर संदेह न रहे। 10. रियासत का भारत में अधिमिलन अंतिम है। इसके अतिरिक्त अन्य राजनैतिक प्रश्नों पर सम्मेलन प्रत्येक दृष्टिकोण से विचार करेगा। जम्मू-कश्मीर सहित भारत के हितों के अनुकूल उनपर सहमति बनाएगा।[440]

नेहरू से इस विषय पर एक प्रकार से अपना पत्र-व्यवहार समाप्त करते हुए मुकर्जी ने लिखा—''मैंने समझौते के लिए जितना संभव हो सका, यथाशक्ति प्रयास किया है। प्रजा परिषद् की ओर से मैं कोई वायदा तो नहीं कर सकता। मैंने जो सुझाव दिए हैं, अपने उत्तरदायित्व पर दिए हैं। समस्या सुलझाने का यह एक सामान्य रास्ता हो सकता है, जिससे इस दु:खद अध्याय का अंत हो सके। मुझे लगता है, मैंने जो सुझाव दिए हैं, वे आपके विचार करने योग्य हैं। उनपर व्यक्तिगत रूप से भी चर्चा हो सकती है। मैं आपकी सुविधानुसार आपसे भेंट करने के लिए भी तैयार हूँ। हाँ, यदि आपने पक्का फैसला ही कर लिया है कि आंदोलन बिना किसी शर्त वापस लिया जाए और अन्य किसी भी विषय पर सहमति नहीं हो सकती, तब मुझे दु:ख से कहना पड़ेगा कि मैं अपने प्रयत्नों में असफल रहा।'' 441

वास्तव में मुकर्जी जानते थे, राजनैतिक लोग तो आते-जाते रहते हैं, उनकी आपसी कटुता भी कुछ समय के बाद समाप्त हो सकती है; लेकिन शेख के इस व्यवहार से जो कटुता डोगरों और कश्मीरियों में उत्पन्न हो जाएगी, वह लंबे समय तक रहेगी और राज्य के स्वस्थ विकास में घातक सिद्ध होगी। प्रजा परिषद् जो माँग रही थी, वे सार्वजनिक और राष्ट्रीय हित के मुद्दे थे। किसी भी सरकार को, यदि वह सचमुच लोकतांत्रिक है, विपक्ष से बातचीत करने में संकोच नहीं करना चाहिए। प्रजा परिषद् यह आंदोलन अपने राजनैतिक हितों के लिए नहीं चला रही थी। परंतु नेहरू डॉ. मुकर्जी से इन विषयों पर बात करने के लिए भी तैयार नहीं थे। इसमें कोई शक ही नहीं कि मुकर्जी अपने इस प्रयास में असफल रहे थे। परंतु यह असफलता केवल मुकर्जी की नहीं थी, बल्कि नेहरू की हठधर्मिता के आगे यह सारे देश की असफलता थी। जिन दिनों डॉ. मुकर्जी पं. नेहरू को जम्मू की स्थिति से साक्षात्कार करवाने की कोशिश कर रहे थे, उन्हीं दिनों यही प्रयास रियासत के सदर-ए-रियासत कर्ण सिंह भी कर रहे थे। जो आशंकाएँ डॉ. मुकर्जी को थीं, वही आशंकाएँ कर्ण सिंह की भी थीं। उनको लग रहा था कि ''डोगरों और कश्मीरियों में नए सौहार्दपूर्ण संबंध बनाने का आखिरी मौका गँवाया जा रहा है। ये संबंध ही राज्य की स्थिरता और कल्याण को सुनिश्चित कर सकते थे।'' 442 इसलिए उन्होंने उन्हीं दिनों अपनी यह वेदना नेहरू से भी साँझी की। ''जो तथ्य मुझे सबसे ज्यादा परेशान करता है, वह यह है कि जम्मू व कश्मीर के बीच की खाई पिछले कुछ महीनों में और भी गहरी हो गई है और यह खाई पाटने की बजाय बढ़ती ही जा रही है।'' 443

नेहरू ने डॉ. मुकर्जी को लिखा था—''मैं और आप दो अलग-अलग मानसिक धरातल पर हैं''444 और उस धरातल पर वे मुकर्जी के साथ कोई संवाद करना नहीं चाहते थे। लेकिन जिस शेख अब्दुल्ला की वे जमकर तरफदारी कर रहे थे, वह किस धरातल पर थे, इसकी रपट मलिक ने ही नेहरू को दी थी—''(शेख अब्दुल्ला) ने जम्मू के डोगरों पर हिंसक तरीके से दोषारोपण किया। महाराजा हरि सिंह और प्रजा परिषद् को तो अपने आरोपों का खास निशाना बनाया। डोगरों की तुलना जंगली जानवरों से की, जिनमें कोई मानवीय संवेदना नहीं है।'' 445

इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि शेख सत्याग्रहियों के साथ कैसा व्यवहार करते होंगे। मलिक के ही अनुसार, ''(शेख) स्वयं चाहता होगा कि डोगरा समाज के लोग जम्मू छोड़कर भारत में चले जाएँ, ताकि उनकी जमीनें अपनी इच्छा के लोगों को दी जा सकें।'' 446

7.5. प्रजा परिषद् आंदोलन को देश भर में मिला समर्थन

डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी द्वारा पं. जवाहरलाल नेहरू और शेख अब्दुल्ला से किए गए लंबे पत्र-व्यवहार के बाद भी न तो केंद्रीय सरकार और न ही राज्य सरकार प्रजा परिषद् से बात करने के लिए तैयार थी। ऐसी परिस्थिति में भारतीय जनसंघ ने प्रजा परिषद् के इस आंदोलन के समर्थन में देश भर में आंदोलन चलाने का निर्णय किया। जनसंघ की कार्यसमिति की बैठक 10 फरवरी, 1953 को हुई, जिसमें इस आशय का प्रस्ताव पारित किया गया।

प्रजा परिषद् तो केवल यह चाहती है कि जम्मू-कश्मीर राज्य के भारत में अधिमिलन के बारे में जो अनिश्चितता विद्यमान है उसे शीघ्रता से समाप्त किया जाए। किसी भी क्षेत्र में अब कोई ऐसी आशा शेष नहीं रही कि संयुक्त राष्ट्र संघ के हस्तक्षेप से कभी कोई संतोषजनक समझौता हो सकेगा। जहाँ तक भारत का संबंध है, उसने अधिमिलन के प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र संघ को कभी नहीं सौंपा, बल्कि उसकी शिकायत यह थी कि पाकिस्तान ने कश्मीर पर हमला किया है, जो भारत संघ का अंग है। जम्मू-कश्मीर के शासक ने जिस अधिमिलन-पत्र पर हस्ताक्षर किए, उसमें जनमत-संग्रह की कोई चर्चा नहीं है। फिर भी, सरकार ने बार-बार कहा कि कश्मीर के भविष्य का निर्णय जनता की इच्छा से किया जाएगा। प्रश्न अब यह है कि जनता की इच्छा का पता कैसे लगाया जाए? कार्यसमिति का यह निश्चित मत है कि यह कार्य जम्मू-कश्मीर राज्य की विधानसभा द्वारा एक प्रस्ताव पारित होने से हो सकता है। इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न के एक बार निपट जाने के बाद जम्मू तथा अन्य स्थानों की जनता के मन में, राज्य एवं भारत के भावी संबंधों के बारे में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रहेगी। कार्यसमिति अनुभव करती है कि अधिमिलन का प्रश्न ऐसा है जिस पर केवल भारत और जम्मू-कश्मीर को विचार करना है। संयुक्त राष्ट्र संघ या पाकिस्तान का उससे कोई संबंध नहीं है।

प्रजा परिषद् की दूसरी माँग यह है कि समूचे जम्मू-कश्मीर राज्य का शासन प्रबंध स्वतंत्र भारत के संविधान के अनुसार चलाया जाए। इस प्रसंग में शेख अब्दुल्ला भारतीय संविधान के 370वें अनुच्छेद की शरण लेते हैं, जिसमें व्यवस्था है कि विदेशी मामले, रक्षा और संचार इन तीन विषयों को छोड़कर भारतीय संविधान की व्यवस्थाएँ जम्मू-कश्मीर सरकार की सहमति से ही राज्य में लागू की जा सकती हैं। यह संक्रमण काल की व्यवस्था थी और इसके इतिहास से सभी परिचित हैं। इस तरह के आश्वासन उन सभी 500 देशी रियासतों को भी तब दिए गए थे, जब उन्होंने भारत में मिलने का निर्णय किया था। किंतु इन रियासतों के अधिकारियों ने अपने और भारत के हित में मान लिया कि भारतीय संविधान की व्यवस्थाएँ उनपर भी सामान्य रूप से लागू होंगी। अत: शेख अब्दुल्ला और उनकी पार्टी अब थोथे कानूनी आधार पर उस संविधान को स्वीकार करने से इनकार नहीं कर सकते, जिसके अधीन स्वतंत्र भारत का शासन चलता है और यहाँ पर 4 करोड़ मुसलमान समान अधिकार प्राप्त करके समान नागरिकों की तरह रह रहे हैं। उच्चतम न्यायालय, मौलिक अधिकार, नागरिक अधिकार, वित्तीय एकीकरण, राष्ट्रपति के अधिकार, राष्ट्रीय चुनाव आयोग जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के संबंध में समूचे भारत का एक ही संविधान हो सकता है। जम्मू-कश्मीर राज्य में शेख अब्दुल्ला को खुश रखने के लिए पृथक्तावाद की जिन प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया जा रहा है, वे न केवल देश के अन्य भागों में उलझन पैदा कर सकती हैं, बल्कि देश में विघटन व विध्वंस पैदा कर उसे बिखेर भी सकती हैं। प्रजा परिषद् ने समूचे जम्मू-कश्मीर राज्य पर भारत का संविधान पूरी तरह से लागू करने की जो माँग की है, वह उचित एवं वैध है और देशभक्ति व राष्ट्रीय हितों के महान् आदर्शों एवं उद्देश्यों से प्रेरित है। फिर भी, शेख अब्दुल्ला यदि समझते हैं कि कुछ ऐसे विशेष कारण हैं, जिनको देखते हुए कुछ विशेष मामलों में भारतीय संविधान की व्यवस्थाओं में ऐसे संशोधन किए जाने चाहिए, जिनमें जम्मू-कश्मीर का हित हो, तो यह

दायित्व उनका है कि वे देश को विश्वास में लें और अपने सुझावों का पूरा चित्र जनता के सामने रखें।

जनसंघ की कार्यसमिति स्पष्ट कर देना चाहती है कि यद्यपि उसकी सहानुभूति प्रजा परिषद् के आंदोलन के साथ है और उसने सहायता का वचन भी दिया है, तथापि वह संकट को और घनीभूत करना नहीं चाहती। गत छह सप्ताह से जनसंघ अध्यक्ष आपसी बातचीत के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करने के सब संभव प्रयत्न कर चुके हैं; किंतु अब तक उनके प्रयत्नों का कोई वांछित परिणाम नहीं निकला। सरकार यदि अपनी हठधर्मिता पर अड़ी रहती है और दमन-शक्ति का ही सहारा लेना चाहती है तो यह दायित्व जनसंघ का होगा कि वह सरकार की इस नीति का शांतिपूर्ण और अहिंसात्मक ढंग से डटकर विरोध करने के लिए जनता का आह्वान करे। समिति तब इसे अपना नैतिक कर्तव्य समझेगी कि जम्मू के उन वीर नर-नारियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी हो, जो अपनी देशभक्ति, साहस और शौर्य के लिए प्रसिद्ध हैं और अपने जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त करने के लिए कष्ट सह रहे हैं तथा बलिदान दे रहे हैं।[447]

इस प्रस्ताव के बाद भी डॉ. मुकर्जी ने शेख अब्दुल्ला को पत्र लिखकर प्रयास किया कि किसी तरह दोनों पक्षों में समझौता हो जाए और शेख अलगाव की भावना छोड़ दें। मुकर्जी ने शेख अब्दुल्ला को लिखा—''गणतंत्र के भीतर गणतंत्र नहीं हो सकता। केवल एक संसद् ही प्रभुसत्ता-संपन्न हो सकती है और वह भारत की संसद् है।'' [448] परंतु शेख जानते थे कि नेहरू से माँगें किस प्रकार मनवाई जाती हैं। इसलिए वे भी नेहरू की तरह एक ही रट लगाए हुए थे कि, ''प्रजा परिषद् का वर्तमान नेतृत्व अपने उद्देश्य में सांप्रदायिक एवं विघटनकारी है। उनके साथ बातचीत का कोई समान धरातल हमारे पास नहीं है।'' [449] इसके बाद शायद कहने-सुनने के लिए और कुछ नहीं बचा था। डॉ. मुकर्जी ने शेख को लिखा—''मैंने आपसे यह पत्राचार इसलिए शुरू किया था, क्योंकि मैं समझता था कि आप स्वयं जीवन भर संघर्ष करते रहे हैं, इसलिए आप, उनसे भी जिनसे आप असहमत हों, समान व्यवहार करने से नहीं हिचकिचाएँगे। लेकिन अभी तक तो मैं आपकी मनोवृत्ति बदलने में असफल ही रहा। आज आप सत्ता में हैं, इसलिए बातचीत आपकी पहल पर ही निर्भर करती है। मुझे अफसोस के साथ यह कहते हुए पत्र-व्यवहार बंद करना पड़ रहा है कि अत्यधिक भीषण खतरे को देखते हुए भी हम किसी सहमति पर नहीं पहुँच पाए।'' [450] प्रजा परिषद् की माँगें मानना तो दूर, उससे बातचीत के लिए भी नेहरू व शेख अब्दुल्ला ने अपने दरवाजे धड़ाक से बंद कर दिए थे। दरवाजे बंद करने से पहले नेहरू ने मुकर्जी को जो कुछ लिखा, वह तो है ही, लेकिन दरवाजे बंद करने के बाद उन्होंने 22 मार्च, 1953 को कर्ण सिंह को लिखा—''मेरी राय में इन लोगों (प्रजा परिषद्) ने जो कुछ किया है वह देशद्रोह से कम नहीं है और लोगों को यह बात समझ लेनी चाहिए।'' [451]

लेकिन लगता है कि इस मोड़ तक आते-आते शेख अब्दुल्ला नेहरू की परिधि से बाहर निकल आए थे और विदेशी शक्तियों के हाथ में खेलने लगे थे। इन शक्तियों ने उन्हें स्वतंत्र कश्मीर के सपने दिखाने शुरू कर दिए थे और उन्होंने दिन में ही ये देखने शुरू कर दिए थे। सदरे-रियासत कर्ण सिंह ने दिल्ली में पं. नेहरू से भेंट की। नेहरू ने, ''स्वीकार किया कि जब संसद् में या संसद् के बाहर उनसे यह प्रश्न किया जाता है कि दिल्ली समझौते को लागू क्यों नहीं किया गया, तो (मैं) कोई उत्तर नहीं दे पाता।'' [452] यही प्रश्न डॉ. मुकर्जी जब नेहरू से पूछते थे तो वे

शेख की ओर से उत्तर देते थे, जबकि वास्तविकता यह थी कि उनके पास स्वयं ही इसका कोई जवाब नहीं था। वास्तव में नेहरू भी इस प्रश्न का उत्तर ही तलाश रहे थे। उन्होंने उन्हीं दिनों शेख अब्दुल्ला को एक लंबा पत्र लिखा, 'जिसमें इस बात का स्पष्ट उल्लेख था कि ''मामले (दिल्ली समझौते) को बहुत ज्यादा लटकाया जा चुका है। कुछ ही सप्ताह में वे विदेश जा रहे हैं तथा जाने से पहले इस समस्या का हल होता देखना चाहेंगे।'' [453] कर्ण सिंह ने नेहरू से पूछा कि शेख ने क्या उत्तर दिया? नेहरू ने कहा, ''मुझे कोई उत्तर ही नहीं मिला।'' [454] लेकिन इसके बावजूद वे इसी प्रश्न का उत्तर प्रजा परिषद् को दे रहे थे और यह भी चाहते थे कि प्रजा परिषद् इस पर विश्वास कर ले। लेकिन वे साथ ही कर्ण सिंह के इस आकलन से भी सहमत थे कि, ''असीमित अधिकार मिल जाने से संभवत: शेख की फासीवादी तथा अधिनायकवादी प्रवृत्तियों का विकृत रूप ही उभरकर सामने आया है।'' [455] उधर जम्मू में प्रजा परिषद् के सत्याग्रहियों को शेख अब्दुल्ला के इसी फासीवाद का सामना करना पड़ रहा था। नेहरू जम्मू-कश्मीर को लेकर शुरू से अंत तक इसी भ्रम और अनिश्चय एवं हठधर्मिता का शिकार रहे, जिसके दुष्परिणाम पूरे देश को भुगतने पड़े।

7.6. संयुक्त संघर्ष समिति का गठन

भारतीय जनसंघ, रामराज्य परिषद्, हिंदू महासभा एवं अकाली दल द्वारा प्रजा परिषद् के आंदोलन के समर्थन में आंदोलन चलाने के लिए संयुक्त संघर्ष समिति का गठन कर दिया गया। समिति द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर आंदोलन शुरू करने का निर्णय किया गया, जिसका केंद्र दिल्ली बना। 5 मार्च, 1953 से देश व्यापी आंदोलन शुरू करने का निर्णय हुआ। देश भर से सत्याग्रही दिल्ली आने लगे और गिरफ्तारियाँ देने लगे।

7.7. 5 मार्च, 1953 को प्रारंभ हुआ आंदोलन

भारत सरकार शेख अब्दुल्ला सरकार की तर्ज पर ही, प्रजा परिषद् द्वारा उठाए गए मुद्दों पर बातचीत करने की बजाय, इस आंदोलन को लाठी-गोली से दबाने का प्रयास कर रही थी। जनसंघ ने 5 मार्च, 1953 को देश भर में जम्मू-कश्मीर दिवस मनाने का आह्वान किया।

5 मार्च को जम्मू-कश्मीर दिवस मनाने की हलचल हर जगह प्रारंभ हो गई थी। राजस्थान विधानसभा के 30 सदस्यों ने दलीय राजनीति से ऊपर उठकर प्रदेश के लोगों को जम्मू-कश्मीर दिवस मनाने का आह्वान किया। इनमें से 13 सदस्य तेज सिंह, सरदार सिंह, गंगा सिंह, भोपाल सिंह, तन सिंह, हनुमंत सिंह, भैरों सिंह, मान सिंह, भीम सिंह, रूपनारायण, अवनी कुमार, रघुराज सिंह और जयेंद्र सिंह रामराज्य परिषद् के थे। हिंदू महासभा के शंभुनाथ और कृषिकार लोक पार्टी के भैंरू सिंह के अलावा 5 सदस्य हरिदत्त, लाल सिंह, जगत सिंह, संग्राम सिंह और भैरों सिंह दाता जनसंघ के थे। मंगल सिंह, किशोर सिंह, हरि सिंह, खेत सिंह, छतर सिंह, कान सिंह, प्रताप सिंह, अर्जुन सिंह और तेजराज सिंह निर्दलीय विधायक थे। उनके अनुसार, ''जम्मू-कश्मीर की समस्या हमारे राष्ट्रीय जीवन में एक महान् संकट उत्पन्न करने जा रही है। पृथक् विधान, पृथक् निशान और पृथक् प्रधान अपनाकर शेख अब्दुल्ला, लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल के उस महान् कार्य को, जिसके चलते उन्होंने, 1,000 वर्ष की राजनैतिक दासता की समाप्ति के पश्चात्, इस देश राजनैतिक एकता के सूत्र में पिरो कर संगठित किया था, मटियामेट करने जा रहे हैं। प्रजा परिषद् ने शेख सरकार की इस सांप्रदायिक एवं विभेदकारी मनोवृत्ति के विरुद्ध आवाज उठाकर देश की उन समस्त शक्तियों को, जिनका उद्देश्य अखंड भारत है, सामयिक चेतावनी देते हुए इस राष्ट्रघाती कार्य

को रोकने का आह्वान किया है।'' [456](#) राजस्थान में अनेक स्थानों पर जम्मू-कश्मीर दिवस मनाया गया। ऑर्गेनाइजर ने बंबई, बेंगलुरु, मैसूर, शिमोगा, टुमकर, मंगलौर, धारवाड़, बेलगाम, बीजापुर, अमृतसर, जालंधर, फिरोजपुर, लुधियाना, शिमला, अंबाला, पठानकोट, करनाल, रोहतक, दिल्ली, जयपुर, पुणे, लखनऊ, अजमेर इत्यादि अनेक नगरों में जम्मू दिवस को लेकर हुए कार्यक्रमों का विवरण छापा।457

7.8. दिल्ली में जनसभा

आंदोलन प्रारंभ करने के लिए 5 मार्च को दिल्ली में जनसभा का आयोजन किया गया। पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन के सामने के दंगल मैदान में जनसभा को संबोधित करते हुए डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने कहा कि ''अब हमारे सामने दो रास्ते शेष बचे हैं। पहला रास्ता इस अन्याय के खिलाफ चुपचाप सिर झुकाकर बैठ जाने का है, जिसका अर्थ है शेख अब्दुल्ला की दुर्नीति के विष-फल प्रकट होने देना तथा दूसरा रास्ता है इस अन्याय को परिमार्जित करने के लिए शुद्ध देशभक्ति से प्रेरित होकर सर्वस्व त्याग करने की तैयारी करना। शांतिपूर्ण ढंग से पं. नेहरू व अब्दुल्ला की राष्ट्रघाती नीति का विरोध करते हुए ऐसा जनमत प्रकट करना कि आने वाले भयंकर संकट से देश को बचाने के लिए सरकार को बाध्य किया जा सके, और हमने दूसरा मार्ग स्वीकार किया है। नेहरूजी कहते हैं, वह जनसंघ को कुचल डालेगा, तो हम भी बोलता है कि हम उसकी इस कुचलनेवाली मनोवृत्ति को कुचलेगा।'' 458

7.9. दिल्ली में अस्थियों का आगमन

जम्मू-कश्मीर के हीरानगर में प्रदर्शनकारियों पर 11 जनवरी को पुलिस की गोली से बिहारी लाल और भीखम सिंह शहीद हो गए थे। इनकी अस्थियाँ 6 मार्च को दिल्ली पहुँचने वाली थीं। आंदोलन समिति ने दूसरे ही दिन चाँदनी चौक में इन शहीदों को श्रद्धांजलि देने के लिए कार्यक्रम घोषित कर दिया। अस्थियाँ रेलगाड़ी से पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन पहुँचने वाली थीं। पुलिस ने रेलवे स्टेशन पर पुख्ता बंदोबस्त कर रखा था। ''आंदोलन के सूत्रधारों को इस बात का पता चल गया था कि शहीदों की अस्थियों को पुलिस रेलवे स्टेशन पर ही अपने कब्जे में ले लेना चाहती है। इसलिए जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने अस्थियों को दिल्ली से दो स्टेशन पहले ही उतार लिया और एक मोटर द्वारा उन्हें गुप्त रीति से दिल्ली ले आए।'' 459 चाँदनी चौक पर अस्थियों को श्रद्धांजलि हेतु जनसभा थी, लेकिन पुलिस ने डॉ. मुकर्जी और उनके साथियों निर्मलचंद्र चटर्जी, नंदलाल शर्मा व वैद्य गुरुदत्त को जनसभा में पहुँचने से पहले ही धारा 144 भंग करने का आरोप लगाकर गिरफ्तार कर लिया। विरोध प्रकट कर रही भीड़ पर चाँदनी चौक और टाउन हॉल में अनेक बार लाठी चार्ज हुआ और अश्रु गैस छोड़ी गई। ''6 मार्च को गिरफ्तार हुए इन सभी नेताओं को 12 मार्च को सर्वोच्च न्यायालय ने रिहा कर दिया।'' 460

7.10. सत्याग्रह के दो केंद्र

देश भर में चल रहे सत्याग्रह में गिरफ्तारियाँ देने के लिए दो केंद्र स्थापित किए गए—पहला दिल्ली में और दूसरा पंजाब के पठानकोट में। पंजाब और हिमाचल से आनेवाले सत्याग्रही पठानकोट में गिरफ्तारी देते थे और देश के अन्य हिस्सों से आनेवाले सत्याग्रही दिल्ली में गिरफ्तारी देते थे। 'पठानकोट में ओमप्रकाश भारद्वाज ने सत्याग्रह की

समस्त योजना का उत्तरदायित्व सँभाला। पुलिस उन्हें गिरफ्तार करने का भरसक प्रयत्न करती रही, परंतु वे अंत तक पुलिस के चंगुल में नहीं आए। इसी प्रकार दिल्ली के मोर्चे का भार ओमप्रकाश तथा दिल्ली जनसंघ के सहमंत्री प्रो. विजय कुमार मल्होत्रा ने सँभाला था। मल्होत्रा तो एक दिन आकाशवाणी समाचार-पत्र के कार्यालय से गिरफ्तार कर लिये गए, परंतु ओमप्रकाश अंत तक हाथ नहीं आए।'' [461] सरकार ने दिल्ली में धारा 144 लगा दी थी।

7.11. देश भर से आने लगे सत्याग्रही

समस्त भारत से सत्याग्रही जत्थे दिल्ली और पठानकोट पहुँचने लगे। सत्याग्रह का स्थान पहले ही घोषित कर दिया जाता था। दो से लेकर दस तक के जत्थे में सत्याग्रही वहाँ पहुँचे थे। भीड़ के जुटने पर वे भाषण करते थे और जब तक पुलिस उनको पकड़ लेती, भीड़ समर्थन में नारे लगाती थी। लेकिन बाद में सत्याग्रह के स्थान की पूर्व घोषणा बंद कर दी गई, क्योंकि कई बार पुलिस ने सत्याग्रहियों को भाषण देने से पूर्व ही पकड़ लिया। इससे पुलिस की सिरदर्दी तो बढ़ी, लेकिन सत्याग्रह लंबे समय तक चलने लगा। जब तक पुलिस सत्याग्रह वाले स्थान पर पहुँच पाती तब तक काफी भीड़ जमा हो चुकी होती और देर तक भाषण चलते रहते। अन्य प्रदेशों से जो जत्थे दिल्ली में आते थे, वे अपने नगर से चलकर कुछ दिन विभिन्न स्थानों पर घूमते हुए और गाँव-गाँव में प्रजा परिषद् आंदोलन के बारे में लोगों को बताते हुए आते थे। ''दिल्ली में सत्याग्रहियों को न केवल (पुलिस द्वारा) पीटा जाता था बल्कि कई बार राह चलती जनता पर भी लाठी प्रहार किया गया। जेल में यातनाएँ देकर सत्याग्रहियों के नैतिक बल को समाप्त करने का प्रयास किया गया। धारा 144 के उल्लंघन मात्र के लिए सश्रम कारावास और भारी जुर्माने की सजाएँ दी गईं। कार्यालय या निवास-स्थानों पर रात्रि में छापा मारकर पकड़े गए कार्यकर्ताओं पर भी धारा 144 के उल्लंघन के मुकदमे दायर किए गए।'' [462] सत्याग्रह के प्रथम मास में ही कुल 1,200 सत्याग्रही बंदी बनाए गए। ''केवल उत्तर प्रदेश से ही 89 जत्थों में 507 सत्याग्रही गिरफ्तार किए गए। इनमें से 1 विधायक, 27 वकील, 11 डॉक्टर, 83 कर्मचारी, 164 व्यवसायी और 216 किसान थे। 5 महिलाओं ने भी सत्याग्रह किया। एक महिला सत्याग्रही तो अपने डेढ़ साल के बच्चे के साथ गिरफ्तार हुई। सत्याग्रह में शामिल होनेवालों की सूची में 4,000 पुरुष और 200 महिलाओं के नाम अभी भी दर्ज हैं।'' [463] सत्याग्रह की सफलता के लिए अटल बिहारी वाजपेयी ने 26 मार्च से उत्तर प्रदेश का दौरा प्रारंभ कर दिया।

7.12. कांग्रेस व कम्युनिस्टों द्वारा प्रजा परिषद् का विरोध

जम्मू-कश्मीर में कांग्रेस की कोई शाखा नहीं थी। नेहरू ने नेशनल कॉन्फ्रेंस को ही कांग्रेस की राज्य शाखा स्वीकार किया हुआ था। इसी प्रकार कम्युनिस्ट पार्टी के लोग भी वहाँ नेशनल कॉन्फ्रेंस में रहकर ही काम कर रहे थे। लेकिन बाकी राज्यों में तो इन दोनों दलों के संगठन अलग-अलग ही थे। प्रजा परिषद् को देश भर में मिल रहे समर्थन का विरोध करने के लिए इन दोनों दलों ने दिल्ली में सांप्रदायिकता-विरोधी समिति का गठन कर लिया था। यह समिति प्रजा परिषद् और उसके समर्थन में आंदोलन चलानेवाली संयुक्त संघर्ष समिति में शामिल अन्य दलों के खिलाफ साहित्य छापने का काम करती थी। लेकिन इन तमाम सरकारी दमन और दुष्प्रचार के बावजूद आंदोलन फैलता जा रहा था। पुलिस ने घरों में छापे मार कर प्रमुख लोगों को गिरफ्तार करना शुरू कर दिया था।

7.13. मौलिचंद्र शर्मा की गिरफ्तारी का प्रयास

पुलिस ने 20 मार्च को भारतीय जनसंघ के महासचिव पं. मौलिचंद्र शर्मा को गिरफ्तार करने के लिए दिल्ली स्थित उनके आवास पर छापा मारा। वे घर पर नहीं थे, बंबई गए हुए थे। पुलिस ने उनके घर को ताला लगाकर उन्हें फरार घोषित कर दिया। उनके अपने शब्दों में ही, ''जिन परिस्थितियों में मुझे फरार घोषित किया गया और मेरी तथा मेरे परिवार के अन्य सदस्यों की संपत्ति पर पुलिस ने ताला लगा दिया, इस घटना से सरकार की नीयत और नीति पर कितने ही प्रश्न उठ खड़े हुए हैं, जिनके सार्वजनिक तौर पर स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। मुझे किसी प्रकार का वारंट नहीं दिखाया गया। फौजदारी कानून की व्यवस्था, जिसके अंतर्गत मेरे विरुद्ध कार्यवाही की गई थी, इस संबंध में लागू नहीं होती। जब मैं पहुँच के अंदर था और भारत के ऐसे भागों में था, जहाँ एक मजिस्ट्रेट का आदेश मेरे पास पहुँच सकता था, मुझे फरार घोषित करने और मेरी संपत्ति कुर्क करने का कोई अर्थ नहीं होता, सिवाय इसके कि मुझे और मेरे परिवार को तंग किया जाए और मेरे सम्मान को धक्का पहुँचाया जाए।'' [464]

7.14. देश भर में दमन-विरोधी दिवस

3 अप्रैल को देश भर में चलाए जा रहे आंदोलन का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए डॉ. मुकर्जी ने कहा, ''इधर दिल्ली, पंजाब और अन्य स्थानों पर जो संघर्ष हमें अपना कर्तव्य समझकर छेड़ना पड़ा था, वह बराबर चल रहा है। हमारा सारा उद्‌देश्य कश्मीर समस्या पर लोगों का ध्यान केंद्रित करना और उसकी सहानुभूति जाग्रत्‌ करना है, जिससे हमारी सरकार अपनी गलती समझ सके और जरूरत से ज्यादा देर हो जाने से पहले ही उसे सुधार सके। देश के विभिन्न स्थानों से जत्थे अभी आ रहे हैं और 600 से ज्यादा व्यक्ति अब तक बंदी बनाए जा चुके हैं।'' [465] इसी बीच हिंदू महासभा के उमाशंकर त्रिवेदी और विष्णु घनश्याम देशपांडे ने प्रजा परिषद्‌ आंदोलन के समर्थन में पंजाब से होते हुए जम्मू-कश्मीर जाने का निर्णय कर लिया। लेकिन ''पंजाब पुलिस ने उनको 17 अप्रैल को जालंधर में एक पत्रकार सम्मेलन में ही गिरफ्तारी के वारंट थमा दिए और गिरफ्तार कर लिया।'' [466]
यद्यपि संयुक्त संघर्ष समिति ने गिरफ्तारियाँ देने के लिए दिल्ली और पठानकोट दो केंद्र ही तय किए थे, लेकिन दूसरे स्वरूप में सत्याग्रह और आंदोलन पूरे देश में चल रहा था। प्रत्येक राज्य में प्रजा परिषद्‌ के समर्थन में जलसे-जुलूस निकलते थे और जनसभाएँ होती थीं। जिन स्थानों पर आंदोलन का जोर रहता था, वहाँ सरकार ने धारा 144 लगा रखी थी, जिसके अनुसार पाँच या उससे ज्यादा लोग एक स्थान पर खड़े पाए जाते हैं तो वह गैर-कानूनी माना जाता है। दिल्ली के अतिरिक्त पंजाब व उत्तर प्रदेश के सभी बड़े नगरों में धारा 144 लागू कर दी गई थी। पुलिस सत्याग्रहियों को डराती-धमकाती तो थी ही, उनपर अत्याचार भी करती थी। सरकारी नीति आंदोलन को दमन और पशुबल से कुचलने की बन गई थी। संयुक्त संघर्ष समिति ने इस दमन के खिलाफ 20 अप्रैल को दमन-विरोधी दिवस मनाने की घोषणा कर दी। इसको रोकने के लिए सरकार ने बड़े स्तर पर गिरफ्तारियाँ शुरू कर दीं। ''देश भर में 400 लोग एहतियातन गिरफ्तार किए गए।'' [467] दमन-विरोधी दिवस को लेकर पुलिस कितना बौखला गई थी, इसका एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। दिल्ली में ''हौज काजी और अजमेरी गेट के बीचवाली सड़क पर एक हलवाई की दुकान पर एकाएक 'भारत माता की जय' के नारे लगने लगे। 'भारत माता की जय' सुनते ही पुलिस के सिपाही उस ओर दौड़ पड़े। पुलिस को दौड़ते देख जनता भी एकत्र हो गई। इतनी जनता देखकर और भारत माता के नारे सुनकर पुलिस ने लाठियाँ चलाना शुरू कर दीं। बेचारा हलवाई चिल्लाता रहा, लेकिन उसकी सुननेवाला

वहाँ कौन था? लाठियाँ बरसाने की अपनी पहली कार्यवाही कर पुलिस जब सत्याग्रहियों को ढूँढ़ने लगी तो उसे वहाँ कोई नजर नहीं आया। बाद में पता चला कि हलवाई के यहाँ लाउडस्पीकर पर रेडियो चालू था, जिसमें चलनेवाले किसी नाटक में 'भारत माता की जय' के नारे लग रहे थे।'' [468]

उधर पंजाब व हिमाचल में जो सत्याग्रही गिरफ्तार किए जाते थे उन्हें गुरदासपुर की जेल में रखा जाता था; लेकिन जब सत्याग्रहियों की संख्या बढ़ने लगी तो काँगड़ा जिला में धर्मशाला के नजदीक योल कैंप जेल में भेजा जाने लगा। यह जेल द्वितीय विश्व युद्ध में इटली और जर्मनी के कैदियों के लिए अंग्रेज सरकार द्वारा बनाई गई थी। इसी से जेल की हालत का अंदाजा लगाया जा सकता है। जेल की हालत तो खराब थी ही, कैदियों से भी दुर्व्यवहार किया जाता था। अप्रैल मास के अंत तक कैदियों के सब्र का बाँध टूटने लगा। इस पर सत्याग्रहियों ने विरोध जताया तो जेल के अंदर ही पुलिस बुलाकर लाठीचार्ज किया गया। सत्याग्रही भाई महावीर (जो बाद में मध्य प्रदेश के राज्यपाल बने) के अनुसार, ''जब योल कैंप में सत्याग्रहियों को भेजा गया तो वहाँ उनके साथ बहुत बुरा व्यवहार होता था। उन्हें पीने के लिए पानी के घड़े भी न दिए गए। गरमी के दिनों में लोहे का एक घड़ा दिया गया। दवाई की सुविधा भी न दी गई। भोजन भी खराब और खुराक से कम दिया जाता था। सत्याग्रहियों को मनीऑर्डर और पार्सल प्राप्त करने की अनुमति भी नहीं थी। इन परिस्थितियों में सत्याग्रहियों ने जब न्यायपूर्ण माँगें रखीं तो उनका उत्तर पुलिस की लाठियों से दिया गया, जिसमें 14 लोग घायल हुए।'' [469] 6 मई को प्रजा परिषद् के समर्थन में चलाए जा रहे इस आंदोलन को दो मास हो गए। अनुमान है कि इन दो महीनों में दिल्ली, पंजाब व अन्य स्थानों पर 2,000 से ज्यादा सत्याग्रहियों ने गिरफ्तारी दी।'' [470] दिल्ली में चल रहा आंदोलन व्यापक होता जा रहा था। डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी द्वारा स्वयं जम्मू-कश्मीर जाने की घोषणा से वातावरण बहुत उत्तेजित हो गया था और सत्याग्रहियों का उत्साह भी द्विगुणित हो गया था। लेकिन उसके बाद की घटनाओं ने आंदोलन के स्वरूप को ही बदल दिया।

7.15. 'चलो जम्मू' का आह्वान

11 मई को जम्मू-कश्मीर सरकार ने डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी को जम्मू में प्रवेश करने पर बंदी बना लिया। इस पर आंदोलन की संयुक्त संघर्ष समिति ने आंदोलन का केंद्र दिल्ली से बदलकर जम्मू कर दिया। दिल्ली में नारा लगने लगा—चलो जम्मू, चलो जम्मू। पंजाब से सड़क के रास्ते जम्मू पहुँचने का एक ही रास्ता है। यह रास्ता पंजाब के माधोपुर में रावी नदी पर बने पुल को पार करके लखनपुर से होकर जम्मू जाता है। माधोपुर में और पुल पर पंजाब पुलिस व जम्मू-कश्मीर पुलिस का जबरदस्त बंदोबस्त था, ताकि कोई सत्याग्रही जम्मू पहुँच न पाए। अत: सत्याग्रही पंजाब के दीनानगर शहर से आगे रावी नदी पार कर जम्मू-कश्मीर के हीरानगर शहर में पहुँचते थे। इसी प्रकार नगरी पैरोल कठुआ में भी सत्याग्रही आते थे। सत्याग्रही पैदल चलकर छिपते-छिपाते जम्मू, कठुआ या हीरानगर आते थे और गिरफ्तारियाँ देते थे।

राज्य से बाहर के ''मध्य प्रांत से प्रथम जत्थे ने 25 मई, 1953 को गोकुलदास अग्रवाल के नेतृत्व में सत्याग्रह किया।'' [471] इस जत्थे में गिरिराज कपूर के नेतृत्व में ग्यारह सत्याग्रही थे। ''लेकिन कपूर समेत चार सत्याग्रही दिल्ली रेलवे स्टेशन पर ही पकड़े गए।'' [472] इसलिए जम्मू सत्याग्रह के लिए सात लोग ही पहुँच पाए। जम्मू

जेल में इनको दो मास की सजा सुनाई गई। जत्थे के एक सत्याग्रही शिवप्रसाद चौरसिया ने जम्मू जेल की हालत का वर्णन बाद में किया—''जम्मू जेल में सभी प्रकार के सत्याग्रही थे—गरीब-से-गरीब और अमीर-से-अमीर। उस समय यह जेल हमारे लिए पवित्र क्षेत्र बन गया था, जहाँ हमने राष्ट्र-पुरुष के एक छोटे से रूप के दर्शन किए। इसमें जम्मू ,पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, मध्य भारत, राजपूताना और मध्य प्रांत के सत्याग्रही थे, जिन्होंने शेख अब्दुल्ला की तानाशाही नीति के विरुद्ध किए गए संघर्ष में भाग लिया था। जम्मू क्षेत्र को छोड़कर अन्य प्रांतों के जो व्यक्ति जेल में पहुँचे थे, उन्होंने नेहरू-अब्दुल्ला द्वारा लगाई गई परमिट व्यवस्था तोड़ी थी तथा माधोपुर चेक पोस्ट से बचते हुए अन्य पहाड़ी मार्गों से जम्मू में प्रवेश किया था। जिस समय सत्याग्रहियों पर न्यायालय में दफा 50 को तोड़ने का मुकदमा चल रहा था, उस समय सत्याग्रहियों के अनेक बार कहने के बावजूद उनपर परमिट व्यवस्था तोड़ने का मुकदमा नहीं चलाया गया, क्योंकि सरकार जानती थी कि परमिट व्यवस्था गैर-कानूनी था। सत्याग्रहियों को दिया जानेवाला भोजन भी ठीक नहीं था। उन्हें कैदियों के तसले में भोजन दिया जाता था। कभी चावल में और कभी दाल में बड़े-बड़े कीड़े मिलते। दाल और साग इतना कम मिलता था कि चावल के साथ खाओ तो रोटी बच जाती थी और रोटी के साथ खाओ तो चावल बच जाते थे। रोटियाँ एक ओर से जली होतीं और दूसरी ओर से कच्ची। औषधियों का प्रबंध भी ठीक नहीं था। एक बार जेल में सत्याग्रहियों को श्रीनगर ले जाने के प्रश्न पर जोरदार लाठीचार्ज हुआ था, जिसमें अनेक सत्याग्रहियों को पकड़कर बुरी तरह घसीटा गया था। समस्त सत्याग्रहियों ने इसके विरोध में दो दिन तक अन्न ग्रहण नहीं किया। तब श्रीनगर से कर्नल चोपड़ा आए। उन्होंने सारा प्रबंध ठीक करने का आश्वासन दिया और जेल अधिकारियों ने क्षमा-याचना की तब जाकर सब लोगों ने भोजन किया। सत्याग्रह में 12 वर्ष के बालक से लेकर 90 वर्ष तक के वृद्ध आए हुए थे। 12 वर्ष के बालक तिलक को स्कूल में तिरंगा झंडा लगाने के आरोप में गिरफ्तार किया गया था। पुलिस पाँच मास तक उस बालक की खोज में रही, अंत में 32 पुलिसवाले उसे पकड़ने में सफल हुए। पुलिस ने उस बालक पर अनेक दफाएँ लगाईं, जिनमें राजद्रोह की दफा भी शामिल थी। करीब दो महीने जेल में रहने के बाद जब उस बालक से न्यायाधीश ने कहा कि तुम अपनी जमानत ले आओ तो हम तुम्हें छोड़ देंगे, तो तिलक ने जवाब दिया कि मैं अपनी इच्छा से यहाँ नहीं आया, यदि आपकी मरजी है तो छोड़ दो। मैं कोई जमानत नहीं लाऊँगा। न्यायाधीश ने दो दिन बाद उसे मुक्त कर दिया। मैंने वहाँ ऐसे बहुत से सत्याग्रहियों को देखा, जिनके शरीर पर 25-26 घाव थे। ध्यानचंद नामक व्यक्ति के शरीर पर घाव के 26 निशान थे। अत्यंत गरीब और वृद्ध होने के बावजूद सत्याग्रहियों में इतना उत्साह था कि वे कहते थे कि सजा खत्म होने पर फिर सत्याग्रह करेंगे। जेल में आठ मास से लेकर चौदह साल की सजा पाए सत्याग्रही बंदी थे।'' [473] इस सत्याग्रह में भाग लेनेवाले प्रमुख लोगों में हिमाचल प्रदेश के शांता कुमार, मध्य प्रदेश के वीरेंद्र कुमार सकलेचा, राजस्थान के भैंरों सिंह शेखावत भी शामिल थे।

''दिल्ली में जनसंघ व हिंदू महासभा के कार्यालयों पर पुलिस छापे की घटनाएँ नित्य प्रति होने लगीं। सरकार चाहती थी कि जम्मू जानेवालों को दिल्ली में ही गिरफ्तार किया जाए। पुलिस के छापों में कई व्यक्ति गिरफ्तार भी हुए। परंतु फिर भी सत्याग्रहियों के जत्थे पठानकोट से सीमा पार कर जम्मू में प्रवेश पाने लगे।'' [474] जैसे-जैसे दमन का वेग बढ़ता जा रहा था वैसे-वैसे सत्याग्रहियों का उत्साह उससे टक्कर लेने के लिए उमड़ रहा था। पहाड़ी अनजान बीहड़ मार्ग से सत्याग्रहियों के जत्थे पैदल ही जम्मू पहुँच रहे थे। नेशनल मिलिशिया के सिपाही इन सत्याग्रहियों की खोज में दिन-रात लगे रहते थे। परंतु जंगल व पहाड़ों में बसनेवाली जनता के सक्रिय सहयोग से

सत्याग्रही पकड़ में न आ सके। इतना मात्र कहने पर कि हम आंध्र, कर्नाटक, मद्रास, बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश या किसी अन्य राज्य के सत्याग्रही हैं, जनता उनका उत्साह से स्वागत-सत्कार करती थी।'' [475]

जनसंघ के महासचिव पं. मौलिचंद्र शर्मा ने 8 जून को एक पत्रकार सम्मेलन में सत्याग्रह की स्थिति बताते हुए कहा, ''पिछले छह महीनों में सत्याग्रह में अभी तक 10,866 सत्याग्रही बंदी बनाए जा चुके हैं, जिनमें दिल्ली में गिरफ्तार होनेवालों की संख्या 4,316, अन्य प्रांतों से गिरफ्तार होनेवालों की संख्या 1,050 और जम्मू में गिरफ्तार होनेवालों की संख्या 5,500 थी। सबसे अधिक सत्याग्रहियों की संख्या 2,585 उत्तर प्रदेश से थी।'' [476]

❑

8.

डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी का बलिदान और शेख अब्दुल्ला का पतन

8.1. प्रेमनाथ डोगरा व डॉ. मुकर्जी की भेंट

डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने बहुत साल पहले—उन दिनों जब दिल्ली के लाल किले पर अभी यूनियन जैक ही फहराता था, जम्मू-कश्मीर रियासत का प्रश्न अभी प्रारंभ भी नहीं हुआ था—3 जनवरी, 1946 को सायं 6 बजे अपनी डायरी में लिखा—''मेरी तीव्र इच्छा है कि जब भी मेरा अंत आए तो मैं कर्मक्षेत्र में निरंतर सत्य के लिए संघर्ष करता हुआ मरूँ।'' [477] तब शायद वे भी नहीं जानते होंगे कि आनेवाले कुछ ही वर्षों में नियति उनके इन वचनों की रक्षा करेगी। सत्ता का हस्तांतरण हो गया और पं. जवाहरलाल नेहरू देश के प्रधानमंत्री बने। परंतु महात्मा गांधी नहीं चाहते थे कि स्वतंत्र भारत में कांग्रेस सरकार बने। वे तो कांग्रेस को भंग करने के पक्षधर थे। उनकी इच्छा थी कि देश में राष्ट्रीय सरकार बने। इसलिए डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी भी केंद्रीय मंत्रिमंडल में मंत्री बनाए गए। और भी अनेक गैर-कांग्रेसी व्यक्ति महात्मा गांधी के इसी आग्रह पर मंत्री बने थे। लेकिन नेहरू इनमें से किसी को भी साथ लेकर नहीं चल गए और सभी धीरे-धीरे मंत्रिमंडल से अलग होते गए। डॉ. मुकर्जी ने अलग होकर भारतीय जनसंघ की स्थापना की। इसी दौरान उनकी जम्मू-कश्मीर के शलाका पुरुष पं. प्रेमनाथ डोगरा से मुलाकात हुई। राज्य का प्रश्न तब तक भारतीय राजनीति में चर्चित हो चुका था। लेकिन डोगरा से सबसे महत्त्वपूर्ण भेंट वह थी जो, दिल्ली के वेस्टर्न कोर्ट में मई 1952 में हुई। डोगरा ने डॉ. मुकर्जी को जम्मू-कश्मीर की व्यथा-कथा सुनाई। उन्होंने राज्य में शेख अब्दुल्ला के अत्याचारों की कहानी ही नहीं बताई, यह भी बताया कि किस प्रकार शासन जम्मू-कश्मीर को भारत से अलग करने की कुटिल चालें चल रहा है। ''डॉ. मुकर्जी 70 साल के बुजुर्ग पं. डोगरा की ईमानदारी से बेहद प्रभावित हुए थे। प्रजा परिषद् की लड़ाई में अपना समर्थन माँगे जाने की बात सुनकर वे भावुक हो गए थे।'' [478] तब उन्होंने पं. प्रेमनाथ डोगरा को आश्‍वस्त किया था कि आप जम्मू चलो, मैं भी आता हूँ। और वे प्रजा परिषद् के सम्मेलन में भाग लेने के लिए अगस्त में वहाँ गए भी थे। वहीं रास्ते में कठुआ पहुँचने पर उन्होंने कहा था, ''मैं जम्मू-कश्मीर के लिए या तो भारत का संविधान लाऊँगा या अपने प्राण दे दूँगा।'' [479] और अब वे पूरे एक साल बाद 8 मई, 1953 को जम्मू-कश्मीर को भारत का संविधान देने के प्रयास में फिर जम्मू जा रहे थे।

लेकिन ''इस यात्रा से पहले अपनी माँ का आशीर्वाद लेने के लिए वे कलकत्ता पहुँचे। कलकत्ता में ही वे भारत सेवाश्रम संघ गए, जो एक हिंदू मठ और परोपकारी संस्था है। इसके संस्थापक स्वामी प्रणवानंद ही उन्हें राजनीति में लेकर आए थे। मठ के मुखिया स्वामी सच्चिदानंद ने किसी अनहोनी की आशंका से उन्हें बार-बार जम्मू न जाने की सलाह दी।'' [480] परंतु मुकर्जी तो अपनी यात्रा पर निकलपड़े थे, क्योंकि उन्होंने जम्मू-कश्मीर के लोगों को

वचन दिया था।

8.2. जम्मू जाने का उद्देश्य

डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी 8 मई, 1953 को दिल्ली से जम्मू के लिए रवाना हुए। अपने जम्मू-कश्मीर जाने के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने बयान जारी किया—''जम्मू जाने का मेरा एकमात्र उद्देश्य यह है कि मैं स्वयं को इस बात से परिचित होना चाहता हूँ कि वहाँ क्या हुआ है और मौजूदा हालात कैसे हैं। मैं वहाँ प्रजा परिषद् के अतिरिक्त अन्य नेताओं से संपर्क करूँगा, जो अलग-अलग हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मेरा यह प्रयास होगा कि मैं जान सकूँ कि जम्मू के लोगों के मन में क्या चल रहा है और यह पता लगाने की कोशिश होगी कि क्या ऐसी कोई गुंजाइश है कि आंदोलन को शांतिपूर्ण और सम्मानजनक मोड़ पर लाकर खत्म किया जाए, जो न सिर्फ राज्य के लोगों के लिए बल्कि पूरे भारत के लिए उपयुक्त और न्याययुक्त होगा। मैं पूरे भरोसे के साथ यकीन करता हूँ कि जब मैं इस उत्तरदायित्व को निभाने का प्रयास करूँगा तो मुझे सभी पक्षों का पूरा समर्थन और सहानुभूति मिलेगी। अगर मुझे राज्य में प्रवेश होने दिया जाता है तो मैं इस बात से इनकार नहीं करता कि मैं शेख अब्दुल्ला से भी मिलूँगा और उनसे निजी तौर पर बातचीत करूँगा।'' [481]

अंबाला तक के रास्ते में हर छोटे-बड़े स्टेशन पर उनके स्वागत के लिए और उनको सुनने के लिए लोगों की भीड़ थी। ''शाहदरा में भीड़ की संख्या 2,000, गाजियाबाद में 5,000, मोदीनगर में भी 5,000, मुरादनगर में 1,000 थी।'' [482] गाड़ी क्योंकि पैसेंजर थी, इसलिए हर स्टेशन पर रुकती थी। मेरठ, मुजफ्फरनगर और सहारनपुर के स्टेशनों पर उन्होंने कुछ देर के लिए लोगों को संबोधित भी किया।

8.3. अंबाला से पठानकोट तक जन-उत्साह

अंबाला में उनकी जनसभा रखी हुई थी। लेकिन प्रशासन ने धारा 144 लगा कर जनसभा करने की मनाही कर दी। तुरंत स्थानीय आर्यसमाज हॉल में सभा का आयोजन किया गया। यहाँ उन्होंने एक बार फिर अपना जम्मू जाने का उद्देश्य स्पष्ट किया, ''जम्मू सरकार यह कहती है कि प्रजा परिषद् का आंदोलन मर चुका है, प्रजा परिषद् के सदस्यों ने सरकारी भवनों को हानि पहुँचाई है। यह आंदोलन हिंसात्मक है और जनता के शिष्टगण इस आंदोलन के विरुद्ध हैं। लेकिन हमको इन सब बातों के विपरीत समाचार मिल रहे हैं। इसलिए सत्य की खोज में जाना आवश्यक हो गया है।'' [483] अंबाला से ही उन्होंने पं. जवाहरलाल नेहरू और शेख अब्दुल्ला को तार भेजा। नेहरू को लिखा—''मैंने कश्मीर प्रवेश के लिए जान-बूझकर परमिट के लिए आवेदन नहीं किया, क्योंकि सरकार उन सभी को, जो उसकी कश्मीर नीति से असहमत हैं, चाहे वे सांसद या विधायक ही क्यों न हों, सुनियोजित ढंग से परमिट देने से इनकार करती है।'' [484] और शेख अब्दुल्ला को लिखा—''मैं बिना परमिट के जम्मू जा रहा हूँ। मेरा वहाँ जाने का प्रयोजन, वहाँ की परिस्थिति को जानकर, आंदोलन शांत करने के उपाय खोजना है। यदि संभव हुआ तो मैं आपसे भी मिलना चाहूँगा।'' [485]

अंबाला से उसी दिन डॉ. मुकर्जी कार द्वारा करनाल पहुँचे। करनाल के रास्ते में शाहाबाद, मारकंडा और नीलोखेड़ी में जनसभाओं को भी संबोधित किया। रात्रि लगभग 8 बजे वे करनाल पहुँचे। वहाँ 10,000 से भी ज्यादा

लोगों की भीड़ डॉ. मुकर्जी को सुनने के लिए व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रही थी। उन्होंने इस जनसभा में कहा, ''श्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने संसद् में कहा है कि जम्मू-कश्मीर का अधिमिलन भारत में शत-प्रतिशत हो चुका है। मैं पंडितजी के इस कथन की परीक्षा करने के लिए जा रहा हूँ। मेरा विचार है कि भारत के प्रत्येक भाग में भारत के एक नागरिक को आने-जाने का अधिकार है। मैंने यह घोषित किया है कि मैं वहाँ आंदोलन को प्रोत्साहन देने नहीं जा रहा हूँ। अब देखना है कि पं. नेहरू और शेख अब्दुल्ला इस विषय में क्या करते हैं।'' 486 रात्रि को वे करनाल में ही ठहरे।

9 मई को प्रात:काल कार से पानीपत के लिए रवाना हुए। पानीपत में प्रात: 8 बजे विशाल जनसभा को संबोधित करते हुए कहा, ''पं. नेहरू एक-तिहाई कश्मीर पाकिस्तान को दे चुके हैं। मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि इस भाग को लेने के लिए क्या प्रयत्न किया गया है? और यदि कुछ प्रयत्न नहीं किया गया है तो क्यों नहीं किया गया है? ऐसा सुनने में आ रहा है कि भारत के एक भाग को सरकार पाकिस्तान को भेंट कर देना चाहती है। मैं पूछना चाहता हूँ, ऐसा क्यों? क्या केवल इसलिए कि वहाँ मुसलमानों की संख्या अधिक है? यदि केवल मात्र यही कारण है तो मुसलमानों के लिए देश के टुकड़े करनेवाले किस प्रकार दूसरों को सांप्रदायिक कहने का साहस कर सकते हैं? मैं भारत की एक इंच भूमि को भी विदेशियों के हाथ में जाने देना नहीं चाहता।'' 487

पानीपत से वे बंबई एक्सप्रेस से फगवाड़ा के लिए रवाना हुए। स्टेशन पर हजारों लोग उन्हें विदा करने आए।

सायं 4.30 बजे फगवाड़ा पहुँचे। वहाँ एक जनसभा को संबोधित किया और जनसंघ के कार्यकर्ताओं की बैठक ली। जब वे जनसभा को संबोधित कर रहे थे तो शेख अब्दुल्ला का जवाब आ पहुँचा—''आपका इस समय जम्मू आना ठीक नहीं है। इसलिए कृपया न आएँ।'' लगता था कि इतिहास अपने आपको दोहराने लगा था। आज से पूरे छह वर्ष पहले जवाहरलाल नेहरू भी इसी तरह जम्मू-कश्मीर में आए थे। महाराजा ने उनके प्रवेश पर पाबंदी लगा दी थी। उनको रोकने के लिए उस समय के प्रधानमंत्री ने जवाहरलाल नेहरू को तार दिया था। अब छह साल बाद जब डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी राज्य में प्रवेश कर रहे थे तो उनके प्रवेश करने पर भी पाबंदी लगा दी गई, लेकिन अब भारत स्वतंत्र था, परंतु शब्द वही थे, जो 1946 में जवाहरलाल नेहरू को रियासत में प्रवेश करने से रोकने के लिए कश्मीर के उस समय के प्रधानमंत्री राय बहादुर रामचंद्र काक ने लिखे थे।488 केवल तिथि बदल गई थी। डॉ. मुकर्जी ने शेख का तार सभा में ही पढ़कर सुनाया और कहा, ''मैं जम्मू में जाकर परिस्थिति का अध्ययन करना चाहता हूँ, इस कारण इसकी उपयोगिता को मैं समझता हूँ। यदि शेख साहब को मुझसे मिलने में कोई लाभ नहीं लगता तो वे न मिलें और अपना समय किसी अन्य उपयोगी कार्य में व्यतीत करें।'' 489 वे रात्रि फगवाड़ा में ही रुके।

10 मई को कार से चलकर वे दोपहर 11 बजे जालंधर पहुँचे। वहाँ एक पत्रकार वार्त्ता को संबोधित किया। पत्रकारों के प्रश्न के उत्तर में कहा, ''नेहरू को जम्मू-कश्मीर के विषय में जनमत-संग्रह की बात नहीं करनी चाहिए थी और यदि की भी थी तो इसको केवल जम्मू-कश्मीर और भारत के बीच का विषय रहने देना चाहिए था। इसको एक अंतरराष्ट्रीय विषय बनाना सर्वथा अदूरदर्शिता का चिह्न है।'' 490 जालंधर से सायं 5 बजे ट्रेन से वे अमृतसर के लिए चल पड़े। इसी ट्रेन में उन्हें एक सज्जन मिले, जिन्होंने अपने आपको गुरदासपुर का जिलाधीश बताया और

कहा, ''यद्यपि मैं आपको पहले बताने के लिए बाध्य नहीं हूँ, इस पर भी यह कह देने में हानि नहीं समझता कि पंजाब सरकार ने यह निर्णय कर लिया है कि आपको पठानकोट तक न जाने दिया जाए। मैं अभी यह नहीं बता सकता कि आपको कब और कहाँ पर बंदी बना लिया जाएगा। इस विषय में मैं अपनी सरकार की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'' [491] अमृतसर रेलवे स्टेशन पर उनके स्वागत के लिए लगभग 20,000 लोगों की भीड़ एकत्र थी। स्वागत-सत्कार के बीच वे ठहरने के स्थान पर पहुँचे। रात को जनसंघ के कार्यकर्ताओं की एक बड़ी सभा आर्यसमाज मंदिर में रखी गई थी।

कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, ''यदि नेहरूजी अपने जनमत-संग्रह का वचन भंग नहीं करना चाहते तो अब जम्मू-कश्मीर की विधानसभा को, जो जनता के मतदान से बनी है, यह प्रश्न सुलझाने के लिए दें। यही प्रजा परिषद् चाहती है। यह कहना युक्तिसंगत भी है और उनका अधिकार भी। रहा सत्याग्रह, वह तो जम्मू-कश्मीर सरकार ने धारा 50 लगाकर स्वयं चलवाया है। प्रजातंत्रात्मक पद्धति में जलसे, जुलूस व प्रदर्शन प्रचार के साधन हैं और इन पर प्रतिबंध लगाना प्रजातंत्र का गला घोटना है।'' [492] कश्मीर सुरक्षा अधिनियम की धारा 50 में प्रावधान था कि निश्चित संख्या से ज्यादा एक स्थान पर लोग एकत्र नहीं हो सकते, न प्रदर्शन कर सकते हैं और न ही किसी प्रकार का जुलूस निकाल सकते हैं। यह धारा विरोध के तमाम न्यायसंगत मार्गों को रोकती थी। रात्रि को वे अमृतसर में ही ठहरे। 11 मई को प्रात:काल अमृतसर से पठानकोट को गाड़ी से चले। पठानकोट रेलवे स्टेशन पर लोगों की भारी भीड़ इकट्ठा थी।

8.4. भारत सरकार द्वारा जम्मू जाने की अनुमति

पठानकोट में ही गुरदासपुर जिला के उपायुक्त एक बार फिर मुकर्जी को मिले। ''उपायुक्त ने बताया कि मुझे निर्देश प्राप्त हुआ है कि मैं आपको बिना परमिट जम्मू जाने दूँ। मैं आपको सायं 4 बजे रावी नदी के माधोपुर पुल पर मिलूँगा।'' [493] अब स्पष्ट हो गया कि मुकर्जी को जम्मू प्रवेश से रोका नहीं जाएगा। तुरंत एक जीप की व्यवस्था की जाने लगी, जो जम्मू तक जा सके। लेकिन आखिर जीप के ड्राइवर के लिए तो परमिट जरूरी था। वह उसके बिना जम्मू जाने के लिए कैसे तैयार होता? इसी स्थिति में डॉ. मुकर्जी अपने साथियों समेत जम्मू की ओर रवाना हुए। उनके साथ दिल्ली जनसंघ के प्रधान वैद्य गुरुदत्त भी थे। पंजाब व जम्मू-कश्मीर के सीमांत गाँव माधोपुर पहुँचने पर गुरुदत्त के शब्दों में ही ''गुरदासपुर के उपायुक्त, बटाला, गुरदासपुर और पठानकोट के रेजीडेंट मजिस्ट्रेट समेत पुलिस कांस्टेबल तथा अन्य अफसर भारी संख्या में मौजूद थे। हमने अपनी जीप गाड़ी वहाँ खड़ी कर ली और डिप्टी कमिश्नर से जीप के लिए परमिट माँगा। उन्होंने वचन दिया कि हम लखनपुर पोस्ट तक, जो पुल के उस पार है, चलें और वे परमिट भेज देंगे। हमारे जाने पर उन्होंने हमारी यात्रा की सफलता के लिए शुभ कामना प्रकट की।'' [494] लेकिन पुल के उस पार लखनपुर तक पहुँचने का अवसर ही नहीं आया।

8.5. जम्मू प्रवेश पर डॉ. मुकर्जी की गिरफ्तारी

पुल के बीचोबीच कठुआ के पुलिस अधीक्षक और कश्मीर मिलिशिया के जवान खड़े थे। उनमें से एक ने हाथ देकर जीप को रोक लिया। ''पुलिस अधीक्षक ने राज्य के मुख्य सचिव का एक आदेश मुकर्जी को थमा दिया, जिसमें उनका कश्मीर प्रवेश निषेध था। डॉ. मुकर्जी विस्मृत थे। वे समझ नहीं पाए कि क्या यह शेख अब्दुल्ला की

भारत सरकार से पूरी तरह स्वतंत्र होने की घोषणा है या फिर भारत सरकार और जम्मू-कश्मीर सरकार का कोई षड्यंत्र है? उन्होंने यह आदेश मानने से इनकार कर दिया और आगे बढ़ने लगे। तब एक दूसरा पुलिस अधिकारी जम्मू दिशा की ओर से मोटर साइकिल पर आया और उसने एक दूसरा आदेश थमा दिया। यह आदेश उन्हें गिरफ्तार करने का था। यह सबकुछ एक नाटक की तरह हुआ, जिसकी योजना पहले से बनाई गई थी।'' [495]
दूसरा आदेश राज्य के पुलिस महानिदेशक का 10 मई, 1953 का जारी किया हुआ था, जिसमें लिखा गया था कि, ''डॉ. मुकर्जी ने ऐसी गतिविधि की है, कर रहे हैं या करनेवाले हैं, जो सार्वजनिक सुरक्षा एवं शांति के खिलाफ है। इस कारण से उनको रोकने के लिए कैप्टन ए. अजीज, कठुआ के पुलिस अधीक्षक, को निर्देश दिया जाता है कि वे डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी को गिरफ्तार करें और उन्हें अपनी हिरासत में श्रीनगर के केंद्रीय कारागार में पहुँचाएँ।'' [496] यह आदेश जन सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत जारी किया गया था। डॉ. मुकर्जी को बंदी बना लिया गया। अपने निजी सचिव अटल बिहारी वाजपेयी को उन्होंने कहा, ''पूरे देश को यह बताओ कि मैं आखिरकार जम्मू-कश्मीर राज्य में दाखिल हो गया हूँ, हालाँकि एक बंदी के रूप और मेरी अनुपस्थिति में मेरे काम को बाकी लोग आगे बढ़ाएँगे।'' [497] पुलिस डॉ. मुकर्जी और उनके अन्य साथियों को लेकर श्रीनगर की ओर चल पड़ी और दूसरे दिन बाद दोपहर 3 बजे वे श्रीनगर की जेल में थे। डॉ. मुकर्जी की गिरफ्तारी के बाद पं. मौलिचंद्र शर्मा नेहरू से मिले और कहा, ''इनका भारी बदन है और हार्ट इनका ठीक नहीं है, इसलिए इनको कश्मीर की ऊँचाई पर मत भेजिए। नेहरू ने कहा, नहीं ये श्रीनगर में रहेंगे, कोई ऊँचाई भी नहीं है और न ही पहाड़ हैं। ठंडी जगह है, प्रसन्न रहेंगे।'' [498]

8.6. डॉ. मुकर्जी श्रीनगर की जेल में

डॉ. मुकर्जी को श्रीनगर में निशात बाग के समीप के एक भवन को उप-जेल घोषित कर रखा गया। वैद्य गुरुदत्त और टेकचंद को भी उसी मकान में रखा गया था। 24 मई को पं. जवाहरलाल नेहरू भी विश्राम के लिए श्रीनगर पहुँचे, लेकिन वे डॉ. मुकर्जी से नहीं मिले। नेहरू तो अपनी इच्छा से डॉ. मुकर्जी को मिलने नहीं गए, लेकिन जो लोग मुकर्जी से मिलना चाहते थे, उन्हें भी मिलने की आज्ञा नहीं दी जा रही थी। उनके कुछ संबंधी उन्हें मिलने के लिए श्रीनगर आ रहे थे। ''यह जानकर उन्हें भारी हर्ष हुआ। परंतु उसके पश्चात् उन्हें इस विषय में कोई समाचार नहीं मिला। (मुकर्जी की मृत्यु के बाद) यह समाचार मिला कि वे लोग श्रीनगर आए थे और उन्होंने भेंट करने के लिए प्रार्थना-पत्र भी दिया था; परंतु भेंट करने की स्वीकृति नहीं मिली। डॉ. मुकर्जी का पुत्र पटना से दिल्ली पहुँचा और उसने भारत सरकार से कश्मीर जाने के लिए परमिट माँगा। भारत सरकार ने एक सप्ताह की आनाकानी के बाद परमिट देने से इनकार कर दिया। वे अधिकारी, जो परमिट देने का अधिकार रखते थे, बोले—यदि आप सैर करने के लिए जाना चाहते हैं तो दो मिनट में परमिट बनाया जा सकता है; परंतु आप अपने पिताजी से मिलने जाना चाहते हैं, इस कारण मैं परमिट जारी नहीं कर सकता। डॉक्टर साहब के सुपुत्र को निराश पटना लौट जाना पड़ा। श्री हुक्म सिंह ने व्यक्तिगत मित्र के नाते मिलने की अनुमति माँगी थी, परंतु वह नहीं दी गई। जब उन्होंने कश्मीर सरकार की कुछ इच्छाओं को डॉ. मुकर्जी तक पहुँचाने का जिम्मा लिया तब ही उनको भेंट करने की स्वीकृति मिली। इसी प्रकार डॉ. मुकर्जी के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर करने के लिए आए श्री उमा शंकर त्रिवेदी,

एडवोकेट सुप्रीम कोर्ट को भी मिलने की स्वीकृति तब तक नहीं दी गई जब तक जम्मू-कश्मीर हाई कोर्ट ने पृथक् से मिलने की आज्ञा नहीं दे दी।'' [499] 19 जून को पं. प्रेमनाथ डोगरा को भी उसी मकान में लाया गया, जहाँ मुकर्जी कैद थे; लेकिन जगह इतनी छोटी थी कि उनके लिए ''परिसर में ही तंबू लगाना पड़ा।'' [500]

8.7. डॉ. मुकर्जी की बीमारी और रहस्यमय मृत्यु

19 जून की रात्रि को ही डॉ. मुकर्जी ने पीठ और छाती में दर्द की शिकायत की। अगले दिन डॉ. अली मोहम्मद जेल में आए और उन्होंने रोग की पहचान शुष्क पार्श्वशूल की। डॉ. अली ने उन्हें स्ट्रेप्टोमाइसिन का टीका लगाया। डॉ. मुकर्जी ने अलबत्ता अली को बताया कि उनके निजी डॉक्टर ने उन्हें स्ट्रेप्टोमाइसिन की मनाही की है। लेकिन अली ने चिंता न करने के लिए कहा और कुछ दर्द-निवारक गोलियाँ भी दीं। अगले दिन बुखार व दर्द दोनों बढ़ने लगे। 22 जून तक आते-आते हालत और भी गंभीर हो गई। तड़के 3 बजे डॉ. मुकर्जी के लिए दर्द असह्य हो गया तो उन्होंने वैद्य गुरुदत्त को जगाया। शायद उन्हें दिल का दौरा पड़ा था। जेल अधीक्षक ने डॉक्टर को बुलाया। डॉ. अली मोहम्मद सुबह 7-8 बजे के करीब पहुँचे और उन्होंने मुकर्जी को किसी नर्सिंग होम में ले जाने की सलाह दी। परंतु जेल अधीक्षक अपने बलबूते ऐसा नहीं कर सकते थे। उसके लिए जिलाधिकारी की अनुमति लेना आवश्यक था और वे इसकी आवश्यक खानापूर्ति में जुट गए। समय हाथ से निकलता जा रहा था। लगभग 10 बज गए थे। तभी उमाशंकर त्रिवेदी आ पहुँचे। त्रिवेदी ने डॉ. मुकर्जी की गिरफ्तारी को चुनौती देनेवाली बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय में दायर कर रखी थी। आज ही उस पर सुनवाई होनेवाली थी।

11-12 के बीच जेल अधीक्षक टैक्सी लेकर आए और डॉ. मुकर्जी को श्रीनगर के सरकारी अस्पताल में भरती करवा दिया गया। सायं 7.30 बजे उमा शंकर त्रिवेदी फिर उन्हें मिलने के लिए पहुँचे। उस दिन राज्य के उच्च न्यायालय में मुकर्जी की बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पर सुनवाई हुई थी। न्यायाधीश जिया लाल कलाम ने निर्णय अगले दिन के लिए सुरक्षित कर दिया था। ''त्रिवेदी को भरोसा था कि अगले दिन जब फैसला आएगा तो निश्चित ही डॉ. मुकर्जी को छोड़ दिया जाएगा।'' [501]

लेकिन डॉ. मुकर्जी को मुक्ति के लिए इस निर्णय की आवश्यकता नहीं पड़ी। 23 जून को तड़के 3.45 बजे त्रिवेदी के पास पुलिस अधीक्षक पहुँचे और डॉ. मुकर्जी का स्वास्थ्य खराब है, यह बताकर उन्हें अपने साथ अस्पताल ले गए। इसी प्रकार जेल से पं. प्रेमनाथ डोगरा, वैद्य गुरुदत्त और टेकचंद को अस्पताल लाया गया। सब लोग अस्पताल पहुँच गए तो उन्हें बता दिया गया कि 3.40 पर डॉ. मुकर्जी की मृत्यु हो चुकी थी। मृत्यु के समय उनकी आयु 52 साल थी और दो सप्ताह बाद 6 जुलाई को उनका जन्मदिन आनेवाला था। जिस समय डॉ. मुकर्जी अंतिम साँस ले रहे थे उस समय पं. जवाहरलाल नेहरू लंदन में महारानी एलिजाबेथ द्वितीय के राज्याभिषेक में भाग ले रहे थे।

सन् 1946 में महाराजा हरि सिंह की जेल में बंद अपने मित्र शेख अब्दुल्ला के मुकदमे की पैरवी करने के लिए पं. जवाहरलाल नेहरू जम्मू-कश्मीर गए थे। रियासत में उस समय परिस्थिति ठीक नहीं थी, इसलिए उनको महाराजा की पुलिस ने कोहाला पुल पर रोक लिया था। परंतु महाराजा ने कोहाला अतिथि-गृह में उनके सम्मानपूर्वक ठहरने की व्यवस्था की। तीन दिन बाद नेहरू वापस चले गए। उसके ठीक छह साल बाद डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी को उसी शेख अब्दुल्ला ने यह कह कर गिरफ्तार कर लिया कि आपको रियासत में प्रवेश की अनुमति नहीं है। अब

जम्मू-कश्मीर रियासत नहीं थी बल्कि भारत संघ का एक अभिन्न अंग थी। लेकिन शेख ने डॉ. मुकर्जी को सम्मानपूर्वक रिहा नहीं किया, बल्कि पूरे 43 दिनों बाद उनका शव कलकत्ता उनके घर पहुँचा दिया। बहुत वर्षों बाद महाराजा हरि सिंह के पुत्र और उस समय सदरे-रियासत कर्ण सिंह ने लिखा—''सरकार ने न तो मुझे (डॉ. मुकर्जी की) बीमारी की कोई सूचना दी थी और न ही उन्हें अस्पताल भेजने की। यहाँ तक कि मुझे उनकी मृत्यु का समाचार भी अनधिकृत सूत्रों द्वारा प्राप्त हुआ और वह भी काफी देर से। तब तक उनका शव भी हवाई जहाज द्वारा श्रीनगर से बाहर भेजा जा चुका था।'' 502

8.8. सत्याग्रह की समाप्ति

प्रजा परिषद् की ओर से जम्मू के परेड ग्राउंड में डॉ. मुकर्जी के देहावसान पर एक सार्वजनिक शोकसभा का आयोजन 24 जून को किया गया। सभा-स्थल खचाखच भरा हुआ था। तिल धरने की जगह नहीं बची थी। परिषद् के संगठन मंत्री भगवत स्वरूप ने शोक-स्वरूप तेरह दिन के लिए आंदोलन स्थगित करने की सूचना दी। प्रेमनाथ डोगरा ने स्पष्ट कर दिया, ''13 दिन तक डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी की मृत्यु पर शोक मनाने के बाद जम्मू-कश्मीर को पूर्णतया भारत में मिलाने के लिए पुन: अधिक शक्तिशाली आंदोलन प्रारंभ कर दिया जाएगा। देश के प्रत्येक व्यक्ति को इस महान् यज्ञ में कूदने के लिए तैयार रहना चाहिए।'' 503

पं. प्रेमनाथ डोगरा की बक्शी गुलाम मोहम्मद और राज्य के उप गृहमंत्री दुर्गा प्रसाद धर की भेंट हुई। मौलिचंद्र शर्मा और दुर्गादास वर्मा से भी इन लोगों ने भेंट की। स्वयं पं. नेहरू भी प्रजा परिषद् के नेताओं से मिले और उनकी बातों को सुना। जो कार्य डॉ. मुकर्जी के जीते जी न हुआ, वह उनके बलिदान ने कर दिखाया।

डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी के बलिदान के बाद प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने 3 जुलाई को सभी पक्षों से आंदोलन बंद करने की अपील की। उस अपील को ध्यान में रखते हुए प्रजा परिषद् ने 7 जुलाई, 1953 को अपना आंदोलन रोक दिया था। प्रजा परिषद् द्वारा आंदोलन रोक देने पर विभिन्न राजनैतिक दलों की बनी संयुक्त संघर्ष समिति ने भी देश भर में परिषद् के पक्ष में चलाया जा रहा अपना आंदोलन 7 जुलाई को ही रोक देने की घोषणा कर दी। समिति ने घोषणा की कि, ''प्रजा परिषद् आंदोलन के सहानुभूति तथा नैतिक समर्थन में तीन संस्थाओं ने मिलकर भारत में सत्याग्रह आंदोलन प्रारंभ किया था। यह भारत की एकता व अखंडता को बनाए रखने के लिए तथा मजहब पर आधारित पृथकतावादी शक्तियों का विरोध करने के लिए चलाया गया था। प्रजा परिषद् की मौलिक माँगें उचित तथा न्यायसंगत थीं। यह कहना पूर्णतया गलत है कि जम्मू-कश्मीर के भारत में अधिमिलन तथा वहाँ भारतीय संविधान को पूर्ण रूप से लागू किए जाने की माँग सांप्रदायिक अथवा प्रतिक्रियावादी थी। जम्मू की जनता के साथ सहानुभूति दिखाते हुए भारत की जनता ने हमारे आह्वान के प्रत्युत्तर में जो शांतिपूर्ण एवं अहिंसात्मक आंदोलन चलाया, उसके लिए समिति सभी का धन्यवाद करती है। हमने यथासंभव जनता को आनेवाले खतरों से आगाह कर दिया है और केवल सत्तारूढ़ दल को छोड़कर सभी दलों ने इसे स्वीकार भी किया है कि हमारी माँगें सांप्रदायिक न होकर राजनैतिक व राष्ट्रीय हैं। सारी स्थिति का अध्ययन करने के पश्चात् समिति इस निश्चय पर पहुँची है कि हमारा यह लक्ष्य कि इस सरकार पर इस समस्या को आशाप्रद उपाय से सुलझाने के लिए दबाव डालें, पूरा हो गया है। उपर्युक्त स्थितियों में तथा प्रधानमंत्री की अपील के कारण समिति यह निश्चित करती है कि इस समय सत्याग्रह आंदोलन बंद कर दिया जाए। परंतु जम्मू के लोगों की माँगों को लेकर वैधानिक संघर्ष किसी भी

प्रकार से कमजोर नहीं होगा।[504] ‘‘डॉ. मुकर्जी ने जो कहा था, वह सभी सत्य सिद्ध हुआ। शेख अब्दुल्ला बरखास्त हुए और गिरफ्तार हुए। पं. नेहरू ने अपनी भूल स्वीकार कर अपने 20 साल के गहरे दोस्त शेख के कुकृत्यों पर खेद प्रकट किया और प्रजा परिषद् के नेताओं से बातचीत की। जम्मू-कश्मीर विधानसभा ने एक प्रस्ताव स्वीकृत कर राज्य के भारत में अधिमिलन का अनुमोदन किया। 14 मई, 1954 को भारत के राष्ट्रपति ने एक विशेष आज्ञा निकालकर दिल्ली समझौते की शर्तें पूरी करवाईं।’’ [505]

8.9. आंदोलन का लेखा-जोखा

प्रजा परिषद् ने आंदोलन का लेखा-जोखा लेने के लिए 6 सितंबर को सामान्य परिषद् का सम्मेलन बुलाया। पं. प्रेमनाथ डोगरा ने प्रतिनिधियों को संबोधित करते हुए कहा, ‘‘आंदोलन के इन 8 महीनों में राज्य सरकार ने भारत सरकार की सहायता से हम पर दमन व अत्याचार का हर तरीका इस्तेमाल किया गया। परंतु इन प्रबल उत्तेजनाओं में जम्मू के लोगों का साहस, धैर्य, संयम और सबसे बढ़कर अपने मनोरथ के सही होने का विश्वास दोनों सरकारों की ताकत से भी कहीं ज्यादा ताकतवर सिद्ध हुआ। उनकी गोलियाँ, लाठियाँ, गैस के गोले, योजनाबद्ध तरीके से लूटपाट, तंग करना, पाशविक तरीके से औरतों का अपमान करना और अनेक प्रकार से लोगों को अपमानित करना भी जम्मू के लोगों के उत्साह को भंग नहीं कर सका; क्योंकि भारत के साथ पूर्ण एकीकरण ही सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। हमने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कुछ प्रगति अवश्य की है, लेकिन अभी भी बहुत कुछ करने के लिए रहता है।’’ [506]

8.10. नेशनल कॉन्फ्रेंस में आपसी मतभेद

जिन दिनों डॉ. मुकर्जी जेल में थे उन्हीं दिनों नेशनल कॉन्फ्रेंस में अनेक मुद्दों पर आपसी मतभेद उभरने लगे थे। पार्टी में अनेक नेता, विधायक और कार्यकर्ता शेख अब्दुल्ला की अतिवादी नीतियों से सहमत नहीं हो रहे थे। भारत को लेकर शेख जिस प्रकार के बयान देने लगे थे और जम्मू के साथ जिस प्रकार अनावश्यक विवाद को तूल दे रहे थे, उससे उनके मंत्रिमंडल के ही सदस्य नाखुश थे। प्रजा परिषद् का आंदोलन समाप्त हो और कोई बीच का रास्ता निकलआए, इसके प्रयास भी हो रहे थे। यही कारण था कि पं. प्रेमनाथ डोगरा को मुख्य जेल से स्थानांतरित कर डॉ. मुकर्जी के साथ उपजेल में लाया गया था। मंत्रिमंडल के अनेक सदस्य शेख के भारत-विरोधी रवैए से असहज अनुभव कर रहे थे। डॉ. मुकर्जी की संदेहास्पद मृत्यु के बाद ये मतभेद और भी गहराने लगे।

डॉ. मुकर्जी की मृत्यु की खबर नेहरू को भी यूरोप में ही मिली। उन्होंने वहीं से शेख को ‘‘संदेश भेजा कि मेरे दिल्ली आने पर वे उन्हें मिलें।’’ भारत पहुँचने पर उन्हें फिर दिल्ली आने के लिए कहा गया। लेकिन वे नहीं आए। अलबत्ता इतना जरूर कहा कि कुछ समय बाद आ जाऊँगा। उन्हें एक बार फिर कुछ समय बाद आने के लिए टेलीफोन किया, पत्र लिखा; लेकिन वे बातचीत के लिए नहीं ही आए।’’ [507] 3 जुलाई को नेहरू ने शेख को दिल्ली बुलाया था। लेकिन उन्होंने आने से इनकार कर दिया। इससे शेख के इरादे स्पष्ट होने लगे थे।

दरअसल शेख अब्दुल्ला की मई के पहले सप्ताह ही अमेरिका के राष्ट्रपति चुनाव में डेमोक्रेटिक पार्टी के उम्मीदवार रह चुके आदलाई स्टीवेंसन से श्रीनगर में गुप्त बैठकें हो चुकी थीं। 1 मई से लेकर 3 मई तक शेख व आदलाई में अनेक बैठकें हुईं। 3 मई की बैठक तो सात घंटे तक चलती रही। इन्हीं बैठकों में, ऐसा विश्वास किया

जाता है, शेख के मन में कश्मीरी स्वतंत्रता के उग रहे स्वप्नों में रंग भरने का काम वायदों से किया गया। 'मैनचेस्टर गार्जियन' ने इन बैठकों के बारे में लिखा कि, ''लगता है, (शेख अब्दुल्ला) ने इन सुझावों को काफी गौर से सुना कि कश्मीर के लिए सबसे अच्छी स्थिति यही होगी कि वह पाकिस्तान और भारत दोनों से ही आजाद रहे।'' [508] स्टीवेंसन से मिलने के बाद निश्चित ही शेख के तेवर बदलने शुरू हो गए थे। 14 जून, 1953 को ईद-उल-फितर था। शेख ने नमाज के बाद लोगों को संबोधित करते हुए ''जम्मू-कश्मीर को लेकर तीन विकल्प रखे। पहला भारत में अधिमिलन, दूसरा पाकिस्तान में अधिमिलन और तीसरा दोनों देशों के साथ मधुर संबंधों वाला स्वतंत्र कश्मीर।'' [509] लगता है, उन्हें इस तीसरे विकल्प पर स्टीवेंसन द्वारा कुछ ठोस आश्वासन मिल गए थे। वैसे तो शेख ने पहले ही ''नेशनल कॉन्फ्रेंस की कार्यसमिति में भारत के साथ संबंधों के स्वरूप को लेकर एक बहस प्रारंभ करा दी थी। इसमें मिर्जा अफजल बेग के नेतृत्ववाले दल का एक हिस्सा जोर-शोर से कह रहा था कि ये संबंध अधिमिलन दस्तावेज में वर्णित तीन विषयों से बाहर नहीं होने चाहिए। जबकि बक्शी गुलाम मोहम्मद वाला दूसरा समूह, जिसमें गिरधारी लाल डोगरा और डी.पी. धर शामिल थे, संबंधों को व्यापक बनाने का पक्षधर था। उनका कहना था कि न्यायपालिका व वित्तीय प्रबंध भी इस दायरे में आने चाहिए।'' [510] शेख को विश्वास था कि पूरी पार्टी एकजुट होकर उनके साथ है। इसलिए वे जैसा चाहें वैसी नीति बना सकते हैं। पार्टी उसका अनुमोदन करेगी ही। उन्हें स्वप्न में भी यह अंदाजा न था कि पार्टी के भीतर से भी उनके नेतृत्व को चुनौती मिल सकती है। ''उनका यही आकलन उनके लिए घातक सिद्ध हुआ।'' [511] मई के दूसरे सप्ताह में ही नेशनल कॉन्फ्रेंस की हंगामेदार बैठक शुरू हुई, जो तीन सप्ताह तक चलती रही। दोनों पक्ष आमने-सामने थे। मतदान की नौबत आ गई। ''शेख के पक्ष में केवल 4 मत पड़े। बख्शी का गुट 15 वोट ले गया था।'' [512] स्थिति इतनी अनिश्चित हो गई थी कि कर्ण सिंह ने नेहरू की यूरोप यात्रा में 10 जून को ही अपनी रपट भेजी—''यहाँ घाटी में राजनैतिक स्थिति बेहद अनिश्चित चल रही है। नेशनल कॉन्फ्रेंस के अंदर ही विभाजन होने से तनाव काफी बढ़ गया है। इसमें भारत समर्थक गुट ने पक्का निश्चय किया हुआ है और उसका दावा है कि वह काफी मजबूत है।'' [513]

8.11. अमेरिकी विदेश मंत्री की भारत-पाक यात्रा

उन्हीं दिनों अमेरिका के विदेश मंत्री जाहन फॉस्टर डल्लास भारत व पाकिस्तान की यात्रा पर आए। दोनों सरकारों से उनकी क्या बातचीत हुई, इसका खुलासा तो नहीं हुआ, लेकिन 'न्यूयॉर्क टाइम्स' के विशेष संवाददाता के हवाले से 5 जुलाई के अखबार में छपा—''जम्मू-कश्मीर के झगड़े के समाधान की एक परिकल्पना कश्मीर घाटी को स्वतंत्र स्वीकार कर उसे विशेष दर्जा देना हो सकता है, जिसकी गारंटी भारत व पाकिस्तान दोनों देश दें। दूसरा, रियासत का दोनों देशों में विभाजन और प्रत्येक देश के हिस्से उतना भाग जितना युद्ध-विराम के समय उसके पास था। यह भी चर्चा है कि विदेश मंत्री डल्लास ने भी इस समाधान का समर्थन किया है।'' [514] शेख अब एक नई बाजी खेल रहे थे।

8.12. शेख अब्दुल्ला और बख्शी धड़ा आमने-सामने

लेकिन शायद राज्य के लोग आँखें मूँदकर किसी के पीछे भी चलने को तैयार नहीं थे। वे शेख अब्दुल्ला की और विदेशी शक्तियों के षड्यंत्रों को भी समझने लगे थे। जम्मू-कश्मीर की घटनाओं पर गहरी नजर रखनेवाले एक कश्मीरी विद्वान् के अनुसार, ''अब तक के लंबे राजनैतिक संघर्षों से तपे-तपाए लोग इस चाल को भलीभाँति समझ सकते थे। बहुत अरसा पहले ही वे व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व के मोहपाश से भी मुक्त हो लिये थे। इस स्थिति में राज्य की लोकतांत्रिक शक्तियों को मोर्चा जमाने में देर नहीं लगी।'' 515

शेख के लिए स्थितियाँ कठिन होती जा रही थीं। 24 जुलाई को दिल्ली से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक 'हिंदुस्तान टाइम्स' ने शेख अब्दुल्ला का भाषण उद्धृत किया—''पिछले साल की सांप्रदायिक घटनाओं ने (भारत-कश्मीर) संबंधों की नींव हिला दी है।'' 516 तीन दिन बाद के उसी अखबार में राज्य के उप-प्रधानमंत्री बक्शी गुलाम मोहम्मद का जवाब आ गया—''कश्मीर अपनी जान की बाजी लगाकर भी हिंदुस्तान में अधिमिलन की रक्षा करेगा।'' 517 इसके बाद शेख ने अगस्त के प्रारंभ में ही विस्फोट किया, ''रियासत का भारत में अधिमिलन बल-प्रयोग से हुआ था, क्योंकि भारत ने बिना अधिमिलन के रियासत की मदद करने से इनकार कर दिया था।'' 518 इसके बाद कहने-सुनने के लिए कुछ बचा नहीं था।

8.13. मंत्रिमंडल का शेख अब्दुल्ला के प्रति अविश्वास

शेख अब्दुल्ला ने अपने मंत्रिमंडलीय सहयोगी शामलाल सर्राफ से 7 अगस्त को त्यागपत्र माँग लिया। शामलाल सर्राफ इस्तीफा तो भला क्या देते, दूसरे ही दिन 8 अगस्त को मिर्जा अफजल बेग को छोड़कर बाकी तीनों मंत्रियों बक्शी गुलाम मोहम्मद, गिरधारी लाल डोगरा और शामलाल सर्राफ का पाँच पृष्ठों का एक ज्ञापन शेख अब्दुल्ला और सदर-ए-रियासत के पास अवश्य पहुँच गया।

ज्ञापन शेख अब्दुल्ला के नाम ही लिखा गया था। कर्ण सिंह के पास तो उसकी प्रतिलिपि ही आई थी। ज्ञापन में शेख को संबोधित कर लिखा गया था—''संविधान सभा बुलाने के बाद दिल्ली समझौते में भारत के साथ राज्य के संबंधों के कुछ अपरिहार्य पहलुओं की व्याख्या की गई थी। हम सबके प्रतिनिधि के रूप में इसका प्रारूप तैयार करने में आपकी मुख्य भूमिका रही थी। आपके दृष्टिकोण का सरकार, नेशनल कॉन्फ्रेंस, भारतीय संसद् और राज्य की संविधान सभा ने एकमत से अनुमोदन किया था; क्योंकि वह हमारी नीतियों का मूल आधार है। लेकिन आपने उस समझौते को लागू करने में न सिर्फ जान-बूझकर विलंब किया, बल्कि जनता के बीच खास मकसद से और खुलकर इसकी निंदा की। इस प्रकार आपने एकतरफा ढंग से राज्य और भारत के संबंधों में दरार डालने की कोशिश की। एम.ए. बेग निरंतर संकुचित अलगाववादी और सांप्रदायिक नीतियों पर चल रहे हैं, जिससे राज्य की अभिन्नता पर गहरा प्रभाव पड़ा है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आप मंत्रिमंडल में उनकी नीतियों को और जनता में उनकी गतिविधियों को समर्थन देते रहे हैं। इससे रियासत की विभिन्न संघटक इकाइयों की जनता के मन में अविश्वास और संदेह की कटु भावनाएँ पैदा हुई हैं। आपने इन सभी घटनाओं को देखते-समझते हुए भी जान-बूझकर अनदेखा किया है और इस तरह विघटनकारी ताकतों को मजबूती तथा प्रोत्साहन दिया है। नतीजन हमारे राज्य के दो महत्त्वपूर्ण पहलू एकता तथा पंथनिरपेक्ष चरित्र खतरे में पड़ गए हैं। इन गलत व नुकसानदायक प्रवृत्तियों को विराम देने और खत्म करने के लिए हम आपसे लगातार अनुरोध करते आ रहे हैं। हमने आपसे यह

अनुरोध भी किया था कि जनता के मनोबल को पुन: बनाने और बढ़ाने के लिए संयुक्त प्रयास करने चाहिए। लेकिन तमाम सदाशयता के बावजूद हम अपनी कोशिशों में असफल रहे हैं। अत: अत्यंत खेदपूर्वक हम आपको अपना यह निर्णय सूचित करना चाहते हैं कि वर्तमान में मंत्रिमंडल का गठन, उसके प्रयोजन और कर्म अलग-अलग हैं। उनमें साम्य नहीं है। यह मंत्रिमंडल जनता का विश्वास खो चुका है और जनता यह मानने लगी है कि यह सरकार उन्हें साफ सुथरा, कार्य-कुशल और स्वस्थ प्रशासन देने में अक्षम है।'' [519]

इस लंबे पत्र को दोनों ने ही पढ़ा—कर्ण सिंह ने भी और शेख अब्दुल्ला ने भी। कर्ण सिंह के लिए इस पत्र के अर्थ स्पष्ट थे। मंत्रिमंडल से विश्वास उठ जाने का अर्थ था शेख अब्दुल्ला ने प्रधानमंत्री बने रहने का अधिकार खो दिया है। वैसे भी उन्हें प्रधानमंत्री का अधिकार महाराजा ने ही दिया था। नेहरू इसका कारण आमतौर पर बताया करते थे कि वे राज्य के एकमात्र राजनैतिक दल नेशनल कॉन्फ्रेंस के निर्विवाद नेता थे। अब ये दोनों स्थितियाँ समाप्त हो गई थीं। राज्य में अब एकमात्र राजनैतिक दल नहीं था, बल्कि उतना ही लोकप्रिय दूसरा राजनैतिक दल प्रजा परिषद् भी मजबूती से उपस्थित था। दूसरे, अब शेख अब्दुल्ला नेशनल कॉन्फ्रेंस के भी एकमात्र निर्विवाद नेता नहीं रहे थे।

8 अगस्त को सदरे-रियासत ने शेख को बातचीत के लिए बुलाया। शेख आए तो, पर कर्ण सिंह की चिंता को समझ नहीं पाए। अलबत्ता उन्होंने भारतीय प्रेस को गालियाँ जरूर निकालीं, जो बकौल शेख 'मंत्रिमंडल के मामूली मतभेद को हवा दे रहे हैं।' [520] कर्ण सिंह ने अपने प्रधानमंत्री को सायंकाल को दूसरे मंत्रियों समेत आने के लिए कहा, ताकि बैठकर कोई समाधान खोजा जा सके। तब शेख ने, ''जब तक भारत के साथ-साथ पाकिस्तान को भी स्वीकार्य कोई बाहरी समाधान नहीं निकाला जाएगा, तब तक कोई आंतरिक समाधान भी संभव नहीं है।'' [521] कहकर सायं को आने में असमर्थता प्रकट कर दी, क्योंकि उन्हें उसी शाम विश्राम हेतु सप्ताह भर के लिए गुलमर्ग जाना था।

8.14. शेख अब्दुल्ला की बरखास्तगी और गिरफ्तारी

इधर शेख अब्दुल्ला अपनी बेगम समेत गुलमर्ग को चले, उधर सदरे-रियासत ने लिखना शुरू किया—''अत: मैं, सदरे-रियासत कर्ण सिंह, राज्य की उस जनता के हित में, जिसने मुझे राज्य का प्रमुख बनाकर दायित्व और अधिकार दिए हैं, कार्य करता हुआ जम्मू व कश्मीर राज्य के प्रधानमंत्री पद से शेख मोहम्मद अब्दुल्ला को बरखास्त करता हूँ, इसके साथ ही उनके नेतृत्ववाला मंत्रिमंडल भी भंग किया जाता है।'' [522]इस प्रकार 8 अगस्त, 1953 को शेख मोहम्मद अब्दुल्ला पदच्युत हुए।

कर्ण सिंह के ए.डी.सी. यह पत्र लेकर गुलमर्ग जा पहुँचे। सोते हुए शेख को जगाकर उन्हें वह पत्र सौंप दिया। अभी वे कुछ समझ पाते, तभी उन्हें गिरफ्तारी आदेश भी दे दिया गया। 9 अगस्त को तड़के पुलिस उनको गिरफ्तार कर ऊधमपुर की ओर चली। यहाँ उन्हें उप-जेल घोषित किए गए तारा हाउस में रखा जाना था। और उधर श्रीनगर में बक्शी गुलाम मोहम्मद को नए प्रधानमंत्री की शपथ दिला दी गई। इतिहास का एक चक्र पूरा हो गया। शेख के भीतर का शेख पहचान लिया गया था। प्रजा परिषद् का आंदोलन शेख की इन्हीं प्रवृत्तियों के विरोध में था। प्रजा परिषद् ने शेख के भीतर के इस शेख को अरसा पहले पहचान लिया था। इसीलिए उसने भारत व राज्य के सुरक्षित

भविष्य के लिए आंदोलन प्रारंभ किया था। लेकिन इसे देश का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि नेशनल कॉन्फ्रेंस और नेहरू ने शेख के भीतर के इस शेख को पहचानने में बहुत देर कर दी और तब तक वह डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी की बलि ले चुका था। शेख की गिरफ्तारी के बाद जब संविधान स्वीकृत करने के लिए संविधान सभा की बैठक हुई तो शेख समेत केवल 9 सदस्य अनुपस्थित थे। अर्थ स्पष्ट था, नेशनल कॉन्फ्रेंस भी शेख के घातक रास्ते पर जाने के लिए तैयार नहीं थी।

❑

9.

उपसंहार

9.1 संवैधानिक आंदोलन चलता रहा

प्रजा परिषद् ने डॉ. मुकर्जी के देहांत के बाद प्रधानमंत्री की अपील पर अपना आंदोलन तो वापस ले लिया, लेकिन जिन मुद्दों को लेकर आंदोलन चलाया गया था, उनको लेकर एक राजनैतिक दल की हैसियत से अपनी लड़ाई 1963 तक जारी रखी, जिसके बाद परिषद् का भारतीय जनसंघ में विलय हो गया। उधर शेख अब्दुल्ला की गिरफ्तारी के बाद बख्शी गुलाम मोहम्मद राज्य के नए प्रधानमंत्री बने। उन्होंने भारतीय संविधान के अनेक प्रावधानों को राज्य में लागू करवाया। शेख की गिरफ्तारी के बाद नेशनल कॉन्फ्रेंस से भी उनकी रुख्सतगी हुई और पार्टी के सर्वेसर्वा भी बख्शी गुलाम मोहम्मद ही हो गए। बाद में शेख अब्दुल्ला ने 1955 में नई पार्टी बना ली, जिसका नाम हुआ 'रायशुमारी महाज' और उसके अध्यक्ष हुए शेख के सुख-दु:ख के साथी अफजल बेग।

9.2 जम्मू-कश्मीर के प्रस्तावित संविधान पर विचार-विमर्श

शेख अब्दुल्ला की सरकार की बर्खास्तगी के बाद राज्य की संविधान सभा की प्रारूप समिति ने 11 फरवरी, 1954 को प्रस्तावित संविधान का प्रारूप संविधान सभा के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत किया। संविधान सभा ने इस पर 13 फरवरी को विचार-विमर्श शुरू किया। संविधान का प्रारूप तैयार करते समय प्रदेश की जनता की किसी प्रकार से भी भागीदारी सुनिश्चित नहीं की गई थी और न ही अब उस पर चर्चा करते समय किसी प्रकार से आम जनता को संबद्धित किया जा रहा था। संविधान सभा में केवल एक राजनैतिक दल नेशनल कॉन्फ्रेंस के लोग ही थे, अन्य किसी राजनैतिक दल का कोई प्रतिनिधि नहीं था। नेशनल कॉन्फ्रेंस में जो जम्मू के नाम पर प्रतिनिधि लिये गए थे, उनका जम्मू संभाग में कोई जनाधार नहीं था। इस स्थिति को देखते हुए प्रजा परिषद् के अध्यक्ष पंडित प्रेमनाथ डोगरा ने 13 फरवरी को राज्य के प्रधानमंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद को प्रस्तावित संविधान के विभिन्न प्रावधानों पर पार्टी का पक्ष स्पष्ट करते हुए पत्र लिखा। उन्होंने संविधान के प्रस्तावित प्रारूप पर अनेक आपत्तियाँ उठाईं। उनके अनुसार, ''प्रजा परिषद् शुरू से ही राज्य में संघीय संविधान पूरी तरह लागू करने के पक्ष में है। प्रजा परिषद् तो दिल्ली में हुई नेहरू-शेख वार्त्ता में विभिन्न मुद्दों को लेकर बनी सहमति से पूरी तरह संतुष्ट नहीं थी। लेकिन अंतरराष्ट्रीय स्थिति और अन्य कारणों से पार्टी ने आपको और आपकी सरकार को पूरा सहयोग दिया। परंतु अब जो संविधान का प्रस्तावित प्रारूप प्रस्तुत किया गया है, यह तो हर दृष्टि से असंतोषजनक है। जब बुनियादी सिद्धांत समिति और मौलिक अधिकार समिति ने अपनी रपटें प्रस्तुत की थीं, तब हमने उस पर आपत्ति प्रकट की थी। तब आपने कहा था कि संविधान का प्रारूप पूरी तरह संघीय संविधान की भावना के अनुरूप होगा। आपने यह भी कहा था कि भूमि अधिग्रहण कानूनों एवं राज्य के स्थायी निवासियों को अचल संपत्ति एवं सरकारी नौकरियों में वरीयता देने के विषय को छोड़कर शेष संविधान संघीय संविधान के अनुरूप होगा। लेकिन दुर्भाग्य से संविधान का प्रस्तावित प्रारूप तो दिल्ली में हुई नेहरू-शेख वार्त्ता के सहमति बिंदुओं तक भी नहीं पहुँच पा रहा। प्रस्तावित संविधान में संसद् के लिए अप्रत्यक्ष मनोनयन, राज्य के लोगों को मौलिक अधिकारों से वंचित रखना, उन्हें उच्चतम न्यायालय में अपील के अधिकार से वंचित रखना आश्चर्यजनक है। प्रेमनाथ डोगरा ने आगे लिखा कि जिस प्रकार जल्दी से

इस संविधान को पास किया जा रहा रहा है, उसी से शंका उत्पन्न होती है। सरकार को चाहिए कि संविधान पर लोगों में बहस करवाए और उसके अनुरूप संविधान के प्रारूप को संशोधित करे।[523]'

9.3 संविधान पर राष्ट्रपति को ज्ञापन

प्रजा परिषद् ने राज्य के इस संविधान को लेकर राज्य में बहस शुरू करवाई। बख्शी गुलाम मोहम्मद प्रजा परिषद् की इस बहस से बचते रहे। प्रजा परिषद् ने तब प्रथम अप्रैल, 1954 को राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद को ज्ञापन दिया। इस ज्ञापन में परिषद् के अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा ने राज्य के संविधान को लेकर पार्टी की आपत्तियाँ दर्ज करवाईं। इसके अनुसार[524]

1. राज्य के संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकार कम करते-करते अब उस स्थिति तक पहुँचा दिए गए हैं, जहाँ वह महज मजाक बनकर रह गए हैं।
2. राज्य में नागरिकों के मौलिक अधिकार कहीं लागू न हो सकें, इसलिए उच्चतम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को राज्य में कम कर दिया गया है।
3. राज्य के उच्च न्यायालय को पूरी तरह सरकारी शिकंजे में दे दिया गया है, ताकि राज्य में कार्यपालिका का वर्चस्व बना रहे और स्वतंत्र न्यायपालिका का विकास न हो सके।
4. भारत संघ के भीतर ही दोहरी नागरिकता का प्रावधान कर दिया गया है।
5. पाकिस्तान से आनेवाले लोगों के लिए राज्य में आकर स्थायी रूप से बसने का एकतरफा रास्ता खोल दिया गया है।
6. राज्य में लोकसभा के लिए प्रत्यक्ष चुनाव का प्रावधान नहीं किया गया, ताकि राज्य के लोगों की अधिकृत आवाज केंद्रीय संसद् में भी न सुनाई दे।
7. संघीय संविधान में (ख) श्रेणी के राज्यों के लिए अनेक केंद्रीय अभिकरणों की आधिकारिता का प्रावधान है, ताकि साँझे राष्ट्रीय हितों की रक्षा हो सके। लेकिन प्रस्तावित राज्य संविधान में उन केंद्रीय अभिकरणों की शक्ति को बहुत सीमित कर दिया गया है।
8. सदर-ए-रियासत का दरजा राज्यपाल से भी निचले दरजे पर कर दिया गया है। उसे स्थानीय विधानसभा की कृपा पर छोड़ दिया गया है।
9. दिल्ली में हुई नेहरू-शेख वार्त्ता में बने सहमति बिंदुओं को भी संविधान में अनदेखा कर दिया गया है।
10. संघीय संविधान के वे प्रावधान, जो इस समय राज्य में लागू हैं, उनमें से भी कुछ को हटाया जा रहा है।
11. आपात स्थिति में संघ द्वारा त्वरित काररवाई करने के प्रावधानों को प्रभावहीन कर दिया गया है।
12. प्रभावी एवं निष्पक्ष लेखा परीक्षा एवं वित्तीय नियंत्रण के प्रावधानों को भी समाप्त कर दिया गया है। महालेखाकार का अधिकार क्षेत्र राज्य में लागू नहीं किया गया, जिससे वित्तीय एकीकरण प्रभावित हुआ है।
13. बंद कमरों में छिप-छिपकर संविधान बना लिया गया है और किसी भी स्तर पर, और किसी भी हैसियत में राज्य के आम लोगों को इस सारी प्रक्रिया से संबंधित नहीं किया गया। संविधान जैसे महत्त्वपूर्ण दस्तावेज को पारित करने से पहले उस पर आम जनता की आपत्तियाँ आमंत्रित की जानी चाहिए थीं।

9.4 केंद्रीय गृहमंत्री को ज्ञापन

प्रजा परिषद् ने 24 जुलाई, 1954 को केंद्रीय गृहमंत्री गोविंद वल्लभ पंत को भी राज्य के संविधान के बारे में एक ज्ञापन दिया। प्रेमनाथ डोगरा ने ज्ञापन के साथ इससे पूर्व राष्ट्रपति को भेजे गए ज्ञापन की प्रति भी संलग्न कर दी। पंत को दिए गए ज्ञापन में डोगरा ने लिखा, ''जम्मू संभाग के लोग तो 'राज्य के अलग संविधान के सिद्धांत' के ही विरोधी हैं। आप यह तो मानेंगे ही कि प्रजा परिषद् को कम-से-कम जम्मू संभाग में बहुमत का समर्थन तो प्राप्त है ही। परिषद् जम्मू-कश्मीर राज्य और संघ के अन्य घटक राज्यों में किसी प्रकार का भेदभाव किए जाने का प्रबल विरोध करती है। इस भेदभाव के कारण कश्मीर के लोगों में अलगाव की भावना पैदा होती है, जिसका लाभ पाकिस्तान उठाता है। राज्य के भावी संविधान का अंतिम स्वरूप क्या होगा, परिषद् अभी यह निश्चित रूप से कहने की स्थिति में तो नहीं है, लेकिन जो संकेत मिल रहे हैं, उससे लगता है कि नेशनल कॉन्फ्रेंस राज्य के संविधान को, प्रत्येक क्षेत्र में संघीय संविधान से अलग बनाने की अपनी मूल योजना पर दृढ़ है। प्रस्तावित संविधान न तो राज्य के वित्तीय व्यय पर महालेखाकार के परीक्षण के लिए तैयार है और न ही विधानसभा के चुनाव करवाने का अधिकार संघीय चुनाव आयोग को देने के लिए तैयार है। राज्य के उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति सदर-ए-रियासत करेंगे, जो खुद विधानसभा के बहुमत की कठपुतली होंगे। विधानसभा में हरिजनों (अनुसूचित जाति) के लिए आरक्षण का कोई प्रावधान नहीं किया गया है।' अंत में प्रेमनाथ डोगरा ने गृहमंत्री से गुजारिश की, 'प्रस्तावित संविधान में से ये सभी आपत्तिजनक प्रावधान हटवाए जाएँ, ताकि राज्य के संविधान को संघीय संविधान की भावना के अनुरूप लाया जा सके।'' [525]

9.5 प्रजा परिषद् भारतीय जनसंघ का सहयोगी दल बना

सन् 1954 के अंत तक आते-आते राज्य में राजनैतिक पारा चढ़ने लगा था। उसका कारण प्रजा परिषद् द्वारा भारतीय जनसंघ का सहयोगी दल बनने का निर्णय था। नबंवर मास में ही प्रजा सोशलिस्ट पार्टी राज्य में अपनी शाखा खोलने जा रही थी। नेशनल कॉन्फ्रेंस भी अपना अधिवेशन इन्हीं दिनों श्रीनगर में कर रही थी। प्रजा परिषद् के उपाध्यक्ष धन्वंतर सिंह ने पार्टी से त्यागपत्र दे दिया था। कहा जाता था कि वे प्रजा परिषद् के भारतीय जनसंघ से जुड़ने से खुश नहीं थे। परिषद् ने अपनी कार्यकारिणी का भी पुनर्गठन किया गया और डॉ. ओम प्रकाश मैंगी को नया महासचिव बनाया गया। 6-7 नबंबर, 1954 को जम्मू के परेड ग्राउंड में परिषद् का प्रतिनिधि सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें राज्य भार से लगभग पाँच सौ प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन में एक प्रस्ताव द्वारा माँग की गई कि 'राज्य में सदर-ए-रियासत का पद समाप्त किया जाए, क्योंकि देश में प्रधान एक ही हो सकता है। दूसरे प्रस्ताव द्वारा जम्मू नगरपालिका के चुनाव तुरंत करवाने की माँग की गई, क्योंकि नगरपालिका के चुनाव सोलह साल पहले हुए थे। लोकतंत्र की रक्षा के लिए स्थानीय निकायों के चुनाव अनिवार्य हैं।' [526] लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव भारतीय जनसंघ का सहयोगी दल बनने का था, जिसे सांबा के अधिवक्ता मुल्कराज परगाल ने प्रस्तुत किया। प्रस्ताव का समर्थन कठुआ के चौधरी चग्गर सिंह ने किया। परंतु शायद नेशनल कॉन्फ्रेंस को यह रास नहीं आ रहा था कि राज्य में अखिल भारतीय राजनैतिक दल अपनी गतिविधियाँ बढ़ाएँ। कॉन्फ्रेंस की कमान अब बख्शी गुलाम मोहम्मद के हाथ में थी। बख्शी ने भी लगभग राज्य को अपनी जागीर की तरह इस्तेमाल करना शुरू कर दिया था। उन्होंने परोक्ष रूप से प्रजा परिषद् की इस नई पहल का विरोध किया। इसका प्रमाण दो-तीन दिन बाद ही मिल गया। नेशनल कॉन्फ्रेंस का प्रकोप सबसे पहले प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं को सहना पड़ा। जम्मू में पार्टी

की शाखा की स्थापना करने के बाद अशोक मेहता श्रीनगर पहुँचे, क्योंकि पार्टी ने दस नबंवर को वहाँ एक जनसभा का कार्यक्रम रखा था। नेशनल कॉन्फ्रेंस के कार्यकर्ताओं ने काजीगुंड में उनके खिलाफ प्रदर्शन किया और उन्हें राज्य से वापस जाने के लिए कहा। दूसरे दिन जब वे लाल चौक में थे, तो उन्हें केवल गालियाँ ही नहीं दी गईं बल्कि उनकी पिटाई भी की गई। उनके साथ की एक महिला कार्यकत्री का शॉल खींच लिया गया और उसके साथ दुर्व्यवहार किया गया। 'पीटनेवालों में नेशनल कॉन्फ्रेंस के कार्यकर्ता, सरकारी कर्मचारी और पुलिस के लोग थे।' [527] अशोक मेहता वहाँ से किसी तरह जान बचाकर भागे। उन्होंने अपने साथ किए गए इस व्यवहार के बारे में नेहरू को तार द्वारा सूचित किया और दिल्ली पहुँचने पर कहा, 'मुझ पर हमला योजनाबद्ध था और उसका उद्देश्य यही था कि राज्य में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना न हो सके।' [528] प्रजा परिषद् के अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा ने अशोक मेहता पर हुए इस आक्रमण की निंदा की और कहा कि इससे स्पष्ट हो गया है कि राज्य में किस प्रकार का लोकतंत्र स्थापित किया जा रहा है।

इसके कुछ दिन बाद ही 30 दिसंबर, 1954 से लेकर 1 जनवरी, 1955 तक जोधपुर में भारतीय जनसंघ का अखिल भारतीय वार्षिक अधिवेशन था। प्रजा परिषद् की ओर से इसमें भाग लेने के लिए प्रेमनाथ डोगरा और भगवत स्वरूप जोधपुर गए। प्रेमनाथ डोगरा को भारतीय जनसंघ का राष्ट्रीय अध्यक्ष चुन लिया गया। यह पहला अवसर था जब जम्मू-कश्मीर का कोई व्यक्ति किसी अखिल भारतीय दल का अध्यक्ष चुना गया था। इसके कारण जम्मू-कश्मीर में उनके स्थान पर जैलदार ठाकुर रणजीत सिंह को प्रजा परिषद् का नया अध्यक्ष बनाया गया।

9.6 प्रजा परिषद् द्वारा 'जय स्वदेश' पत्रिका प्रारंभ

पार्टी की विचारधारा को राज्य की आम जनता तक पहुँचाने के लिए और आंदोलन को तार्किक आधार देने के लिए पार्टी ने 13 सितंबर, 1955 को उर्दू में साप्ताहिक पत्रिका 'जय स्वदेश' का प्रकाशन प्रारंभ किया। इसके संपादक प्रसिद्ध पत्रकार गोपाल सच्चर थे। प्रथम अंक में डोगराजी ने लिखा, 'हम जनता को राम और रोटी, दोनों दिलवाना चाहते हैं। अर्थात् हमारा देश जहाँ आर्थिक तौर पर उन्नति करे, वहाँ लोग अपने धर्म और चरित्र को भी न भूलें। इसके लिए हम सदा तत्पर रहेंगे। शुद्ध और सच्ची राष्ट्रीयता की भावनाओं को लेकर देश को आगे ले जाने का मार्ग हमने अपनाया है। वह कठिन और लंबा जरूर है, लेकिन आखिरी जीत हमारी होगी, यह हमारा दृढ़ विश्वास है।' यह अखबार 27 दिसंबर, 1957 तक चला। सरकार ने इस प्रकार के स्वतंत्र विचारवाले अखबार का चलना मुश्किल कर दिया। उसके बाद 'स्वदेश' का प्रकाशन प्रारंभ किया गया, लेकिन शासकीय प्रकोप के चलते उसे भी कुछ समय बाद बंद करना पड़ा।

9.7 प्रजा परिषद् द्वारा 1957 के चुनावों की तैयारी

प्रजा परिषद् को इन परिस्थितियों में राज्य में विपक्ष की भूमिका ही नहीं निभानी थी बल्कि अन्य संवैधानिक मुद्दों पर भी लड़ाई जारी रखनी थी। राज्य की संविधान सभा ने संविधान बनाने का काम पूरा कर लिया था। राज्य की विधान सभा के लिए नए चुनावों की आहट सुनाई देने लगी थी। 26 नबंवर, 1956 को नया संविधान संविधान सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया। इस संविधान को 26 जनवरी, 1957 को लागू हो जाना था। उसके बाद राज्य की विधान सभा के लिए नए चुनाव होने वाले थे। इन्हीं दिनों स्थानीय समाचार-पत्रों में समाचार प्रकाशित होने शुरू हो गए कि चुनावों में नेशनल कॉन्फ्रेंस और प्रजा परिषद् में समझौता होनेवाला है। इनका उद्देश्य शायद प्रजा परिषद्

के बारे में लोगों के मन में भ्रम पैदा करना था। राज्य के प्रधानमंत्री गुलाम मोहम्मद बख्शी ने उन दिनों प्रचार करना शुरू कर दिया था कि राज्य का संघ से एकीकरण पूरा हो चुका है और अब प्रदेश में सभी को मिलकर पाकिस्तान का मुकाबला करना चाहिए। इन्हीं परिस्थितियों में 30-31 दिसंबर, 1956 को प्रजा परिषद् ने अपना विशेष अधिवेशन भविष्य की रणनीति पर विचार करने के लिए बुलाया। पंडित प्रेमनाथ डोगरा ने कार्यकर्ताओं को आगाह किया कि 'प्रजा परिषद् और बख्शी में समझौता होने के समाचार छप रहे हैं। यह सब झूठ है। मेरी उनसे कोई बात नहीं हुई। हमारा तो एक ही मसला है—जम्मू-कश्मीर का पूर्ण एकीकरण। सरकारी पक्ष का कहना है कि वह तो हो चुका है। हमारा प्रश्न है कि यदि यह एकीकरण पूरा हो चुका है तो फिर इस अलग संविधान व झंडे की क्या जरूरत है? बख्शी से पूछो तो वह कहते हैं कि मैं तो अनपढ़ हूँ। संविधान के बारे में क्या जानूँ। यह तो भारत सरकार ही कहती है कि धारा 370 के अंतर्गत राज्य को विशेष दर्जा हासिल है।' डोगरा ने बख्शी के दूसरे प्रचार का भी उत्तर दिया। उन्होंने पूछा कि बख्शी साहिब कहते हैं कि पाकिस्तान के विरोध में सभी को एकजुट होने की जरूरत है। लेकिन यह कहने की जरूरत ही क्यों पड़ी? क्या हमने कहा नहीं कि देश पर संकट आने पर बलिदान देने में हम सबसे आगे होंगे। 1947 में जब बर्बर पाकिस्तानी जम्मू-कश्मीर की ओर बढ़ रहे थे तो उस वक्त रक्षा करने में कौन-कौन आगे बढ़ा, यह सब जानते हैं।

डोगरा ने विधान सभा के लिए चुनावों के बारे में सरकारी तौर-तरीकों पर प्रश्न उठाए और शासकीय पक्ष द्वारा चुनाव से पूर्व विपक्ष को कुचलने के प्रयासों की निंदा की। डोगरा के अनुसार, 'बख्शी साहब कहते हैं कि चुनाव निष्पक्ष होंगे, लेकिन हमारे कार्यकर्ता तो दफा तीन और सुरक्षा नियमों की अन्य धाराओं में अभी से पकड़े जा रहे हैं।' इस अधिवेशन में आचार्य देव प्रसाद घोष और दीनदयाल उपाध्याय ने भी भाग लिया था।[529]

9.8 राज्य विधान सभा के नए चुनावों की घोषणा

राज्य में नया संविधान लागू हो जाने के बाद विधान सभा के चुनावों की घोषणा हो गई। प्रदेश में कांग्रेस की शाखा तो थी नहीं, इसलिए जम्मू संभाग में मुख्य मुकाबला प्रजा परिषद् और नेशनल कॉन्फ्रेंस में ही होने वाला था। वैसे तो प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने भी अब तक अपनी राज्य शाखा की स्थापना कर ली थी और वह भी मैदान में थी। लेकिन बख्शी गुलाम मोहम्मद इन सबसे निश्चिंत थे, क्योंकि चुनाव लड़ने और जीतने की जो व्यवस्था शेख अब्दुल्ला के समय में नेशनल कॉन्फ्रेंस ने स्थापित कर ली थी, बख्शी गुलाम मोहम्मद ने उसमें और सुधार कर लिए थे, ताकि पराजय का प्रश्न ही पैदा न हो।

9.9 चुनावों में धाँधली

प्रजा परिषद् ने अपने सत्रह प्रत्याशी विभिन्न विधान सभा क्षेत्रों में खड़े किए, 'उसे केवल पाँच सीटें जीतने की अनुमति दी गई।' [530] (Faultline Kashmir, 214, प्रजा परिषद् ने इन चुनावों में पाँच नहीं बल्कि छह स्थान जीते थे) प्रजा परिषद् को 1952 में हुए विधान सभा के चुनावों का अनुभव अभी भूला नहीं था। इसलिए प्रेमनाथ डोगरा चुनावों से पूर्व राज्य के प्रधानमंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद और सदर-ए-रियासत कर्ण सिंह से मिले थे और दोनों ने ही निष्पक्ष चुनाव करवाने का बचन दिया था।[531] परंतु सरकार अपना वचन नहीं निभा पाई या फिर उसकी वचन निभाने की इच्छा ही नहीं थी। इसके बावजूद प्रजा परिषद् के अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा जम्मू उत्तर क्षेत्र से पाँच हजार से भी अधिक मतों से नेशनल कॉन्फ्रेंस के प्रत्याशी को हराकर जीत गए। प्रजा समाजवादी पार्टी

के प्रत्याशी की जमानत जब्त हो गई। डोगरा के अतिरिक्त प्रजा परिषद् के सहदेव सिंह, सत्यदेव, राजेंद्र सिंह और महेश बसोली भी विधान सभा में पहुँचने में सफल रहे।

इन चुनावों में जम्मू क्षेत्र में चुनावी धाँधली का स्वरूप जरूर सरकार ने कुछ सीमा तक संशोधित कर दिया था। इस बार जम्मू संभाग में 1952 की तरह थोक के भाव विरोधी प्रत्याशियों के नामांकन पत्र रद्द नहीं किए, कुछ स्थानों पर मतदाताओं को मतदान इत्यादि करने की छूट प्रदान कर दी गई। कश्मीर के मतदाताओं को यह छूट भी नहीं थी। उनको सभी प्रत्याशियों को निर्विरोध चुनकर ही लोकतंत्र को मजबूत करना था। अलबत्ता मतदान पेटियाँ इस प्रकार की बनाई गईं कि उनका ताला और उनपर लगी सील को बिना छेड़े भी वे आसानी से खोली जा सकती थीं। प्रजा परिषद् को सरकार की इस नई चुनावी तकनीक की भनक लग चुकी थी। मतदान हो जाने के बाद मतदान पेटियों को प्रत्याशी या उसके प्रतिनिधि के सामने सील किया जाता था। सील करने के बाद मतदान पेटियाँ राजकीय कोषागार, जिसे बोलचाल की भाषा में खजाना कहा जाता है, में लाई जाती थीं। रास्ते में ही गड़बड़ किए जाने की संभावना बनी रहती थी, क्योंकि पेटियाँ तो बिना सील हटाए भी खुल जाती थीं। अत: परिषद् ने माँग की कि मतदान पेटियों को सील करने के बाद खजाने तक ले जाते समय पार्टी का एक प्रतिनिधि भी साथ जाए। राज्य के मुख्य चुनाव आयुक्त हीरानंद रैना ने 22 जून, 1957 को पार्टी के अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा को इस माँग पर लिखित उत्तर दिया, 'क्या आप कृपया विधान की वह धारा बता सकेंगे, जिसके अंतर्गत चुनाव में भाग लेनेवाले दलों के एजेंटों को, मतपेटियों को सील करके खजाने तक ले जाते समय, साथ आने की सुविधाएँ प्रदान करनेवाला कोई उल्लेख हो।' **532**

विधान सभा चुनावों में यह धाँधली और चुनाव के नाम पर करवाया जा रहा सारा नाटक राज्य में चर्चा का विषय तो था ही, लेकिन इससे आम जनता में रोष भी बढ़ रहा था और व्यवस्था पर से विश्वास भी उठ रहा था। प्रजा परिषद् ने अपनी कार्यकारिणी की बैठक में पारित किया, 'राज्य में निष्पक्ष चुनाव तभी संभव हैं, यदि यहाँ भारत के चुनाव आयोग को अधिकार दे दिया जाए और भारत के उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश की निगरानी में चुनाव में हुई धाँधलियों की जाँच के लिए समिति बनाई जाए। राज्य की जनता असंयमित न हो। प्रजा परिषद् उनके अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही है और वह अंत तक इस अन्याय के खिलाफ संघर्ष जारी रखेगी।' **533**

अटल बिहारी वाजपेयी ने जम्मू के चुनावों में हुई धाँधली का उल्लेख लोकसभा में किया। उन्होंने कहा, 'अभी-अभी जम्मू-कश्मीर में चुनाव हुए थे। मैं चुनाव में जम्मू गया था। मुझे दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि उस चुनाव में अनियमितताएँ की गईं। मतदाता सूचियाँ उर्दू में छपी थीं, लेकिन छापा ऐसा था कि पृष्ठ-के-पृष्ठ पढ़े ही नहीं जा सकते थे। परंतु जिसका पढ़ना प्रजा परिषद्वालों के लिए असंभव था, उसका पढ़ना नेशनल कॉन्फ्रेंसवालों के लिए संभव हो गया। मतदान के दिन तक मतदान केंद्रों की सूची उपलब्ध नहीं थी। कहीं-कहीं तो मतदान के दिन ही मतदान केंद्रों में परिवर्तन कर दिया गया। मतदान के बाद अनेक स्थानों पर मतदान पेटियों को मतदान अधिकारियों के पास ही रहने दिया गया। प्रजा परिषद् के प्रधान पंडित प्रेमनाथ डोगरा ने चुनाव में हुई धाँधलियों के संबंध में मतदान अधिकारी के सामने आपत्तियाँ दायर की थीं। मेरे पास उसके फोटो चित्र हैं, जिन्हें मैं सदन के टेबल पर रखने के लिए तैयार हूँ। आपत्तियों के उत्तर में मतदान अधिकारी ने स्वीकार किया है कि एक स्थान पर जब गणना हो रही थी, तो वहाँ एक मतपेटी ही गायब थी। जम्मू-कश्मीर के चुनाव में प्रजा परिषद् ने सत्रह उम्मीदवार खड़े किए थे, उनके बारह चुनाव क्षेत्रों की जो मतपेटियाँ थीं, वे टूटी हुई पाई गई थीं। ये अनियमितताएँ ठीक नहीं हैं। मैं

बख्शी साहिब की कठिनाइयाँ समझता हूँ। लेकिन कश्मीर को हमें लोकतंत्र के मार्ग पर आगे बढ़ाना है। इसलिए यह आवश्यक है कि वहाँ ऐसा वातावरण पैदा किया जाए, जिसमें सभी दल और भारत के प्रति निष्ठा रखनेवाले सभी पक्ष स्वतंत्रता से कार्य कर सकें।' [534]

राज्य सरकार ने चुनाव में धाँधलियों की जाँच के लिए अस्सी साल के दसवीं पास कृष्ण लाल किचलू को नियुक्त किया, जो सरकारी पेंशनधारी थे और जिनके दूर-नजदीक के सभी सगे-संबंधी सरकारी नौकरी में थे।' [535] किचलू को अपनी जाँच में चुनावों का कृष्ण पक्ष दिखाई नहीं दिया और उन्होंने 'सब अच्छा है' की जाँच-रपट सरकार के हवाले कर दी।

विधान सभा चुनावों के कुछ देर बाद ही राज्य विधान परिषद् के लिए चुनाव हुए। प्रजा परिषद् ने इसमें भी कुछ स्थानों पर अपने प्रत्याशी खड़े किए थे। लेकिन जब मतगणना हुई तो मतपेटियाँ बिना सील तोड़े भी खुलने लगीं। 29 जून, 1957 को मतगणना के समय प्रजा परिषद् के प्रत्याशी के एजेंटों ने मतगणना अधिकारी के सामने ही मतपेटी खोलकर दिखा दी। इस संबंध में लिखित शिकायत पर मतगणना अधिकारी ने जो लिखित उत्तर दिया, उसी से सारे चुनाव की पोल खुल गई। मतगणना अधिकारी हरिदास शर्मा ने लिखा, 'प्रमाणित किया जाता है कि लाला द्वारिकानाथ की जम्मू नगर पोलिंग बूथ से संबंधित पेटी संख्या जे-59, जब मतगणना के लिए लाई जा रही थी और उसकी जाँच उसके चुनाव एजेंट द्वारा की जा रही थी तो थोड़ा सा जोर लगाने पर वह खुल गई, यद्यपि उसकी सील ठीक ही लगी रही। लेकिन मेरा मत है कि पेटी से कोई छेड़छाड़ नहीं की गई है और उसका सील रहते हुए भी खुलना केवल किसी यांत्रिक खराबी के कारण है।' यही स्थिति पेटी नंबर 58 के साथ हुई।[536]

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि चुनाव के नाम पर राज्य में यह सारा तमाशा बख्शी गुलाम मोहम्मद अपने बलबूते कर रहे थे। दिल्ली में पंडित जवाहरलाल नेहरू चुनाव की इन सभी धाँधलियों से पूरी तरह परिचित थे। यही कारण था कि प्रजा परिषद् का यह विश्वास कि यदि चुनाव भारत सरकार के चुनाव आयुक्त करवाएँ तो वे निष्पक्ष होंगे, निकट भविष्य में पूरा होनेवाला नहीं था।

9.10 1962 के विधान सभा चुनाव

चुनाव के नाम पर यह नाटक जम्मू-कश्मीर में शेख के समय से ही चलता आ रहा था। 1962 के चुनावों में भी धाँधली का यही दौर चलता रहा। जब कि इस बार चुनाव भारत का चुनाव आयोग करवा रहा था। इस बार भी नेशनल कॉन्फ्रेंस के चौदह प्रत्याशी निर्विरोध चुने गए। नेशनल कॉन्फ्रेंस ने 75 प्रत्याशी खडे किए थे, जिनमें से 70 जीत गए। नेशनलकॉन्फ्रेंस को लगभग 67 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। नेशनल कॉन्फ्रेंस के प्रत्याशियों को हराकर दो निर्दलीय प्रत्याशी जीते थे, उसका भी कारण यह था कि उन क्षेत्रों में राज्य के प्रधानमंत्री स्वयं ही अपनी पार्टी के इन दो प्रत्याशियों को हराना चाहते थे। इन चुनावों में प्रजा परिषद् ने जम्मू संभाग से अपने 25 प्रत्याशी मैदान में उतारे। उनमें से केवल तीन जीत सके। जम्मू नगर उत्तरी क्षेत्र से प्रेमनाथ डोगरा ने नेशनल कॉन्फ्रेंस के प्रत्याशी को 7762 मतों के अंतर से हराया। लांडर टिकरी विधान सभा क्षेत्र से प्रजा परिषद् के शिवचरण गुप्ता और रियासी से ऋषि कुमार कौशल ने नेशनल कॉन्फ्रेंस को पराजित कर जीत दर्ज की। परिषद् ने लड़ी गई सीटों पर 28.68 प्रतिशत मत प्राप्त किए।[537] परिषद् को केवल तीन सीटों पर जीतने देना है, यह उस समय के राज्य के प्रधानमंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद ने तय कर लिया था। लेकिन शेष बची 73 सीटों में से दो पर नेशनल कॉन्फ्रेंस कैसे हार गई? यह

महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। उसका किस्सा, ''बख्शी साहिब ने श्रीनगर में अपनी ही पार्टी नेशनल कॉन्फ्रेंस के गुलाम रसूल रिनजो को आजाद उम्मीदवार गाजी अब्दुर्रहमान से हरवा दिया। रिनजो सादिक साहिब से निकटता रखते थे और यह बात बख्शी को पसंद नहीं थी। पूरे निर्वाचन क्षेत्र में यह बात मशहूर हो गई कि जो व्यक्ति वर्तमान सरकार के प्रत्याशी रिनजो को मत देगा, उसको राशन डिपो से राशन नहीं मिलेगा। परिणामस्वरूप खालिद-ए-कश्मीर बख्शी गुलाम मोहम्मद के प्रत्याशी गाजी अब्दुर्रहमान शासक दल नेशनल कॉन्फ्रेंस के प्रत्याशी गुलाम रसूल रिनजो से जीत गए। बाद में गाजी को नेशनल कॉन्फ्रेंस विधानमंडल पार्टी में शामिल कर लिया गया।

दूसरा चुनाव सोपोर के एक निर्वाचन क्षेत्र (हंदवाडा) में हुआ था। पार्टी के प्रत्याशी गुलाम रसूल मसाला ने आकर बख्शी साहिब से कहा कि मेरा विधान सभा क्षेत्र तो सुरक्षित है, मुझे कोई और क्षेत्र बताइए, जहाँ जाकर पार्टी के लिए काम करूँ। बादशाहों के स्वभाव निराले होते हैं। उनके चापलूस बख्शी साहिब को बादशाह ही कहते थे और बख्शी उनकी बात को आम लोगों की आवाज समझते थे। बादशाह को यह राजनैतिक शेखी बुरी लगी। उन्होंने कहा, 'नहीं, तुम अपने क्षेत्र में जाकर अपने लिए ही काम करो, इसकी बहुत आवश्यकता है। इसके बाद पुलिस महानिरीक्षक डी.डब्ल्यू. मेहरा को बुलाकर कहा कि गुलाम कादिर मसाला के निर्वाचन क्षेत्र में कोई बेईमानी नहीं होगी। संदेश स्पष्ट था। इलाके में चर्चा होने लगी कि मत का स्वतंत्र रूप से इस्तेमाल हो सकता है। लोगों ने सरकार के संरक्षण में मत का स्वतंत्र इस्तेमाल करके गुलाम कादिर को हरा दिया।' [538]

सन् 1962 के चुनावों में नेहरू अत्यधिक रुचि ले रहे थे। वे स्वयं राज्य में नेशनल कॉन्फ्रेंस के प्रत्याशियों के पक्ष में प्रचार करने के लिए आए। लेकिन चुनाव किस प्रकार करवाए जा रहे थे, इसपर उस समय के सदर-ए-रियासत कर्ण सिंह की टिप्पणी रोचक है। उनके ही शब्दों में, 'एक अजीब घटना हुई, जिससे बख्शी और उनकी पार्टी के लिए शर्मनाक स्थिति पैदा हो गई। प्रजा परिषद् ने पाया कि मतपेटियों को बिना सील हटाए आसानी से खोला जा सकता है। ऐसी मतपेटिकाएँ मेरे घर लाई गईं और मुझे दिखाया गया कि किस तरह उन्हें सील को हाथ लगाए बिना खोला जा सकता है। मतपेटिकाओं में एक जगह चूड़ी लगी हुई थी, जिससे वह खुल जाती थी। इस बात को राष्ट्रीय स्तर पर अखबारों ने खूब उछाला। मैंने तुरंत बख्शी को पत्र लिखा और तत्कालीन चुनाव आयुक्त के.वी.के. सुंदरम से संपर्क किया। अगले ही दिन वे जम्मू आए और बख्शी विरोधी पार्टी के नेतागण और स्थानीय चुनाव अधिकारियों के साथ बैठकें कीं। इस घटना से पूरी चुनावी प्रक्रिया संदेह के घेरे में आ गई और 24 फरवरी को जम्मू क्षेत्र में हुए चुनावों में जब 29 में से 26 स्थान नेशनल कॉन्फ्रेंस ने जीते तो यह जीत स्पष्ट रूप से लोगों के रुख को प्रतिबिंबित नहीं करती थी। घाटी में नेशनल कॉन्फ्रेंस के 34 उम्मीदवारों को बिना किसी विरोध के चुन लिया गया था, क्योंकि सभी विरोधी उम्मीदवारों के नामांकन पत्र गैर-जरूरी आधार पर रद्द कर दिए गए थे। नई विधान सभा की 75 सीटों में से 70 बख्शी को मिलीं, लेकिन इससे राज्य में सत्तारूढ़ पार्टी की विश्वसनीयता को काफी क्षति पहुँची।' [539] बिना सील खोले मतपेटियों को खोलने की नेशनल कॉन्फ्रेंस की इस कारीगरी का पर्दाफाश तो प्रजा परिषद् 1957 के चुनावों में ही कर चुकी थी, लेकिन उस समय चुनाव राज्य सरकार का चुनाव आयोग करवा रहा था। अबकी बार चुनाव भारत सरकार का चुनाव आयोग करवा रहा था और नेहरू खुद नेशनल कॉन्फ्रेंस के चुनाव अभियान में लगे हुए थे। लेकिन बख्शी ने स्थिति इतनी विकट बना दी थी कि पंडित नेहरू को भी बख्शी को लिखना पड़ा, 'यदि आप विरोधियों से कुछ सीटें हार भी जाते तो आपकी स्थिति और मजबूत होती।' [540] (Faultline

Kashmir, 223)

9.11 बख्शी गुलाम मोहम्मद का इस्तीफा

24 अगस्त, 1963 को कामराज योजना के अंतर्गत राज्य के प्रधानमंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया, जिसे स्वीकार कर लिया गया। इस पर प्रजा परिषद् की टिप्पणी थी, 'कौन व्यक्ति सत्ता में है, इससे पार्टी को कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन उसे आशा है कि जम्मू-कश्मीर व अन्य राज्यों के मध्य जो भेद रखा गया है, वह जल्दी मिटा दिया जाएगा।' [541] बख्शी गुलाम मोहम्मद ने प्रशासन पर तो पूरी पकड़ बना ली थी, लेकिन रिश्वत और भ्रष्टाचार को उन्होंने राज्य की व्यवस्था का ही अंग बना दिया था। लोकतंत्र में उनकी इतनी भर आस्था थी कि विरोध करनेवाला अपनी कीमत स्वयं तय करके उन्हें बता सकता था और बख्शी साहिब उसे चुकाने में देर नहीं लगाते थे। जिनको कीमत लेना पसंद नहीं था, उनको शांत करने के लिए बख्शी अन्य तरीके इस्तेमाल करते थे। जहाँ तक जवाहर लाल नेहरू का संबंध था, उनके लिए पहले जम्मू-कश्मीर का मतलब शेख मोहम्मद अब्दुल्ला होता था और अब वह बख्शी गुलाम मोहम्मद हो गया था। जनमत संग्रह के नाम पर पहले उन्हें शेख डराते थे और अब बख्शी डराने लगे थे। नेहरू ने इसी डर के मारे स्वतंत्र राजनैतिक नेतृत्व उभरने की अनुमति न उस समय दी थी और न अब दे रहे थे। लेकिन यह रहस्य आज तक बना हुआ है कि 1963 में वे प्रधानमंत्री पद से क्यों 'कामराजे' गए।[542]

9.12 प्रजा परिषद् द्वारा प्रदेश के राजनैतिक एकीकरण का निर्णय

प्रजा परिषद् राज्य में संघीय संविधान को पूरी तरह लागू करवाने के लिए तो प्रयास कर रही थी। इसी दिशा में उसने राज्य में राजनैतिक गतिविधियों को देशव्यापी प्रसार देने की दिशा में प्रयास किया। प्रजा परिषद् भारतीय जनसंघ के साथ सहयोगी दल तो पहले ही बन चुकी थी। अब उसने भारतीय जनसंघ में विलीन होने का निर्णय किया। परिषद् का मानना था कि इससे प्रदेश की राजनीति अखिल भारतीय स्वरूप ग्रहण करेगी। 13-14 अक्तूबर, 1963 को पार्टी की दो दिवसीय कार्यकारिणी की बैठक अखनूर में हुई। इस बैठक में 'भारतीय जनसंघ का संविधान, घोषणा-पत्र और ध्वज अपनाने का प्रस्ताव पारित किया गया और कहा गया कि भारतीय जनसंघ पहला राजनैतिक दल है जो अपने जन्मकाल से राज्य के भारत में पूर्ण एकीकरण हेतु प्रतिबद्ध है।' [543] एक अन्य प्रस्ताव में परिषद् ने 'राज्य के लिए धारा 370 समाप्त करने की माँग की, क्योंकि इससे पाकिस्तान को भारत के खिलाफ प्रचार करने का आधार मिलता है।' [544]अब तक कांग्रेस की कामराज योजना के अंतर्गत बख्शी गुलाम मोहम्मद प्रधानमंत्री के पद से मुक्त हो चुके थे और उनके स्थान पर शमसुद्दीन प्रधानमंत्री बन चुके थे। प्रजा परिषद् ने इस पर भी टिप्पणी की। 'बख्शी को हटाए जाने से लगता था कि कि राज्य में से अब भ्रष्टाचार समाप्त हो जाएगा और लोगों को स्वच्छ प्रशासन मिलेगा, लेकिन बख्शी के इशारे पर कठपुतली सरकार बनने से यह सारी आशा समाप्त हो गई है।' [545] जनसंघ में शामिल होने के कार्यकारिणी के इस प्रस्ताव पर अब पार्टी की सामान्य परिषद् को विचार करना था। प्रजा परिषद् ने प्रदेश के अन्य राजनैतिक दलों से भी आह्वान किया कि वे अपनी-अपनी विचारधारा के नजदीकी अखिल भारतीय राजनैतिक दलों में शामिल हो जाएँ। बख्शी गुलाम मोहम्मद स्वयं तो कांग्रेस के सदस्य

बन चुके थे और उसकी राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य भी थे, लेकिन प्रजा परिषद् के इस सुझाव का उन्होंने डटकर विरोध करना शुरू कर दिया। उन्होंने कहा कि 'भारतीय राजनैतिक दलों द्वारा राज्य में अपनी गतिविधियाँ शुरू करने से राज्य की दिक्कतें और बढ़ जाएँगी और इससे भारत के हितों को भी नुकसान होगा।' इस पर प्रजा परिषद् के अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा की टिप्पणी थी कि 'नेशनल कॉन्फ्रेंस का तो पिछले सोलह साल का इतिहास गवाह है कि यह पार्टी राज्य के भारत के साथ एकीकरण के रास्ते में रोड़े अटकाती रही है।[546] परंतु नेशनल कॉन्फ्रेंस के ही गुलाम मोहम्मद सादिक और सैयद मीर कासिम ने प्रदेश में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की शाखा खोलने की माँग ही नहीं की, अपितु 'वे दिल्ली जाकर नेहरू, इंदिरा गांधी, जगजीवन राम और कांग्रेस अध्यक्ष संजीवैया से मिल भी आए। उन्होंने कहा कि कश्मीर का भारत के साथ एकीकरण केवल प्रशासकीय मामलों में ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उसका भावात्मक व राजनैतिक एकीकरण भी जरूरी है। राज्य में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी पहले से ही कार्य कर रही है। अब भारतीय जनसंघ भी अपनी शाखा खोलने जा रहा है, तो कांग्रेस की शाखा क्यों नहीं होनी चाहिए।' [547] इतना ही नहीं, कुछ लोगों ने प्रदेश में कांग्रेस की शाखा की स्थापना भी कर दी और कांग्रेस नेतृत्व से इसे मान्यता देने के लिए कहा। लेकिन बख्शी ने इसके खिलाफ मोर्चा खोल दिया था। वे नहीं चाहते थे कि उनके इलाके में कोई और राजनैतिक दल हस्तक्षेप करे। प्रजा परिषद् के इस प्रस्ताव ने राज्य में एक नई बहस ही नहीं छेड़ दी बल्कि वातावरण भी खासा उत्तेजित हो गया था। इस पर कांग्रेस ने राज्य में अपनी शाखा खोलने का प्रस्ताव रद्द कर दिया। कांग्रेस नेतृत्व ने कहा, 'कांग्रेस और नेशनल कॉन्फ्रेंस में कोई अंतर नहीं है। दोनों पार्टियाँ एक ही हैं। कोई भी कश्मीरी राज्य में नेशनल कॉन्फ्रेंस का सदस्य बन सकता है और अखिल भारतीय स्तर पर कांग्रेस का सदस्य बन सकता है।' [548] उधर 29-30 दिसंबर, 1963 को प्रजा परिषद् की सामान्य परिषद् का अधिवेशन जम्मू में हुआ। 30 दिसंबर को इस सम्मेलन में सर्वसम्मति से प्रजा परिषद् के भारतीय जनसंघ में विलय का प्रस्ताव पारित कर दिया गया। जम्मू-कश्मीर की राजनीति में सोलह साल की राजनीति के एक स्वर्णिम और संघर्षपूर्ण अध्याय का अंत हुआ और उसके स्थान पर भारतीय जनसंघ का अध्याय प्रारंभ हुआ। रघुनाथ मंदिर के सामने किसी ने टिप्पणी की—प्रजा परिषद् का भारतीय जनसंघ में विलय राज्य के राजनैतिक एकीकरण की दिशा में लंबी छलाँग है।

9.13 प्रजा परिषद् का लेखा-जोखा

जम्मू-कश्मीर के इतिहास में प्रजा परिषद् की राजनैतिक यात्रा कुल मिलाकर सोलह साल की है। 17 नवंबर, 1947 को परिषद् का गठन हुआ और 30 दिसंबर, 1963 को उसका भारतीय जनसंघ में विलय हो गया। इस अल्पकाल में ही प्रजा परिषद् की उपलब्धियाँ ऐतिहासिक महत्ता रखती हैं। शेख मोहम्मद अब्दुल्ला, कुछ विदेशी शक्तियों के छलावे में आकर और कुछ सीमा तक अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं के कारण राज्य को स्वायत्तता के नाम पर जिस दिशा की ओर ले जा रहे थे, वह रास्ता राज्य के हित में नहीं था। पंडित नेहरू शेख को उस रास्ते पर जाने से रोक तो नहीं पा रहे थे बल्कि कुछ सीमा तक उसके साथ ही चल रहे थे। शायद नेहरू को विश्वास रहा होगा कि शेख के साथ चलते हुए वे अंतत: उन्हें कहीं-न-कहीं रोकने में सफल हो ही जाएँगे। शेख अपने हर निर्णय के लिए प्रदेश में मुसलिम समाज के बहुसंख्यक होने के तथ्य को हथियार की तरह इस्तेमाल कर रहे थे और नेहरू अपनी 'हिंदू-मुसलिम की सांप्रदायिक सोच' से बाहर नहीं निकल रहे थे। शेख और नेहरू का राज्य को लेकर किया

जानेवाला यह प्रयोग अपने खतरनाक चौराहे पर पहुँच गया था। राज्य की प्रजा परिषद् ने अपने सत्याग्रह से इस प्रयोग को इसी खतरनाक चौराहे पर रोका। उसके मार्ग में अवरोध उपस्थित किया। लेकिन यह अवरोध लगाना इतना आसान नहीं था। इसके लिए राज्य के लोगों को पंद्रह बलिदान देने पड़े और सबसे बढ़कर डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी को स्वयं प्राणोत्सर्ग करना पड़ा। परंतु उससे राज्य में अलगाव का संवैधानिक प्रयोग समाप्त हुआ और उसके स्थान पर एकीकरण का संवैधानिक प्रयोग त्वरित किया जाने लगा। राज्य की संविधान सभा ने रियासत के अधिमिलन का अनुमोदन ही नहीं किया, बल्कि भविष्य में भी इसे चुनौती न दी जा सके, इसकी भी संवैधानिक व्यवस्था की। संविधान (जम्मू-कश्मीर में व्याप्ति) आदेश 1954 के माध्यम से संघीय संविधान के अनेक भाग राज्य में लागू किए गए। यह प्रक्रिया निरंतर जारी है, लेकिन इस प्रक्रिया के मूल में कहीं-न-कहीं प्रजा परिषद् की उपस्थिति अवश्य अनुभव की जाएगी।

❑

परिशिष्ट—1

(प्रजा परिषद् के अध्यक्ष पंडित प्रेमनाथ डोगरा द्वारा राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद को 19 जून, 1952 को सौंपा गया ज्ञापन।)

1. जम्मू और कश्मीर राज्य के लोगों का भविष्य, विशेष तौर पर भारत के साथ उनका संबंध, राज्य के लोगों के लिए महत्त्वपूर्ण और सर्वोपरि महत्त्व का मुद्दा है। जम्मू के लोग इस बात को लेकर व्यग्र हैं कि अब उनका राज्य निश्चित और स्थायी तौर पर भारत का अभिन्न अंग बन जाए और वे इसके लिए कोई भी कीमत चुकाने को तैयार हैं।

2. भारत के साथ एकाकार हो जाने की इसी इच्छा ने जम्मू के लोगों को कश्मीर नेशनल कॉन्फ्रेंरस के साथ उस वक्त पूरा सहयोग करने के लिए प्रेरित किया, जब भारत सरकार के आदेशानुसार महाराजा ने उसे राज्य के दैनिक प्रशासन की जिम्मेदारी सौंपी। यह सहयोग इस उम्मीद से किया गया कि नेशनल कॉन्फ्रेंस के नेता जम्मू के डोगरा लोगों के साथ किए गए अपने पिछले भेदभाव को भुलाकर राज्य के सभी लोगों को साथ लेकर चलेंगे और जिसका एक आम उद्देश्य भारत के साथ पूर्ण विलय होगा।

3. लेकिन दुर्भाग्य से शेख अब्दुल्ला की सरकार ने न सिर्फ इस सहयोगात्मक रवैए की कद्र की, बल्कि इसे गलती से उनकी कमजोर कड़ी समझ लिया और सामान्य तौर पर जम्मू प्रांत के लोगों के खिलाफ, और विशेष रूप से प्रजा परिषद् के विरुद्ध एक सुनियोजित, पूर्वविचारित भेदभाव तथा दमन की नीति को अपना लिया। इस दमनकारी और भेदभावपूर्ण नीति ने न सिर्फ राजनीतिक, आर्थिक और लोगों के सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करना शुरू किया, बल्कि उनके धार्मिक जीवन में भी दखलंदाजी शुरू कर दी।

नागरिक स्वतंत्रता का निषेध

4. सबसे पहले जम्मू के लोगों की नागरिक स्वतंत्रता, उनकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और सरकारी नीतियों, जिनमें से खासतौर पर भारत के साथ राज्य के संबंधों से जुड़ी नीतियाँ हैं। उनकी आलोचना में शामिल होने के अधिकार और उसके लिए आवश्यक रणनीति तैयार करने पर प्रतिबंध लगा दिया। ये सभी संविधान के द्वारा मिले अधिकार हैं, फिर भी इन्हें नजरअंदाज कर दिया गया। इन अधिकारों पर न सिर्फ रोक लगाई गई है, बल्कि इन्हें कुचलने के लिए डिफेंस ऑफ कश्मीर बेल्स की धारा 50 और पब्लिक सिक्योरिटी ऐक्ट का धड़ल्ले से इस्तेमाल किया गया है। बड़े पैमाने पर लोगों के दमन से भी जब अब्दुल्ला सरकार का जी नहीं भरा तो उसने लोगों को प्रताड़ित करने के लिए एक नियमित अभियान छेड़ दिया है, जिसके तहत प्रेस, पोस्ट और टेलीग्राम की आजादी पर रोक लगा दी गई है तथा ऐसे उपाय लागू किए हैं, जिनकी वजह से प्रजा परिषद् से जुड़े लोगों के संबंधियों को नौकरी और पेंशन से हाथ धोना पड़ रहा है। ऐसे कई मामलों को गिनाया जा सकता है, जिनमें इस प्रकार के कदम उठाए जा चुके हैं। नतीजा यह हुआ कि उन लोगों की आवाज को पूरी तरह दबा दिया गया है, जो भारत के साथ सीमित विलय की वर्तमान नीति के खिलाफ हैं और भारतीय संघ के साथ पूर्ण विलय तथा करीबी संबंध स्थापित करना चाहते हैं। सरकार की आलोचना करनेवाले अखबारों को कुचल दिया गया है और उनके मुँह पर ताला लगा दिया गया है। ऐसे भारतीय अखबार, जो कश्मीर सरकार के द्वारा अपनाई जा रही नीतियों की आलोचना करते हैं और उनके शिकार लोगों के साथ सहानुभूति रखते हैं, उन्हें राज्य में प्रतिबंधित कर दिया गया है। प्रजा परिषद् के अध्यक्ष और उनके सहयोगियों को बार-बार गिरफ्तार किया जाता है तथा बिना मुकदमा चलाए लंबे समय तक जेल में रखा

जाता है। इस साल के फरवरी महीने की बात है, जब सार्वजनिक कार्यक्रम में राज्य के झंडे की बजाय पार्टी के झंडे के इस्तेमाल का विरोध करने के लिए छात्रों ने आंदोलन किया तो उस आंदोलन के बहाने प्रजा परिषद् के खिलाफ दमनकारी उपाय अपनाए गए और जम्मू के लोगों को कुचलने के लिए आतंक का राज कायम कर दिया गया। प्रजा परिषद् के कई प्रमुख कार्यकर्ताओं को राज्य से निष्कासित कर दिया गया। इससे तो राज्य के लोगों की हालत पहले के निरंकुश शासन से भी बदतर हो गई। जम्मू और कश्मीर के लोगों के पास कोई मौलिक अधिकार नहीं हैं और वे अपनी रक्षा के लिए भारत के सुप्रीम कोर्ट की शरण में भी नहीं जा सकते हैं।

हिंदी और उर्दू

5. शिक्षा के क्षेत्र में भारतवर्ष के साथ राज्य को जोड़नेवाले भाषाई और सांस्कृतिक संबंधों को छिन्न-भिन्न करने के लिए पिछले कई वर्षों से सुनियोजित प्रयास किए जा रहे हैं। विलय से पहले हिंदी और उर्दू का राज्य के शैक्षणिक क्षेत्र में समान महत्त्व था। अब इसे पूरी तरह से उपेक्षित कर दिया गया है। उर्दू को राज्य की राजकीय भाषा का दर्जा दे दिया गया है और स्कूलों में इसे ही शिक्षा का माध्यम बना दिया गया है। यहाँ तक कि लड़कियों की किताबों में भी अरबी और फारसी के बेहद कठिन शब्द भरे पड़े हैं, जिन्हें शिक्षक भी नहीं समझ पाते हैं। उर्दू को मैट्रिक की परीक्षा के लिए अनिवार्य विषय बना दिया गया है। स्कूली किताबों के जरिए बच्चों को भारतीय राष्ट्रवाद की बजाय कश्मीरी राष्ट्रवाद का पाठ पढ़ाया जा रहा है।

6. उन सात व्यक्तियों में, जो राज्य की पाठ्य-पुस्तक समिति के सदस्य हैं, एक भी सदस्य न तो जम्मू का है और न ही अल्पसंख्यक समुदाय का।

7. राज्य के कुछ कॉलेजों के लिए एक अलग विश्वविद्यालय की स्थापना कर दी गई है, जिससे राज्य के खजाने पर भारी दबाव पड़ रहा है। इसका नतीजा यह भी हुआ है कि जहाँ एक आम विश्वविद्यालय भारत के साथ राज्य के शैक्षणिक और सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत करता है, वहीं यह अलग से बनाया गया विश्वविद्यालय उस रिश्ते को कमजोर करने पर तुला है। हद तो इस बात की है कि प्रश्नपत्र भी इस प्रकार तैयार किए जाते हैं कि परीक्षार्थियों में डोगरा-विरोधी भावनाएँ पैदा की जाएँ। इसका स्पष्ट सबूत 1952 के जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय के अंग्रेजी पेपर बी में देखा जा सकता है।

पार्टी हित की नीति

8. प्रशासनिक क्षेत्र में पार्टी का हित साधने की नीति अपनाई जा रही है और इसके लिए महाराजा के शासन के दौरान अपनाई जा रही मेधा, साफगोई और राज्य की नौकरियों में होनेवाली भरती के दौरान राज्य के व्यापक हितों से समझौता किया जा रहा है। पहले इन नियुक्तियों में खुली प्रतियोगिता या मेधा या वरीयता को तरजीह दी जाती थी। अब किसी सरकारी सेवा में बने रहने के लिए पार्टी की सिफारिश आवश्यक होती है। अब सत्ता के सभी अहम पदों पर कश्मीर प्रांत के लोग बैठे हैं। शेख अब्दुल्ला ने खुलेआम ऐलान कर दिया है कि उनकी मरजी है कि पार्टी और सरकार को एक ही तरह के लोग चलाएँ। ऐसा तो अधिनायकवादी राज्यों में ही होता है, लेकिन उन्हें इस बात की परवाह भी नहीं है। शेख अब्दुल्ला को जिस सांप्रदायिकता के खिलाफ भाषण देने का शौक है, उसी सांप्रदायिकता का प्रचार-प्रसार राज्य में इतने जोर-शोर से किया जा रहा है कि अकसर सरकारी पदों की भरती से जुड़े विज्ञापन में यह साफ तौर पर लिख दिया जाता है, 'सिर्फ मुसलमान ही आवेदन करें।'

9. राज्य की सत्ता चला रहे लोग जिस प्रकार की नीतियाँ अपना रहे हैं, उससे लगता है कि वे लोगों को यह

अहसास दिलाना चाहते हैं कि उन पर श्रीनगर से शासन किया जा रहा है। महाराजा की सरकार के द्वारा जम्मू में जिस ट्रेनिंग कॉलेज की स्थापना की गई थी, उसे श्रीनगर ले जाया गया है, तोश-खाना जिसमें राज्य की बेशकीमती और उत्सुकता पैदा करनेवाली चीजें रखी गई थीं, उसे भी जम्मू लाइब्रेरी में पड़ी दुर्लभ पांडुलिपियों के साथ श्रीनगर ले जाया गया है। जम्मू स्थित सरकारी प्रेस को भी श्रीनगर ले जाने की योजना थी, लेकिन जन विरोध की वजह से इसे फिलहाल टाल दिया गया है। पुराने शासन में जम्मू को एक अलग प्रांत का दरजा हासिल था और उसका अपना एक गवर्नर भी हुआ करता था। अब गवर्नर का पद समाप्त कर दिया गया है और जम्मू तथा कश्मीर के जिलों को एक साथ मिलाकर उनके लिए एक कमिश्नर की तैनाती कर दी गई है। इस कदम से जम्मू प्रांत की अलग पहचान को खत्म कर दिया गया है।

बँटवारा

10. जम्मू प्रांत की क्षेत्रीय सीमाओं में इस प्रकार फेरबदल किया गया है, ताकि यह प्रांत हिंदू और मुसलमान इलाकों में बँट जाए और जब राज्य के बँटवारे की नौबत आए तो भारत को नुकसान उठाना पड़े। ऊधमपुर जिला, जो साफ तौर पर हिंदू बहुल था और जो लद्दाख तथा जम्मू के बीच एक कड़ी का काम करता था, उसे दो इकाइयों में बाँट दिया गया। भदरवाह, किश्तवाड़ और रामबन जैसे इलाके जो खनिज और वन संपदा के भंडार हैं, उन्हें मिलाकर डोडा का एक मुसलिम बहुल इलाका बनाया गया है। इसे अंतत: कश्मीर में मिला दिए जाने की मंशा है। इस इलाके में बसे अल्पसंख्यकों को सताया जा रहा है और वहाँ से भाग जाने की धमकी दी जा रही है। पुलिस की मौजूदगी में नेशनल कॉन्फ्रेंरस के नेता भड़काऊ भाषण देते हैं, जो पूरी तरह अवैध है, फिर भी उनके खिलाफ कोई काररवाई नहीं की जाती है। हथियार और गोला-बारूद बनाए जा रहे हैं और उन्हें बहुसंख्यक समुदाय के बीच पहुँचाया जा रहा है। यह इलाका, जो पहले जम्मू प्रांत को प्राकृतिक रूप से बाकी हिस्सों के साथ जोड़ता था, वही अब जम्मू को लद्दाख से अलग करनेवाली एक कील की तरह बन गया है। इसी प्रकार रियासी जिले को बाँट कर राजौरी-पुंछ का एक नया जिला बना दिया गया है। मुख्य रूप से हिंदुओं की आबादीवाले रियासी तहसील को ऊधमपुर और रियासी जिले के किनारे के इलाकों, यानी राजौरी तहसील के इलाके को पुंछ के मुसलिम बहुल इलाकों से जोड़ दिया गया है। यही नहीं, इस नवीन राजौरी-पुंछ जिले के विस्तार के लिए रियासी तहसील स्थित चेनाब नदी के पश्चिमी इलाके और अखनूर तहसील के कुछ उत्तरी पटवारों को, जो मुख्य रूप से हिंदू बहुल इलाके हैं, उन्हें अलग कर एक नई सुंदरबनी नियाबत बनाई जा रही है।

हिंदू और सिख शरणार्थी

11. हजारों की तादाद में आए हिंदू और सिख शरणार्थियों के साथ किए गए सलूक पर गौर करें तो इन उपायों के पीछे छिपी मंशा स्पष्ट हो जाएगी। ये शरणार्थी पाकिस्तान से आए थे, जहाँ इनके पास जमीन-जायदाद थी। वे इस राज्य में बसने की इच्छा लेकर आए थे। इन सभी के बसने के लिए पर्याप्त जमीन भी है। अकेले जम्मू जिले में ही विस्थापितों के लिए 7,04,914 कनाल जमीन है। लेकिन इस जमीन को शरणार्थियों को देने के बजाय सालाना राजस्व की पाँच गुना रकम अदा करने पर सरकार के चहेते लोगों को दिया जा रहा है और यह पैसा भी मुसलमानों के विस्थापित फंड में डाला जा रहा है। इस दौरान भारत सरकार ने इन शरणार्थियों के खाने-पीने पर करोड़ों रुपए खर्च किए हैं। मगर राज्य सरकार इन्हें जबरदस्ती बीकानेर और भोपाल जैसे दूर के इलाकों में भेज रही है।

भारतीय निवासी

12. ‘राज्य का विषय’ शब्द की व्याख्या इस प्रकार की जा रही है कि भारतीय निवासियों के इस राज्य में बसने पर रोक लगाई जा सके। लेकिन जब पाकिस्तान से आनेवाले कजाक लोगों की बात आती है तो इस कानून को ताक पर रख दिया जाता है और उन्हें कश्मीर घाटी में बसने के पूरे अधिकार दे दिए जाते हैं। इस प्रकार पिछले चार वर्षों में लाखों की तादाद में पाकिस्तानियों को राज्य में घुसपैठ की छूट दे दी गई है। उन्हें राज्य में बसने के लिए मदद दी जा रही है।

आर्थिक स्थिति

13. ज्ञापन में आगे कहा गया है कि ‘जम्मू और लद्दाख के लोगों की आर्थिक दशा पिछले साढ़े चार सालों में बेहद दयनीय हो गई है। उन पर नए कर लगाए गए हैं और पहले चले आ रहे कर को दो से पाँच गुना बढ़ा दिया गया है, जिसका नतीजा यह हुआ है कि उन पर पड़नेवाला बोझ बरदाश्त से बाहर हो गया है। इसका अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि भारत के मुकाबले यहाँ के लोगों की आमदनी डेढ़ गुना ज्यादा है, लेकिन उन पर कर्ज का बोझ कई गुना अधिक है। अनिवार्य आवश्यकता वाली तमाम वस्तुओं के परिवहन और वितरण पर सरकार का इतना सख्त नियंत्रण है कि लोगों का जीना दूभर हो गया है। हद से ज्यादा सीमा शुल्क का बोझ हमारी अर्थव्यवस्था को झकझोर रहा है। पठानकोट में एक रुपए में बिकनेवाले सामान को हम राज्य में खरीदना चाहें तो 37-50 फीसदी अधिक कीमत चुकानी पड़ती है। राज्य में निजी उद्यमों की जगह सरकार के एकाधिकार ने ले ली है, जिससे उपभोक्ता की हालत और भी खस्ता हो गई है। राजकीय परिवहन विभाग ने राज्य में निजी परिवहन की गुंजाइश ही खत्म कर दी है। खुली प्रतियोगिता नाम की चीज नहीं रह गई है। पेट्रोल, जिसे पूरे भारत में सरकारी नियंत्रण से मुक्त कर दिया गया है, वह इस राज्य में आज भी सरकार के नियंत्रण में है। इससे राज्य पर शासन कर रही पार्टी से जुड़े कुछ परिवारों को छोड़कर राज्य में किसी का भला नहीं हुआ है।

भारत की नागरिकता

14. जम्मू के लोग सरकार की नीतियों के खतरनाक परिणामों को काफी पहले ही भाँप चुके थे। प्रजा परिषद् के अध्यक्ष ने इन आशंकाओं और शिकायतों से भारत सरकार को भी अवगत करा दिया था। हमने इन तकलीफों को सिर्फ उम्मीद में सहा है कि आखिरकार हमारा विलय भारत के साथ होगा, और ऐसा हुआ तो हमें भारत की नागरिकता का लाभ मिलेगा। सबसे बड़ा लाभ भारत के संविधान द्वारा दिए जानेवाले मौलिक अधिकारों का मिलेगा। लेकिन इस उम्मीद की बजाय लोगों में निराशा घर करती जा रही है। पिछले साल जब राज्य की संविधान सभा के चुनाव का ऐलान किया गया, तब हमें लगा कि संविधान सभा भारत के साथ राज्य के विलय को मंजूरी दे देगी। लेकिन हमें तब भारी निराशा हुई, जब 59 में से हमारे 41 नामांकनों को बेबुनियाद वजहों से खारिज कर दिया गया और सरकारी दबाव बनाकर ऐसे हालात पैदा किए गए कि निष्पक्ष चुनाव नामुमकिन हो गया। हमने शेख अब्दुल्ला और भारत सरकार से प्रजा परिषद् के उम्मीदवारों का नामांकन इतने बड़े पैमाने पर खारिज किए जाने की स्वतंत्र न्यायिक जाँच की अपील की। लोगों के मन में चुनावों में होनेवाली धाँधली का डर बैठ चुका था, इसी वजह से हमने उन सरकारी अफसरों पर भी लगाम लगाने की माँग की, जो सक्रिय रूप से नेशनल कॉन्फ्रेंस उम्मीदवारों की मदद कर रहे थे। लेकिन हमारी शिकायतों पर ध्यान नहीं दिया गया और प्रजा परिषद् को मजबूर होकर चुनावों का बहिष्कार करना पड़ा। स्पष्ट रूप से संविधान सभा पर एक ही पार्टी के प्रतिनिधियों का दबदबा कायम हो गया है। यह संप्रभु निकाय नहीं रह गई है। यह राज्य के लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं करती। जम्मू के लोगों की आवाज

उठानेवाला वहाँ कोई भी नहीं है। यही नहीं, भारतीय संसद् में भी इसी संविधान सभा के प्रतिनिधि भेजे गए हैं। इस प्रकार भारत की संसद् में भी हमारा कोई प्रतिनिधि नहीं है।

भारत से ढीला-ढाला संबंध

15. कश्मीर संविधान सभा में मौलिक सिद्धांत समिति के सदस्य मिर्जा अफजल बेग ने ऐलान किया कि कश्मीर एक स्वायत्त गणतंत्र होगा, जो भारतीय गणतंत्र के अधीन होगा, लेकिन इसका अपना एक अलग राष्ट्रीय सभा अध्यक्ष होगा। इस ऐलान के अलावा शेख अब्दुल्ला के भाषणों ने साफ कर दिया है कि नेशनल कॉन्फ्रेंरस चाहता है कि भारत के साथ उसका पार्ट-बी राज्यों की तरह पूर्ण विलय न हो, बल्कि उसका संबंध ढीला-ढाला ही हो। हमने यह उम्मीद की थी कि भारतीय संविधान हमारे ऊपर पूरी तरह लागू होगा, लेकिन यह उम्मीद चकनाचूर हो गई है। न सिर्फ स्वाभिमान के साथ भारत के नागरिकों की तरह हमारे जीने की आस टूट गई है, बल्कि अब तो हमारे वजूद पर भी खतरा मँडरा रहा है।

राज्य का ध्वज

16. यही नहीं, संविधान सभा के द्वारा राज्य के ध्वज और राजा के शासन को खत्म करने के संबंध में लिये गए अहम फैसलों से पूरे राज्य में, खास तौर पर जम्मू प्रांत में असंतोष की लहर फैल गई है। इन फैसलों से यह साफ हो गया है कि यह राज्य एक स्वतंत्र गणतंत्र के निर्माण की तरफ बढ़ रहा है।

17. राज्य के प्रमुख नेताओं और निर्माताओं की घोर उपेक्षा से जम्मू के लोगों की भावनाओं को गहरा आघात लगा है, जिससे इस बात का अंदाजा लगता है कि सत्ता में बैठी पार्टी राज्य के लोगों को कितनी नफरत से देखती है।

जम्मू की अलग पहचान

18. इन परिस्थितियों ने हमें आपके सामने गुहार लगाने के लिए मजबूर कर दिया है। आपको ये भले ही अत्यधिक कठोर प्रतीत हो रही हों, लेकिन हमारे पास इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं बचा था। पाकिस्तान ने जिस प्रकार इस राज्य के कई हिस्सों पर अवैध रूप से कब्जा जमा लिया है और भारत के पास इस राज्य के अब यही कुछ हिस्से हैं, जिन्हें तीन जिलों का नाम दिया गया है, जैसे—जम्मू, लद्दाख और कश्मीर घाटी।

19. इनमें से हर एक इलाकों के लोग अलग तरह के हैं, जिनकी एक अलग भाषा, संस्कृति और इतिहास है तथा एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र है। जम्मू क्षेत्र पीर पंजाल क्षेत्र के दक्षिण में सुचेतगढ़ तक फैला है, जो युद्ध विराम की सीमा है और इसके तहत डोडा और पडार के इलाके आते हैं। महाराजा गुलाब सिंह के शासन में यह इलाका जम्मू-कश्मीर राज्य का प्रमुख हिस्सा था।

20. हम जम्मू के लोग अपना भविष्य खुद तय करने का अधिकार चाहते हैं। कश्मीर घाटी के सबसे सघन आबादीवाले इस इलाके की इच्छा थी कि राज्य का पूर्ण विलय भारत के साथ पार्टी-बी राज्यों की तरह ही हो जाए, और इसके लिए हमें आवाज उठाने की जरूरत नहीं पड़नी चाहिए थी। लेकिन अब हम देख रहे हैं कि राज्य की संविधान सभा पूरे राज्य के भविष्य से जुड़े मौलिक महत्त्व के मुद्दों पर फैसला कर रही है और यह हमारी घोषित इच्छा और हितों के खिलाफ है, साथ ही राज्य के लोगों के विचारों की उपेक्षा कर भारत के साथ सीमित विलय के पक्ष में है तो जम्मू प्रांत को हम लोग मानते हैं कि इसका फैसला वर्तमान कश्मीर सरकार से स्वतंत्र किसी ऐसी एजेंसी के द्वारा किया जाना चाहिए, जिसका गठन लोकतांत्रिक प्रक्रिया के द्वारा किया जाए। कुशाक बकुला के भाषणों को सुनकर हमें खुशी हुई है कि लद्दाख के लोग भी यही विचार रखते हैं और अपने इलाके के लिए इसी

प्रकार के अधिकार की माँग कर रहे हैं। शेख अब्दुल्ला ने अपने एक भाषण में यह भी कहा है कि 'यदि जम्मू और लद्दाख के लोगों की यही इच्छा है तो वे भारत के साथ मिल जाएँ और कश्मीर घाटी भारत के सीमित विलय का फैसला करने के लिए छोड़ दें।'

भारत के अभिन्न अंग

21. इस महान् और संगठित राज्य के निर्माण के लिए खून-पसीना बहानेवाली हस्तियों की संतान होने के नाते हमारी यह इच्छा थी कि न सिर्फ इस राज्य के बल्कि पाकिस्तान के कब्जेवाले इलाके को भी भारत के पार्टी-बी राज्यों की तरह भारतीय गणतंत्र में मिला दिया जाए। एकजुट होने के लिए हम अपने पुरखों की तरह ही कृतसंकल्प हैं और पूरी प्रसन्नता के साथ यह इच्छा रखते हैं कि भारत का कब्जा एक बार फिर से उस हिस्से पर हो जाए, जिस पर उसका ही अधिकार है। लेकिन जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक हम शेख अब्दुल्ला की इस बात से सहमत नहीं हैं कि हमें अपनी ही मातृभूमि में अपनी शर्तों के साथ बने रहना चाहिए।

हमारा सबसे बड़ा गौरव

22. अंत में मैं आपसे अनुरोध करना चाहता हूँ कि आप अपना फैसला करते समय इस बात पर गौर करें कि यह माँग उन लोगों की है जो हमेशा से ही भारतीय रहे हैं। यह हमारे लिए सबसे बड़े गौरव की बात है। इस पल के लिए मान लें कि यदि भारत का कोई भी हिस्सा, जैसे पूर्वी, पश्चिमी या दक्षिणी हिस्सा, इसी विकट परिस्थिति में फँसा होता तो आप भी यह स्वीकार करेंगे कि उनकी भी यही माँग होती जैसी माँग इस इलाके के लोग कर रहे हैं। भारत की संतान होने के नाते, यह स्वाभाविक है कि हम अपनी मातृभूमि से अलग किए जाने के किसी भी प्रयास का विरोध करेंगे, चाहे वह प्रयास कितना ही छोटा क्यों न हो। यहाँ तो हमें पूरी तरह भारत से काटकर अलग करने के प्रयास किए जा रहे हैं। इसलिए हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि हमें ऐसी परिस्थिति मंजूर नहीं है। हम सुप्रीम कोर्ट का संरक्षण चाहते हैं, हम भी वही ध्वज चाहते हैं, जो पार्टी-बी के राज्यों को मिला है। हमें वह लाल झंडा नहीं चाहिए, जिसे शेख अब्दुल्ला ने चुना है तथा हम भारत के कानून का शासन चाहते हैं। जम्मू के लोगों का भविष्य इसी रास्ते पर चलकर सुरक्षित रहेगा और हम मानते हैं कि इससे विमुख करने के किसी भी प्रयास का विफल करना हमारे लिए देशभक्ति से जुड़ा एक कर्तव्य है। अपने पास मौजूद पूरी सामर्थ्य के साथ, हम ऐसे किसी भी प्रयास को नाकाम कर देंगे, जो जम्मू के भारत में पूर्ण विलय का विरोध करता है।

भवदीय

ह./- (प्रेमनाथ डोगरा)

जम्मू तवी, 19-6-1952

❑

परिशिष्ट—2

(डॉ. कर्ण सिंह के द्‌वारा जवाहरलाल नेहरू को जम्मू के हालात पर 27 दिसंबर, 1952 को भेजी गई रिपोर्ट।)

जम्मू के हालात सैनिक दृष्टिकोण से गंभीर नहीं हैं, लेकिन इस लिहाज से गंभीर हैं कि जम्मू प्रांत के ज्यादातर लोग मौजूद आंदोलन के साथ सहानुभूति रखते हैं और सक्रिय रूप से जुड़े हैं। यदि इसे प्रतिक्रियावादी ताकतों का मामूली विरोध कहकर खारिज कर दिया जाए तो यह स्थिति का सही आकलन नहीं होगा। इसमें कोई शक नहीं कि ये तत्त्व परिस्थिति का फायदा उठाने में एक भूमिका निभा रहे हैं, लेकिन उनकी स्थिति भी इस वजह से ताकतवर है कि भारी तादाद में लोग आहत महसूस कर रहे हैं और उनके अंदर घोर निराशा है। यह निराशा अब हताशा में बदलती जा रही है और खतरनाक मोड़ लेती जा रही इस परिस्थिति पर काबू पाने के लिए तत्काल ऐसे कदम उठाए जाने चाहिए, ताकि लोगों की जायज शिकायतों को दूर किया जाए और उनकी मुश्किलें कम हो सकें।

दरअसल, इस समस्या के लिए कुछ मनोवैज्ञानिक और आर्थिक कारण जिम्मेदार हैं। पिछले पाँच वर्षों से जम्मू के लोगों में एक डर, एक आशंका और असंतोष की भावना पल रही थी, जो अब ठोस रूप ले चुकी है और राज्य सरकार द्‌वारा जबरदस्ती एक परिवार के शासन और उसकी मरजी के झंडे को थोपने के खिलाफ आंदोलन के रूप में सामने आ रही है। भारत-कश्मीर के समझौते से जम्मू के लोग सहमत नहीं थे, क्योंकि उनकी इच्छा भारत के साथ पूर्ण विलय की थी, लेकिन जिस प्रकार अन्य मुद्‌दों पर गौर किए बिना ही उनकी भावनाओं और उनकी सोच के साथ गहराई से जुड़े इन दो मुद्‌दों को आनन-फानन में लागू किया गया है, उससे भयानक असंतोष फैल गया है। लोगों का मानना है कि न सिर्फ उनके साथ सौतेला व्यवहार हुआ है, बल्कि पिछले पाँच वर्षों में उन्हें आर्थिक रूप से तबाह-बरबाद करने के लिए सुनियोजित प्रयास किए गए हैं। इतना ही नहीं, भारत के साथ एकाकार होने की उनकी भावना को गहरी ठेस पहुँचाई गई है। उन्हें पुराने झंडे को हटा दिए जाने पर कोई ऐतराज नहीं होता, यदि राज्य सरकार भारतीय राष्ट्रीय ध्वज को अपना लेती। साथ ही खानदारी शासन को खत्म करने पर भी कोई ऐतराज नहीं होता, बशर्ते राजप्रमुखों की प्रणाली को अपनाया जाता, जैसा कि पार्टी-बी के राज्यों में किया गया है। मगर इस बात से लोगों का गुस्सा भड़क गया है, न तो उन्हें उनका चहेता झंडा मिला और न ही उनकी इच्छा का शासन उन्हें दिया गया, बल्कि एक नए प्रकार के शासक और उनकी ही इच्छा के झंडे को उन पर जबरन थोप दिया गया है।

अब तक यह आंदोलन कुछ अप्रिय घटनाओं को छोड़कर मुख्य रूप से शांतिपूर्ण था। लेकिन यह परिस्थिति किसी भी वक्त खतरनाक मोड़ ले सकती है, जिसमें जान-माल के भारी नुकसान की आशंका है। इस वजह से, और इस तथ्य के मद्‌देनजर भी कि इस आंदोलन ने न सिर्फ प्रशासन को सुचारू रूप से चलाना मुश्किल कर दिया है, बल्कि पाकिस्तान भी इसका पूरा फायदा उठाने में लगा है और हो सकता है कि इसके अवांछित अंतरराष्ट्रीय परिणाम भी निकलें। लिहाजा यह अनिवार्य हो गया है कि ऐसी परिस्थिति का निर्माण किया जाए कि यह आंदोलन वापस ले लिया जाए या इसे निष्क्रिय कर दिया जाए, ताकि लोगों की भागीदारी इसमें कम हो सके और जम्मू के लोगों को यह विश्वास दिलाया जाए कि उनके अधिकारों, संस्कृति और हितों को नुकसान नहीं होगा तथा उनके साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं बरता जाएगा।

परिस्थिति ऐसी है कि जहाँ जम्मू और लद्‌दाख के लोगों की तीव्र इच्छा है कि उनका भारत के साथ पूर्ण विलय हो, लेकिन शेख साहिब और उनके साथी इस बात पर अड़े हैं कि भारत के साथ सीमित विलय हो और वे किसी

भी तरह भारत के साथ मिलने को तैयार नहीं हैं। इन मूल तथ्यों के मद्देनजर, जब तक शेख साहिब को पूर्ण विलय के लिए राजी नहीं कर लिया जाता, तब तक सिर्फ तीन ही विकल्प नजर आ रहे हैं—

(क) जम्मू और लद्दाख को कश्मीर से अलग कर दिया जाए। मौजूद अंतरराष्ट्रीय पेचीदगियों के बीच, यह पूरी तरह अवांछित और खतरनाक होगा, क्योंकि इससे कश्मीर घाटी को पाकिस्तान की झोली में डालने का माहौल तैयार हो जाएगा। इसमें कोई शक नहीं कि यह सबसे दु:खद और दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति होगी। लेकिन इसमें भी कोई शक नहीं कि जम्मू के लोग न सिर्फ सांस्कृतिक और भाषाई तौर पर, बल्कि भौगोलिक रूप से भी काँगड़ा और हिमाचल प्रदेश के डोगरा इलाकों के साथ गहराई से जुड़े हैं। लेकिन जैसा कि मैंने कहा, किसी भी प्रकार के पुनर्गठन के खतरनाक नतीजे होंगे।

(ख) राज्य के आंतरिक और बाहरी संबंधों के मामले में यथास्थिति को बनाए रखा जाए। यह परिस्थिति संतोषजनक नहीं होगी, क्योंकि राज्य के तीन हिस्से आम सहमति के बाद ही एकजुट रह सकते हैं और मौजूदा अशांति और असंतोष कायम रहा तो हालात के बद से बदतर होने का खतरा है। यह स्पष्ट है कि जोर जबरदस्ती से इस आंदोलन को कुछ दिनों के लिए ही दबाया जा सकता है। मगर इस कदम का नतीजा भयानक नफरत और असंतोष के रूप में सामने आएगा, जिसकी वजह से आनेवाले कई वर्षों तक इस समस्या को सुलझाना मुश्किल हो जाएगा। इसके साथ ही, यह भी बेहद दुर्भाग्यपूर्ण और खतरनाक होगा कि भारतीय झंडा और राष्ट्रपति की तसवीर उठाए प्रदर्शनकारियों से निपटने के लिए भारतीय सेना और पुलिस को बुलाया जाए और वे उन पर गोलियाँ बरसाएँ। जैसा कि मैंने कहा, यह आंदोलन व्यापक रूप ले चुका है और इससे सहानुभूति और समझदारी से निपटना होगा। इसलिए हिंसा से निपटते समय हमारा दृष्टिकोण ऐसा होना चाहिए कि एक सौहार्दपूर्ण और परस्पर संतोषजनक समाधान निकाला जा सके।

(ग) एक फॉर्मूला तैयार किया गया है, जिसमें कश्मीर के साथ एक इकाई के तौर पर जुड़े रहने के बावजूद जम्मू और लद्दाख के लोगों को खुश रखा जाए। मेरे हिसाब से इस वक्त यही सबसे संतोषजनक समाधान हो सकता है। हालाँकि इसे हासिल करने के लिए कुछ कदम तुरंत उठाने होंगे। मैं समझता हूँ कि इस नोट में सुझाए गए उपायों को अपनाया गया और सौहार्द तथा आपसी विश्वास पैदा करनेवाले कदमों को पूरी इच्छाशक्ति के साथ लागू किया गया तो इस पूरी समस्या को कम समय में संतोषजनक रूप से सुलझाया जा सकता है।

इस परिस्थिति से निपटने के लिए उठाए जानेवाले आवश्यक कदम

यह कदम मुख्य रूप से दो प्रकार के हैं—राजनीतिक और आर्थिक।

(क) राजनीतिक

1. भारत-कश्मीर के समझौते को तेजी से लागू किया जाए, जिससे कि राज्य के नए संविधान के निर्माण का आधार तैयार हो सके। इस समझौते को न सिर्फ भारत और राज्य सरकार की सहमति प्राप्त है, बल्कि भारत की संसद् के दोनों सदनों और राज्य की संविधान सभा ने भी स्वीकृत किया है। इस वजह से इसकी कोई वजह नहीं दिखती कि इसे पूरी तरह लागू करने में किसी भी प्रकार की देरी की जाए, खासतौर पर जब राज्य के शासनाध्यक्ष और झंडे के प्रति असंतोष अपने चरम पर है और जिसकी वजह से जम्मू के लोगों के दिलों में राज्य सरकार के प्रति अविश्वास की भावना कायम हो गई है। इस संविधान को सही-सही प्रकार से ड्राफ्ट किया जाए तो यह राज्य के लिए एक बड़ी शक्ति का साधन होगा, साथ ही इसकी कोई वजह नहीं है कि इसका पूरा फायदा जल्द-से-जल्द क्यों न

उठाया जाए।

विधानसभा को संविधान का मसौदा तैयार करने में जरा भी देरी नहीं करनी चाहिए। मैं उम्मीद करता हूँ कि यह वैशाख की पहली तिथि (राज्य में हमारा नव वर्ष, जो अप्रैल की 13 तारीख को होता है) तैयार हो जाना चाहिए। किसी भी लिहाज से मसौदा तैयार करने और नए संविधान को लागू करने की एक समय-सीमा तय हो जानी चाहिए। स्वाभाविक तौर पर यह संविधान, मौलिक अधिकारों, सुप्रीम कोर्ट के अधिकार-क्षेत्र, भारत के राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों, सदर-ए-रियासत के कार्यों और अधिकारों तथा प्रांतीय स्वायत्ता जैसे मूल प्रश्नों को उत्तर देगी।

जम्मू की समस्या का खासतौर पर जिक्र किया जाए तो इस संविधान को तैयार करते समय इस बात का खयाल रखा जाना चाहिए कि राज्य के सभी वर्गों के लोग अपनी संस्कृति, अधिकारों और हितों को लेकर पूरी तरह सुरक्षित महसूस कर सकें और किसी एक इलाके का दूसरे इलाके के द्वारा शोषण किए जाने की जरा सी भी गुंजाइश न हो। अकसर शेख साहिब ने इस प्रकार की बातों को दोहराया है और अब उनकी बात को व्यावहारिक रूप में लागू किया जाए और प्रांतीय स्वायत्ता की संतोषजनक प्रणाली की स्थापना की जाए। जैसा कि मैंने पहले कहा है, ये क्षेत्र आपस में एक साथ अपनी मरजी से ही रह सकते हैं, और उनकी इस इच्छा को बल देने के लिए जो भी आवश्यक कदम हों, वे उठाए जाने चाहिए, ताकि वे अपनी खुशी से एकजुट रह सकें।

2. बिना देरी किए, भारतीय राष्ट्रीय झंडा फहराया जाना चाहिए और उसके साथ-साथ राज्य का झंडा भी लहराया जाना चाहिए। यह काम कम-से-कम जम्मू और श्रीनगर के सचिवालयों में तुरंत हो जाना चाहिए। ऐसा करना न सिर्फ सही होगा, बल्कि राज्य के अंदर और भारत में भी लोगों की धारणा पर इसका अच्छा असर होगा।

वर्तमान में, मेरी जानकारी के मुताबिक, जम्मू और कश्मीर राज्य में ऐसी एक भी इमारत नहीं है, जिस पर तिरंगा लहराता है। यह बिलकुल उचित नहीं है और यह मान लेना भी गलत है कि हम इसे सिर्फ राष्ट्रीय दिवसों पर ही फहराएँगे। वर्तमान में सरकार जम्मू में है तो झंडा वहीं फहराया जाना चाहिए और जब अगले सत्र के लिए सरकार श्रीनगर सचिवालय में आती है, तब उस झंडे को यहाँ फहराया जाना चाहिए।

3. एक सबसे महत्त्वपूर्ण और आम शिकायत है कि सरकारी दफ्तरों में भारी भ्रष्टाचार है, खास तौर पर नीचे के स्तर पर घूसखोरी सबसे ज्यादा है। 'बिग लैंडेड एस्टेट एबोलिशन ऐक्ट' को लागू किए जाने के दौरान यह साफ तौर पर देखा गया था। कागजों पर किराएदारों को कोई भी मुआवजा नहीं देना पड़ता था। लेकिन यह रकम घूस के तौर पर पटवारियों और तहसीलदारों को दी जाती थी, जिनके पास जमीन के हस्तांतरण का अधिकार था। इस प्रकार के भ्रष्टाचार के खिलाफ एक व्यापक अभियान चलाए जाने की आवश्यकता है तथा घूस लेते पकड़े जानेवालों को इतनी सख्त सजा दी जानी चाहिए कि दूसरों को ऐसी गलती करने की हिम्मत न हो, चाहे वे कितने ही बड़े पद पर क्यों न बैठे हों। इससे आम लोगों के बीच भ्रष्टाचार को लेकर फैली धारणा को खत्म करने में मदद मिलेगी और उनमें सरकारी तंत्र के प्रति विश्वास पैदा होगा।

दैनिक प्रशासन में पार्टी की दखलंदाजी हद से ज्यादा बढ़ गई है और इसे जड़ से खत्म किया जाना चाहिए, क्योंकि इसका लोगों पर और प्रशासन को कुशलता से चलाने पर बुरा असर पड़ रहा है।

4. जहाँ तक जम्मू प्रांत में शिक्षा की बात है, तो लोगों के बीच बेहतर माहौल बनाने के लिए कई कदम उठाए जाने चाहिए—

(क) डोगरी को क्षेत्रीय भाषा बनाए जाने का ऐलान किया जाना चाहिए (मैं समझता हूँ इस दिशा में प्रयास शुरू हो

चुके हैं) और इसे वैशाख की पहली तिथि से लागू किया जाना चाहिए—ठीक वैसे ही जैसे कश्मीरी को घाटी की भाषा घोषित किया गया है।

(ख) जम्मू शहर में लड़कियों के लिए एक अलग कॉलेज और ऊधमपुर तथा सांबा या कठुआ में इंटर कॉलेजों की स्थापना की जानी चाहिए।

(ग) भारत भर में जिस प्रकार पाठ्य-पुस्तकों को संशोधित कर मानक रूप दिया जाता है, उसी तर्ज पर यहाँ भी हिंदी की किताबों का संशोधन होना चाहिए। वर्तमान में इस बात को लेकर काफी शिकायतें आती हैं कि इन किताबों में उर्दू और फारसी के शब्द हैं, जिन्हें बस देवनागरी लिपि में लिख दिया गया है तथा उनका स्तर भी अच्छा नहीं है।

5. सामान्य तौर पर सरकार और सत्तासीन पार्टी के नेताओं को सार्वजनिक और निजी समारोहों में भाषण देते समय अपने शब्दों के इस्तेमाल में सावधानी बरतनी चाहिए और ऐसा कुछ भी नहीं बोलना चाहिए, जिससे यह प्रतीत हो कि वे डोगरा-विरोधी हैं या जम्मू-विरोधी हैं तथा उनका पूरा दृष्टिकोण ऐसा होना चाहिए कि जम्मू के लोगों में उनके प्रति एक भरोसा और विश्वास कायम हो सके।

(ख) आर्थिक

1. नए संविधान के निर्माण में वित्तीय एकीकरण के उस मुद्दे को शामिल करना होगा, जिसे भारत-कश्मीर समझौते के दौरान चर्चा के लिए छोड़ दिया गया था। इस प्रकार का एकीकरण बेहद महत्त्वपूर्ण होता है। राज्य के सीमा-शुल्क को खत्म किए जाने के बावजूद इस प्रकार के समझौते महत्त्वपूर्ण होते हैं, भले ही इन वित्तीय समझौतों के तकनीकी ब्योरे कुछ भी हों। यह राजनीतिक और आर्थिक, दोनों ही दृष्टिकोणों से सबसे महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि इससे राज्य के सभी लोगों को, खासतौर पर गरीबों को फौरी राहत मिल जाती है। साथ ही इससे इस राज्य और भारत के बीच होनेवाले व्यापार को काफी बल मिलेगा।

इस संदर्भ में घाटी में कुछ नेशनल कॉन्फ्रेंस कार्यकर्ताओं के द्वारा एक प्रस्ताव पारित किया गया, जिसमें यह अनुरोध किया गया कि रावलपिंडी मार्ग को खोल दिया जाए, क्योंकि उससे व्यापार में मदद मिले। यह प्रस्ताव इस बात का सबूत है कि राज्य के लोग फौरन आर्थिक राहत चाहते हैं और इसके लिए व्यापार को तुरंत बढ़ावा देना होगा। भारत सरकार से मैं एक पुरजोर अपील करना चाहूँगा कि अपनी ओर से कश्मीर पर किए जा रहे खर्च को, तब तक सीमित रखे, जब तक कि यह राज्य आय के अन्य स्रोतों के दोहन से अपने राजस्व को वर्तमान स्तर तक नहीं ले आता है। मुझे यकीन है कि यह देनदारी (जिसे मैं मानता हूँ कि भारत सरकार अगले दस वर्षों तक वहन करने के लिए तैयार है) सीमा शुल्क को खत्म कर दिए जाने के बाद आर्थिक और राजनीतिक लाभ के मुकाबले भारी असंतुलित स्थिति में है। यह बेहद महत्त्वपूर्ण कदमों में से एक है, जिसे तुरंत उठाया जाना चाहिए और इसके लिए संविधान के तैयार होने का इंतजार नहीं किया जाना चाहिए। मैं समझता हूँ कि यह काम जितनी जल्दी कर लिया जाए, उतना ही बेहतर होगा।

2. दुर्भाग्य से 'बिग लैंडेड स्टेट एबोलिशन ऐक्ट' जम्मू के लिए अच्छा साबित नहीं हो सका है। बिना देखे-समझे 182 कनाल की एक समान दर तय कर दी गई है, जबकि जम्मू प्रांत के कई इलाकों में आर्थिक जोत है ही नहीं। कश्मीर घाटी में 182 कनाल में होनेवाली पैदावार और जम्मू के कंडी और पहाड़ी इलाकों में होनेवाली पैदावार में जमीन आसमान का अंतर है। अफसोस इस बात का है कि कानून को बनानेवालों ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। नतीजा यह हुआ कि प्रांत के कई इलाकों में तबाही की स्थिति है। यही नहीं 182 कनाल (करीब 23 एकड़)

की इकाई भी फ्री होल्ड नहीं है, और जमीन का मालिक खुद से उस पर खेती भी नहीं कर सकता है। एक मुश्किल और भी है कि अकसर किराएदार जमीन के मालिक को उपज का हिस्सा भी नहीं देते और इस तरह की ढेरों शिकायतें मिलती हैं। उस पर सरकार की नीति ऐसी है कि वह किराएदारों का ही साथ देती है, चाहे वह सही हो या गलत। नतीजा यह है कि जिनके पास भी जमीन है, वे पूरी तरह बरबाद हो चुके हैं। उनके पास अब न जमीन बची है, जिससे कि वह अपने परिवार का पालन कर सकें और न ही उन्हें कोई मुआवजा मिला है। सबसे ज्यादा तकलीफ में छोटी जमीनों के मालिक हैं, जिनमें से ज्यादातर राजपूत हैं।

इस परिस्थिति को हर हाल में बेहतर बनाना होगा। यदि कानून बनानेवालों ने जमीन की उपज को या भू-राजस्व को ही अपना आधार मान लिया था तो भी, इसे न्योयोचित रूप से लागू किया जाना चाहिए था। मेरा मानना है कि जम्मू प्रांत के लिए एक आधार होना चाहिए, जहाँ जमीन की उपज में भारी अंतर आ जाता है। कर चुकाने में असमर्थ रहने पर जमीन के मालिक को अपनी गुजर-बसर के लिए खेती की 182 कनाल जमीन दी जानी चाहिए। अकसर हस्तांतरण के दौरान बड़े पैमाने पर जमीन का कब्जा सरकार के पास चला जाता है। ऐसी जमीनों को 182 कनाल के किराएदारों को या जमीन के मालिक को बारी-बारी से दिया जाना चाहिए।

इसे कुछ बेहद छोटे जागीरदारों पर भी लागू किया जाना चाहिए, जो अपने गुजर-बसर के लिए अपनी छोटी सी जागीर पर निर्भर हैं। जागीरों को खत्म करनेवाले कानून में एक क्लॉज था, जिसमें कहा गया था कि किसी भी प्रकार का मुआवजा नहीं दिया जाएगा, लेकिन जिनके पास कोई साधन नहीं है, उन्हें उचित सहायता मिलेगी। यह मदद नौकरी या थोड़ी-बहुत सरकारी जमीन के तौर पर मिल सकती है। लेकिन इन जागीरदारों के पास अब 182 कनाल जमीन भी नहीं बची है।

3. जम्मू में बेरोजगारी की समस्या खतरनाक रूप ले चुकी है और यह परिस्थिति तब और गंभीर हो गई, जब पिछले साल राज्य के सुरक्षा बलों की तीन इकाइयों को भंग कर दिया गया। इसमें तैनात 3000 से ज्यादा जवान, जिनमें ज्यादातर राजपूत और ब्राह्मण थे, बेरोजगार हो गए। यदि उन पर निर्भर परिवारवालों को मिला दें तो करीब 20,000 लोगों की रोजी-रोटी छिन गई। जम्मू के लोगों के पास हथकरघा, पर्यटन, ट्रैफिक आदि से आमदनी का साधन नहीं है। उनकी आमदनी का जरिया या तो सरकारी नौकरी है या खेती।

बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए दो उपाय मददगार साबित हो सकते हैं। सबसे पहले ज्यादातर रिटायर्ड सैनिकों को सेना, होम गार्ड, पुलिस इत्यादि में शामिल कर लिया जाना चाहिए। दूसरा, सरकार को एक बेरोजगार कमीशन बनाना चाहिए, जो इसे दूर करने के लिए दूरगामी और तात्कालिक उपाय सुझाए। यह न सिर्फ सरकार की मदद करेगा, बल्कि लोगों का उत्साह भी बढ़ाएगा।

4. लोगों की मौलिक आर्थिक मुश्किलों के लिए दूरगामी योजना पर गौर। इसे राज्य की पंचवर्षीय योजना की मदद से काफी हद तक सुलझा लिया गया है, लेकिन मुझे लगता है कि और भी काफी कुछ करने की जरूरत है। जम्मू में एक मात्र सबसे बड़ी समस्या कंडी इलाके के लोगों तक पानी की आपूर्ति करना है और यदि तवी पर एक बाँध बना दिया जाए तो यह लोगों के जीवन में क्रांतिकारी बदलाव ला सकता है। बेशक, इसके लिए भारत सरकार को आर्थिक मदद मुहैया करानी होगी।

रिवाज अवार्ड के संशोधन से रावी नदी के पानी का इस्तेमाल राज्य में सिंचाई के लिए करने में मदद मिलेगी। जब तक कि दूरगामी योजना से फायदा मिलना शुरू नहीं हो जाता, तब तक राज्य के लोगों को तत्काल राहत देनी होगी। यदि इस बार की गरमियों में कंडी इलाके के लोगों की मदद के लिए कुछ किया जाए तो इससे एक बेहतर

माहौल तैयार होगा।

पानी की समस्या के अतिरिक्त, राज्य के कुटीर उद्योगों को भी बढ़ावा दिया जाना चाहिए तथा नए-नए पर्यटन स्थलों का विकास किया जाना चाहिए।

5. इस बात को लेकर लगातार शिकायतें मिल रही हैं कि राज्य सरकार ने परिवहन पर एकाधिकार कायम कर लिया है (जिस पर अपनी पकड़ मजबूत बनाने के लिए उसने पेट्रोल पर भी नियंत्रण बनाए रखा है)। ऐसा आरोप है कि इससे ट्रांसपोर्ट कंपनियाँ तबाह हो रही हैं और प्रतियोगिता के अभाव में किराया भी कई गुना ज्यादा है। सरकार के लिए जरूरी नहीं है कि वह सामानों की आवाजाही के लिए परिवहन पर एकाधिकार कायम रखे, सिवाय लद्दाख और किश्तवाड़ जैसे इलाकों में, जहाँ सामान्य तौर पर परिवहन के साधन उपलब्ध नहीं हैं।

मैं समझता हूँ कि उन उपायों के ऐलान और तेजी से कार्यान्वयन से आंदोलन की हवा निकल जाएगी, क्योंकि इनसे लोगों की कुछ बेहद अहम समस्याओं और शिकायतों का निवारण हो जाएगा। इसके बाद एक आम माफी का कदम उठाया जा सकता है, जिसके तहत आंदोलन के दौरान गिरफ्तार किए गए लोगों को रिहा कर दिया जाए, और राज्य सरकार के द्वारा ईमानदारी से सौहार्द और समझदारी का माहौल कायम किया जाना चाहिए। इन्हीं आधारों पर ही इस समस्या का शांतिपूर्ण और संतोषजनक हल निकाला जा सकता है।

❑

परिशिष्ट—3

(डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी द्‍वारा 7 अगस्त, 1952 को कश्मीर समस्या पर लोकसभा में दिया गया भाषण)

मैं प्रधानमंत्री से सहमत हूँ कि कश्मीर का मामला बहुत पेचीदा है और हम सभी को, किसी का दृष्टिकोण चाहे कुछ भी हो, इस समस्या पर रचनात्मक ढंग से विचार करना चाहिए। इस बात से मैं सहमत नहीं हूँ कि इस योजना को, जिसे प्रधानमंत्री के प्रस्ताव पर सभा में प्रस्तुत किया गया है, स्वीकार करके हम नए स्वर्ग और एक नई पृथ्वी की रचना कर रहे हैं। इस समस्या को दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक भाग कश्मीर मसले से उत्पन्न होनेवाली अंतरराष्ट्रीय समस्याओं से जुड़ा है और दूसरा भाग कश्मीर के भावी संविधान के संबंध में कश्मीर और हमारे बीच की जानेवाली व्यवस्था से जुड़ा है।

यह कहा गया है कि जब संयुक्त राष्ट्र संघ को कश्मीर का मामला सौंपने का निर्णय किया गया था तो मैं उसमें शामिल था। यह एक सही बात है। मुझे कोई अधिकार नहीं है और मैं उन असाधारण परिस्थितियों, जिनमें यह निर्णय लिया गया था तथा भारत सरकार को उस मौके पर जो बड़ी उम्मीदें थीं, का उल्लेख नहीं करना चाहता, लेकिन यह सभी को ज्ञात है कि संयुक्त राष्ट्र ने हमारे साथ ठीक व्यवहार नहीं किया, जैसे कि हमें आशा थी। विलय के प्रश्न को हल करने हेतु हम संयुक्त राष्ट्र नहीं गए थे, क्योंकि उस समय विलय तो एक सुस्थापित तथ्य था। हम वहाँ पर संयुक्त राष्ट्र संघ से उन हमलों के संबंध में शीघ्र निर्णय कराने के लिए गए थे, जो उन व्यक्तियों द्‍वारा किए जा रहे थे, जिनके पीछे पाकिस्तान सरकार का हाथ था। उन हमलावरों ने किसी अन्य के इशारे पर काररवाई की थी। 4 वर्ष बीत गए है। प्रधानमंत्री ने डॉ. ग्राहम की प्रशंसा की थी। वह इसके हकदार थे या नहीं, यह बात अलग है। कोरिया युद्‍ध शुरू हो गया था। वहाँ पर आक्रमण किया गया था और तुरंत उन्हीं बड़े देशों ने, जिनका संयुक्त राष्ट्र संघ में दबदबा था, संपूर्ण विश्व से आजादी की सुरक्षा के नाम पर उनका साथ देने का आह्वान किया था। लेकिन इन्हीं लोगों ने उस आक्रमण के बारे में, जो कश्मीर की ही धरती पर नहीं बल्कि भारत की धरती पर हुआ था, भारत के सीधे से दृष्टिकोण का विरोध किया था। मुझे मालूम है कि संयुक्त राष्ट्र संघ से तकनीकी आधार पर कोई मामला वापस नहीं लिया जा सकता। तकनीकी तौर पर हैदराबाद का मामला अभी भी वहाँ है। दक्षिण अफ्रीकी विवाद भी तकनीकी तौर पर सयुक्त राष्ट्र संघ में है। लेकिन इन मामलो में क्या हुआ? इनमें कुछ भी प्रगति नहीं हो रही है। फिर भी जहाँ तक कश्मीर मामले का संबंध है, हमें स्वयं इसे संयुक्त राष्ट्र संघ से वापस ले लेना चाहिए। हम उन्हें सम्माजनक रूप से कह सकते हैं कि संयुक्त राष्ट्र ने काफी प्रयास कर लिया है, अब हम स्वयं अपने प्रयासों द्‍वारा इसे हल करना चाहते हैं। मेरा यह सुझाव नहीं है कि भारत को संयुक्त राष्ट्र संघ से अपनी सदस्यता वापस ले लेनी चाहिए। अभी भी जो विवाद चल रहा है, वह केवल कश्मीर के तिहाई क्षेत्र का है, जोकि दुश्मन के कब्जे में है। प्रधानमंत्री ने आज कहा है कि वह भाग वहाँ है। यह राष्ट्रीय अपमान का मामला है। हमारा कहना है कि कश्मीर भारत का अंग है, स्थिति यही है। अत: भारत का एक भाग आज दुश्मन के कब्जे में है और हम मजबूर है। इसमें संदेह नहीं कि हम शांतिप्रिय हैं। लेकिन किस सीमा तक शांतिप्रिय हैं? क्या हम शत्रु को अपनी भूमि के एक हिस्से पर कब्जा करने की छूट दे सकते हैं? हालाँकि प्रधानमंत्री ने कहा था—जहाँ है, वहीं तक और आगे नहीं। यदि हमलावर कश्मीर के किसी हिस्से में घुसते हैं, तो उन्होंने इसे पाकिस्तान और कश्मीर के बीच युद्‍ध का खतरा न मानकर भारत और पाकिस्तान के युद्‍ध की संज्ञा दी है।

क्या इस क्षेत्र के वापस मिलने की कोई संभावना है? हमें यह संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयासों से नहीं मिल सकता, हमें पाकिस्तान के साथ बातचीत करके यह शांतिपूर्वक तरीकों से वापस नहीं मिल सकता। इसका अर्थ है, यदि हमने बल का प्रयोग नहीं किया तो इसे हम गँवा देंगे। प्रधानमंत्री बल प्रयोग करना नहीं चाहते। हमें वास्तविकता का सामना करना चाहिए, क्या हम इस क्षेत्र को गँवा देने के लिए तैयार हैं?

यह कहा गया है कि संविधान में कोई ऐसा उपबंध है कि हम उन वायदों के लिए प्रतिबद्ध हैं, जो वायदे हमने किए हैं। हमने हैदराबाद को एक वचन दिया था। क्या हमने यह नहीं कहा कि हैदराबाद के लिए एक संविधान सभा बनाई जाएगी। इसके बाद एक और वायदा किया गया था। हैदराबाद के भविष्य का फैसला हैदराबाद की विधान सभा द्वारा किया जाएगा। परंतु क्या हैदराबाद पहले ही भारतीय संघ का हिस्सा नहीं है? हमने रियासतों के नरेशों के साथ भी वायदे किए थे, जिन्हें विभिन्न तरीकों से आज हम तोड़ रहे हैं। यदि हम वायदों की बात करते हैं तो हमने अनेक अन्य अवसरों पर वायदे किए हैं। हमने पूर्वी बंगाल में अल्पसंख्यकों से वायदा किया। यह स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् किया गया था। प्रधानमंत्री ने एक दिन कहा था कि यदि कश्मीर का भारत के साथ उस समय विलय नहीं भी हुआ होता, जब हमलावरों द्वारा कश्मीर पर आक्रमण किया गया था, तो मानवीय आधार पर भारतीय सेना आगे बढ़ती तथा व्यथितों एवं उत्पीड़ितों की रक्षा करती। इस बात पर मैंने गर्व महसूस किया, लोकिन यदि मैं अपने ऐसे 90 लाख भाइयों और बहनों का जीवन और सम्मान बचाने के प्रयोजनार्थ ऐसा ही कोई वक्तव्य अथवा सुझाव देता, कम-से-कम कुछ सीमा तक, जिनके बलिदानों से स्वतंत्रता प्राप्त हुई है, तो मैं सांप्रदायिकतावादी हो जाता हूँ, प्रतिक्रियावादी हो जाता हूँ और युद्धोन्मादक हो जाता हूँ।

वायदे? निस्संदेह वायदे किए हैं। मैं भी इस बात के लिए उत्सुक हूँ, वायदों का सम्मान किया जाना चाहिए और इन्हें माना जाना चाहिए। इन वायदों का क्या स्वरूप था? हमने कश्मीर को कोई नया वचन नहीं दिया। हमें इस बारे में स्पष्ट होना चाहिए।

जिस समय अंग्रेज भारत से गए, उस समय हमारे भारत का क्या स्वरूप था, जिसे हमने स्वीकार किया था? उस समय भारत को भारत और पाकिस्तान में बाँट दिया गया था, मैं उसे रियासतों का भारत ही कहूँगा। उन पाँचों सौ शासकों में से प्रत्येक शासक को सिद्धांत रूप से स्वतंत्रता प्राप्त हुई और इन्हें केवल तीन मामलों के बारे में भारत के साथ मिलने की आवश्यकता थी। जहाँ तक शेष रियासतों का संबंध है तो यह विशुद्ध रूप से स्वेच्छा से हुआ। यह ढाँचा था, जो हमें ब्रिटिश सरकार से मिला था। जहाँ तक 498 रियासतों का संबंध है, वे भारत सरकार के पास आईं और केवल तीन विषयों के संबंध में वे 14 अगस्त, 1947 को भारत में सम्मिलित हुईं, लेकिन फिर भी यह विलय ही था, पूरा विलय था। बाद में सभी इन विषयों के संबंध में आए और धीरे-धीरे भारत के संविधान में आत्मसात् हो गए, जिसे हमने पारित किया। कल्पना करो, ऐसे वायदों को पूरा करने की, जिन्हें हम कश्मीर के संबंध में अक्षरश: पूरा करने के संबंध में सोच रहे हैं, इन राज्यों द्वारा माँग की जाती है, तो क्या हम इन वायदों को पूरा करने के लिए सहमत होते। हम सहमत नहीं होते, क्योंकि इससे भारत के टुकड़े-टुकड़े हो गए होते। लेकिन इन समस्याओं के समाधान के लिए एक पृथक् दृष्टिकोण था। उन्हें यह महसूस कराया गया कि भारत के हित में, उनके हित में, पारस्परिक प्रगति के हित में उन्हें यह संविधान स्वीकार करना होगा, जिसे हम तैयार कर रहे हैं और इस संविधान में, इसके ढाँचे में, इन्हें स्वाभाविक रूप से आत्मसात् करने के लिए विस्तृत उपबंध किए गए हैं। कोई जबरदस्ती नहीं है, कोई अनिवार्यता नहीं हैं। उन्हें यह महसूस कराया गया था कि वे इस संविधान से जो चाहते हैं, प्राप्त कर सकते हैं।

क्या मैं यह जान सकता हूँ कि क्या शेख अब्दुल्ला इस संविधान के पक्षकार नहीं थे? वह संविधान सभा के सदस्य थे, लेकिन वह विशेष बरताव के लिए कह रहे हैं। क्या वे यह संविधान 497 रियासतों सहित शेष भारत के संबंध में स्वीकार करने के लिए सहमत नहीं थे। यदि यह संविधान सबके लिए अच्छा है तो कश्मीर में उनके लिए अच्छा क्यों नहीं है?

हमें संविधान के उपबंध का हवाला दिया गया। बिहार के माननीय सदस्य ने कहा था कि यह भी विवशता थी कि हम जम्मू और कश्मीर के सिर पर पिस्तौल ताने हुए हैं और कह रहे हैं कि हमारी शर्तें उन्हें अवश्य स्वीकार करनी चाहिए। मैंने इस प्रकार की कोई बात नहीं कही है। हम यह कैसे कह सकते हैं? हमने संविधान में क्या उपबंध किया हैं? अनुच्छेद 373 पढ़िए और श्री गोपालस्वामी अय्यंगार का उस समय का भाषण पढ़िए जब उन्होंने यह असाधारण उपबंध स्वीकार करने हेतु प्रस्ताव किया था। तत्पश्चात् क्या स्थिति थी? अन्य सभी रियासतों के बारे में स्पष्ट हो चुका था। विशेष कारणों से कश्मीर के बारे में स्थिति स्पष्ट नहीं हो पाई थी। कारण थे—सबसे पहले, तो यह मामला सुरक्षा परिषद् को सौंपा जा चुका था, फिर युद्ध से संबंधित था, तीसरा कारण यह था कि कश्मीर राज्य क्षेत्र का एक हिस्सा दुश्मन के हाथों में था और आखिरी कारण यह था कि कश्मीर को यह आश्वासन दिया गया था कि उसे संविधान सभा के गठन की अनुमति दी जाएगी और जनमत संग्रह के माध्यम से कश्मीर की जनता की इच्छा जानी जाएगी। ये तथ्य थे, जिन्हें अभी पूरा किया जाना बाकी है और इसी कारण कोई स्थायी निर्णय नहीं लिया जा सका। यह अस्थायी उपबंध था।

उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि वह और कश्मीर सरकार आशा करती है कि जम्मू और कश्मीर का भारत के साथ विलय हो, जैसा अन्य राज्यों के मामले में हुआ है तथा संविधान के उपबंध स्वीकार किए गए हैं। यह हमारी ओर से विवशता का प्रश्न नहीं है। भारत का संविधान यह नहीं कहता कि जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा जो भी माँगेगी वह भारत देगा। यह उपबंध नहीं है। उपबंध है—समझौता, सहमति, आज कतिपय प्रस्ताव किए गए हैं। हम में से कुछ इन्हें पसंद नहीं करते हैं। हमें क्या करना होगा?

यदि हम इसकी बात करते हैं तो हम प्रतिक्रियावादी कहलाते हैं, हम सांप्रदायिकतावादी बन जाते हैं। हम दुश्मन बन जाते हैं। यदि हम चुप रहते हैं और यदि कोई विपत्ति एक वर्ष बाद आती है तो इसके तलबदार आप होंगे और आप भी कुछ नहीं कह पाएँगे—इसलिए आपको कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

मैं इस बात अर्थात् कश्मीर के मामले पर अत्यधिक चिंतित और उतना ही चिंतित हूँ, जितना कोई दूसरा व्यक्ति है, इसलिए हमें कश्मीर का एक सम्माननीय और शांतिपूर्ण समाधान ढूँढ़ निकलना चाहिए। मैं कश्मीर की भूमि पर किए जा रहे एक बड़े परीक्षण को समझता हूँ। देश के बँटवारे से किसी को फायदा नहीं हुआ, मैं उस क्षेत्र से आया हूँ जहाँ लोग लगातार दु:ख झेल रहे हैं और सहते जा रहे हैं। हम प्रति दिन, प्रति क्षण बँटवारे के दुखदाई प्रभाव को राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति एक संकुचित और सांप्रदायिक दृष्टिकोण अपनाने की दुखांत संभावनाओं को समझते हैं। हम शेख अब्दुल्ला की नीति के प्रति अपनी आवाज बुलंद क्यों नहीं करते। मैं अपनी आवाज बुलंद कर सकता हूँ। मैंने अढाई वर्ष पहले यह सरकार छोड़ दी है। दूसरी ओर मैंने जहाँ भी कश्मीर सरकार की नीति का खुलकर उल्लेख किया, मैंने समर्थन भी किया। मैंने कहा कि जो कुछ वहाँ हो रहा है, वह एक महान् परीक्षण है और हमें चुपचाप रहना है तथा यह देखना है कि यह परीक्षण सफल होवे। हम यह दिखाने में समर्थ होने चाहिए कि भारत में केवल सैद्धांतिक बात नहीं चलती बल्कि वास्तव में यह एक ऐसा देश है, जहाँ हिंदू, मुसलमान, ईसाई और अन्य मजहबों के लोग निर्भय होकर समानता के साथ निवास करते हैं। हमारा संविधान इसी प्रकार का बना हुआ है और

हम इसे दृढ़ता और ईमानदारी से लागू करना चाहते हैं। इसके विरोध में जहाँ-तहाँ कुछ माँगें उठ सकती हैं। लेकिन जब संविधान की अवहेलना होती है और नीतिगत कतिपय मामलों का विरोध किया जाता है तो इसमें कुछ संकुचित और सांप्रदायिक लक्ष्य नजर आने लगता है और ऐसी स्थिति में एक आशंका होने लगती है कि कहीं इतिहास की पुनरावृत्ति न हो। यह आशंका रहती है कि आप जो कुछ कर रहे हैं, उससे भारत पर विपत्ति आ सकती है। उन लोगों के हाथ मजबूत हो सकते हैं, जो एक सुदृढ़ सयुंक्त भारत को नहीं देखना चाहते, उन लोगों के हाथ मजबूत हो सकते हैं, जो इस बात में विश्वास नहीं करते कि भारत पृथक्-पृथक् राष्ट्रिकों का एक समिश्रण है। ऐसी स्थिति खतरनाक है।

अब शेख अब्दुल्ला ने किस बात की माँग की है? उन्होंने संविधान में कतिपय संशोधन करने की माँग की है। हमें इस मामले पर शांति एवं सावधानीपूर्वक बिना किसी गरमा-गरमी के चर्चा करनी चाहिए। हमें प्रत्येक संशोधन का अध्ययन करना चाहिए और उनसे तथा स्वयं से यह पूछना चाहिए कि यदि हम इस मामले में कुछ ढील देते हैं तो क्या हम भारत को आहत करते हैं अथवा क्या इससे हम कश्मीर को मजबूत बनाएँगे? मेरा यही दृष्टिकोण रहेगा। मैं इस बारे में सोचे-समझे बिना कुछ नहीं कहूँगा, क्योंकि इससे भारत के संविधान के उपबंधों का अतिक्रमण होगा। मैं ऐसा नहीं करूँगा। जब शेख अब्दुल्ला यहाँ थे तो मैं चाहता था कि प्रधानमंत्री विपक्ष में हममें से किसी को उनके पास भेजते। आज वे अपने निर्णयों के साथ हमारा सामना कर रहे हैं। मैं इस पर सार्वजनिक चर्चा नहीं करना चाहता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि कुछ वर्गों में इसकी प्रतिक्रिया वांछनीय नहीं हो सकती। वे हमारे सुझावों को अस्वीकार कर सकते हैं, लेकिन मैं चाहता था कि हममें से वे व्यक्ति, जिनका इस मसले पर प्रधानमंत्री महोदय से मतभेद हैं, उनसे मुलाकात कर लें। मैंने उनसे एक प्राइवेट बैठक में मुलाकात की और इस मसले पर पूर्ण रूप से खुलकर चर्चा की। लेकिन हम मित्रता के तौर पर शेख अब्दुल्ला तथा अन्य व्यक्तियों से मिलना चाहते थे और उन्हें अपने दृष्टिकोण से अवगत कराना चाहते थे। हम एक समझौता करना चाहते हैं। एक ऐसा समझौता, जिसके अंतर्गत भारत अपनी एकता कायम रख सके और कश्मीर पाकिस्तान से हटकर अपना पृथक् अस्तित्व बनाए रखकर भारत में अपना विलय कर दे।

यह समस्या कब से चली आ रही है। हमें तटस्थ होकर इस बात पर गौर करना चाहिए। कुछ समय पहले शेख अब्दुल्ला की पेरिस से वापसी हुई और उन्होंने यहाँ आकर जो वक्तव्य दिए, उनसे हमारे लिए परेशानी पैदा हुई। तब भी हमने इस बात पर ज्यादा बहस नहीं की, विदेश में अपने पहले साक्षात्कार में उन्होंने अपने वक्तव्य में एक स्वतंत्र कश्मीर के संबंध में अपने दृष्टिकोण को उजागर किया। और यहाँ आने के पश्चात् वे इसके बारे में बढ़ा-चढ़ाकर कहने लगे। वे पुन: अपनी बात से मुकर गए और अपनी सफाई देने लगे और उसके पिछले कुछ महीनों के दौरान उन्होंने जो भाषण दिए, वे शांति भंग करनेवाले उत्तेजक भाषण थे। यदि वह समझते हैं कि उनकी सुरक्षा भारत के बहार रहने में है तो ठीक है, उन्हें ऐसे वक्तव्य देने दो, लेकिन हमें खेद है कि उनके लिए यह अनिवार्य भी हो सकता है। लेकिन यदि वे अन्यथा ईमानदारी से ऐसा समझते हैं जैसी मेरी हमेशा उम्मीद व इच्छा रही है, तो निश्चित रूप से उन्हें इसकी सफाई भी देनी होगी कि वे इस रद्दोबदल को क्यों चाहते हैं?

तीन-चार महीने पहले शेख अब्दुल्ला ने कश्मीर की संविधान सभा में कुछ ऐसे शब्द बोले, जिन्हें वापस नहीं लिया गया, और इन शब्दों ने दलगत भावना से हटकर सभी भारतवासियों के दिलोदिमाग में काफी भ्रांतियाँ पैदा कीं। मुझे नहीं मालूम कि प्रधानमंत्री महोदय ने उक्त वक्तव्य देखा अथवा नहीं, 'हमारा शत प्रतिशत प्रभुसत्ता संपन्न राज्य है। कोई देश हमारी प्रगति में अड़चन पैदा नहीं कर सकता। इस राज्य पर न तो भारत की संसद् और न ही

राज्य के बाहर किसी अन्य संसद् का कोई अधिकार है।'

यह एक अशुभ वक्तव्य है। मैं चाहूँगा कि प्रधानमंत्री महोदय और शेख अब्दुल्ला इस स्थिति पर बातचीत करें। मैं एक अंतरिम उपाय के रूप में इस योजना का पूर्णरूप से अपने खुले दिल से समर्थन करूँगा।

प्रधानमंत्री ने कहा है कि इसमें कुछ भी निर्णायक नहीं है। यह अंतिम निर्णय नहीं हो सकता, क्योंकि इन मुद्दों पर अभी विस्तृत रूप से चर्चा की जानी है। लेकिन फिर भी मैं अपना समर्थन देने को तैयार हूँ। इन दो शर्तों को पूरी होने दें।

शेख अब्दुल्ला को घोषणा करने दें कि वे इस संसद् की प्रभुसत्ता स्वीकारते हैं। भारत में प्रभुसत्ता संपन्न संसद् नहीं हो सकती, आप कश्मीर को भारत का हिस्सा होने की बात करते हैं और शेख अब्दुल्ला कश्मीर के लिए एक प्रभुसत्ता-संपन्न संसद् की बात करते हैं। यह एक असंगत बात है। इस बात में विरोधाभास है। इस संसद् का आशय थोड़े से हम लोगों से नहीं है, जो इस बात का विरोध कर रहे हैं। इस संसद् में जनता की बहुलता सम्मिलित है, जिसे छोटी-छोटी बातों से विचलित नहीं किया जा सकता और वह स्वतंत्र भारत की प्रभुसत्ता को स्वीकार करने से क्यों डरे?

दूसरी बात यह है कि यह राष्ट्रपति के आदेश से संविधान के उपबंधों में परिवर्तन करने का मामला नहीं है। हम माँग किए जा रहे कुछ परिवर्तनों पर गौर करते हैं। हम महाराज के समर्थक हैं। हमारे विरुद्ध यही बात कही गई है। मैं उन्हें व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता हूँ। हम इस महाराजा या इस तरह के किसी महाराजा के समर्थक नहीं हैं। लेकिन महाराजा वहाँ अपनी स्वंतत्र इच्छा से नहीं है। भारत की संसद्, संविधान ने उसे जम्मू-कश्मीर के संविधान का प्रमुख बनाया है। फिर यह कैसी विडंबना है। वर्तमान समय में शेख अब्दुल्ला की सरकार संविधान के अनुसार महाराजा के प्रति उत्तरदायी है, उस व्यक्ति के प्रति उत्तरदायी है, जिसे एक अभागा व्यक्ति बताया जा रहा है, जिसने वहाँ आमूल-चूल परिवर्तन लाना है। महाराजा वहाँ संवैधानिक प्रमुख हैं। यदि आप समझते हैं कि महाराजा को इस व्यवस्था से अलग कर देना चाहिए और संविधान में संशोधन करना चाहिए, तो ऐसा कहिए कोई वंशानुगत राजप्रमुख नहीं होगा। इस मामले पर विचार किया जाना चाहिए। हमें इस पर विचार करना चाहिए। लेकिन जरा इस बात पर भी गौर कीजिए कि इस मामले को कैसे उठाया गया है। एक हिंदू महाराजा को हटाया जा रहा है। पाकिस्तान में लड़ाई का एक मुद्दा यह भी है। लेकिन हिंदू महाराजाओं की शाही ताकतों को किसने समाप्त किया? शेख अब्दुल्ला ने नहीं बल्कि स्वतंत्र भारत ने। हमने ऐसा किया, हमने कहा कि किसी भी शासक के पास असाधारण शक्तियाँ नहीं होंगी, वह सरकार का प्रमुख होगा, जो तकनीकी रूप से उसके प्रति उत्तरदायी होगी, लेकिन तदंतर वह एक निर्वाचित विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी होगा। लेकिन अब इसका श्रेय लिया जा रहा है कि कश्मीर में एक अद्‍भुत कार्य किया जा रहा है। अपने प्रत्येक भाषण में वे कहते हैं—महाराजा डोगरा राज समाप्त किया जा रहा है। क्या यह प्रचार है, क्या यह आवश्यक है? आप बेकार में लाठी पीट रहे हैं। यह मामला तो समाप्त हो गया है। ऐसा कहने का अब क्या फायदा?

निर्वाचित राज्यपाल से संबंधित मामला क्या है। मेरे पास यहाँ संविधान सभा की काररवाई वृत्तांत है। प्रधानमंत्री महोदय को याद होगा कि अपने संविधान में हमने सर्वप्रथम एक निर्वाचित राज्यपाल का प्रावधान किया था, और तत्पश्चात् सरदार पटेल, प्रधानमंत्री महोदय तथा अन्य विद्वानों ने यह महसूस किया कि लोकतांत्रिक ढाँचे में जिसका हमने विचार किया है, एक निर्वाचित राज्यपाल के लिए कोई स्थान नहीं होता।

भाषण को पढ़िए। इसमें कहा गया है कि राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करेगा, यदि राज्यपाल

का चुनाव जनता द्वारा अथवा विधानमंडल द्वारा होता है और मुख्यमंत्री का चुनाव भी होगा, तो ऐसी स्थिति में टकराव होने की आशंका बनी रहेगी, और पुन: राज्यपाल भी एक पार्टी का सदस्य होगा। प्रधानमंत्री महोदय ने इन सब बातों को स्पष्ट कर दिया था और दावा किया कि कुछ कारणों से, कारणों की वजह से तथा भारत की एकता को कायम रखने के लिए तथा केंद्र और राज्यों के बीच संपर्क बनाए रखने के लिए राज्य में राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल मनोनीत किया जाएगा। आपने इन मुख्य बातों की उपेक्षा की है, क्योंकि शेख अब्दुल्ला कहते कि 'मुझे एक निर्वाचित प्रमुख चाहिए'। आप उन्हें तथा अन्य व्यक्तियों को यह प्रावधान क्यों नहीं बता देते, जो आपने संविधान में किया है कि मूलत: हमने एक निर्वाचित राज्यपाल की व्यवस्था की थी, लेकिन काफी सोच-विचार के बाद हमने यह व्यवस्था समाप्त कर दी। फिर भी मैं तो कहता हूँ कि आज अपने विवेक से यह महसूस कर सकते हैं कि एक निर्वाचित प्रमुख अनिवार्य है, तो इस मसले पर विचार कीजिए। इसे एक विशेष प्रस्ताव के रूप में लाइए। हमें इसके प्रत्येक पहलू पर चर्चा करनी होगी। क्या आप प्रत्येक राज्य में निर्वाचित प्रमुख उपलब्ध कराएँगे? वास्तव में, समय के साथ-साथ जैसे-जैसे घटनाक्रम चलता जाएगा, हम राज्यपाल का पद समाप्त कर लेंगे। राज्यपाल का पद बहुधा निराश, पराजित, अस्वीकृत, अवांछित मंत्रियों आदि विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों के लिए आरक्षित रहता है। हमें इस श्रेणी की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। और यदि आप इन्हें बनाए रखना चाहते हैं तो बनाए रखिए। विशेष रूप से मेरी कोई रुचि नहीं है। लेकिन यह वह परिवर्तन होगा, जिसका कोई औचित्य नहीं दिया जा सकेगा।

अब झंडे की बात आती है; झंडे का अपना महत्त्व है। इस पर प्रधानमंत्री यह नहीं कहेंगे कि यह एक भावनात्मक मामला है। तीन दिन पहले दस्तावेजों में यह घोषणा की गई थी कि भारत का झंडा केवल दो औपचारिक अवसरों पर ही फहराया जाएगा, अन्यथा वहाँ केवल राज्य का झंडा ही फहराया जाएगा। यदि आप समझते हैं कि इससे भारत की एकता और अखंडता पर आँच नहीं आएगी और इससे उक्त विघटनकारी प्रवृत्तियों को शह नहीं मिलेगी तो पूर्णतया स्वीकार कीजिए और इसके अनुरूप कार्य कीजिए। लेकिन ऐसा शेख अब्दुल्ला की माँग के आगे झुकने के रूप में क्यों करें?

वह अपने आपको प्रधानमंत्री कहना चाहते थे, उन्होंने इसी तरह से शुरुआत की थी, हममें से कुछ इस बात को पसंद नहीं करते थे, हम जानते हैं कि कश्मीर सहित भारत का एक ही प्रधानमंत्री हो सकता है, आप दो प्रधानमंत्री कैसे बना सकते हैं, एक दिल्ली में और दूसरा श्रीनगर में, जो अपने आपको मुख्यमंत्री नहीं बल्कि प्रधानमंत्री कहेगा। पहले मैंने सोचा कि यह एक मामूली बात थी और हमें इस पर ध्यान देना चाहिए, लेकिन देखिए, घटनाक्रम का विकास कैसे हो रहा है, हर कदम पर एक विशेष व्यवहार, इसलिए उसका सही तरीके से इलाज किया जाना चाहिए। नागरिकता अधिकारों और मूलभूत अधिकारों को देखिए। हम यह क्या कर रहे हैं? क्या सदन ने इसपर विचार किया है? क्या सदन ने इस संबंध में की गई सिफारिशों की अच्छाई-बुराई पर बहस की है? आप नागरिकता के संबंध में संविधान में दिए गए प्रावधानों को बिना विचार किए बदल रहे हैं। यह कहा गया था कि धनी व्यक्ति कश्मीर जाकर वहाँ संपत्ति खरीद रहे हैं। जैसा कि प्रधानमंत्री ने अपने वक्तव्य में कहा कि अनुच्छेद 19 (5) में इस संबंध में एक प्रावधान है। हमने संविधान तैयार करते समय इस अनुच्छेद की भली-भाँति जाँच की थी। उस समय विभिन्न प्रदेशों ने कोशिश की थी और वे बड़े पैमाने पर संपत्ति की खरीद-फरोख्त पर कोई अंकुश चाहते थे। हमने इस बारे में क्या कहा है? हमने कहा है कि किसी राज्य का विधानमंडल जनहित में अथवा अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के हित में संपत्ति खरीदने तथा एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाने में उचित नियंत्रण

रखने संबंधी कानून बना सकता है। अगर शेख अब्दुल्ला चाहते हैं कि कश्मीर में कुछ विशेष नियंत्रण रखा जाए तो इसके लिए खंड दिया गया है। मैं प्रधानमंत्री से इस बारे में स्पष्ट रूप से पूछना चाहूँगा। उन्होंने इसका उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने इसे छोड़ दिया है। क्या कश्मीर विधानसभा द्वारा लगाए जानेवाले नियंत्रण इस अपवाद सहित संविधान के अनुरूप होंगे या इसके बारे में और अधिकार दिए जाएँगे? नागरिकों की चार श्रेणियाँ हैं। मेरे पास इस बारे में सूचनाएँ हैं, लेकिन उन्हें पढ़ने का समय नहीं हैं। लेकिन ये निरंकुश महाराजा के समय बनाई गई थीं। क्या वे नागरिकों की चार श्रेणियाँ रखेंगे या इन्हें समाप्त कर देंगे? मुझे लॉर्ड कर्जन द्वारा लिखी गई एक कहानी याद आ रही है। इंग्लैंड का एक संभ्रांत व्यक्ति 50 या 60 वर्ष पहले अपनी पत्नी सहित फारस के शाह के दरबार में गया। उन्हें शाह के सामने पेश किया गया। शाह ने उनपर ध्यान नहीं दिया और उसके सेक्रेटरी ने पूछा, 'महिला को क्या सम्मान दिया जान चाहिए।' उस समय तीन प्रकार के 'ऑर्डर आप चेस्टटि' थे और उसे 'ऑर्डर ऑफ चेस्टटि' क्लास थ्री दिया गया। इस प्रकार यह ऑर्डर दिया गया और तब पता चला कि यह बात हतप्रभ करनेवाली थी। इसके बाद इसमें संशोधन किया गया। जम्मू-कश्मीर में नागरिकों कि चार श्रेणियाँ किसलिए हैं। इन्हें समाप्त कर देना चाहिए। नागरिकों की केवल एक श्रेणी रहनी चाहिए। क्या भारतीय आपकी सारी संपत्ति ले जाएँगे। भारतीयों को यहाँ संपत्ति खरीदने का सुझाव नहीं दिया गया था। मान लीजिए, किसी भारतीय ने यहाँ आकर कुछ संपत्ति खरीद ली तो आप इस बारे में कुछ कानून बना सकते हैं। हमें यह बात स्वीकार है, डर किस बात का है? हमारा प्रधानमंत्री एक कश्मीरी है। हमारा गृह मंत्री भी एक कश्मीरी है। हम भारत में खुश हैं। क्या इस बात का डर है कि भारतीय कश्मीर पर चढ़ाई कर देंगे और उनमें से एक मुख्यमंत्री बन जाएगा? हम जम्मू और कश्मीर पर चढ़ाई नहीं कर रहे हैं। मैं देश के इस खूबसूरत हिस्से में नहीं गया हूँ। मैं वहाँ जाकर कुछ समय रहना चाहूँगा। मेरे पास घर खरीदने के लिए पैसा नहीं है। फिर भी, मैं वहाँ जाना चाहूँगा, यह बात हमारे मूलभूत अधिकारों में कही गई है। वहाँ पर नए परिवर्तन हो रहे हैं, जोकि ठीक नहीं हैं। प्रधानमंत्री ने दो-तीन बातों का स्कॉलरशिप और नौकरी आदि का उल्लेख किया था। यह आदि क्या है? और नौकरियाँ क्यों? क्या नौकरी में आप एक और दूसरे नागरिक के बीच में अंतर करना चाहते हैं। हमारे संविधान में केवल संसद् को ही नौकरी में प्रवेश देने तथा किसी की सुरक्षा देने के बारे में विशेष प्रावधान बनाने का अधिकार है। अब इसी तरह की माँग दक्षिण के राज्यों में भी की गई। मैं पिछले कुछ सप्ताहों से उनकी माँगों को पढ़ रहा हूँ। वे भी प्रावधानों पर कठोर नियंत्रण किए जाने से विचलित हो रहे हैं। जब आप उन्हें यह सुविधा दे देंगे तो वे भी इसी प्रकार का संरक्षण चाहेंगे।

एक अन्य बिल, जिसके बारे में प्रधानमंत्री ने उल्लेख नहीं किया है, मैं आश्चर्य चकित था कि एक विशेष प्रावधान कैसे किया जा सकता है। जैसा कि आप जानते हैं कि दो लाख व्यक्ति पाकिस्तान चले गए हैं। इस बारे में यह प्रावधान इन लोगों को कश्मीर बुलाने के लिए एक विशेष कानून बनाया जाएगा। लड़ाई अभी जारी है। एक ओर नागरिक स्वतंत्रता के मूलभूत अधिकारों को और कड़ा बनाने का विचार है, और दूसरी ओर आप इसमें ढील देकर पाकिस्तानियों को कश्मीर जाने की अनुमति दे रहे हैं। इसके लिए एक विशेष कानून होना चाहिए और इस बारे में एक विशेष समझौता है। शेख अब्दुल्ला को, पाकिस्तान भागनेवालों को वापस बुलाने के लिए विशेष प्रावधान करने की इतनी बैचनी क्यों हो रही है, जो कि वापस आने को तैयार नहीं हैं। क्या इसका कोई विशेष अर्थ है। इससे सुरक्षा पर क्या प्रभाव पड़ेगा? जो मारे गए हैं, वे वापिस आ नहीं सकते, जो जीवित हैं, अगर उन्हें भारत में विश्वास है और अगर वे जम्मू में रहना चाहते हैं तो वे आ सकते हैं। इसकी जाँच होनी चाहिए। उन्हें वापस आने दो। इसके लिए किसी विशेष प्रावधान की आवश्यकता नहीं है। जहाँ तक जम्मू का संबंध है, जैसा कि आप जानते

हैं, यह एक त्रासदीपूर्ण राज्य था। यह दोनों पक्षों द्वारा किया गया था। इसमें मुसलमान थे, जो क्रुद्ध थे और हिंदू थे, जो मर मिटने को तैयार थे। वह एक अंधकारमय समय था, जब भारत के अधिकांश हिस्सों में यही हाल था। लेकिन आज क्या स्थिति है? आपने कितने हजार व्यक्तियों को आने की अनुमति दी है। मैं संख्या भूल गया हूँ। वे जम्मू-कश्मीर से आए हैं तथा भारत पर भार-स्वरूप हैं। इस बारे में कोई विशेष प्रावधान क्यों नहीं है कि उन्हें तत्काल जम्मू-कश्मीर वापस बुलाया जाए? वहाँ से हजारों व्यक्ति आए हैं।

जहाँ तक दूसरी स्थिति का संबंध है यह भी एक गंभीर मामला है। जम्मू और कश्मीर के एक तिहाई भाग में, जो अब भी पाकिस्तान के नियंत्रण में है, वहाँ से लगभग एक लाख सिख और हिंदू आए हैं और उन्होंने कश्मीर की सीमा में आश्रय लिया है। उनका क्या होगा? उनकी देखभाल की जाएगी। आप उनके बारे में सोच रहे हैं, जो इस समय पाकिस्तानी हो गए हैं, आप उन्हें फिर भी कश्मीरी नागरिक का दर्जा दे देंगे, लेकिन वे अभागे जो आज यहाँ आश्रय के लिए आए हैं, उन्हें रहने के लिए मकान कैसे दिए जाएँगे। क्या वहाँ उनके लिए पर्याप्त मात्रा में भूमि है। ये ऐसे मसले हैं, जिन पर ध्यान नहीं दिया गया है।

आपातकालीन स्थिति के बारे में मेरा कहना है कि यह एक अद्‌भुत स्थिति है। अगर आंतरिक गड़बड़ी के आधार पर आपातकालीन स्थिति लागू की गई है तो भारत के राष्ट्रपति इस बारे में निर्णय नहीं कर सकते हैं। भारत के राष्ट्रपति को डर किस बात का है। क्या आप भारत के राष्ट्रपति का इससे बड़ा अपमान कर सकते है। कश्मीर सरकार को भारत के अनुरूप चलना चाहिए। अगर वहाँ आंतरिक गड़बड़ी है, जो उनकी अपनी कुव्यवस्था का परिणाम है, तो वे इस बारे में अनुरोध क्यों करते हैं?

वे आप से इस संबंध में अनुरोध क्यों करते हैं अगर वे उदाहरण के लिए हमारे अन्य मित्रों के माध्यम से चीन अथवा रूस से मिले हुए हैं? वे आपके पास आकर हस्तक्षेप करने का अनुरोध क्यों करते हैं? मैं प्रधानमंत्री से पूछना चाहूँगा कि इस संबंध में अन्य आपातकालीन स्थिति संबंधी प्रावधान लागू होंगे या नहीं? जैसा कि आप जानते हैं कि संविधान में आपातकालीन स्थिति संबंधी अन्य दो अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रावधान हैं। अनुच्छेद 354 के अंतर्गत आपातकालीन स्थिति लागू होने पर राजस्व के वितरण से संबंधित प्रावधानों को लागू करने से है तथा अन्य अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राज्य में सरकार असफल हो जाने की स्थिति में लागू किए जानेवाले प्रावधान आते हैं।

क्या शेख अब्दुल्ला ने वित्तीय आपातकालीन स्थिति के रूप में अनुच्छेद 356 को लागू करना स्वीकार किया है या उसने अनुच्छेद 360 में दिए गए अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रावधानों को स्वीकार किया है, क्या उसने इस प्रावधान को स्वीकार कर लिया है? प्रधानमंत्री ने इस बारे में कोई उल्लेख नहीं किया है, उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार को भी अभी तक स्वीकार नहीं किया गया है।

मैं यह रचनात्मक सुझाव देते हुए अपनी बात समाप्त करूँगा, अपनी टिप्पणियाँ मैंने शेख अब्दुल्ला की प्रतिक्रिया पर विस्तारपूर्वक टिप्पणियों के बिना की है। जब पिछली बार वे दिल्ली में थे तो उन्होंने मुझे लिखा था कि वे मुझसे मिलना चाहते हैं। उस दिन मैं यहाँ नहीं था, इसलिए मैं उनसे नहीं मिल सका। मैंने एक दोस्ताना उत्तर भेजा। शायद मैं उन्हें फिर कभी मिलूँ। वास्तव में मेरा उनसे या उनका मुझसे प्रश्न नहीं है, मेरा कहना है कि हमें कुछ नियम बनाकर आगे चलना चाहिए। सबसे पहले राष्ट्रपति द्वारा अपनी शक्तियों के प्रयोग से मौलिक मामलों में संविधान के प्रावधानों में सारभूत परिवर्तन करने का आदेश देने का प्रश्न ही नहीं उठता।

यदि प्रधानमंत्री महसूस करते हैं कि कतिपय महत्त्वपूर्ण उपबंधों की पुन: जाँच करने के लिए कोई मामला तैयार किया गया है; उदाहरण के लिए भूमि संबंधी उपबंध ही लें। यदि आप महसूस करते हैं कि भूमि का अधिग्रहण बिना

मुआवजे का भुगतान किए ही कर लिया जाए, तो इसके लिए संविधान में उपबंध करना ही होगा। आप इन सभी मदों पर विचार करें और उपबंध इतने उदार बनाएँ, ताकि चाहें तो आप इन्हें पूरे भारत में लागू कर दें, अथवा केवल उन भागों में लागू करें, जहाँ यह भारतीय संसद् यह महसूस करे कि वहाँ इस प्रकार की विशेष व्यवस्था आवश्यक है। संवैधानिक उपबंधों के अनुसार ही काररवाई की जाए, संविधान के साथ खिलवाड़ मत कीजिए। संविधान एक पवित्र दस्तावेज है, यह एक ऐसा दस्तावेज है, जिसको तैयार करने में कड़ा परिश्रम और गहन विचार-शक्ति लगी थी। यदि आप महसूस करते हैं कि भारत में नई व्यवस्था, जो धीरे-धीरे विकसित हो रही है, पर विचार करने की दृष्टि से चाहे कश्मीर में अथवा भारत के किन्हीं अन्य भागों में कुछ परिवर्तन आवश्यक हैं, तो देश के लोगों को अपने विचार प्रकट करने का पूरा-पूरा अवसर दीजिए।

अंत में मुझे कहना है कि हम पर यह आरोप लगाया गया था कि हम में से कुछ लोगों ने जम्मू और लद्दाख के बारे में एक-दूसरे के भिन्न कारणों को महत्त्व दिया है। मैं आपको और सभा को आश्वासन देता हूँ कि मैं नहीं चाहता कि जम्मू-कश्मीर का विभाजन किया जाए। मैं विभाजन की विभीषिका से परिचित हूँ। यदि विभाजन किया गया तो उसके क्या परिणाम होंगे, इसे मैं जानता हूँ। लेकिन विभाजन को रोकने की जिम्मेवारी उन लोगों पर हो, जो आज जम्मू-कश्मीर के मालिक बने बैठे हैं और भारत के संविधान को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। यदि आज जम्मू के लोग दावा करते हैं कि उन्हें अलग दर्जा दिया जाना चाहिए, अलग दर्ज इस मायने में कि उन्हें पूरी तरह भारत में शामिल होने दिया जाए। तो इसमें क्या अपराध है। इस पर ध्यान दीजिए, यह भारत से भागने का प्रश्न नहीं है—यदि वे कहते हैं कि वे स्वतंत्र भारत का संविधान पूरी तरह स्वीकार करना चाहते हैं, तो क्या इसमें उन्होंने कोई अपराध कर दिया है? मैं यह सुझाव नहीं दे रहा हूँ, आप कश्मीर को अथवा कश्मीर घाटी को भारत से अलग कर दें। और इस मामले पर मुझे अथवा इस सभा में बैठे हम लोगों को निर्णय नहीं करना है। जैसा कि प्रधानमंत्री ने बिलकुल ठीक याद दिलाया है, यह मामला उस-उस भू-भाग के लोगों को तय करना होगा। अब मान लीजिए, जम्मू और लद्दाख के लोग महसूस करते हैं कि या तो जम्मू-कश्मीर के मामले में इनका पूरा विलय होना चाहिए अथवा यदि शेख अब्दुल्ला को यह बात स्वीकार नहीं है, तो कम-से-कम ऐतिहासिक रूप से अन्यथा अलग-अलग अस्तित्व रखनेवाले इन दो प्रांतों को भारत में शामिल होने दिया जाए। कश्मीर की स्थिति को, वे चाहें तो बने रहने दिया जाए, हो सके तो उसे और अधिक स्वायत्तता दी जाए, भारत द्वारा हस्तक्षेप की संभावनाएँ कम की जाएँ, यह ऐसी संभावना है, जिससे हम इनकार नहीं कर सकते। मुझे आशा है कि इस प्रश्न पर, इसकी प्रत्येक कठिनाई धयान में रखते हुए विचार किया जाएगा।

कश्मीर के मेरे मित्र मौलाना मसुओदि ने, जिनका मैं अत्यधिक आदर करता हूँ—आज प्रात: मैंने उनका भाषण समझने का प्रयास किया—जम्मू का हवाला दिया गया था, यही अंतिम मुद्दा है जिसका मैं उत्तर दूँगा। अच्छा, यदि जम्मू यह माँग करता है, उन्होंने यह कहा कि जम्मू एक ऐसा प्रांत है, जहाँ वर्ष 1941 में मुसलिम बाहुल्य था। उन्होंने यह तो बताया किंतु पूरी कहानी नहीं बताई। निस्संदेह, 1941 में यह मुसलिम बहुल प्रांत था, किंतु अन्य उन जिलों सहित यह मुसलिम बहुल हो गया है, जो इस समय पाकिस्तान के अधिकार क्षेत्र में चले गए हैं। अंत: यदि आप उन क्षेत्रो कों शामिल न करें... मैं उन्हें वापस लौटने की बात नहीं कह रहा हूँ। मुझे बड़ी खुशी है कि उन्होंने यह प्रश्न पूछा है। प्रधानमंत्री का कहना है कि उक्त क्षेत्र पर पुन: अधिकार नहीं लिया जाएगा। किंतु यह एक भिन्न प्रश्न है। आप इसे पुन: अधिकार में लेने नहीं जा रहे हैं। और यह संभव नहीं है। कोई भी स्थिति हो, उन लोगों ने जम्मू और कश्मीर के हितों के विरुद्ध कार्य किया है, जैसा कि कई बार कहा चुका है, भारत की अपेक्षा

पाकिस्तान के साथ उनके अधिक मैत्रीपूर्ण संबंध हो गए हैं।

यदि आप 1951 की जनगणना के आँकड़े देखें

आँकड़े प्रकाशित नहीं किए गए हैं, लेकिन हमारे अधिकार में जो भू-भाग है, उसके अनुसार जम्मू की जनसंख्या में 75 प्रतिशत हिंदू होंगे। लेकिन मैं हिंदू और मुसलमान के आधार पर तर्क नहीं दे रहा हूँ, जो पूरे के पूरे अथवा कुछ भाग के रूप में भारत आते हैं। यदि लद्दाख और जम्मू, ये दोनों प्रांत कहते हैं कि अपनी सारी जनता सहित भारत में आएँगे तो उन्हें ऐसा करने दीजिए।

कश्मीर के लोगों के लिए, जिस अधिकार की आप माँग कर रहे हैं, वही अधिकार जम्मू और लद्दाख के लोग भी माँग सकते हैं। हमें मित्रता की भावना से काररवाई करनी चाहिए। लगभग एक महीने पहले शेख अब्दुल्ला ने स्वयं कहा था कि यदि जम्मू और लद्दाख के लोगों ने वास्तव में यह महसूस किया है उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी—मैं यह नहीं कहा रहा हूँ कि आप इस तरह से काररवाई कीजिए किंतु उन क्षेत्रों में रहनेवाले लोगों को अपने इरादे निश्चित करने का अवसर दीजिए, इस प्रकार से काररवाई करना ठीक रहेगा। और यह शेख अब्दुल्ला के बुनियादी दावों, जिनका प्रधानमंत्री ने समर्थन किया है, अर्थात् आत्म निर्णय के सिद्धांतों के अनुकूल भी रहेगा।

❑

परिशिष्ट—4

प्रजा परिषद् आंदोलन में हुए शहीदों की सूची

1. मेला राम, छंब, तहसील अखनूर
2. नानक चंद, जोड़ियाँ, तहसील अखनूर
3. बसंत चंद, जोड़ियाँ, तहसील अखनूर
4. बलदेव सिंह, जोड़ियाँ, तहसील अखनूर
5. साईं सिंह, जोड़ियाँ, तहसील अखनूर
6. बरयाम सिंह, जोड़ियाँ, तहसील अखनूर
7. त्रिलोक सिंह, जोड़ियाँ, तहसील अखनूर
8. कृष्ण लाल, सुंदरबनी, तहसील नौशहरा
9. बाबा रामजीदास, सुंदरबनी, तहसील नौशहरा
10. बेली राम, सुंदरबनी, तहसील नौशहरा
11. बिहारी लाल, हीरा नगर, तहसील हीरानगर
12. भीष्म सिंह, हीरा नगर, तहसील हीरानगर
13. शिब्बा, बल्यहोत, तहसील रामबन
14. देवीशरण, बल्यहोत, तहसील रामबन
15. भगवान दास, कैंठी, तहसील रामबन

❑

संदर्भ ग्रंथ सूची

• कर्ण सिंह, आत्मकथा, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2011
• कमाल अहमद सिद्दीकी, कश्मीर : एक मंजरनामा, दिल्ली, इंडियन पब्लिशर्स, 1999
• के.के. नंदा, कश्मीर : निरंतर युद्ध के साये में, दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, 2011
• गुरुदत्त, डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी की अंतिम यात्रा, दिल्ली, हिंदी साहित्य सदन, 2010
• गौरीनाथ रस्तोगी, हमारा कश्मीर, दिल्ली, सुरुचि प्रकाशन, 1991
• तथागत राय, अप्रतिम नायक डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी, दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, 2013
• दिनेश चंद्र सिन्हा, देश-विभाजन और श्यामाप्रसाद मुकर्जी, दिल्ली, संजीवनी प्रकाशन, 2012
• नरेंद्र सहगल, व्यथित जम्मू-कश्मीर, दिल्ली, सूर्य भारती प्रकाशन, 2010
• पी.एन. चोपड़ा, सरदार पटेल : कश्मीर एवं हैदराबाद, दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, 2006
• बलराज मधोक, कश्मीर जीत में हार, दिल्ली, हिंदी साहित्य सदन, 2011
• बलराज मधोक, लद्दाख से दिल्ली, दिल्ली, हिंदू वर्ल्ड पब्लिकेशंस, 1994
• मा.गो. वैद्य, कश्मीर : समस्या और समाधान, लखनऊ, लोकहित प्रकाशन, 2006
• रामेश्वर प्रसाद मिश्र, पं. मौलिचंद्र शर्मा, दिल्ली, किताब महल, 2002
• रामशंकर अग्निहोत्री, कश्मीर के मोर्चे पर, 1951-1954, दिल्ली, भारतीय जनसंघ, आषाढ़ 2011
• रामशंकर अग्निहोत्री, कश्मीर : अलगाव बनाम जुड़ाव, नोएडा, जागृति प्रकाशन, 2007
• लेखराज शर्मा, धड़कता पंजाब और आर.आर.एस. भाग-3, जालंधर, साहित्य भारती प्रकाशन, 1985
• शिवप्रसाद चौरसिया, जम्मू की चिनगारियाँ, जबलपुर, भारतीय जनसंघ, तिथि नहीं दी गई।
• हरीश चंद्र, डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी : समकालीन दृष्टि में दिल्ली, नोएडा न्यूज, 1997
• हरीश दत्त शर्मा, डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी, दिल्ली, डायमंड बुक्स, 2005
• डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी, दिल्ली, लोकसभा सचिवालय, 1990
• स्मारिका-2005, जम्मू, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, जम्मू-कश्मीर, 2005
• भारतीय जनसंघ, घोषणाएँ व प्रस्ताव, भाग-4, दिल्ली, भारतीय जनसंघ केंद्रीय, कार्यालय, 1973
• प्रेमनाथ डोगरा : बहुविध व्यक्तित्व, जम्मू, पं. प्रेमनाथ डोगरा सार्वजनिक न्यास, तिथि नहीं दी गई
• प्रेमनाथ डोगरा : बहुविध व्यक्तित्व, जम्मू, प्रेमनाथ डोगरा सार्वजनिक न्यास, वर्ष मुद्रित नहीं
• कश्मीर : समस्या और जम्मू सत्याग्रह, दिल्ली, भारतीय जनसंघ, वर्ष मुद्रित नहीं
• भारत का संविधान (द्विभाषी), दिल्ली, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार, 2010
• Alex Von Tunzelmann, Indian Summer, London, Pocket Books, 2008
• Bakhshi Gulam Mohd, Kashmir Today, Mumbai, Bombay Provincial Congress Committee, 1946
• Bhim Singh, Jammu and Kashmir : The Blunders and Way Out, Delhi, Har-Anand, 2011
• B.L. Sharma, Kashmir Awakes, Delhi, Vikas Publications, 1971
• B.N. Mullik, My Years with Nehru Kashmir, Mubai, Allied Publishers,

1971
• Balraj Madhok, Kashmir Centre of New Alignment, Delhi, Deepak Prakashan, 1963
• Balraj Madhok, Kashmir The Storm Center of the World, Little York, A Ghosh, 1992
• Balraj Puri, Kashmir Insurgency and After, Hyderabad, Orient Longman, 2008
• Constitution of Jammu and Kashmir, Jammu, Govt Press 2003
• Craig Baxter, The Jana Sangh A Biography of an Indian Political Party, Mumbai, Oxford University Press, 1971
• Chaman Lal Gupta, Article 370-A Thorn, Jammu, Chaman Lal Gupta Foundation, 2010
• Christopher Thomas, Faultline Kashmir, Middlesex, Brunel Academic Publishers, 2000
• C.L. Dasgupta, War and Diplomacy in Kashmir, Delhi, Sage Publications, 2012
• Devendra Swarup (ed), The Roots of Kashmir Problem, Delhi, Manthan Prakashan
• Harbans Singh, Maharaja Hari Singh : The Troubled Years, Delhi, Brahsapati Publications, 2nd Edition 2011
• H.S. Gururaj Rao, Legal aspects of the Kashmir Problem, Mumbai, Asia Publishing House, 1967
• Jammu and Kashmir 1947-1950, Jammu, Jammu and Kashmir Govt, 1951
• Jawaid Alam (ed), Jammu and Kashmir 1949-64, Delhi, Viking, 2006
• Josef Korbel, Danger in Kashmir, Princeton, Princeton University Press, 1966
• John Terraine, The Life and Times of Lord Mountbatten, London, Arrow Books, 1980
• Lorry Collins, Mountbatten and Independent India, Delhi, Tarang Paperbacks, 1985
• M.J. Akbar, Kashmir Behind the Vale, Delhi, Roli Books, 2011
• M.K. Teng, Kashmir Constitutional History and Documents Vol-1, Jammu, Jay Kay Book House, 1999
• M.K. Teng, White Paper on Kashmir, Delhi, Jeffry and Bell Publishers, year not printed
• Mohammad Ishaq Khan, History of Srinagar, Delhi, Cosmos Publications, 1999

• M.S. Ratanparkhi, Kashmir Problem and its Solution, Delhi, Atlantic, 2011
• Ministry of States, Govt of India, White Paper on Indian States, Delhi, Manager of Publications, 1950
• M.L. Gupta, Kashmir—A Wailing Valley, Delhi, Anmol Publications, 2001
• M.K. Teng, Kashmir Article 370, Delhi, Anmol Publications, 2002
• Navnita Chadha Behera, Demystifying Kashmir, Delhi, Dorling Kindersley, 2007
• Prem Shankar Jha, The Origins of a dispute Kashmir 1947, Delhi, Oxford University Press, 2003
• Prithivi Nath Kaul Bamzai, Kashmir and power politics, Srinagar, Gulshan Books
• Prem Nath Bazaz, The Untold Story of Kashmir politics, Srinagar, Gulshan Books, 2007
• Parvez Dewan, A History of Ladakh Gilgit Baltistan, Delhi, Manas Publications, 2011
• Pyarelal Kaul, Crisis in Kashmir, Srinagar, Suman Publications, 1991
• Renu Bala, Regional Political Parties and Constitutional Developments of Jammu and Kashmir : A Study of Praja Parishad, Jammu, University of Jammu (Unpublished Dissertation) 1990
• Reshi Dev, Contemporary Kashmir Politics Some Insights, Delhi, Asian-Eurasian Human Rights Forum, 2008
• S.K. Ganjoo, Kashmir—History and Politics, Delhi, Commonwealth Publishers, 1998
• Santosh Kaul, Kashmir's Constitutional Status, Anmol Publications, 1999
• S.R. Bakshi, Kashmir Political Problem, Delhi, Sarup and Sons, 1997
• S.R. Bakshi, Kashmir and U.N.O, Delhi, Sarup and Sons, 1997
• S.P. Vaid, How Partition Rocked Jammu and Kashmir, Jammu, Shyama Publications, 2007
• Statistical Report of General Election, 1962 to The Legislative Assembly of Jammu and Kashmir, Delhi, Election Commission of India
• Stanley Wolpert, Jinnah of Pakistan, Delhi, Oxford University Press, 1989
• Syama Prasad Mookerjee, Leaves from a Diary, Delhi, Oxford University Press, 2000
• Shyam Kaul (ed), Jammu Kashmir Ladakh: Ringside View, Delhi, Atlantic Publishers, 1998
• Sheikh Abdullah, Atish-e-Chinar, Srinagar, Ali Mohammad and Sons
• Sumantra Bose, Kashmir: Roots of Conflicts, Paths to Peace, Cambridge,

Harvard University Press, 2005
• Usha Sharma, Political Development in Jammu, Kashmir and Ladakh, Delhi, Radha Publications, 2001
• Victoria Schofield, Kashmir in Conflict, Delhi, Viva Books, 2004
• Vidya Bhushan, Constitution Assembly of Jammu and Kashmir, Jammu, Yak Publishing Channel, 2011
• Nehru-Abdullah Pact : An Unholy Agreement and A Fraud, Jammu, All Jammu & Kashmir Praja Parishad, year not printed.
• Integrate Kashmir, Delhi, Bharatiya Janasangh, year not printed.
• Constitution Assembly Debates Book 5, Delhi, Lok Sabha Secretariat, 2009
• Report of the State Autonomy Committee, Jammu, Govt Press, 1999
• A Plea to Understand Praja Parishad, Jammu, All Jammu & Kashmir Praja Parishad, year not printed
• Kashmir Problem and Jammu Satyagraha, Delhi, Bharatiya Jansangh, year not printed

समाचार पत्र/पत्रिकाएँ

• 1. द ट्रिब्यून, अंग्रेजी दैनिक, अंबाला (1947 से 1964 तक की फाइलें)
• 2. पाञ्चजन्य, हिंदी साप्ताहिक (1947 से 1964 तक की फाइलें)
• 3. ऑर्गेनाइजर, अंग्रेजी साप्ताहिक, दिल्ली (1947 से 1964 तक की फाइलें)

❑❑❑

Notes

[←1]

प्रेमनाथ डोगरा की भूमिका, बलराज मधोक, कश्मीर सेंटर ऑफ न्यू अलाइनमेंट

[←2]

कैबिनेट मिशन मैमोरेंडम, 12 मई, 1946 उषा शर्मा, पेज-1

[←3]

White Paper on Indian States

[←4]

————59@——— 161

[←5]

H.S. Gururaj Rao, Legal aspects of the Kashmir problem, Mumbai

[←6]

White Paper on Indian States

[←7]

White Paper on Indian States,

[←8]

Prem Shankar Jha, The Origins of a Dispute Kashmir 1947

[←9]

————59@——— 111-112)

[←10]

————59@——— 108)

[←11]

Josef Korbel, Danger in Kashmir

[←12]

Jawaid Alam (ed), Jammu and Kashmir 1949-64

[←13]

————59@———

[←14]

Mehar Chand Mahajan, Accession of Kashmir to India in Usha Sharma, Political Development in Jammu, Kashmir and Ladakh

[←15]

————59@———-*C 25-26

[←16]

————59@——— *C 24

[←17]

पी.एन. चोपड़ा, सरदार पटेल, कश्मीर एवं हैदराबाद,

[←18]

Mehar Chand Mahajan, Accession of Kashmir to India in Usha Sharma, Political Development in Jammu, Kashmir and Ladakh, P 33

[←19]

————59@——— *C 34

[←20]

————59@——— *C 35

[←21]

————59@———

[←22]

C. Dasgupta, War and Diplomacy in Kashmir,

[←23]

पी.एन. चोपड़ा, सरदार पटेल कश्मीर एवं हैदराबाद,

[←24]

C. Dasgupta, War and Diplomacy in Kashmir

[←25]

Lorry Collins, Mountbatten and Independent India

[←26]

Lorry Collins, Mountbatten and Independent India

[←27]
पञ्चजन्य 4/3/57

[←28]

Lorry Collins, Mountbatten and Independent India,

[←29]

(दीक्षित 126)

[←30]

Alex Von Tunzelmann, Indian summer,

[←31]

M.S. Ratanparkhi, Kashmir Problem and its Solution

[←32]

Josef Korbel, Danger in Kashmir

[←33]

Prithivi Nath Kaul bamzai, Kashmir and power politics,

[←34]

S.R. Bakshi, Kashmir and U.N.O.,

[←35]

White Paper on Kashmir Teng 108

[←36]

Lorry Collins, Mountbatten and Independent India,

[←37]

White Paper on Indian States,

[←38]

———59@————371

[←39]

————59@———111

[←40]

Report of The State Autonomy Committee,

[←41]

M.S. Ratanparkhi, Kashmir Problem and Its Solution,

[←42]

अब्दुल गनी गोनी, शेख अब्दुल्ला : एन असेस्मेंट न्यू कश्मीर प्रेस श्री नगर विद्या भूषण 34 में उद्धृत है।

[←43]

M.S. Ratanparkhi, Kashmir Problem and Its Solution,

[←44]

————59@———

[←45]

पृथ्वीनाथ कौल बमजई, कश्मीर एंड पावर पॉलिटिक्स

[←46]

बलराज मधोक, लद्दाख से दिल्ली

[←47]

Vidya Bushman, Institution Assembly of Jammu and Kashmir

[←48]

प्रेमनाथ डोगरा (23 अक्तूबर, 1884-20 मार्च, 1972) जम्मू के समीप समैलपुर ग्राम में पैदा हुए। मुजफ्फराबाद जिला के वजीर-ए-वजारत रहे। जम्मू नगरपालिका के 1949 तक उपाध्यक्ष रहे। जनवरी 1947 में रियासत की विधान सभा प्रजा सभा के लिए निर्वाचित हुए। भारत विभाजन के बाद पश्चिमी पंजाब से आनेवाले शरणार्थियों एवं रियासत के ही पाक कब्जेवाले भाग से विस्थापित लोगों की सहायता के लिए पुरुषार्थी सहायता सभा का गठन किया। संघ से संपर्क में आने के बाद 1941 में जम्मू-कश्मीर विभाग के संघचालक का दायित्व सँभाला। जाति-पाँति के भेदभाव समाप्त करने के लिए रियासत में हरिजन सेवा मंडल की स्थापना की। प्रजा परिषद् के आंदोलनों में शेख की जेलों में भी वे रहे। तीन बार जम्मू-कश्मीर विधानसभा के सदस्य चुने गए। भारतीय जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष भी रहे।

[←49]

नरेंद्र सहगल, व्यथित कश्मीर

[←50]

माधवराव मुल्ये, प्रेमनाथ डोगरा बहुविध व्यक्तित्व से उद्‌धृत

[←51]

बलराज मधोक, लद्दाख से दिल्ली

[←52]

भगवत स्वरूप द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर

[←53]

बलराज मधोक, लद्दाख से दिल्ली

[←54]

बलराज मधोक, कश्मीर जीत में हार

[←55]

प्रजा परिषद् संविधान धारा 6

[←56]

धारा 7

[←57]

धारा 8

[←58]

धारा 9

[←59]

धारा 10

[←60]

धारा 10

[←61]

धारा 15

[←62]

धारा 11

[←63]

धारा 14, 12 से लेकर 20 तक के सभी संदर्भ में Renu Bala, Regional Political Parties and Constitutional Developments of Jammu and Kashmir: A Study of Praja Parishad, Jammu, University of Jammu (Unpublished Dissertation) 1990 से लिए गए हैं।

[←64]

विधान जम्मू व कश्मीर प्रजा परिषद्, वर्ष अंकित नहीं

[←65]

बलराज मधोक, लद्दाख से दिल्ली

[←66]

वही

[←67]

C. Dasgupta, War and Diplomacy in Kashmir, P 62

[←68]

दीक्षित प. 128

[←69]

बलराज मधोक, लद्दाख से दिल्ली

[←70]

Alex Von Tunzelmann, Indian Summer

[←71]

बलराज मधोक, लद्दाख से दिल्ली

[←72]

Victoria Schofield ,Kashmir in Conflict, P 80 से उद्धृत

[←73]

तथागत राय, अप्रतिम नायक डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी

[←74]
प्रेमनाथ डोगरा : बहुविध व्यक्तित्व

[←75]

ऑर्गेनाइजर, 8 जनवरी, 1948

[←76]

‘द ट्रिब्यून’, अंबाला, 3 मार्च, 2013

[←77]

बलराज मधोक, लद्दाख से दिल्ली

[←78]

Devendra Swarup (ed) ,The Roots of Kashmir Problem

[←79]

श्याम लाल शर्मा, समय की जरूरत को पूरा किया था हमने, तवी दीपिका, अक्तूबर-नवंबर 1988

[←80]

Devendra Swarup (ed), The Roots of Kashmir Problem

[←81]
Navnita Chadha Behera, Demystifying Kashmir

[←82]

बलराज मधोक ऑर्गेनाइजर 22-8-49

[←83]

‘द ट्रिब्यून’ अंबाला, 25/06/1949

[←84]

वही, 28/06/1949

[←85]

चौधरी चग्गर सिंह द्वारा दी गई सामग्री के आधार पर। चग्गर सिंह कठुआ जिले में प्रजा परिषद् आंदोलन के प्रभारी थे।

[←86]

Chaman Lal Gupta, Article 370 - A Thorn

[←87]

चौधरी चग्गर सिंह की सामग्री के आधार पर

[←88]

Christopher Thomas, Faultline Kashmir

[←89]

ये सभी जानकारियाँ श्री भगवत स्वरूपजी से प्राप्त हुईं

[←90]

Times of India Mumbai 12/9/52 in Josef Korbel, Danger in Kashmir

[←91]

Josef Korbel, Danger in Kashmir

[←92]

Organiser 28/08/1950

[←93]

बलराज मधोक, ऑर्गेनाइजर, 22/8/1949

[←94]

ऑर्गेनाइजर, 16/10/1950

[←95]

द ट्रिब्यून, अंबाला, 4/4/1951

[←96]

वही, 18/4/1951

[←97]

वही, 4/4/1951

[←98]

वही, 10/4/1951

[←99]

वही, 28/4/1951

[←100]

कर्ण सिंह, आत्मकथा

[←101]

Josef Korbel, Danger in Kashmir

[←102]

एम.के. टेंग

[←103]

कमाल अहमद सिद्दीकी, कश्मीर एक मंजरनामा

[←104]

जी.एम. बक्शी, कश्मीर टुडे

[←105]

Prithivi Nath Kaul Bamzai, Kashmir and Power Politics

[←106]

Mohammad Ishaq Khan, History of Srinagar

[←107]

वही।

[←108]

Prithivi Nath Kaul Bamzai, Kashmir and Power Politics

[⟵109]

B.N. Mullik, My Years With Nehru Kashmir

[←110]

Bhim Singh, Jammu and Kashmir: The Blunders and Way Out

[←111]

Balraj Madhok, Kashmir Centre of New Alignment

[←112]

Prithivi Nath Kaul Bamzai, Kashmir and Power Politics

[←113]

वही

[←114]
वही

[←115]
वही

[←116]

वही

[←117]

सन् 1930-36 के आंदोलन में ब्रिटिश सरकार और शेख अब्दुल्ला के सहयोग की विस्तारित जानकारी के लिए मुंबई से प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक 'ब्लिट्ज' में 24 अप्रैल, 1965 को प्रकाशित रपट पढ़े। यह रपट देवेंद्र स्वरूप द्वारा प्रकाशित 'द रूट्स ऑफ कश्मीर प्रॉब्लम' में प्रकाशित है।

[←118]
Balraj Madhok, Kashmir Centre of New Alignment

[←119]

Sumantra Bose, Kashmir—Roots of Conflicts, Paths to Peace

[←120]

Christopher Thomas, Faultline Kashmir

[←121]

Organiser, Delhi, 25/12/1947

[←122]

Organiser, Delhi, 02/10/1950

[←123]

कश्मीर समस्या और जम्मू सत्याग्रह

[←124]

Balraj Puri, Kashmir Insurgency and After

[←125]

भगवत स्वरूप द्वारा दी गई जानकारी पर आधारित

[←126]

The Tribune, Ambala 2/6/1951

[←127]

Organiser, Delhi, 13/11/1948

[←128]

The Tribune, Ambala, 8/7/1952

[←129]

कमाल अहमद सिद्दीकी, कश्मीर एक मंजरनामा

[←130]

B.N. Mullik, My Years With Nehru Kashmir

[←131]

Josef Korbel, Danger in Kashmir

[←132]

वही।

[←133]

M.S. Ratanparkhi, Kashmir Problem and its Solution

[←134]

Prem Nath Bazaz, The Untold Story of Kashmir Politics

[←135]

Mehar Chand Mahjan, Accession of Kashmir to India, in Usha Sharma, Political Development in Jammu, Kashmir and Ladakh

[←136]

कमाल अहमद सिद्दीकी, कश्मीर एक मंजरनामा, पृ. 32 से उद्‌धृत

[←137]

Organiser, Delhi, 02/10/1950

[←138]

वही, 2/2/1953

[←139]

राज्यसभा में 5 अगस्त, 1952 को बहस

[←140]

मोहंती के उपर्युक्त सभी कथन राज्यसभा की 5 अगस्त 1952 की बहस से लिए गए हैं

[←141]

Kashmir Problem and Jammu Satyagraha

[←142]

कमाल अहमद सिद्दीकी, कश्मीर एक मंजरनामा

[←143]

वही,

[←144]

वही,

[←145]

Prithivi Nath Kaul Bamzai, Kashmir and Power Politics

[←146]

वही

[←147]

वही,

[←148]

M.S. Ratanparkhi, Kashmir Problem and Its Solution

[←149]

Vidya Bhushan, Constitution Assembly of Jammu and Kashmir

[⟵150]

Peoples age, Mumbai 5/5/1946

[←151]

Balraj Puri, Kashmir Insurgency and After

[←152]

Prem Nath Bazaz, The Untold story of Kashmir Politics

[←153]

कर्ण सिंह, आत्मकथा

[←154]

नेहरू का 29 जुलाई, 1952 को शेख को लिखा पत्र और राष्ट्रपति का 6 सितंबर, 1952 को प्रधानमंत्री नेहरू को लिखा पत्र, 'रिपोर्ट ऑफ द स्टेट ऑटोनॉमी कमेटी में उपलब्ध है।

[←155]

'द ट्रिब्यून अंबाला', 12/7/1952

[←156]

Dina Nath Raina, Unhappy Kashmir the Hidden Story

[←157]

कर्ण सिंह, आत्मकथा

[←158]

Balraj Puri, Kashmir Insurgency and After

[←159]

Balraj Madhok, Kashmir The Storm Center of the World

[←160]

Vidya Bhushan, Constitution Assembly of Jammu and Kashmir

[←161]

Jawaid Alam (ed), Jammu and Kashmir 1949-64

[←162]

आतिश-ए-चिनार

[←163]

Vidya Bhushan, Constitution Assembly of Jammu and Kashmir

[←164]

वही

[←165]

कर्ण सिंह, आत्मकथा,

[←166]

Navnita Chadha Behera, Demystifying Kashmir

[←167]
Organiser, Delhi 08/06/1953

[←168]

The Tribune, Ambala, 17/01/1952

[←169]
Om Prkash Mengi, Student National Association, स्मारिका-2005

[←170]

Kuldip Chander Verma, Brief History of Students Hunger Strike of 1952, स्मारिका 2005

[←171]

Kuldip Chander Verma, Brief History of Students Hunger Strike of 1952, स्मारिका 2005

[←172]
Om Prakash Mengi, Student National Association, स्मारिका-2005

[←173]

Organiser, Delhi, 11 फरवरी, 1952

[←174]

The Tribune, Ambala 4 फरवरी, 1952

[←175]

Organiser, Delhi, 11 फरवरी, 1952

[←176]

Pyarelal Kaul, Crisis in Kashmir, P 61 से उद्धृत

[←177]

Organiser, Delhi 18/02/1952

[←178]

आजकल इस कॉलेज का नाम गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वूमेन है

[←179]

Organiser, Delhi 18/02/1952

[←180]

The Tribune, Ambala 09/02/1952

[←181]

वही।

[←182]

Pyarelal Kaul, Crisis in Kashmir

[←183]

The Tribune, Ambala 10/02/1952

[←184]

Pyarelal Kaul, Crisis in Kashmir

[←185]

भारतीय जनसंघ घोषणाएँ व प्रस्ताव, भाग-4

[←186]

Jawaid Alam (ed), Jammu and Kashmir 1949-64,

[←187]

The Tribune, Ambala 10/02/ 1952

[←188]

वही, 07/04/1952

[←189]

वही, 11/02/1952

[←190]

वही,

[←191]

वही, 12/02/1952

[←192]

वही,

[←193]

Organiser, Delhi 25/02/1952

[←194]

The Tribune, Ambala 12/02/1952

[←195]
Organiser, Delhi 25/02/1952

[←196]

The Tribune, Ambala, 16/02/1952

[←197]

वही,

[←198]

वही, 19/02/1952

[←199]

वही, 16/02/1952

[←200]

वही, 18/02/1952

[←201]

वही,

[←202]

वही, 21/02/1952

[←203]
वही,

[←204]

वही, 22/02/1952

[←205]

वही, 26/02/1952

[←206]

वही, 02/03/1952

[←207]

वही, 06/03/1952

[←208]

वही,

[←209]

वही, 21/03/1952

[←210]

वही, 13/02/1952

[←211]

वही, 26/02/1952

[←212]

Organiser, Delhi 17/03/ 1952

[←213]

वही,

[←214]

The Tribune, Ambala 07/04/1952

[←215]

वही, 08/04/1952

[←216]

जिन छात्रों ने 40 दिनों की क्रमिक भूख हड़ताल में हिस्सा लिया था उनकी सूची इस प्रकार है—विश्वपाल, तिलकराज शर्मा, राम स्वरूप, वेद चौहान, ओमप्रकाश गुप्ता, हरि शरण शर्मा, द्वारिकानाथ गुप्ता, यशपाल पुरी, घनश्याम साहनी, चमनलाल गुप्ता, हरदेव शर्मा, रामस्वरूप गुप्ता, ज्ञानचंद सनोत्रा, केवल कृष्ण शर्मा, राम मोहन कत्याल, वेदमित्र गंडोत्रा, पवन सिंह, हंसराज शर्मा, कुलदीप राज वर्मा, रामनाथ शर्मा, इंद्रजीत चमनलाल गुप्ता, अनुच्छेद, 370

[←217]

तथागत राय, अप्रतिम नायक डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी

[←218]

नेहरू-अब्दुल्ला पैक्ट,

[←219]

कर्ण सिंह, आत्मकथा,

[←220]

The Tribune, Ambala, 31/03/1952

[←221]

वही, 12/04/1952

[←222]

वही,

[←223]

वही, 13/4/52

[←224]

B.N. Mullik, My Years with Nehru Kashmir, Page 24-25

[←225]

The Tribune, Ambala, 13/04/1952 के संपादकीय से उद्धृत

[←226]

वही, 15/04/1952

[←227]
वही, 19/04/1952

[←228]

वही, 15/04/1952

[←229]
वही

[←230]

वही, 19/04/1952

[←231]

वही, 22/04/1952 22-4-52

[←232]

बृजेश सिंह, कश्मीर की सौतेली संतानें, तहलका दिल्ली, 31 दिसंबर, 2012

[←233]

The Tribune, Ambala, 8/05/1952

[←234]

Josef Korbel, Danger in Kashmir

[←235]

The Tribune, Ambala, 10/05/1952

[←236]

वही, 14/05/1952

[←237]

Navnita Chadha Behera, Demystifying Kashmir, Page 112

[←238]

वही

[←239]

The Tribune, Ambala, 10/05/1952

[←240]

वही, 15/05/1952

[←241]

वही, 08/06/1952

[←242]
The Tribune, Ambala, 10/06/1952

[←243]

वही, 30 /06/1952

[←244]

वही, 15 /06/1952

[←245]

वही, 27 /06/1952

[←246]

वही, 22 /06/1952

[←247]

वही, 24 /06/1952

[←248]

प्यारे लाल कौल, क्राइसिस इन कश्मीर

[←249]
The Tribune, Ambala, 25 /06/1952

[←250]

वही,

[←251]

वही, 27 /06/1952

[←252]

प्यारे लाल कौल, क्राइसिस इन कश्मीर

[←253]

The Tribune, Ambala, 18/06/1952

[←254]

B.N. Mullik, My Years with Nehru Kashmir

[←255]

वही

[←256]

The Tribune, Ambala, 01 /07/1952

[←257]

वही, 03 /07/1952

[←258]

वही, 04 /07/1952

[←259]

वही,

[←260]

वही, 07 /07/1952

[←261]

वही, 16 /07/1952

[←262]

वही, 15 /07/1952

[←263]

वही,

[←264]

वही, 16 /07/1952

[←265]

वही, 17 /07/1952

[←266]

वही, 19 /07/1952

[←267]

वही,

[←268]

वही, 23 /07/1952

[←269]

, Kashmir Problem and Janasangh

[←270]

कश्मीर समस्या और जम्मू सत्याग्रह

[←271]

The Tribune, Ambala, 25-7-52

[←272]

नवभारत टाइम्स, दिल्ली, 25/7/52, Nehru Abdullah Pact से उद्धृत

[←273]

Nehru Abdullah Pact,

[←274]

वही,

[←275]
पाञ्चजन्य, वर्ष 6, अंक 5

[←276]

The Tribune, Ambala, 25-7-52

[←277]

The Tribune, Ambala, 28-7-52

[←278]

Craig Baxter, The Jana Sangh A Biography of an Indian Political Party

[←279]

The Tribune, Ambala, 9-8-1952

[←280]
तथागत राय, अप्रतिम नायक डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी

[←281]

Integrate Kashmir,

[←282]
Do

[←283]
Do

[←284]

The Tribune, Ambala,11/8/1952

[←285]

वही, 11/8/52

[←286]

तथागत राय, अप्रतिम नायक डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी

[←287]

कर्ण सिंह, आत्मकथा,

[←288]

The Tribune, Ambala,,1/9/1952

[←289]

वही, 4/9/52

[←290]

वही, 5/9/52

[←291]

वही, 11/9/52

[←292]

कर्ण सिंह, आत्मकथा

[←293]

Jawaid Alam (ed), Jammu and Kashmir 1949-64

[←294]

वही

[←295]

वही

[←296]

वही

[←297]
वही

[←298]
वही

[←299]
वही

[←300]

वही

[←301]

The Tribune, Ambala, 11/9/52

[←302]

वही, 17/9/52

[←303]

Jawaid Alam (ed), Jammu and Kashmir 1949-64

[←304]

The Tribune, Ambala, 24/9/52

[⟵305]

Jawaid Alam (ed), Jammu and Kashmir 1949-64

[←306]
The Tribune, Ambala, 27/9/52

[←307]

वही, 20/10/1952

[←308]

वही, 30/9/52

[←309]

वही, 06/10/1952

[←310]

वही, 08 /10/1952

[←311]

वही, 13/10/1952

[←312]

The Tribune, Ambala, 19/10/1952

[←313]

वही, 22/10/1952

[←314]

वही, 05/11/1952

[←315]

वही, 10/11/1952

[←316]

Organiser, Delhi, 26/01/1953

[←317]

Navnita Chadha Behera, Demystifying Kashmir, Page 108

[←318]

Vidya Bhushan, Constitution Assembly of Jammu and Kashmir

[←319]

The Tribune Ambala, 18/11/1952

[←320]

कर्ण सिंह, आत्मकथा,

[←321]

वही,

[←322]

पाञ्चजन्य, वर्ष 6, अंक 20

[←323]

Organiser, Delhi, 24/11/1952

[←324]

The Tribune, Ambala, 18/11/1952

[←325]

कर्ण सिंह, आत्मकथा

[←326]

The Tribune, Ambala 24/11/1952

[←327]

वही, 25/11/1952

[←328]

वही, 25/11/1952

[⟵329]
Organiser, Delhi, 22/12/1952)

[←330]

The Tribune, Ambala, 27/11/1952

[←331]

The Tribune, Ambala, 18/11/1952

[←332]

Jawaid Alam (ed), Jammu and Kashmir 1949-64

[←333]

Organiser, Delhi, 22/12/1952

[←334]

सत्याग्रह में भाग ले चुके कुछ सत्याग्रहियों से प्राप्त सामग्री के आधार पर

[←335]

Navnita Chadha Behera, Demystifying Kashmir

[←336]

The Tribune, Ambala, 29/11/1952

[←337]
वही

[←338]
वही

[←339]

. पाञ्चजन्य, वर्ष 6, अंक 21

[←340]

. The Tribune, Ambala 01/12/1952

[←341]

. वही,

[←342]

. वही,

[←343]

वही,

[←344]

वही, 02/12/1952

[⟵345]
Jawaid Alam (ed), Jammu and Kashmir 1949-64

[←346]

The Tribune, Ambala, 04/12/1952

[←347]

वही, 06/12/1952

[←348]
वही

[←349]

वही, 08/12/1952

[←350]

वही

[←351]

वही, 11/12/1952

[←352]

वही, 10/01/1953

[←353]
वही, 13/12/1952

[←354]
रामेश्वर प्रसाद मिश्र, पंडित मौलिचंद्र शर्मा

[←355]

The Tribune, Ambala, 13/12/1952

[←356]
Organiser, Delhi, 15/12/1952

[←357]

Jawaid Alam (ed), Jammu and Kashmir 1949-64

[←358]

The Tribune, Ambala, 22/12/1952

[←359]

Organiser, Delhi, 11/02/1953

[←360]

वही, 05/01/1953)

[←361]

पाञ्चजन्य, वर्ष 6, अंक 26

[←362]

Jawaid Alam (ed), Jammu and Kashmir 1949-64

[←363]

आचार्य कृपलानी का यह लेख 1 igil में 07/02/1953 को प्रकाशित हुआ था, जिसे Organiser, Delhi, ने 16/02/1953 को पुनः प्रकाशित किया था।

[←364]

कश्मीर समस्या और जम्मू सत्याग्रह

[←365]

The Tribune, Ambala, 05/01/1953

[←366]

The Tribune, Ambala, 10/01/1953

[←367]

वही, 28/11/1952

[←368]

वही, 01/12/1952

[←369]

वही, 04/12/1952

[←370]

वही, 06/12/1952

[←371]

वही, 04/12/1952

[←372]

Josef Korbel, Danger in Kashmir

[←373]

Organiser, Delhi, 19/01/1953

[←374]

वही, 09/02/1953

[←375]

आंदोलन के दौरान प्रजा परिषद् के संगठन मंत्री रहे भगवत स्वरूप द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर।

[⟵376]

Jawaid Alam (ed), Jammu and Kashmir 1949-64

[←377]
पाञ्चजन्य, वर्ष 6, अंक 34

[←378]

Jawaid Alam (ed), Jammu and Kashmir 1949-64

[←379]

वही

[←380]

प्रजा परिषद् के संगठन मंत्री भगवत स्वरूप द्वारा दी गई जानकारी पर आधारित

[←381]

पाञ्चजन्य, वर्ष 6, अंक 34

[←382]

प्रजा परिषद् के संगठन मंत्री भगवत स्वरूप से प्राप्त सामग्री के आधार पर

[←383]

वही

[←384]
वही

[←385]

वही

[←386]

The Tribune, Ambala, 30/11/1952

[←387]

Organiser, Delhi, 27/04/1953

[←388]

The Times London 24/01/53, Danger in Kashmir

[←389]

Newyork Times 02/02/1953, Danger in Kashmir

[←390]

Jawaid Alam (ed), Jammu and Kashmir 1949-64

[←391]

वही

[←392]

वही

[←393]

वही

[←394]

Organiser, Delhi, 01/06/1953

[←395]

Jawaid Alam (ed), Jammu and Kashmir 1949-64

[←396]

वही

[←397]

वही,

[←398]

पाञ्चजन्य 13/4/53

[←399]

Josef Korbel, Danger in Kashmir

[←400]

Organiser, Delhi, 08/06/1953

[←401]

भारतीय जनसंघ—घोषणाएँ व प्रस्ताव, भाग 5, पृ. 21-22, (16-6-52 द ट्रिब्यून, अंबाला

[←402]

पाञ्चजन्य, 7/12/52

[←403]

पाञ्चजन्य, 21/12/52

[←404]

भारतीय जनसंघ, भारतीय जनता पार्टी, नई दिल्ली पृ. 16 अर्थ स्पष्टता के लिए अनुवाद को संशोधित किया गया है

[←405]
वही

[←406]

पाञ्चजन्य, 11/1/53

[←407]
Integrate Kashmir

[←408]
Do

[←409]

कर्ण सिंह, आत्मकथा

[←410]

. वही

[←411]

वही

[←412]

B.N. Mullik, My Years with Nehru Kashmir

[←413]

Integrate Kashmir

[←414]

Integrate Kashmir

[←415]

नेहरू प्रजा परिषद् को सदा जनसंघ व राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जोड़ते थे।

[←416]

Selected Works of Jawahr Lal Nehru, Second Series 10 Lume 17

[←417]

Integrate Kashmir

[←418]

Integrate Kashmir

[←419]

B.N. Mullik, My Years with Nehru Kashmir

[←420]

Integrate Kashmir

[←421]
वही

[←422]
वही

[←423]

वही

[←424]

वही

[←425]

B.N. Mullik, My Years with Nehru Kashmir

[←426]

पं. नेहरू कश्मीर के प्रश्न को सदा अंतरराष्ट्रीय मुद्दा मानते थे।

[←427]

Integrate Kashmir

[←428]

वही

[←429]
वही

[←430]

वही,

[←431]

कर्ण सिंह, आत्मकथा

[←432]

वही,

[←433]

पं. नेहरू प्राय: कहा करते थे कि प्रजा परिषद् के आंदोलन से राज्य बँट जाएगा।

[←434]

Integrate Kashmir

[←435]

वही,

[←436]

वही,

[←437]

वही,

[←438]

वही,

[←439]

वही,

[←440]
वही,

[←441]

वही,

[←442]

कर्ण सिंह, आत्मकथा

[←443]
वही

[←444]

Integrate Kashmir

[←445]

B.N. Mullik, My Years with Nehru Kashmir

[←446]
वही

[←447]
जनसंघ

[←448]

Integrate Kashmir

[←449]

वही,

[←450]
वही

[←451]

कर्ण सिंह, आत्मकथा

[←452]
वही

[←453]
वही

[←454]

वही

[←455]

वही

[←456]

पाञ्चजन्य, 8/3/53

[←457]

Organiser, Delhi, 16/03/1953

[←458]

रामशंकर अग्निहोत्री, कश्मीर : अलगाव बनाम जुड़ाव

[←459]
वही

[←460]

वही

[←461]
वही

[←462]

वही

[←463]

पाञ्चजन्य, 20/4/53

[←464]

रामशंकर अग्निहोत्री, कश्मीर : अलगाव बनाम जुड़ाव

[←465]
वही

[←466]
वही

[←467]

वही

[←468]

वही

[←469]

वही,

[←470]

Organiser, Delhi, 11/05/1953

[←471]

शिवप्रसाद चौरसिया, जम्मू की चिनगारियाँ

[←472]

वही, भूमिका

[←473]
वही

[←474]
रामशंकर अग्निहोत्री, कश्मीर : अलगाव बनाम जुड़ाव

[←475]

वही,

[←476]

वही,

[←477]

श्यामाप्रसाद मुकर्जी, लीव्स फ्रॉम ए डायरी पृ. 109

[←478]

तथागत राय, अप्रतिम नायक डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी, पृ. 323-324

[←479]

डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी, पृ. 11

[←480]

तथागत राय, अप्रतिम नायक डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी, पृ. 341

[←481]
वही, पृ. 343

[←482]

गुरुदत्त, डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी की अंतिम यात्रा, पृ. 23

[←483]

वही, पृ. 24

[←484]

Organiser, Delhi, 18/05/1953

[←485]

गुरुदत्त, डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी की अंतिम यात्रा, पृ. 24

[←486]

वही, पृ. 25

[←487]

हरीश दत्त शर्मा, डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी, पृ. ४६

[←488]

Organiser, Delhi, 18/05/1953

[←489]

गुरुदत्त, डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी की अंतिम यात्रा, पृ. 26

[←490]

हरीश दत्त शर्मा, डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी, पृ. ८6

[←491]

गुरुदत्त, डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी की अंतिम यात्रा, पृ. 27-28

[←492]

वही, पृ. 28

[←493]
Organiser, Delhi, 18/05/1953

[←494]

गुरुदत्त, डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी की अंतिम यात्रा, पृ. 29

[←495]

Organiser, Delhi, 18/05/1953

[←496]

तथागत राय, अप्रतिम नायक डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी, पृ. 346

[←497]
वही

[←498]

रामेश्वर प्रसाद मिश्र, पं. मौलिचंद्र शर्मा, पृ. 322

[←499]

गुरुदत्त, डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी की अंतिम यात्रा, पृ. 33-34

[←500]

तथागत राय, अप्रतिम नायक डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी, पृ. 348

[←501]

वही, पृ. 352

[←502]

कर्ण सिंह, आत्मकथा, पृ. 188

[←503]

पाञ्चजन्य, वर्ष 6, अंक 49

[←504]

पाञ्चजन्य, 13 जुलाई 1953 ,वर्ष 6, अंक 52

[←505]

रामशंकर अग्निहोत्री, कश्मीर : अलगाव बनाम जुड़ाव, पृ. ४४

[←506]

Pyarelal Kaul, Crisis in Kashmir, P 65-66

[←507]

17 सितंबर, 1953 को नेहरू का लोकसभा में दिया गया वक्तव्य, 'डैंजर इन कश्मीर' से उद्धृत, पृ. 236

[←508]

Prithivi Nath Kaul Bamzai, Kashmir and Power Politics P 209

[←509]
वही

[←510]

कर्ण सिंह, आत्मकथा, पृ. 186

[←511]

Josef Korbel, Danger in Kashmir P-236

[⟵512]

Prithivi Nath Kaul Bamzai, Kashmir and Power Politics P 212

[←513]

कर्ण सिंह, आत्मकथा, पृ. 188

[←514]

Prithivi Nath Kaul Bamzai, Kashmir and Power Politics P 210

[←515]
वही

[←516]
The Hindustan Times Delhi, 24/7/53

[⟵517]

The Hindustan Times Delhi 27/7/53 दोनों डUhरUण danger in Kashmir 239

[←518]
The Hindu Weekly Madras 10/8/53

[←519]

कर्ण सिंह, आत्मकथा, पृ. 191-92

[←520]

वही, पृ. 193

[←521]
वही

[←522]

वही, पृ. 196

[←523]

Vidya Bhushan, Constitution Assembly of Jammu and Kashmir, P-140-141

[←524]

Vidya Bhushan, Constitution Assembly of Jammu and Kashmir, P-138-139

[⟵525]

Vidya Bhushan, Constitution Assembly of Jammu and Kashmir, P-139-140

[⟵526]
The Tribune, Ambala, 9 November, 1954

[←527]

The Tribune, Ambala, 12 November, 1954

[←528]
The Tribune, Ambala, 15 November, 1954

[←529]

इस अधिवेशन की विस्तृत रपट पाञ्चजन्य साप्ताहिक ने अपने 14 जनवरी, 1957 के अंक में प्रकाशित की थी।

[←530]

Christopher Thomas, Faultline Kashmir प्रजा परिषद् ने इन चुनावों में पाँच नहीं छह स्थान जीते थे।

[←531]

पाञ्चजन्य 20/05/1957

[←532]

पाञ्चजन्य 22/07/1957

[←533]

पाञ्चजन्य 20/05/1957

[←534]

पाञ्चजन्य 27/05/1957

[←535]

उन दिनों यदि कोई पेंशनधारी निवर्तमान सरकारी अधिकारी, सरकार की इच्छानुसार नहीं चलता था तो सरकार उसकी पेंशन बंद कर देती थी और यदि उसका कोई रिश्तेदार सरकारी नौकरी में हो तो उसे बर्खास्त कर देती थी।

[←536]

पाञ्चजन्य 22/07/1957

[←537]

Statistical Report on General election on 1962 to the Legislative Assembly of Jammu and Kashmir, ECI, Govt of India

[←538]

कमाल अहमद सिद्दीकी, कश्मीर एक मंजरनामा, पृ. 169-170

[←539]

कर्ण सिंह, आत्मकथा पृ. 262-263

[←540]
Christopher Thomas, Faultline Kashmir, P-223

[←541]

कर्ण सिंह, आत्मकथा, पृ. 280

[←542]

बख्शी के त्यागपत्र के लिए कमाल अहमद सिद्दीकी ने कश्मीर एक मंजरनामा में कामराजे शब्द का प्रयोग व्यंग्य में किया है।

[←543]

The Tribune, Ambala, 15/10/1963

[←544]

The Tribune, Ambala, 16/10/1963

[←545]

The Tribune, Ambala, 16/10/1963

[←546]
The Tribune, Ambala, 25/10/1963

[←547]
The Tribune, Ambala, 28/10/1963

[←548]

The Tribune, Ambala, 31/10/1963